CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
१६१

आचार्यवर-वामनविरचितानि

काव्यालङ्कारसूत्राणि

(स्वोपज्ञवृत्तिसहितानि)

श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचित-
'कामधेनु'-संस्कृतटीकया हिन्दीव्याख्यया च विभूषितानि

हिन्दी व्याख्याकार
श्री हरगोविन्द शास्त्री

प्रस्तावना लेखक
डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रकाशक—
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१
दूरभाष : ५७२१४

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण १९८९
मूल्य ४०-००
40/-

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर
पो० बा० नं० २११३
दिल्ली ११०००७
दूरभाष : २३६३९१

*

प्रधान वितरक
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१
दूरभाष : ६३०७६

मुद्रक
श्रीजी मुद्रणालय
वाराणसी

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

161

KĀVYĀLAṄKĀRASŪTRA

OF

ĀCĀRYA VĀMANA

(Containing author's own glossary)

Along with

'Kamadhenu' Sanskrit commentary

OF

Shri Gopendra Tripurahar Bhupal

Edited with Hindi Translation

By

Shri Hargovinda Shastri

Introduction by

Dr. Brahmananda Tripathi

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

© CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Publishers & Distributors*)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001
Telephone : 57214

First Edition
1989

Also can be had of
CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236391

*

Sole Distributors
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 63076

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कामधेनुः

श्रेयांसि प्रथयतु कोऽपि विट्ठलाह्वो देवो नः श्रुतिशिखरैर्विमृग्यरूपः ।
गोपीनां कुचशिखरेषु यो विहारैर्व्यस्मार्षीन्मुनिजनमानसे निवासम् ॥

ननु भोः सहृदया विद्वन्मणयः! सविनयं किञ्चिद् विज्ञाप्यते । सवृत्तिकाव्यालङ्कारसूत्राणां प्रणेता पण्डितवरवामनोऽतिप्राचीन इति सर्वजनविदितमेतत् । किन्त्वयं काश्मीरदेशीयः काशिकावृत्तिकाराद् भिन्नश्चेति केषाञ्चिदाशयः । तदीयसूत्राणि सवृत्तिमात्राणि बालानामतीव विशेषप्रतिपत्तिं न कलयेयुरिति तद्रहस्यप्रकटनप्रगल्भेन लोकोपकारनिरतेन गोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालतिलकेन काचन व्याख्यापि निर्मिता । स किल भूपालस्तैलिङ्गदेशाधिप इन्दुवंशोद्भवो नाम्ना तिप्पः त्रिपुरहरश्चेति । सैषा व्याख्या विशुद्धपदविन्यासशालिनी अभिमतार्थदायिनी सुमनसां हृदयाह्लादिनी नाम्ना काव्यालङ्कारकामधेनुरिति ।

इयं हि अस्मत्पूर्वैरितरैश्च विद्वन्मणिभिः समासादिता । ग्रन्थोऽस्मद्देशलिपितो देवनागरीलिपिभिः परिवृत्यालेखि । अनन्तरमस्य प्रकटीभवनं प्रतीक्षमाणाः सम्प्रत्यलङ्कृतमुम्बयीनगराणां पण्डितवरज्येष्ठारामुकुन्दशर्मणां सकाशं ग्रन्थमिममनैष्व । तैः किल काश्यां सकलप्राचीनशास्त्रग्रन्थप्रकाशबद्धपरिकरस्य श्रीयुतहरिदासगुप्ताऽभिधस्य सविधे सम्प्रेषितः । तेन च नरमणिना वाराणसेयसंस्कृतपुस्तकमालायां मुद्रणेन पुस्तकमेकं सपदि अनेकतां सद्य एव प्रापितमिति तेषामुपकारगौरवं बिभृवः । अस्य ग्रन्थस्य लेखनाधारभूतानि पुस्तकानि त्वेतानि—

(१) आवयोरात्रेयजयपुरकृष्णमाचार्यस्य सव्याख्यानमतिशुद्धं पुस्तकमेकम् ।

(२) पुनर्द्वितीयं कलकत्तामुद्रितं सवृत्तिमात्रं पुस्तकं तस्यैव ।

(३) आवयोर्वाधूलालकराचार्यस्य सव्याख्यानमतिशुद्धं पुस्तकमेकम् ।

(४) एतद्विट्ठलपुरनिवासिनां काव्यमालानवमगुच्छकान्तर्गतस्य गीतिशतकस्य प्रणेतॄणां श्रीवात्स्यसुन्दराचार्यकवीनां स्वहस्तलिखितमतिशुद्धं तालपत्रात्मकं सवृत्तिव्याख्यानं पुस्तकमेकम् । तत्पत्राणि ॥ ८४ ॥

एवञ्च पुस्तकाधारेण लिखितस्यास्य ग्रन्थस्यावलोकनेनावामपि सहृदयहृदयैरनुग्राह्यौ भवाम इति । पण्डितश्रीमदात्रेयजयपुरकृष्णमाचार्यः पण्डितश्रीवाधूलालकराचार्यश्च ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रस्तावना

काव्यतत्त्वज्ञकस्मैचिन्नूत्नाय कवये नमः ।
रीतिरात्मेति काव्यस्योद्घोषिणे वामनात्मने ॥

अलंकारशास्त्र की महनीयता वैदिकवाङ्मय से लेकर शास्त्र, पुराण, काव्य, नाटकों तक सर्वत्र दिखलायी देती है। इसकी परिसीमा का एक अपना स्वस्थ इतिहास है। देशी-विदेशी आलोचकों ने इसे अपनी आलोचना का विषय बनाया है। उनकी पैनी दृष्टि का परवर्ती विद्वानों ने खण्डन-मण्डन करने के साथ समादर किया है। राजशेखर ने तो इस अलंकारशास्त्र को वेद का सातवाँ अंग माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इसे तर्क, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति इन चार विद्याओं का निचोड़ स्वीकार किया है। इससे इसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

साहित्य की कल्पना को महत्त्व देने वाले आचार्यों में कुन्तल का नाम प्रमुख है। भोजराज ने भी अपने 'शृंगारप्रकाश' की आधारशिला साहित्य की कल्पना को ही माना है। इसका एक प्राचीन नाम था—'क्रियाकल्प'; आचार्य वात्स्यायन ने चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत 'क्रियाकल्प' की भी गणना की है। यहाँ क्रिया का अर्थ है—'काव्य' और कल्प का अर्थ है—'विधान'। यह 'क्रियाकल्प' अभिधान वैसी प्रसिद्धि को प्राप्त नहीं कर सका, जैसा कि यह 'अलंकारशास्त्र' नाम। वामन की दृष्टि में अलंकार केवल शब्द और अर्थ का शोभाधायक बाह्य उपकरण मात्र नहीं है, अपितु यह काव्य में चमत्कारिक गुणों का आधान करने वाला आभ्यन्तर धर्म है। वामन अलंकार शब्द को सौन्दर्य का पर्यायवाची मानते हैं। देखें—'सौन्दर्यमलङ्कारः' १।१।२; और 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' १।१।१। अर्थात् गुण और अलंकार के कारण ही काव्य उपादेय होता है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में राजशेखर ने 'काव्य-मीमांसा' में एक रोचक कथा लिखी है, उसका भी अवलोकन करें।

अलंकारशास्त्र के आचार्यों में सर्वप्रथम 'भरत' का नाम आता है, जिन्होंने रस-सम्प्रदाय की स्थापना की। इनका मत है कि नाटक में रस की ही प्रधानता होती है। इन्होंने अपनी कृति 'नाट्यशास्त्र' में आनुषंगिक रूप से अलंकारशास्त्र का विवेचन ६-७ तथा १६वें अध्याय में किया है। इनके बाद हमारे सम्मुख भामह द्वारा रचित 'काव्यालंकार' एक सर्वमान्य ग्रन्थ के रूप में आता है। इसमें ६ परिच्छेद हैं। इन्होंने शब्द तथा अर्थ की समष्टि

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

को काव्य की संज्ञा इस प्रकार दी है—'शब्दार्थौ काव्यम्'। इस प्रसंग में कुन्तक द्वारा रचित 'वक्रोक्तिजीवित' ग्रन्थ भी एक नयी परम्परा की स्थापना करता है। इसका डिडिमघोष है—समस्त अलंकारों का मूल है—'**वक्रोक्ति**'। इसके बाद महाकवि दण्डी द्वारा रचित 'काव्यादर्श' ग्रन्थ भी अपनी विशेषताओं के कारण इस मणिमाला का अन्यतम मौक्तिक स्वीकार किया गया है। यहाँ तक हम पूर्ववर्ती आलंकारिकों की संक्षिप्त रूप से पूर्वपीठिका का उपन्यास कर चुके हैं। अब हम 'काव्यालङ्कारसूत्राणि' के रचयिता आचार्य वामन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा प्रस्तुत करेंगे।

जीवन-परिचय

जैसा कि प्राचीन विद्वानों तथा कवियों में आत्म-परिचय देने की परम्परा प्रारम्भ से ही नहीं रही, क्योंकि वे आत्मश्लाघानिरपेक्ष होते थे। उसी प्रकार के एक आचार्य वामन भी थे। आज तक इनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक जो ज्ञात कर सके हैं, उसको यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। आचार्य वामन राष्ट्रकूट-वंश में उत्पन्न काश्मीर-नरेश जयापीड के सभापण्डित और मन्त्री थे। देखें—

'मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः॥' राजतरंगिणी।

जयापीड का शासनकाल ७७९-८१९ ई० था और काश्मीर-नरेश गोविन्द तृतीय का शासनकाल ७९४-८१३ ई० माना जाता है। इससे यह स्वीकार किया जाता है कि वामन का समय आठवीं शती का अन्तिम भाग और नवीं शती का प्रथम भाग है। 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के लेखक आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनेग्रन्थ में वामन का स्मरण किया है, अतः ये अभिनवगुप्त के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कारसूत्राणि' में कादम्बरी, उत्तररामचरित, शिशुपालवध आदि के पद्यों को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है। अतः ये बाण, भवभूति तथा माघ के परवर्ती सिद्ध होते हैं। इनके समकालिक 'काव्यालङ्कारसारसङ्ग्रह' ग्रन्थ के रचयिता आचार्य उद्भट थे।

वामन द्वारा रचित 'काव्यलङ्कारसूत्राणि' नामक इस लघुकाय ग्रन्थ में रीतिसम्प्रदाय के चरम उत्कर्ष का दर्शन होता है। प्रारम्भ में उक्त ग्रन्थ मात्र सूत्ररूप में था। तदनन्तर आचार्य वामन ने उस पर स्वोपज्ञवृत्ति भी लिखी। यद्यपि प्राचीन ऐतिहासिकों ने इन सूत्रों की निश्चित संख्या ३१९ बतलायी है, परन्तु उपलब्ध संस्करण उक्त संख्या के न्यूनाधिक होने की सूचना देते हैं। इस ओर पाठक ध्यान दें। प्रस्तुत ग्रन्थ १२०० वर्ष प्राचीन है। इसकी रचना ८०० ई० में हुई थी। इसके रचयिता हैं—आचार्य वामन। इनके उक्त ग्रन्थ

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

में प्रथम बार रीति-सम्प्रदाय के उत्कर्ष की स्थापना हुई है। इनके मत में काव्य की आत्मा रीति है। देखें—**'रीतिरात्मा काव्यस्य'**। इन्होंने अलंकारशास्त्र के समस्त सिद्धान्तों का विवेचन पाँच अधिकरणों में सूत्ररूप में किया है।

ग्रन्थ-परिचय

१. शारीर नामक पहले अधिकरण में काव्य के प्रयोजन तथा तीनों (वैदर्भी, गौडी, पांचाली) रीतियों का वर्णन किया गया है। २. दोषदर्शन नामक दूसरे अधिकरण में पदगत, वाक्यगत तथा वाक्यार्थगत दोषों का प्रतिपादन किया गया है। ३. गुणविवेचन नामक तीसरे अधिकरण में काव्यांगरूप दस गुणों के शब्दगत तथा अर्थगत होने के कारण उनके बीस भेदों का निर्देश किया गया है। ४. आलंकारिक नामक चौथे अधिकरण में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों के क्रमशः लक्षण-उदाहरण दिये गये हैं। ५. प्रायोगिक नामक पाँचवें अधिकरण में कतिपय व्याकरण सम्बन्धी अशुद्ध प्रयोगों की ओर पाठकों का ध्यानाकर्षण किया है और आवश्यकता पड़ने पर उनके औचित्य का निर्वाह कैसे करना चाहिए, इसका भी संकेत किया है। काव्यालंकारसूत्र के प्राचीन टीकाकार श्रीसहदेव की मान्यता है कि आचार्य वामन का यह लघुकाय ग्रन्थ किसी कारणवश प्राचीनकाल में नष्ट हो गया था, जिसका पुनरुद्धार दसवीं शती में श्रीमुकुलभट्ट ने किया।

काव्यालङ्कारसूत्र के प्रमुख सिद्धान्त

१. गुण और अलंकार का परस्पर भेद। २. वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली तीन प्रकार की रीतियाँ; इन्हीं को काव्य की आत्मा भी कहा गया है। ३. वक्रोक्ति का विशिष्ट लक्षण, यथा—'सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः'। ४. विशेषोक्ति का विशिष्ट लक्षण। ५. आक्षेप की द्विविध कल्पना, ६. सभी अर्थालंकारों को उपमा अलंकार के अन्तर्गत मानकर उनका विस्तार दिखलाना।

वामन का काव्यचिन्तन क्रम

(१) **अलंकार**—वामन ने अलंकार शब्द को उपमा आदि अलंकारों की संकीर्ण सीमा से ऊपर उठाकर उसके तत्त्व को परखने का प्रशंसनीय प्रयास किया; वह तत्व है– 'सौन्दर्य'। इसकी आधारशिला है—सार्थक शब्द। इसमें भी उन्होंने शब्द के अन्तः तथा बाह्य दोनों प्रकार के सौन्दर्यों का ग्रहण किया है। जैसा कि वामन ने कहा है—'सौन्दर्यमलङ्कारः' १।१।२। यह सौन्दर्यानुभूति वामन द्वारा प्रदत्त साहित्यशास्त्र के लिए अनुच्छिष्ट सम्पदा है। इस दृष्टि से आचार्य वामन आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त से भी उत्तम विचारक

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

थे। वामन का यह सौन्दर्यतत्त्व वस्तुनिष्ठ धर्म है। अतएव यह रसतत्त्व से भिन्न है, क्योंकि रस व्यक्तिनिष्ठ तत्त्व है। वामन ने अलंकार का निरूपण काव्यालंकारसूत्र के चतुर्थ अधिकरण में किया है। इन्होंने अलंकारों को शब्दभेद तथा अर्थभेद से दो भागों से विभक्त किया है। इस प्रकार का विभाजन इनके पूर्ववर्ती आलंकारिकों (भरत, दण्डी, भामह आदि) ने नहीं किया था। इनके समकालीन उद्भट की कृति में इस प्रकार का अलंकार-विभाजन दिखलायी देता है। वामन ने पूर्ववर्ती आलंकारिकों द्वारा मान्य अलंकारों की छटनी कर उसके बाद उन्होंने ३१ अलंकारों को ही स्वीकार किया। १. वक्रोक्ति, २. व्याजोक्ति तथा ३. प्रतिवस्तूपमा ये तीन अलंकार उनके स्वकल्पित हैं।

प्रतिवस्तूपमा का उल्लेख दण्डी तथा भामह ने भी किया है, किन्तु उनके लक्षण-ग्रन्थों में इसकी स्थिति स्वतन्त्र अलंकार के रूप में नहीं है। इसे स्वतन्त्र अलंकार के रूप में मान्यता आठवीं शती में वामन द्वारा प्राप्त हुई। इसे उद्भट ने भी स्वीकारा है। वामन के अनुसार शब्दालंकार केवल दो हैं—१. यमक और २. अनुप्रास, शेष सभी अर्थालंकार हैं। जब कि दूसरे आचार्य श्लेष को उभयात्मक अलंकार स्वीकार करते हैं। वामन ने यमक के वे सभी भेद अपनाये हैं, जो दण्डी को अभीष्ट थे। इन्होंने अनुप्रास को दो भागों में विभक्त किया है—१. वर्णानुप्रास और २. पादानुप्रास। पादयमक को ही भामह ने 'लाटानुप्रास' की संज्ञा दी है, किन्तु इसे उन्होंने किसी दूसरे की कल्पना स्वीकार किया है। अर्थालंकारों की स्थिति नाम-साम्य पर आधारित है।

(२) **रस**—रस-निरूपण के सम्बन्ध में आचार्य वामन महाकवि दण्डी के समर्थक प्रतीत होते हैं। दोनों के दृष्टिकोणों में फिर भी जो भिन्नता दिखलायी देती है, वह इस प्रकार है—दण्डी ने सभी रसों को रसवत् अलंकार में अन्तर्भूत स्वीकार किया है। इसके विपरीत वामन ने उन्हें कान्ति नामक गुण में अन्तर्भूत माना है। वास्तव में रस काव्यधर्म न होकर काव्यज्ञधर्म है, ऐसा प्राचीन भोज आदि आचार्यों ने स्वीकार किया है। अधिक क्या कहा जाये, यह तो एक अनुभवैकगम्य विषय है।

(३) **गुण**—साहित्यिक गुणों का वर्णन आचार्य भरत से ही संस्कृत-साहित्य में सुलभ है, किन्तु इन्हें सर्वाधिक महत्त्व आचार्य वामन ने प्रदान किया। भरतमुनि तथा दण्डी के अनुसार गुणों की संख्या दस है। किन्तु दोनों के क्रम में परस्पर भेद दृष्टिगोचर होता है। इन्हें आप क्रमशः इस प्रकार देखें—भरतनाटयशास्त्र १७।५६ तथा काव्यादर्श १।४१। भरत के अनुसार गुणों के दस नाम ये हैं—१. श्लेष, २. प्रसाद, ३. समता, ४. समाधि, ५. माधुर्य, ६. ओज, ७. सुकुमारता, ८. अर्थव्यक्ति; ९. उदारता, १०. कान्ति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

गुण-लक्षण—भरत आदि प्राचीन आचार्यों ने गुणों के लक्षण के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वामन ने उसका प्रतिपादन इस प्रकार किया है—'गुण वे होते हैं, जो काव्यशोभा को जन्म देते हैं'। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य वामन गुणों को भावात्मक तत्त्व मानते हैं, न कि किसी का अपोह या विपर्यास। इतना होने के बाद भी वामन-कृत गुणलक्षण भी तटस्थ लक्षण ही कहा जायेगा। वामन ने गुणों को पदरचना का ऐसा उत्कृष्ट धर्म माना है, जिससे काव्यशरीर में नवयौवन का प्रादुर्भाव हो जाता है। वामन का सौन्दर्यवाद उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना आनन्दवर्धन का ध्वनिसम्प्रदाय।

वामन ने काव्य-मार्गों को रीति कहा है। उनकी संख्या तीन स्वीकार की है—१. वैदर्भी, २. गौडी और ३. पाञ्चाली। इन रीतियों का उद्भव देश-विशेष के साथ जुड़ा हुआ है। दण्डी की भाँति वामन ने भी वैदर्भीरीति को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। आगे चलकर वामन ने वैदर्भीरीति के शुद्ध तथा मिश्र दो भेद किये हैं—१. समासरहित पदावली को शुद्धवैदर्भी तथा २. अल्प समासयुक्त रचना को मिश्रवैदर्भी कहा है। वामन ने उक्त तीनों रीतियों के लक्षण सूत्रवृत्ति की कारिकाओं में इस क्रम से दिये हैं। देखें—वैदर्भी का लक्षण का० सू० १।२।११ दो पद्य, गौडी का लक्षण—का० सू० १।२।१२ तथा पाञ्चाली का लक्षण—का० सू० १।२।१३।

वामन की दृष्टि से गुण और अलंकारों में अन्तर—'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः' (का० सू० ३।१।१) और 'तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः' (का० सू० ३।१।२) अर्थात् काव्य में शोभा का आधान करने वाले धर्मों को गुण कहते हैं। अलंकार वे कहे जाते हैं, जो उस शोभा की वृद्धि में कारण होते हैं।

(४) **दोष**—भरतमुनि ने 'गुणों के विपर्यास ही दोष हैं', ऐसा स्वीकार किया है। इनके परवर्ती आचार्यों ने भी दोषों पर विचार कर अपने मत स्थिर किये हैं। वामन ने भरतमुनि की ही वाक्यावलि को अपनी भाषा में परिवर्तित कर 'दोष गुणों के विपर्यय हैं' ऐसा कहा है, जो अत्यन्त स्पष्ट है। वामन ने दोष को—१. पददोष, २. पदार्थदोष, ३. वाक्यदोष, ४. वाक्यार्थदोष—इस प्रकार चार भागों में विभक्त किया है, जिन्हें क्रमशः यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. **पददोष**—असाधुत्व, कष्टत्व, ग्राम्यत्व, अप्रतीतत्व, अनर्थकत्व।

२. **पदार्थदोष**—अन्यार्थत्व, नेयार्थत्व, गूढार्थत्व, अश्लीलत्व, क्लिष्टत्व।

३. **वाक्यदोष**—वृत्तभेद, यतिभ्रंश, विसन्धित्व।

४. **वाक्यार्थदोष**—व्यर्थत्व, एकार्थत्व, सन्दिग्धत्व, अयुक्तत्व, अपक्रमत्व, लोकविरुद्धत्व, विद्याविरुद्धत्व।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इनके अतिरिक्त और भी अनेक दोषों का उल्लेख वामन ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर किया है। मम्मट द्वारा काव्यप्रकाश में दिये गये दोषनिरूपण प्रकरण की मूल आधारशिला वामन-कृत दोषविवेचन ही है। यद्यपि मम्मट की दृष्टि इनके अतिरिक्त आलंकारिकों पर भी थी, तथापि मम्मट के दृष्टि-कोण के मूलाधार वामन ही थे। आप गम्भीरता से विचार करें और देखें कि आपको वामन के विचारों के आगे परवर्ती आलंकारिकों के विचार या तो अनुकरण मात्र प्रतीत होंगे या वे इनकी तुलना में निष्प्रभ जैसे लगेंगे। इस दृष्टि से आचार्य वामन का चिन्तन काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अनुपम, आदरणीय एवं मौलिक कहा जा सकता है। वामन श्रेष्ठ कवि के साथ ही वैयाकरण भी थे। इसकी पुष्टि के लिए इनकी प्रस्तुत कृति का परिशीलन अपेक्षित है।

पण्डितवर वामन-कृत 'काव्यालङ्कारसूत्राणि' ग्रन्थ का सर्वप्रथम प्रकाशन १८७५ ई० में जर्मनी देश के जेन नामक नगर-निवासी प्रोफेसर कापेलर (Professor Cappeller) नामक विद्वान् ने कराया था। वह संस्करण आज भारतवर्ष में सर्वसुलभ नहीं है। तदनन्तर १८८३ ई० में कलकत्ता-निवासी आनन्दराम बड़ुया नामक विद्वान् ने प्रकाशित कराया, किन्तु यह मुद्रण अच्छे रूप में नहीं हो सका। उसके बाद इसके अनेक संस्करण उपलब्ध होते हैं। सुप्रसिद्ध निर्णयसागर मुंबई से भी इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत कृति का संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में सर्वत्र समादर है। अतः इसे श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपाल-विरचित प्राचीन संस्कृत टीका 'काव्यालङ्कारकामधेनु' तथा सरल, सुबोध हिन्दी टीका के साथ चौखम्बा सुरभारती द्वारा प्रकाशित कराकर विद्वज्जनों के करकमलों में सादर समर्पित करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशा है, इसे स्वीकार कर पाठकवृन्द लेखक एवं प्रकाशक का उत्साहवर्धन करेंगे।

—डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विषय-सूची

शारीरं नाम प्रथममधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः	*	प्रयोजनस्थापना	४
द्वितीयोऽध्यायः	*	अधिकारिचिन्ता, रीतिनिश्चयश्च	१२
तृतीयोऽध्यायः	*	काव्याङ्गानि काव्यविशेषश्च	२८

दोषदर्शनं नाम द्वितीयमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः	*	पदपदार्थदोषविभागः	४७
द्वितीयोऽध्यायः	*	वाक्यवाक्यार्थदोषविभागः	६४

गुणविवेचनं नाम तृतीयमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः	*	गुणालङ्कारविवेकः शब्दगुणविवेकश्च	८७
द्वितीयोऽध्यायः	*	अर्थगुणविवेचनम्	१०८

आलङ्कारिकं नाम चतुर्थमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः	*	शब्दालङ्कारविचारः	१२७
द्वितीयोऽध्यायः	*	उपमाविचारः	१४५
तृतीयोऽध्यायः	*	उपमाप्रपञ्चाधिकारः	१६५

प्रायोगिकं नाम पञ्चममधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः	*	काव्यसमयः	१९८
द्वितीयोऽध्यायः	*	शब्दशुद्धिः	२११

परिशिष्टम्

१. काव्यालङ्कारसूत्रानुक्रमणिका	२६६
२. वृत्युदाहृतश्लोकानुक्रमणिका	२७२

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

॥ श्रीः ॥

पण्डितप्रवरवामनविरचित-सवृत्ति-

काव्यालङ्कारसूत्राणि

'काव्यालङ्कारकामधेनु'-'नवनीताख्य'-व्याख्याद्वयोपेतानि

शारीरं नाम प्रथममधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामिनेन कविप्रिया।
काव्यालङ्कारसूत्राणां स्वेषा[1] वृत्तिर्विधीयते ॥

कामधेनु

कल्याणानि तनोतु नः स भगवान् क्रीडावराहाकृति-
दंष्ट्राग्रेण नवप्ररोहपुलकां देवीं धरामुद्वहन्।
यस्याङ्गेषु वहन्ति रोमविवरालग्ना महाऽम्भोधयः
कान्तास्पर्शसुखादिव प्रकटितां स्वेदोदबिन्दुश्रियम् ॥ १ ॥

दरोन्मीलत्फालद्युतिमदमृतस्यन्दिशुभिकं
भ्रमन्मीनोष्णीषं पदसरणिपारीणवलयम्।
विराजद्दम्भावव्यतिकरितपुम्भावसुभगं
पुरस्तादाविस्ताद् भुवनपितरौ तन्मम महः ॥ २ ॥

ॐकारमणिघण्टानुरणन्निगमबृंहितम्।
चित्ते श्रृङ्खलितं भक्त्या चिन्तये चिन्मयं गजम् ॥ ३ ॥

करुणामसृणाऽऽलोकप्रवणा शरणार्थिषु।
प्रगुणाऽऽभरणा वाणीस्मरणाऽनुगुणाऽस्तु नः ॥ ४ ॥

उन्मीलत्प्रतिभानकन्दमुदयत्सन्दर्भनालं लस-
च्छ्लेषव्याकुलशब्दपत्रमतुलं बन्धारविन्दं सदा।
अध्यासीनमलङ्क्रियापरिलसद्गन्धं वचोदैवतं
वन्दे रीतिविकासमाशुविगलन्माधुर्यपुष्पासवम् ॥ ५ ॥

---

१. 'स्वर्था' इति 'क' पुस्तके पाठः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नमस्कुर्वे खर्वेतरविविधविद्याविलसितान्
प्रवाचः प्राचोऽहं प्रथितयशसो भामहमुखान् ।
कृता यैरर्थानां कृतिषु नयचर्चा सदसतां
प्रभेवाभिर्व्यक्ति प्रजनयति भासामधिपतेः ॥ ६ ॥
पावनी वामनस्येयं पदोन्नतिपरिष्कृता ।
गम्भीरा राजते वृत्तिर्गङ्गेव कविहर्षिणी ॥ ७ ॥
प्रबन्धं तालानां भवनुतिमिषेणाऽतनुत यः
शिवाक्लृप्ताकारा नटनकरणानामपि भिदाः ।
स वृत्तेर्व्याख्यानं सरलरचनं वामनकृते-
विधत्ते गोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालतिलकः ॥ ८ ॥
पावनपदविन्यासा समग्ररसदोहशालिनी भजताम् ।
घटयति कामितमर्थं काव्यालङ्कारकामधेनुरियम् ॥ ९ ॥
यत्रोपयुज्यते यावत् तावत् तत्र निरूप्यते ।
प्रसङ्गानुप्रसङ्गेन नाऽत्र किञ्चित् प्रपञ्चयते ॥ १० ॥
अभ्यर्थके मय्यनुकम्पया वा साहित्यसर्वस्वसमीहया वा ।
मदीयमार्या मनसा निबन्धममुं परीक्षध्वममत्सरेण ॥ ११ ॥
अध्याये प्रथमे काव्यप्रयोजनपरीक्षणम् ।
अधिकारिविचारश्च द्वितीये रीतिनिश्चयः ॥ १२ ॥
काव्याऽङ्गकाव्यभेदानां तृतीये प्रतिपादनम् ।
तुर्ये पदपदार्थानां दोषतत्त्वविवेचनम् ॥ १३ ॥
वाक्यवाच्यार्थदोषाणां पञ्चमे तु प्रपञ्चनम् ।
गुणालङ्कारभेदस्तु षष्ठे भेदगुणास्तथा ॥ १४ ॥
सप्तमेऽर्थगुणाः शब्दाऽलङ्काराः पुनरष्टमे ।
उपमा नवमे तस्याः प्रपञ्चो दशमे भवेत् ॥ १५ ॥
काव्यस्यैकादशे संविद् द्वादशे शब्दशोधनम् ।
इत्येष द्वादशाध्यायीप्रमेयाणामनुक्रमः ॥ १६ ॥

अथ ग्रन्थकारः स्वकर्तृकाणि सूत्राणि व्याकर्तुकामः प्रारम्भ एव प्राचीनाऽऽचार्यपरम्परासमाचारपरिप्राप्तकर्तव्यताविशेषरूपमङ्गलानुष्ठानेन स्वयं प्रारिप्सितग्रन्थपरिसमाप्तिपरिपन्थिप्रत्यूहव्यूहप्रतिहननप्रगल्भसमग्रदेवताऽनुग्रहसम्पन्नोऽपि व्याख्यातृश्रोतॄणामविघ्नव्याख्यानश्रवणलाभाय ग्रन्थाऽऽदौ तन्मङ्गलनिबन्धनपूर्वकं तत्प्रवृत्तिसिद्धये विषयप्रयोजनादि दर्शयन्नाद्येन पद्येन कर्तव्यं प्रतिजानीते ।

प्रणम्येति । भक्तिश्रद्धातिशयलक्षणः प्रकर्षः प्रशब्देनात्र प्रकाश्यते । तादृगेव हि मङ्गलमन्तरायसन्तानशान्तिं सन्तनोति । अन्यथा कृतायामपि कृतौ प्रारिप्सितग्रन्थः परिसमाप्तिं न सम्पादयेत्, किरणावल्यादौ तथा दर्शनात् । अथ कथमिह नमिस्सकर्मकः स्यात् ? प्रह्वीभावप्रवृत्तेरस्याकर्मकत्वात् । 'नमन्ति शाखा नवमञ्जरीभि'रित्यादिप्रयोगदर्शनाच्च । नचाऽयमुपसर्गवशात् सकर्मकः, प्रशब्दस्य प्रकर्षमात्रार्थत्वेन कर्म-

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

सम्बन्धोपपादकत्वायोगात् । 'नमामि देव'मित्यादावुपसर्गस्याप्यभावात् । न चायमन्तर्भावितण्यर्थः, अनौचित्यप्रसङ्गादिति । तदेतत् पाणिनिफणितिपरायणपरिणतान्तःकरणानामस्माकं चेतसि चोद्यं न चातुरीमाचरति । तथाहि, यथा जयतिरकर्मकः प्रकर्षेण वर्तने, पराजये तु सकर्मकः, तथा नमिधातुः क्वचित् प्रह्वीभावार्थः क्वचिन्नमस्कारार्थश्च भवति । तत्र यदा प्रह्वीभावार्थमात्रविवक्षया प्रयुज्यते, तदानीमेषोऽकर्मकः, यदा नमस्कारार्थविवक्षया प्रयुज्यते, तदा सकर्मक इति विवेकः । यद्येवं तर्हि 'देवं प्रणतः' इत्यत्र कर्तरि क्तप्रत्ययो न सिद्ध्येत्, 'सकर्मकाऽकर्मकाद्धातोः क्तो भवेत् कर्मभावयोः' इति सकर्मकाद्धातोः कर्मणि क्तविधानात् । गत्यर्थाकर्मकादिषु नमेः परिगणनाभावाच्चेत्यपि न चोदनीयम् । 'व्यवसितादिषु क्तः कर्तरि चकाराद्' (५।२।४३) इतीहैव वक्ष्यमाणसूत्रेण नमेरपि कर्तरि क्तप्रत्ययसम्भवात् । 'व्यवसितः प्रतिपन्न' इत्यादिषु गत्यर्था-(पा० ३।४।७२)दिसूत्रेण चकारादनुक्तसमुच्चयार्थात् कर्तरि क्तप्रत्ययो भवतीति तस्य सूत्रस्याऽर्थः । परमं परिदृश्यमानज्योतिः परिपाटीमतिवर्तमानम् । ज्योतिश्चिन्मयम् । परमं ज्योतिः प्रणम्येत्यत्र वाक्यार्थसामर्थ्येन निखिलनिगमनीरजराजिराजहंसस्य परमहंसभावनापदवीदवीयसः परस्य ब्रह्मणो यत् पारमार्थिकं रूपं, तदेव प्रणिधानबलेन प्रमुषितविषयान्तरप्रसङ्गे प्रहर्षतरङ्गितेऽन्तःकरणे प्रत्यक्षतोऽनुभवन् प्रणामप्रचयेन पर्यचरदिति प्रतीतेः परमयोगित्वमस्य प्रबन्धुः प्रत्याय्यते । वामनेनेति निजनामनिर्देशो यशःप्रकाशनाय । कवीन् प्रीणातीति कविप्रीः । 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (पा० ३।२।१७८) इति क्विप्प्रत्ययः । तेन कविप्रिया इति तृतीयान्तं कर्तृविशेषणम् । कवीनां प्रियेति प्रथमान्तं कर्मविशेषणं वा । काव्येति—'कवनीयं काव्यम्' इति लोचनकारः । 'कवयतीति कविः, तस्य कर्म काव्यम्' इति विद्याधरः । 'कौति शब्दायते विमृशति रसभावानिति कविः, तस्य कर्म काव्यम्' इति भट्टगोपालः । 'लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्' इति काव्यप्रकाशकारः । भामहोऽपि—'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता । तदनुप्राणनाज्जीवेद् वर्णनानिपुणः कविः ॥ तस्य कर्म स्मृतं काव्यम्' इति । तदेतत् काव्यशब्दव्युत्पत्तिकथनम् । चारुताशालिशब्दार्थयुगलं काव्यमिति रूढोऽर्थः । तस्याऽलङ्कारोऽलङ्कृतिः । 'भावे' घञ् (पा० ३।३।१८) । दोषहानगुणालङ्कारादानाभ्यामाधीयमानं सौन्दर्यमिति यावत् । तत्प्रतिपादकानि सूत्राणि, तेषाम् । सूत्रलक्षणमुक्तं प्राचा भामहेन—'अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम् । सम्यक्संसूचितार्थं यत् तत् सूत्रमिति कथ्यते' ॥ इति । स्वेषामिति । सूत्रवृत्त्योरेककर्तृकत्वप्रतिपादनेन सूत्रकाराभिमतार्थप्रतिपादिनीवृत्तिः, वृत्तेरन्यकर्तृकत्वाशङ्काविरहश्चेत्युभयमपि उपक्षिप्यते । वर्ततेऽस्यां सूत्राणां यथावत् पदपदार्थविवेक इति वृत्तिः । अधिकरणार्थे क्तिन् प्रत्ययः । वृत्तिलक्षणमुक्तं भामहेन—'सूत्रमात्रस्य या व्याख्या सा वृत्तिरभिधीयते' । इति । काव्यालङ्कारसूत्राणां वृत्तिरित्यनेन विषयसम्बन्धौ सूचितौ । कविप्रियेत्यनेन अधिकारिप्रयोजने सूचिते । तदेतदनुबन्धचतुष्टयमुत्तरत्र प्रतिपादयिष्यते विस्तरेण ।[1]

---

१. 'विस्तरेण प्रतिपादयिष्यते' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

श्रीरामं रघुनन्दनं परतरं शूरं दयालुं विभुं
कैकेयीतनुजाग्रजं गुणनिधिं सौमित्रिसेव्यं परम् ।
लङ्केशानुजराजदं रघुवरं लङ्केशकालानलं
भक्तानामभयप्रदं सुरनुतं वन्दे सदैवेष्टदम् ॥ १ ॥
जगद्व्याहारकरणं सगुणं गुणवर्जितम् ।
नित्यानन्दप्रदं वन्दे सारदं शारदं महः ॥ २ ॥
श्रीवामनकृतकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिविशदार्थाम् ।
व्याख्यां नवनीताख्यां हिन्दीभाषामयीं विदधे ॥ ३ ॥

चिन्मय परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्माको प्रणामकर कवियोंके प्रिय वामन-द्वारा अपने (रचे हुए) काव्यालङ्कार-सूत्रोंकी वृत्ति बनायी (लिखी) जाती है। यहाँ 'कविप्रिया' शब्द ग्रन्थकार वामनाचार्यका विशेषण है, 'कवीनां प्रिया' ऐसा समास-विग्रह करनेसे यह 'कविप्रिया' शब्द वृत्तिका विशेषण होगा ।

काव्यं ग्राह्यम् अलङ्कारात् ॥ १ ॥

काव्यं खलु ग्राह्यमुपादेयं भवति, अलङ्कारात् । काव्यशब्दोऽयं गुणाऽलङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते । भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते ॥१॥

काव्य अलङ्कारसे युक्त होनेके कारण ग्रहण करने योग्य होता है ।

काव्य अलङ्कारसे युक्त होनेसे उपादेय (ग्रहण-योग्य) है । यह 'काव्य' शब्द गुण (ओज, प्रसाद आदि) और अलङ्कार (उपमा, यमक आदि) से संस्कारसम्पन्न शब्द और अर्थका बोध कराता है । परन्तु उपचारसे केवल शब्दार्थका बोधक 'काव्य' शब्दका ग्रहण होता है ॥ १ ॥

[१]काव्यस्य कः पुनरलङ्कारादुपकारो येन प्रतिज्ञायमानं तत्सूत्रवृत्तिविधानं सफलं स्यादिति शङ्कामपनेतुमलङ्कारप्रयोजनप्रतिपादकमादिमं सूत्रमुपादत्ते—काव्यमिति ॥ 'खलु' शब्दो वाक्याऽलङ्कारे ।[२] काव्योपादाननिदानत्वादलङ्कारो भवत्युपयोगीति भावः । ननु काव्यमेव तावदुपादातव्यं चेदलङ्कारस्यापि तदुपादानहेतुत्वमुपपद्येत, तत्सूत्रवृत्तिविधानं च सफलं स्यात्, तस्योपादेयत्वमेव कुत इति चेदत्र वक्तव्यम् । यत् काव्यमुपादेयं न भवतीति तत् कस्य हेतोः ? न तावद् ऋषिप्रणीतत्वाभावादनुपादेयत्वम्, बाल्मीकिबोधायनप्रभृतिभिरपि महर्षिभिः काव्यस्य प्रणयनात् । नापि पुरुषप्रणीतत्वात्, शास्त्रनिबन्धानामपि तथात्वेनानुपादेयत्वप्रसङ्गात् । न च काव्यत्वात्, रामायणादावनैकान्तिकत्वात् । तस्यापि पक्षसमत्वशङ्कायामेकैकाक्षरोच्चारणेऽपि फलविशेष-

---

१. एतस्मात्प्राक् 'ननु' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

२. 'वाक्यालङ्कारे' इत्यग्रे 'यद्वक्ष्यति—' वाक्यालङ्कारप्रयोजनं तु नानर्थकम्—' तथा खलु हि हन्त (अधिकरण ? अध्याय १ सूत्र ९=२।१।९) इत्यधिकः 'क' पु०, 'ख' पु० तु 'न वाक्या...... नयनगोचरं मे गता ।' तथा हि खलु हन्त इति' इत्येवं वृत्तिरूपेणैव पाठः ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वचनविरोधः । नापि दृष्टप्रयोजनाऽभावात्, दृष्टप्रयोजनानां बहूनामुपदिष्टत्वात् । तथोक्तं काव्यप्रकाशे—'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' ।। इति । नाप्यदृष्टप्रयोजनाभावात्, स्वर्गापवर्गलक्षणस्यादृष्टप्रयोजनस्य शिष्टैरनुशिष्टत्वात् । यदाहुः—'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति कीर्तिं प्रीतिञ्च साधुकाव्यनिषेवणम्' ।। इति । काव्यादर्शेऽपि—'चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम्' इति । इहापि 'काव्यं सद्' (१।१।५) । इति वक्ष्यमाणत्वात् । अथ मन्यसे 'काव्यालापांश्च वर्जयेद्' इति निषेधवचनादनुपादेयत्वं काव्यस्येति, तदप्यनालोचितचतुरम्, काव्यालापनिषेधवचनस्याऽसत्काव्यविषयत्वेन व्यवस्थापनात् । यदाह विद्यानाथः—'यत्र पुनरुत्तमपुरुषचरितं न निबध्यते, तत् काव्यं परित्याज्यमेव । तद्विषया च स्मृतिः, काव्यालापांश्च वर्जयेदिति' इति । न केवलं विषयवैगुण्येन काव्यस्यासाधुत्वम्,[1] किन्तु प्रबन्धुः प्रतिभादौर्बल्यकुलवैकल्याभ्यामपि भवति । तदुक्तं काव्यादर्शे—'तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन । स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्' ।। इति । कविगजाङ्कुशे—'शुनीदुग्धमिव त्याज्यं पद्यं शूद्रकृतं बुधैः । गवामिव पयो ग्राह्यं काव्यं विप्रविनिर्मितम्'[2] ।। इति । उत्तमपुरुषकथाकथनं तु काव्यं ग्राह्यमेव । तदुक्तं भामहेन—'उपश्लोक्यस्य माहात्म्यादुज्ज्वलाः काव्यसम्पदः' । इति । भट्टोद्भटेनापि कथितम्—'गुणाऽलङ्कारचारुत्वयुक्तमप्यधिकोज्ज्वलम् । काव्यमाश्रयसम्पत्त्या मेरुणेवाऽमरद्रुमः' ।। इति । भोजराजेनापि कथितम्—'कवेरल्पापि वाग्वृत्तिर्विद्वत्कर्णावतंसति । नायको यदि वर्ण्येत लोकोत्तरगुणोत्तरः' ।। इति । किं बहुना प्रतिपाद्यमहिम्ना प्रबन्धप्रशस्तिरिति शास्त्राणामपि समानमेतत् । तथाहि न्यायवैशेषिकशास्त्रयोरीश्वरप्रतिष्ठापकतया पूर्वोत्तरमीमांसयोर्धर्मब्रह्मप्रतिपादकतया महनीयत्वम् । तत्र चिन्तायां[3] तु शास्त्राणामपि काव्यमुखप्रेक्षितया कार्यकारित्वमित्युपनिषत् । यदाहुः—'स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुञ्जते । प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटुभेषजम्' ।। इति ।[4] शास्त्रकाव्ययोरियान् विशेषो यत् प्रभुसम्मिततया दुर्लभोऽनुप्रवेशः शास्त्रे, कान्तासम्मिततया सुलभोऽनुप्रवेशः काव्ये इति । यदाहुः—'कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्याव्याधिनाशनम् । आह्लाद्यमृतवत् काव्यमविवेकगदापहम्' ।। इति । साहित्यचूडामणावप्युक्तम्—'तदिदं पुण्ड्रेक्षुभक्षणाद्वेतनवित्तलाभो यत् काव्यश्रवणाद् व्युत्पत्तिसिद्धिः' इति । तस्माद् दृष्टाऽदृष्टाऽनेकोपकारकारितया काव्यमुपादातव्यम् । ततश्च सफलोऽयमलङ्कारसूत्रवृत्तिविधानयत्न इति स्थितम् ।

अथ काव्यशब्दस्याऽनेकार्थत्वेन विप्रतिपत्तौ स्वसिद्धान्तसिद्धं मुख्यार्थं तावत् प्रख्यापयति—काव्यशब्दोऽयमिति । लिलक्षयिषितगुणालङ्कारसंस्कृतशब्दार्थयुगलवाची नपुंसकलिङ्गः काव्यशब्द इत्यर्थः । गुणालङ्कारसंस्कृतयोरिति गुणैरोजःप्रमुखैः अलङ्कारैर्यम-

---

१. 'नासाधुत्वं काव्यस्य' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'विप्रेण निर्मितम्' इति 'ख' पु० पा० ।

३. '···तया च महनीयत्वम् । तत्त्वचिन्ता···' इति 'ख' पु० पा० ।

४. एतदग्रे 'किञ्च' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कोपमादिभिश्च संस्कृतयोरलङ्कृतयोरित्यर्थः। अत्र शब्दार्थौ द्वौ सहितावेव काव्यमिति काव्यपदार्थकथनात्कमनीयताशालिशब्द एव काव्यमथवार्थ एवेति पृथक्पक्षद्वयं प्रत्यक्षेऽपि। यतो द्वयोः सम्भूयाऽऽह्लादनिबन्धनत्वमिति। तदुक्तं वक्रोक्तिजीविते–'न शब्दस्य रमणीयताविशिष्टस्य केवलस्य काव्यत्वं, नाप्यर्थस्य' इति। यद्यपि काव्यपदं गुणालङ्कारसंस्कृतशब्दार्थयुगलं व्याचष्टे, तथाप्यस्मिन् सूत्रे मुख्यार्थस्यानुपयोगलक्षणं बाधं पश्यन् शब्दार्थयुगलमात्रे तदुपचर्यत इत्याह–भक्त्येति। भक्त्या उपचारेण। गुणालङ्कारसंस्कृतत्वस्य पृथक्करणं मात्रचोऽर्थः। ननु 'मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्। अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया'॥ इत्युक्तरीत्या मुख्यार्थबाधादौ सत्येवोपचारो वक्तव्यः। तथा च गुरुरभिवाद्यो, गुरुत्वादित्यत्र यथा गुरुशब्दपरिगृहीतस्यैव गुरुत्वस्य तदभिवादहेतुत्वं दृष्टम्, तथैवात्राप्यलङ्कारस्य काव्यग्रहणहेतुत्वमुपपद्यत इति कथं मुख्यार्थबाधः। चारुताशालिशब्दार्थयोः शब्दाऽर्थमात्रस्य वस्तुत एकत्वाद् भेदनिबन्धनो दुर्घटः[1]। 'काव्यं ग्राह्यमलङ्काराद्' इति भेदनिर्देशेनैव गुणालङ्कारवैशिष्ट्य तद्व्युत्पत्तिरूपं प्रयोजनञ्च सम्भवतीति कथमुपचार? अत्रोच्यते—यथा, गुरुत्वादभिवाद्य इत्युक्ते गम्यत एव गुरुरिति। तथापि गुरुरित्युच्यमानमतिरिच्यते। एवमिहापि अलङ्काराद् ग्राह्यमित्युक्ते काव्यमिति गम्यत एव। तथापि काव्यमित्युच्यमानमतिरिच्यते इति पुनरुक्तप्रायत्वाद्, अनुपयुक्तमिति मुख्यार्थभङ्गः। न चानुपयुक्तत्वेऽप्यनुपपत्तेरभावात् कथं मुख्यार्थभङ्ग इति चोदनीयम्। यतो योग्यताविरहवदाकाङ्क्षाविरहोऽपि मुख्यार्थभङ्गहेतुः, अन्वयविघटनाऽविशेषात्। ततश्चानुपयुक्तावाकाङ्क्षावैकल्यमनुपपत्तौ तु योग्यतावैकल्यमित्यवगन्तव्यम्। चारुताशालिशब्दार्थयोः शब्दमात्रस्य च गुणभेदात्। भेदे सति सादृश्यलक्षणः सम्बन्धः। गुरुपदोपलक्षिते पुंसि हितानुशासनकौशल्यादिप्रतिपत्तिवच्छब्दार्थयोर्गुणालङ्कारवैशिष्ट्यप्रतिपत्तिः प्रयोजनं च सम्भवतीत्युपपन्न एवोपचार इत्यलं विस्तरेण॥ १॥

कोऽसावलङ्कार इत्यत आह—

सौन्दर्यमलङ्कारः॥ २॥

अलङ्कृतिरलङ्कारः। करणव्युत्पत्त्या पुनरलङ्कारशब्दोऽयम् उपमादिषु वर्तते॥ २॥

यह 'अलङ्कार' क्या वस्तु है? इस शब्दका उत्तर द्वितीय सूत्रमें देते हैं—

सुन्दरता (की स्थापना पद्य में करना) अलङ्कार है।

भावमें विग्रह करनेपर अलङ्कृति ही 'अलङ्कार' है। ('अलङ्क्रियतेऽनेन' ऐसी) करणमें व्युत्पत्ति करनेपर तो वह 'अलङ्कार' शब्द उपमा-यमक आदिमें प्रयुक्त होता है॥ २॥

अलङ्कारशब्दोऽयं किं भावसाधनः, उत करणसाधन इति सन्देहात् पृच्छति—कोऽसाविति। तत्रोत्तरं वक्तुमुत्तरसूत्रमवतारयति—अत आहेति। वृत्तिकारदशातः

१. 'शब्दार्थमात्रस्य च वस्तुत एकार्थत्वाद्भेदनिबन्धनो दुर्घटः सम्बन्धः' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

सूत्रकारदशा अन्यैवेति कर्तृभेदमाश्रित्योक्तम्—आहेति। अत्र भावव्युत्पत्तेर्विवक्षितत्वाद् अलङ्कारशब्दो भावार्थमाचष्ट इत्याह—अलङ्कृतिरलङ्कार इति। अलङ्कारशब्दस्य करणव्युत्पत्तिपक्षे तु न गुणानां काव्यग्रहणहेतुत्वमिति 'युवतेरिव रूपमङ्ग! काव्यं स्वदते शुद्धगुणम्' (३।१।१ श्लो०) इत्यादि वक्ष्यमाणं नोपपद्यते इत्यर्थोऽसङ्गतिः। 'न क्त्ल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वासरूपविधि(पा० ३।१।९४)रिष्यते' इति करणे ल्युट् एव प्राप्तेः शब्दासङ्गतिश्चेत्याशयः। नन्वलङ्कारशब्दस्य कटकमुकुटादाविव यमकोपमादिषु अविगीतशिष्टप्रयोगदर्शनात् 'अध्यायन्याये'(पा० ३।३।१२२)त्यादिसूत्रे चकारादनुक्तसमुच्चयार्थाद् वा, 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (पा० ३।३।११३) इति बहुलग्रहणाद् वा करणसाधनोऽप्यलङ्कारशब्दः सङ्गच्छत इति चेन्मतम्, तत्तु नानिष्टमित्यभ्युपगम्यानुवदति—करणव्युत्पत्त्या पुनरिति। कथञ्चित् कल्पितायामपि करणव्युत्पत्तौ न गुणानां काव्यग्रहणहेतुत्वमिति स दोषस्तदवस्थ इत्याशयः। ननु करणसाधनोऽयमलङ्कारशब्दो यमकोपमादिषु वर्तमानो गुणानपि गृह्णाति, सौन्दर्यहेतुत्वाविशेषादुभयेषामिति, तदेतदविचारितरमणीयम्। न हि व्युत्पत्तिरस्तीति शब्दः सर्वत्र वक्तुं शक्यते, किन्तु शिष्टप्रयोगे दृष्टे व्युत्पत्तिरन्विष्यते, अन्यथा पङ्कजादयः शब्दाः कुमुदादिषु पद्मादिष्विव प्रयुज्येरन्, पङ्कजत्वेनाविशेषादिति[1] स्यादतिप्रसङ्गः, तस्मात् पद्मे पङ्कज[2]शब्दवदलङ्कारशब्दः कटकमुकुटादिष्विव यमकोपमादिषु योगरूढ इत्यवगन्तव्यम्। एवञ्च सति यमकोपमादेरलङ्कारस्य काव्यग्रहणहेतुत्वाभ्युपगमे, साऽलङ्कारमेव ग्राह्यं काव्यं,[3] न तु निरलङ्कारमित्यापद्येत। न चैवं वक्तुं शक्यम्[4]। 'अलङ्कारविरहेऽपि शुद्धगुणमेव काव्यमास्वाद्य'मिति वक्ष्यमाणत्वात्। न केवलमियमस्य ग्रन्थकृतः प्रक्रिया, किन्त्वन्यैरप्यालङ्कारिकैरनलङ्कारस्य शब्दार्थयुगलस्य सगुणस्य काव्यत्वे लक्षणोदाहरणयोर्दर्शितत्वात्। यथा चोक्तं काव्यप्रकाशे—'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' इति। तत्र व्याचष्ट भट्टगोपालः—'निर्दोषौ सगुणौ सालङ्कारौ शब्दार्थौ काव्यम्' इति घण्टापथः, किन्तु 'सर्वं वाक्यं सावधारणम्' इत्युक्त्या[6] यथा दोषशून्यावेव गुणवन्तावेव शब्दार्थौ काव्यमित्यवधारणं, तथा सालङ्कारावेवेति न पार्यते नियन्तुम्, किन्तु[7] वयं हि काव्यशोभासम्भावनया स्वैरम् अलङ्कारान् सहामहे, अलङ्कारनैयत्यं तु न सहामहे। उक्तं हि—'दोषहानं गुणादानं कर्तव्यं नियमात् कृतौ। कामचारः पुनः प्रोक्तोऽलङ्कारेषु मनीषिभिः' ॥ इति। उदाहरणं तु—'यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः। सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥' इत्यत्र स्फुटो न कश्चिद-

---

१. 'पङ्कजननाविशेषात्' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'पद्मादिषु पङ्कजादि···' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'काव्यं ग्राह्यम्' इति 'ख' पु० पा०।
४. 'वक्तुं युक्तम्' इति 'ख' पु० पा०।
५. 'किन्तु' इति 'ख' पु० नास्ति।
६. 'इति युक्त्या' इति 'ख' पु० पा०।
७. 'किन्तु' इति 'ख' पु० नास्ति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

लङ्कारः। काशकुशावलम्बनाद्विशेषोक्तिविभावनयोरन्यतरालङ्कारोद्भावनायामलङ्कारनैयत्यपक्षनिर्वाह इत्यलं दूराभिनिवेशया दुराशया। कविसंरम्भगोचराणामलङ्काराणान्न कस्यचिदुपलम्भ इति। तथापि न काव्यत्वभङ्गः। विशेषोक्तिविभावनयोः स्वस्वविरोधमुखेन कथञ्चिदुद्भावनेऽपि न स्फुटत्वम्, कण्ठोक्त्या निषेध्ययोः कार्यकारणयोर्भावान्तरमुखेन भावाभिधानात्। अथवा[1] साधकबाधकप्रमाणाभावाद् द्वयोः सन्देहरूपः सङ्कर एवेति। तत्रापि, अस्फुटप्रतीतिर्दुष्परिहरैवेत्यलं[2] प्रसक्तानुप्रसक्तार्थप्रपञ्चनेन। यद्यपि 'काव्यं ग्राह्यं सौन्दर्यात्', 'तद्दोषगुणाऽलङ्कारहानादानाभ्याम्' इति विन्यासाऽन्तरे लाघवं भवति। तथापि योऽयमलङ्कारः काव्यग्रहणहेतुत्वेनोपन्यस्यते, तद्व्युत्पादकत्वाच्छास्त्रमप्यलङ्कारनाम्ना व्यपदिश्यत इति शास्त्रस्यालङ्कारत्वेन प्रसिद्धिः प्रतिष्ठिता स्यादिति सूचयितुं विन्यासः कृतः—'काव्यं ग्राह्यम्, अलङ्कारादि'ति ॥ २ ॥

स दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम् ॥ ३ ॥

स खल्वलङ्कारो दोषहानाद् गुणालङ्कारादानाच्च सम्पाद्यः कवेः ॥ ३ ॥

वह (सौन्दर्य-स्वरूप अलङ्कार) दोषों (दुष्ट पद, असाधु पद आदि) के त्याग और गुणों (ओज, प्रसाद आदि) के ग्रहणसे होता है।

वह (सौन्दर्य-स्वरूप अलङ्कार) दोषों (दुष्ट पदों) के त्याग और गुणों (ओज आदि) को ग्रहण करके (काव्य-निर्माता) कविको सम्पादन करना चाहिए ॥ ३ ॥

इत्थमलङ्कारपदार्थं समर्थ्य तस्य कारणं वक्तुमुत्तरसूत्रमुपक्षिपति—स दोषेति। प्रक्रान्तप्रसिद्धाऽनुभूताद्यनेकार्थत्वात् तच्छब्दोऽत्र प्रक्रान्तार्थपरामर्शीत्याह—स खल्विति। गुणाश्च अलङ्काराश्च गुणालङ्कारा इति प्रथमं समस्य पश्चाद् दोषाश्च गुणालङ्काराश्चेति द्वन्द्वः कर्तव्यः। हानं चादानं च हानादाने, दोषगुणालङ्काराणां हानादान इति विग्रहः। ततश्च दोषाणां हानं, गुणालङ्काराणां चादानमिति यथासङ्ख्यं सम्बन्धः सम्पत्स्यते। 'इष्टानुवर्तनात् कुर्यात् प्रागनिष्टनिवर्तनम्'। इति नीत्या गुणालङ्कारादानात् पूर्वं दोषहानमेव कर्तव्यमिति सूचयितुं प्रथमतो दोषहानस्य निर्देशः कृतः। 'गुणालङ्कारादानाच्चे'त्यत्रेदमनुसन्धेयम्। गुणविवेचनाधिकरणप्रमेयपर्यालोचनायां नित्यत्वानित्यत्वभेदेन गुणालङ्कारव्यवस्थामास्थास्यमानेन ग्रन्थकृताऽत्र सूत्रे दोषहानवद् गुणादानवच्च नालङ्कारादानं नियतम्, किन्तु गुणकृतशोभाऽतिशयाऽऽधायकत्वसम्भावनयैवेति विवक्षितमिति। एवञ्च सति 'सौन्दर्यमलङ्कारः' इत्यत्रापि या गुणैराधीयते शोभा, यश्चाऽलङ्कारैस्तदतिशयस्तदुभयमपि सौन्दर्यपर्यायेणालङ्कारपदेन सङ्गृहीतमिति व्याख्येयम्। अतो न पूर्वापरप्रमेयविरोध इति सर्वमनवद्यम्। कवेरिति। 'कृत्यानां कर्तरि वा' (पा० २।३।७१) इति षष्ठी ॥ ३ ॥

शास्त्रतस्ते ॥ ४ ॥

ते दोषगुणालङ्कारहानादाने, शास्त्रादस्मात्। शास्त्रतो हि ज्ञात्वा दोषाञ्जह्याद्, गुणालङ्कारांश्चाददीत ॥ ४ ॥

---

१. 'अथ' इत्येव 'ख' पु० पा०। २. 'अस्फुटतानुवृत्ति…' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वे दोनों (दोषों का त्याग तथा गुणोंका ग्रहण) शास्त्रसे होते हैं ।

वे दोनों (दोषों का त्याग एवं गुणोंका ग्रहण) इस (मत्प्रणीत 'काव्यालङ्कार' शास्त्र से होते हैं । शास्त्र (मेरे रचे हुए काव्यालङ्कारशास्त्र) से जानकर दोषोंका त्याग करना चाहिए तथा गुणों और अलङ्कारोंको (अपने काव्यमें कविको) ग्रहण करना चाहिए ॥ ४ ॥

ननु दोषहानगुणालङ्कारादाने किंनिबन्धने ? इति जिज्ञासमानं प्रत्याह—शास्त्रत इति ॥ ४ ॥

किं पुनः फलम् अलङ्कारवता काव्येन ? येनैतदर्थोऽयमित्याह[१]—

काव्यं सद् दृष्टाऽदृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् ॥ ५ ॥

काव्यं सत् चारु, दृष्टप्रयोजनं, प्रीतिहेतुत्वात् । अदृष्टप्रयोजनं, कीर्तिहेतुत्वात् । अत्र श्लोकाः—

"प्रतिष्ठां काव्यबन्धस्य यशसः सरणिं विदुः ।
अकीर्तिवर्तिनीं[२] त्वेवं कुकवित्वविडम्बनाम् ॥
कीर्तिं स्वर्गफलामाहुरासंसारं विपश्चितः ।
अकीर्तिं तु[३] निरालोकनरकोद्देशदूतिकाम् ॥
तस्मात् कीर्तिमुपादातुमकीर्तिं च निर्बर्हितुम्[४] ।
काव्यालङ्कारसूत्रार्थः[५] प्रसाद्यः कविपुङ्गवैः" ॥ ५ ॥

इति श्रीपण्डितवरवामनविरचित[६]काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ शारीरे प्रथमेऽधिकरणे प्रथमोऽध्याय इति प्रयोजनस्थापना[७] ॥ १ ॥

अलङ्कारयुक्त काव्यसे क्या फल है, जिससे इस (अलङ्कार) के लिए प्रयत्न है ? इस शङ्काका उत्तर (ग्रन्थकार पञ्चम सूत्रसे) दे रहे हैं ।

---

१. 'येनैतदर्थोऽयं यत्नः ? इत्याह' इति 'क-ख' पु० पा० ।
२. 'अकीर्तिंवर्तनीं' इति 'ख-ग' पु० पा० ।
३. 'च' इति 'क-ख' पु० पा० ।
४. 'व्यपोहितुम्' इति 'क ख' पु० पा० ।
५. '…शास्त्रार्थः' इति 'क ख' पु० पा० ।
६. 'पण्डितवरवामनाचार्यविरचित–' इत्यंशः सम्पादकेन परिवर्धितः प्रतिभाति, यतः प्रथमाधिकरणस्याद्येऽध्यायद्वय एव एतत्पाठ उपलभ्यते ।
७. 'क' पुस्तके 'प्रयोजनस्थापना' इत्यंशः पृथक् 'अध्याय' इत्यतोऽग्रे, 'ख' पु० तु 'प्रयोजनस्थापनानाम प्रथमोऽध्यायः' इत्येवं पाठः 'श्रीपण्डितवरवामनाचार्यविरचित–' इत्यंशहीन एवलभ्यते ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उत्तम काव्यका फल प्रीतिजनक होनेसे दृष्ट (इस लोकमें--ऐहलौकिक) और कीर्तिजनक होनेसे अदृष्ट (आयुष्मिक अर्थात् पारलौकिक)—दोनों प्रकारसे प्राप्त होता है।

उत्तम काव्य प्रीतिजनक होनेसे दृष्टप्रयोजन (इस लोकमें—जीवित रहते ही फल देनेवाला) और कीर्तिजनक होनेसे अदृष्टप्रयोजन (परलोकमें—मरणोपरान्त फल देनेवाला) है।

(मनीषियोंने) काव्यरचनाकी प्रतिष्ठा (सहृदय जनोंको आनन्ददायिनी स्थिति) को यशका मार्ग कहा है।

विद्वानोंने कीर्तिको मोक्ष होने तक अथवा सृष्टिकी स्थिति रहने तक स्वर्गरूप फल देनेवाली, तथा अकीर्ति (अपयश) को अन्धकारपूर्ण नरकस्थानकी दूती अर्थात् नरकमें पहुँचाने वाली दूती कहा है।

इस कारणसे श्रेष्ठ कवियोंकी कीर्तिको पाने और अकीर्तिको रोकनेके लिए काव्यालङ्कार-सूत्रोंके अर्थको विचारकर निर्मल करना अर्थात् विचारपूर्वक अच्छी तरह जानना चाहिए ॥ ५ ॥

ननु सालङ्कारं काव्यं फलवच्चेदलङ्कारस्य निरूपणाय शास्त्रारम्भ उपपद्यते, अतस्तदुपपत्तये फलं वक्तव्यम्। किं पुनस्तत्फलम् इति प्रश्नपूर्वकमुत्तरसूत्रमुपन्यस्यति—किं पुनरिति। सच्छब्दस्य विवक्षितमर्थमाह चार्विति। साऽलङ्कारतया सुन्दरमित्यर्थः।

दृष्टादृष्टावैहिकामुष्मिकावर्थौ यस्येति विग्रहः। अत्र अथासङ्ख्यं सम्बन्धं दर्शयति। दृष्टाऽदृष्टप्रयोजनमिति। अत्र प्रीतिशब्देन श्रवणसमनन्तरमेव सहृदयहृदयेषु जायमाना या रसास्वादलक्षणा, या च पुनरिष्टप्राप्तिरनिष्टपरिहारनिबन्धना सेयमुभयविधा प्रीतिर्विवक्षिता। तथा च सति साक्षात् परम्परया चैहिकप्रीतेः साधनत्वात् काव्यं दृष्टाऽर्थमित्यर्थः। ननु कीर्तिरपि स्वर्गसाधनतया प्रयोजनमिति वक्तव्यम्। स्वर्गपदार्थोऽपि प्रीतिरेव। तथा सति प्रीतिहेतुत्वादित्युक्ते विवक्षितार्थसिद्धेः किं हेत्वन्तरोपादानगौरवेणेति चेत् सत्यम्। 'यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्। अभिलाषोपनीतं च सुखं स्वर्गपदास्पदम्' इत्युक्तलक्षणाया दृष्टप्रीतिविलक्षणाया अदृष्टप्रीतेः पृथङ्निरूपणीयत्वात् काव्यस्य तन्मूलतया लोकातिशयत्वं प्रकटितमिति हेत्वन्तरमुपपत्तिमिति द्रष्टव्यम्। अमुमेवार्थमभियुक्तोक्तिसंवादेन समर्थयते। अत्र श्लोका इति। प्रतिष्ठा सहृदयहृदयानुरञ्जकतया लोकोत्कर्षेण स्थितिः सरणिः पद्धतिः। अकीर्तिवर्तिनीत्यत्र नञ् तद्विरोधिनमर्थमाचष्टे इति। यथा त्वनृताधर्माविद्यादय ऋतधर्मविद्यादीनां विपक्षास्तथा कीर्तिरप्यकीर्तेर्विरोधिनी। तस्या वर्तिनी एकपदी। 'सरणिः पद्धतिः पद्या [१]वर्तन्येकपदीति च' इत्यमरः। आसंसारं, यावन्न मोक्षः। कीर्तेर्यावत्प्रसरणं वा। निरालोकस्तेजोमात्रशून्यः। तमोमय इति यावत्। नरको दुर्गतिः। 'स्यान्नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः स्त्रियाम्' इत्यमरः। तस्योद्देशः प्रदेशस्तस्य दूतिका प्रापयित्रीति यावत्। प्रसाद्यः विशेषतो विमर्शेन विशदीकर्तव्यः। अस्यालङ्कारशास्त्रस्य सौन्दर्यापरपर्याये-

१. 'अमरकोषव्याख्यासुधायां' तु 'वर्तन्येकपदीनि च' इत्येवं पाठोपलब्धेश्चिन्त्यमिदम्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ऽलङ्कारे परमप्रतिपाद्यत्वेन दोषगुणालङ्कारविषयहेयोपादेयतया[1] तद्व्युत्पादनं प्रयोजनम्। तस्य च प्रयोजनं सत्काव्यकरणम्। तस्य च कीर्त्यादयः कवीनां[2] प्रीतिः। शास्त्रस्य विषयस्य च प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः सम्बन्धः। काव्यस्य कीर्त्यादेश्च कार्यकारणभाव इति प्रथमाध्यायप्रमेयसङ्ग्रहः। शरीर इति। प्रथमं काव्यशरीरम्। तदनु दोषाः। ततो गुणाः। तदनन्तरमलङ्काराः। ततः शब्दप्रयोगशैलीति क्रमेण पञ्चाधिकरणानि। तत्र काव्यशरीरमधिकृत्य कृतमिति शारीरमधिकरणम्। अधिक्रियन्तेऽवान्तरप्रमेयरूपाणि प्रकरणान्यस्मिन् महाप्रमेयात्मनीत्यधिकरणम्। अध्यायोऽवान्तरप्रमेयविरतिस्थानम्। 'प्रमेयविरतिस्थानमध्यायश्च प्रपाठक' इति वैजयन्ती। [3]प्रयोजने काव्यस्य प्रतिष्ठापिते तदर्थितयाऽधिकारिणो निरूप्या इत्यध्यायद्वयसङ्गतिमधिगमयति। प्रयोजनेति। काव्यप्रयोजनस्य स्थापना कृतेति शेषः। तिष्ठतेर्ण्यन्ताद् 'ण्यासश्रन्थो युच्' (पा० ३।३।१०७) इति युच्प्रत्ययः॥ ५॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविनिर्मितायां काव्यालङ्कार[4]सूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ शारीरे प्रथमेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥ १।१॥

---

१. '...अलङ्कारे परमप्रतिपाद्ये साक्षात् प्रतिपाद्यत्वेन दोषगुणालङ्कारा विषयाः हेयोपादेयतया...' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'तत्र कवीनां' इति 'ख' पु० पा०।

३. 'प्रयोजने...युच् प्रत्ययः' इति विस्तृतोंऽशः 'ख' पु० नास्ति। तथाप्येषोंऽशः 'प्रयोजनस्थापना' 'इत्यस्य व्याख्यारूपेणेयं कामधेनुभागो मयाऽत्र स्थापितः, औचित्यात्।

४. 'भूपालविरचितायां वामनालङ्कार...' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वितीयोऽध्यायः

अधिकारिनिरूपणार्थमाह—

अरोचकिनः सतृणाभ्यवहारिणश्च कवयः ॥ १ ॥

इह खलु द्वये कवयः सम्भवन्ति—अरोचकिनः, सतृणाभ्यवहारिणश्चेति । अरोचकि-सतृणाभ्यवहारिशब्दौ गौणार्थौ । कोऽसावर्थः ? विवेकित्वमविवेकित्वं चेति ॥ १ ॥

(काव्य-प्रयोजनकी स्थापनाके बाद) उसके अधिकारीके निरूपणके लिए ग्रन्थकार कहते हैं—

कवि दो तरहके होते हैं—अरोचकी और सतृणाभ्यवहारी ।

यहाँ कवि दो तरहके हो सकते हैं—(प्रथम—अरोचकी और द्वितीय सतृणाभ्यवहारी । ये दोनों अरोचकी और सतृणाभ्यवहारी शब्द गौणार्थ हैं । वह गौणार्थ क्या है ? (इसका उत्तर ग्रन्थकार दे रहे हैं—) विवेकयुक्त और अविवेकयुक्त । अर्थात् विचारवान् और विचारहीन—ये दो भेद कवियोंके होते हैं ॥ १ ॥

कवीन्द्रकैरवानन्दसुधास्यन्दपटीयसीम् ।
विभिन्दानां तमस्स्पन्दं वन्दे वाङ्मयचन्द्रिकाम् ॥ १ ॥

अधिकारीति । अधिकारः प्रयोजनस्वाम्यम्, तद्वानधिकारी । 'अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः' । इति दशरूपकम् । अरोचकिन इति । कृष्णसर्पपदन्यायेन अरोचकशब्दस्तत्पुरुषमेवावगमयति । कृष्णसर्पवदरण्यमितिवदरोचकिन इति प्रयुक्तम्, न त्वरोचका इति । अतो 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयः' इति निषेधस्यानवकाशः । अरोचको नाम व्याधिविशेषः । यथाह वाग्भटः—'अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रितैः' । इति । सतृणमिति 'अव्ययं विभक्ती'(पा० २।१।६)त्यादिना साकल्यार्थेऽव्ययीभावः । सतृणमभ्यवहरन्तीति सतृणाभ्यवहारिणः । द्वये इति । 'प्रथमचरमा'-(पा० १।१।३३) दिसूत्रे तयपः परिगणनात् 'द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा' (पा० ५।२।४३) । इति तत्स्थानिकायजन्तोऽपि स्थानिवद्भावात् सर्वनामसंज्ञां लभते । अतः प्रथमाबहुवचनान्तं द्वये इति रूपम् । ननु किमनेन प्रकृतानुपयोगिना रोचकित्वादिविचारेणेति चेदाह—अरोचकीति । गौणार्थाविति । सादृश्यमूललक्षणा[1]व्यापारेण लक्षितावर्थावित्यर्थः । गौणार्थस्वरूपजिज्ञासुं पृच्छति—कोऽसाविति । पृष्टमर्थं स्पष्टमाचष्टे—विवेकित्वमिति ॥ १ ॥

---

१. 'मूलक…' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

[1]यदाह—

पूर्वे शिष्याः, विवेकित्वात् ॥ २ ॥

पूर्वे खल्वरोचकिनः शिष्याः शासनीयाः। विवेकित्वात् विवेचनशीलत्वात् ॥ २ ॥

पूर्वोक्त गौण अर्थको उपपन्न करनेवाले अधिकारीके निश्चायक द्वितीय सूत्रको ग्रन्थकार कह रहे हैं—

पहलेवालों (अरोचकी अधिकारियों) को शिक्षित किया जाना चाहिए, क्योंकि वे विवेचनशील होते हैं।

(दो प्रकारके पूर्वोक्त अधिकारियोंमें से) पहले वाले अर्थात् अरोचकी अधिकारियोंको विवेचनशील (विवेकपरायण) होनेसे शिक्षित करना चाहिए ॥ २ ॥

उक्तस्य गौणार्थस्योपपादकमधिकारिनिश्चायकं सूत्रमवतारयति—यदाहेति ॥ २ ॥

नेतरे, तद्विपर्ययात् ॥ ३ ॥

इतरे सतृणाभ्यवहारिणो न शिष्याः, तद्विपर्ययात्, अविवेचनशीलत्वात्। न च शीलमपाकर्तुं शक्यम् ॥ ३ ॥

दूसरे (प्रकारके) अधिकारी पूर्वोक्तसे विपरीत होनेसे शिक्षणीय नहीं हैं।

दूसरे (प्रकारके) सतृणाभ्यवहारी (अधिकारी) विवेचनशील नहीं होनेसे शिक्षणीय अर्थात् शिक्षा देनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि (किसीका) स्वभाव दूर नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

अथ 'नेतर' इति सूत्रारम्भः किमर्थः। विवेकिनः शिष्या इत्युक्ते अविवेकिनः पुनरशिष्या इति गम्यत एव। तथाप्यासूत्र्यमाणं पुनरुक्तिं पुष्णाति। 'अर्थादापन्नस्य पुनर्वचनं पुनरुक्तिः' इति न्यायाद् इति सत्यम्। यथा धूमध्वजाभावे धूमाभाव इति यावद् व्यतिरेको न दर्शितस्तावत् स इति। धूमध्वजे धूम इति साहचर्यमात्रदर्शनान्न कार्यकारणभावनिश्चयः। तथैवात्रापि व्यतिरेकदर्शनमन्वयदाढर्चायेति भाव इति युज्यते[2] एव सूत्रारम्भः। वृत्तिः स्पष्टार्था। ननु शीलितं शास्त्रमविवेकमपाकरोति। तत्त्वविवेकस्य तज्जन्यत्वात्। अतः कथमविवेकिनो न शिष्या इति शङ्कां शकलयति। न चेति ॥ ३ ॥

नन्वेवं न शास्त्रं सर्वत्रानुग्राहि स्यात्, को वा मन्यते, तदाह[3]—

न शास्त्रमद्रव्येष्वर्थवत् ॥ ४ ॥

न खलु शास्त्रमद्रव्येष्वविवेकिष्वर्थवत् ॥ ४ ॥

---

१. 'तदाह' इति 'क, ग' पु० पा०।
२. 'भावे' इत्यंशः 'ख' पु० नास्ति।
३. 'स्यात्, कुतस्तदुपादीयते ? तदाह' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यदि ऐसा है, तब शास्त्र सर्वत्र अनुग्रह करनेवाला नहीं होगा, तथा इसे कौन मानता है ? इस शङ्काके निवारणार्थ ग्रन्थकार अग्रिम सूत्र कहते हैं—

शास्त्र अद्रव्यों (अपात्रों—विवेकहीनों) में सार्थक अर्थात् सफल नहीं होता है।

शास्त्र विवेकशून्य व्यक्तियोंमें सार्थक (अभीष्ट अर्थको पूरा करनेवाला) नहीं होता है ॥ ४ ॥

यद्येवं विरलस्तर्हि विद्योपयोग[1] इति शङ्कते, न शास्त्रं सर्वत्रानुग्राहि स्यात्। को वा मन्यते। तदाह[2]—नन्विति। अभ्युपगमेन परिहरति—को वा मन्यते इति। शास्त्रं सर्वानुग्राहीत्यनुषज्यते। न कश्चिदपि तथा मनुत[3] इति फलितोऽर्थः। विधीयमानोऽपि विवेकविधुरेषु शास्त्रोपदेशो विपिनविलापवद् विफल इत्याह—न शास्त्रमिति। [4]शास्त्रोपदेशद्वारा यत्र सद्भिराधीयमाना गुणाः सङ्क्रामन्ति तद् द्रव्यमिह विवक्षितम्। तद्विपरीतान्यद्रव्याणि, गुणहीना अविवेकिन इति यावत्। अत्र गाथा 'अयं भस्मनि होमः स्यादियं वृष्टिर्मरुस्थले। इदमश्रवणे गानं यज्जडे शास्त्रशिक्षणम् इति ॥ ४ ॥

निदर्शनमाह—

न कतकं पङ्कप्रसादनाय ॥ ५ ॥

न हि कतकं पयस इव पङ्कप्रसादनाय भवति[5] ॥ ५ ॥

दृष्टान्त देनेके लिए अगला सूत्र कहते हैं—

निर्मली कीचड़को स्वच्छ करनेके लिए नहीं होता।

निर्मली (एक प्रकारका वृक्षफल, जिसे चन्दन-सा घिसकर मटमैले पानीमें डालकर पानीको साफ करते हैं) पानीके समान कीचड़को साफ करनेके लिए नहीं होता है अर्थात् जिस प्रकार निर्मली मटमैले पानीको तो साफ कर सकता है, परन्तु कीचड़ को नहीं ? उसी प्रकार शास्त्र विवेकी व्यक्तिको शिक्षित कर सकता है, अविवेकी व्यक्तिको नहीं ॥ ५ ॥

प्रतिपादितं प्रमेयं प्रसिद्धदृष्टान्तेन स्पष्टयितुमाह—निदर्शनमिति। कतकमम्भःप्रसादनबीजन्। 'कतकं मेदनीयश्च श्लक्ष्णं वारिप्रसादनम्' इति वैद्यनिघण्टुः ॥ ५ ॥

अधिकारिणो निरूप्य रीतिनिश्चयार्थमाह—[6]

रीतिरात्मा काव्यस्य ॥ ६ ॥

रीतिर्नामेयमात्मा काव्यस्य। शरीरस्येवेति वाक्यशेषः ॥ ६ ॥

---

१. 'विद्ययोपयोग' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'न शास्त्रं······तदाह' इत्यंशः 'ख' पु० नास्ति।
३. 'मन्यते' इति 'ख' पु० पा०।
४. 'विद्योपदेश···' इति 'ख' पु० पा०।
५. 'पङ्कस्य प्रसादनाय प्रभवति' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।
६. 'रीतिविनिश्चय···' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अधिकारियोंका निरूपणकर रीतिके निर्णयार्थ ग्रन्थकार अगला सूत्र कहते हैं—

रीति काव्यकी आत्मा है ।

यह रीति काव्यकी आत्मा है, 'शरीरके समान' यह (सूत्रमें) वाक्यशेष है अर्थात् जिस प्रकार शरीरमें तो आत्माका रहना ठीक है, परन्तु (अशरीरी) काव्यमें आत्माका होना कैसे कहा ? इसका उत्तर यह है कि, शब्द और अर्थ---इन दोनोंमें शरीरत्व औपचारिक है, यह जानना चाहिए ॥ ६ ॥

प्रकरणोचितां सङ्गतिं प्रकटयन्नुत्तरसूत्रमवतारयति—अधिकारिण इति । कर्तृनिरूपणानन्तरं कर्मनिरूपणमुचितमिति[1] व्याचष्टे—रीतिर्नामेति । रीणन्ति गच्छन्त्यस्यां गुणा इति, रीयते क्षरत्यस्यां वाङ्मधुधारेति वा रीतिः । अधिकरणार्थे क्तिन् प्रत्ययः । करङ्कगात्रकल्पककर्कशतर्कवाक्यवैलक्षण्यप्रकटनप्रगल्भः कश्चन स्फुरत्ताहेतुः[2]स्वभावोऽत्रात्मेत्युच्यते । ननु काव्यस्यात्मेत्येतत् कथमुपपद्यते । अशरीरभूतस्यात्मावच्छेदकत्वासम्भवादित्याशङ्क्य शब्दार्थयुगलं शरीरं, तस्याधिष्ठाता रीतिर्नामात्मेत्युपपत्तिमुन्मीलयितुमाकाङ्क्षितपदमापूरयति । शरीरस्येवेति वाक्यशेष इति । अत्र रीतेरात्मत्वमिव शब्दार्थयुगलस्य शरीरत्वमौपचारिकमित्यवगन्तव्यम्[3] ॥ ६ ॥

किं[4] पुनरियं रीतिरित्याह—

विशिष्टा पदरचना रीतिः ॥ ७ ॥

विशेषवती पदानां रचना रीतिः ॥ ७ ॥

फिर यह 'रीति' क्या है ? अर्थात् रीतिका क्या लक्षण है ? इसके उत्तरमें ग्रन्थकार कहते हैं—

पदोंकी विशिष्ट रचना 'रीति' है ।

विशिष्टतायुक्त पद-रचना 'रीति' है ॥ ७ ॥

रीतेः काव्यशरीरं प्रत्यात्मत्वेनोक्तमुत्कर्षमुपश्रुत्य कौतुकोत्कलिकाकरम्बितान्तःकरणस्तां प्रतिपित्सुः पृच्छति—किं पुनरिति । किमित्यव्ययं प्रश्नार्थे । 'किमव्ययं च कुत्सायां विकल्पप्रश्नयोरपि' इति नानार्थरत्नमाला । इयं रीतिर्नाम किं पुनः ? किंलक्षणेत्यर्थः । प्रतिपित्सितमर्थं प्रतिपादयितुमनन्तरं सूत्रमवतारयति—आहेति । विशिष्टेति पदं व्याचष्टे—विशेषवतीति । पदानामिति । अर्थेष्वौपचारिकी रीतिरङ्गीकर्तव्या । अन्यथाऽर्थानामात्मभूतरीतिवैधुर्ये काव्यशरीरान्तःपातो दुष्करः । यद्वक्ष्यति 'तस्यामर्थसम्पदास्वाद्या, सापि वैदर्भी तात्स्थ्याद्' गुण इति ॥ ७ ॥

---

१. एतदग्रे 'सङ्गतिः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

२. '…प्रगल्भः स्फुरत्ताहेतुः कश्चन स्वभावो…' इति 'ख' पु० पा० ।

३. '…कमिति मन्तव्यं' इति 'ख' पु० पा० ।

४. 'का' इति 'क-ख-ग' पु० पा० कामधेनुव्याख्यायां 'किंपुनः…' इति व्याख्यातत्वादसमीचीनः प्रतिभाति ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कोऽसौ विशेष इत्यत आह—

विशेषो गुणात्मा ॥ ८ ॥

वक्ष्यमाणगुणरूपो विशेषः ॥ ८ ॥

यह (पूर्वोक्त) विशेष क्या है ? इसके उत्तरमें ग्रन्थकार अगला सूत्र कहते हैं—
'विशेष' गुणरूप है ।

'गुण' (ओज, प्रसाद आदि) आत्मा जिसका है, वही 'विशेष' है ॥ ८ ॥

किमयं वैशेषिकपरिभाषितः पञ्चमः पदार्थो विशेषोऽन्य एवेति सन्दिहानः पृच्छति— कोऽसाविति । विवक्षितं विशेषं विपरीतुमुत्तरसूत्रमवतारयति—आहेति । गुणात्मा ओजःप्रसादादिगुणस्वभाव इत्यर्थः ॥ ८ ॥

सा त्रेधा[1] वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति ॥ ९ ॥

सा चेयं रीतिस्त्रेधा[2]—वैदर्भी, गौडीया, पाञ्चाली चेति ॥ ९ ॥

वह (रीति) तीन प्रकारकी होती है—वैदर्भी, गौडीया (गौडी) और पाञ्चाली ।

वह (रीति) तीन प्रकारकी होती है, अर्थात् उक्त रीतिके तीन भेद हैं—वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली ॥ ९ ॥

रीतिं विवेक्तुमाह—सा त्रेधेति[3] । सकलगुणसध्रीचीनत्वेनाभ्यर्हितत्वाद् वैदर्भ्याः प्रथमं निर्देशः । अनन्तरयोरुभयोः स्तोकगुणत्वेऽपि प्रशस्तगुणसंस्कृतत्वाद् अनन्तरं गौडीयायाः, अवशिष्टाया अन्ते निवेशः ॥ ९ ॥

किं पुनर्देशवशाद्[4] द्रव्यगुणोत्पत्तिः[5] काव्यानां, येनाऽयं देशविशेषव्यपदेशः । नैवं[6] यदाह—

विदर्भादिषु दृष्टत्वात् तत्समाख्या ॥ १० ॥

विदर्भगौडपाञ्चालेषु[7] तत्रत्यैः कविभिर्यथास्वरूपमुपलब्धत्वात् तत्समाख्या न पुनर्देशैः किञ्चिदुपक्रियते काव्यानाम् ॥ १० ॥

क्या काव्योंके गुण-द्रव्योंकी उत्पत्ति विशिष्ट देशके आधारपर होती है, जिससे इस देश-विशेष (विदर्भ, गौड और पाञ्चाल) का नाम-निर्देश किया है ? इसके उत्तरमें ग्रन्थकार वामनाचार्य कहते हैं—नहीं, जैसा (दसवें सूत्रमें) कहा है—

विदर्भ आदि देशोंमें देखे जाने (अधिक व्यवहृत होने) से उन देशोंके नामके समान इनका नाम पड़ गया है ।

विदर्भ, गौड़ और पाञ्चाल देशोंमें वहाँके कवियोंके द्वारा प्रचलित होनेसे उन देशोंके नामके आधारपर इन रीतियोंका नाम (वैदर्भी आदि) है, क्योंकि उन देशोंसे

१–२–३. 'त्रिधा' इत्येव 'क-ख-ग' पु० पा० । ४. 'देशविशेष' इति क्वचित्पाठः ।
५. 'द्रव्यवद्गुणो...' इति 'क-ख-ग' पु० पा० । ६. 'नैव' इति क्वचित्कः पाठः ।
७. एतदग्रे 'देशेषु' इत्यधिकः 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

काव्योंका कोई उपकार नहीं होता है, अर्थात् विदर्भादि पद उपचारसे तत्तद्देशीय कवियोंको लक्षित करते हैं ॥ १० ॥

किं पुनररिति । यथा लवणादयः पदार्थाः सिन्ध्वादिदेशवशाद् विशिष्टगुणा भवन्ति, तथा किं देशवशाद्विशिष्टानि काव्यानीति शङ्कार्थः । समाधत्ते--नैवमिति । विदर्भादिपदैरुपचाराद्विदर्भादिदेशस्थाः कवयो लक्ष्यन्ते । अन्यथा विदर्भादिपदानां क्षत्रियत्वे[१]ऽर्थासङ्गतिः । जनपदवृत्तित्वे 'जनपदतदवध्योश्च' (पा० ४।२।१२४) इति गौडशब्दाद्, 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयाद्' (पा० ४।२।१२५) । इति विदर्भपाञ्चालशब्दाभ्यां च वुञ्प्रत्ययप्राप्तौ शब्दासङ्गतिश्चेत्यनुसन्धेयम् । विदर्भपाञ्चालशब्दाभ्यां 'शेषे' (पा० ४।२।९२) इत्यण् प्रत्ययः । गौडशब्दाद् 'वृद्धाच्छः' (पा० ४।२।११४) इति छप्रत्ययः स्पष्टमवशिष्टम् ॥ १० ॥

तासां गुणभेदाद् भेदमाह—

समग्रगुणा वैदर्भी ॥ ११ ॥

समग्रैरोजःप्रसादप्रमुखैर्गुणैरुपेता वैदर्भी नाम रीतिः । अत्र श्लोकौ[२]—

अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता ।
विपञ्चीस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥

तामेतामेव[३] कवयः स्तुवन्ति—

सति वक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने ।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ॥

[४]उदाहरणम्—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहूस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विस्रब्धं कुरुतां वराहविततिर्मुस्ताक्षतिं पल्वले
विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥ ११ ॥

वामनाचार्य गुण-भेद से उन (रीतियों) के भेदको ग्यारहवें सूत्रमें कहते हैं—

सभी (ओज आदि तीनों) गुणोंसे युक्त 'वैदर्भी' नामकी रीति होती है ।

सभी ओज, प्रसाद आदि (माधुर्य) गुणोंसे युक्त वैदर्भी नामकी रीति होती है । इस विषयमें दो श्लोक हैं—

---

१. 'क्षत्रियवृत्तित्वे' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'श्लोकः''''' इति 'क' पु० पा० ।
३. 'अलङ्कारादिसौभाग्यां तामेकामेव' इति 'क' पु० पा० ।
४. एतत्प्राक् 'अत्र' इत्यधिकः 'क-ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(काव्यगत असाधु, कष्ट, ग्राम्य आदि वक्षणमाण) दोषोंकी मात्रा (सम्बन्धादि) से हीन तथा सम्पूर्ण (ओज, प्रसाद आदि वक्ष्यमाण) गुणों से युक्त वीणाके स्वरोंके समान सुननेमें मधुर 'वैदर्भी' रीति कही गयी है ।

उस (वैदर्भी रीति) की प्रशंसा कविलोग इस प्रकार करते हैं—

अच्छे वक्ता (कवि), अच्छे अर्थ और अच्छे व्याकरणशास्त्र-सिद्ध पदके रहनेपर भी जिसके बिना वाणीसे मधु नहीं टपकता अथात् उक्त सभी उपादानोंके उत्तम होनेपर भी जिसके बिना काव्य सुननेमे मधुर नहीं होता, वही वैदर्भी रीति है ।

यहाँ उदाहरण है—'वैदर्भी रीतिके सन्दर्भमें कालिदास प्रौढ हैं' इस आधारपर वामनाचार्य उन (कालिदास) के रचित 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटकके पद्य (२।६) को उदाहरण रूपमें प्रस्तुत करते हैं—

(शिकारके प्रसंगसे महर्षि कण्वके आश्रममें जानेपर परमसुन्दरी महर्षिकी पोषित-पुत्री शकुन्तलाको देखनेसे शिकार खेलनेसे विरक्त महाराज दुष्यन्त कहते हैं—) भैंसे सींगोंसे बार-बार ताडित निपान (कूँए के पास पशुओंको पीने के लिए बनाये गये हौज) के जलका अवगाहन करें, (पेड़ोंकी) छायामें कतार बांधकर (बैठा) मृग-समूह जुगाली (पगुरी) करे, सूअरोंके झुण्ड छोटे गड्ढों में नागरमोथाको (अब आखेटका भय नहीं होनेसे) विश्वासपूर्वक अर्थात् निश्चित होकर उखाड़ें, ढीली की हुई डोरीवाला मेरा यह धनुष विश्राम करे । (यहाँपर ओज आदि सभी गुणोंका यथायोग्य समावेश होनेसे वैदर्भी रीति है) ।। ११ ।।

प्रतिपादितेऽर्थे प्रावादुकपद्यं प्रमाणयति—अत्र श्लोकाविति ।। दोषमात्राभिः असाधुत्वादिदोषलेशैरपि, अस्पृष्टा असम्बद्धा, अनुपगतदोषमात्रसम्बन्धेति यावत् । 'मात्रा परिच्छदे वर्णमाने कर्णादिभूषणे । सैवाल्पपरिणामे च' इति नानार्थरत्नमाला । समग्रैरन्यूनैर्गुणैरोजःप्रसादादिभिर्गुम्फिता सङ्घटिता । विपञ्ची वीणा 'वीणा तु वल्लकी । विपञ्ची' इत्यमरः । तस्याः स्वराः श्रोतृमनोरञ्जकाः षड्जादयोऽत्र विवक्षिताः, न तु क्वणनमात्रम्, तस्य मनोरञ्जकत्वाभावात् । तदुक्तं सङ्गीतरत्नाकरे—'श्रुत्यनन्तरभावी यः शब्दोऽनुरणनात्मकः । स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते' इति । षड्जादिषु रूढश्चायम् । तथा चाञ्जनेये—'स्वरशब्दो मयूरादिसमुत्पन्नेषु सप्तसु । षड्जादिष्वेव रूढोऽयम्' इति । सौभाग्यमिव सौभाग्यं यस्या इति विग्रहः । किञ्च, अस्याश्च वर्णनीयरसचमत्कारकारितया समग्रसौन्दर्यशालितया च कविकुलोपलालनीयतामाकलयति—तामेतामिति ।। सतीति ।। सच्छब्दोऽत्र साध्वर्थः । 'सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत्' इत्यमरः ।। वक्ता कविः ।। अर्थोऽपूर्वतयोल्लिखितः ।। शब्दानुशासनमनुशिष्टः शब्दः आकाङ्क्षायोग्यतादिविशिष्टश्च । वक्तरि शब्दे चाऽर्थे च साधौ सत्यपि येन विना, वाङ्मधु वाचां मधु, न परिस्रवति न स्पन्दते तद् वैदर्भीनामकं वस्त्वस्तीति योजना । इह मधुशब्देन मुख्यार्थासम्भवात् सहृदयहृदयैरास्वाद्यः समग्रसौन्दर्यसमुन्मिषितो रसो लक्ष्यते । उक्ताया रीतेरुदाहरणमुपदर्शयितुमाह—उदाहरणमिति ।। उच्यते इति शेषः । 'वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासः प्रगल्भते' इति तदीयं पद्यमुदाहरति—गाहन्तामिति ।।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

एषा हि शकुन्तलाविलोकनोत्कलिकावशंवदहृदयस्य मृगयाविहाराद्विरिरंसतो दुष्यन्तस्योक्तिः। महिष्यश्च महिषाश्च महिषाः। 'पुमान् स्त्रिया' (पा० १।२।६७) इत्येकशेषः। एवं मृगकुलमित्यत्राप्येकशेषो वेदितव्यः॥ निपानानि कूपसमीपकल्पिता जलधाराः। 'आहावस्तु निपानं स्यादुपकूपजलाशये' इत्यमरः। तेषु सलिलम्, तदेव विशिनष्टि—शृङ्गैर्मुहुस्तडितमिति॥ महिषा हि जलमवगाह्य दशतः शिरसि दंशानपवारयितुं शृङ्गैर्मुहुस्ताडयन्तीति स्वभावोक्तिः। गाहन्तामित्यादिषु सर्वत्राऽऽमन्त्रणे लोट्। छायास्वनातपेषु बद्धानि कदम्बकानि[1] येनेति विग्रहः। 'निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः। कदम्बकानां बहुत्वविवक्षायां मृगकुलस्यान्यपदार्थत्वमुपपद्यते, अतो न पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयम्। उद्गीर्णस्य वाऽवगीर्णस्य वा मन्थो रोन्मथः, चर्वितचर्वणमित्यर्थः। 'विस्रब्धं कुरुतां वराहविततिर्मुस्ताक्षतिं पल्वले' इति प्राचीनः पाठ इति सम्प्रदायविदः। 'विस्रब्धैः क्रियतां वराहततिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले' इति पाठान्तरं तु प्रक्रमभङ्गशङ्काकलङ्कमङ्कुरयेत्। अस्मदिति पञ्चमीबहुवचनान्तं पृथक्पदम्। विश्रान्तेर्व्यापारविरामार्थत्वात् पञ्चमी, षष्ठीसमासो वा। अत्रौजःप्रसादादयो गुणाः परां प्रतिष्ठां लभन्ते। तथाहि—'छायाबद्धकदम्बकम्', 'शिथिलज्याबन्धम्' इत्यत्र बन्धस्य गाढत्वादोजः। 'छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलम्' इत्यत्र बन्धस्य गाढत्वशैथिल्ययोः सम्प्लवात् प्रसादः। 'महिषा निपानसलिलम्' इत्यत्र मसृणत्वाच्छ्लेषः। 'गाहन्ताम्' इत्यारभ्य येनैव मार्गेण प्रक्रमस्तेनैव मार्गेणोपसंहार इति मार्गाभेदात् समता। 'गाहन्ताम्' इत्यत्रारोहः, 'महिषाः' इत्यत्रावरोहः। एवमन्यत्राप्यारोहावरोहक्रमस्फुरणात् समाधिः। 'शृङ्गैर्मुहुस्ताडितम्' इति पृथक्पदत्वान्माधुर्यम्। 'रोमन्थमभ्यस्यतु' इत्यादौ बन्धस्याऽजरठत्वात् सौकुमार्यम्। 'शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः' इत्यत्र बन्धस्य विकटत्वादुदारता। पदानामुज्ज्वलत्वात् कान्तिः। अर्थाभिव्यक्तिहेतुत्वादर्थव्यक्तिरिति दिङ्मात्रप्रदर्शनम्। गुणस्वरूपनिरूपणं तु गुणविवेचनेऽधिकरणे करिष्यते॥ ११॥

ओजःकान्तिमती गौडीया॥ १२॥

ओजः कान्तिश्च विद्येते यस्यां सा ओजःकान्तिमती, गौडीया नाम रीतिः। माधुर्यसौकुमार्ययोरभावात् समासबहुला अत्युल्बणपदा च। अत्र श्लोकः—

समस्तात्युद्भट[2]पदामोजःकान्तिगुणान्विताम्।
गौडीयामिति गायन्ति रीतिं रीतिविचक्षणाः॥

उदाहरणम्—

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यत-
ष्टङ्कारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः।
द्राक्पर्यस्त[3]कपालसम्पुटमित[4]ब्रह्माण्डभाण्डोदर-
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाऽद्यापि विश्राम्यति॥ १२॥

---

१. एतदग्रे 'समूहाः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०। २. '…त्युत्कट…' इति 'क-ख' पु० पा०।
३. 'द्राक् पर्याप्त……' इति पाठः क्वचित्। ४. '…पुटमिलद्…' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(३।१।५,२५ में वक्ष्यमाण) ओज और कान्ति गुणवाली 'गौडीय' अर्थात् गौडी रीति होती है।

(इस ग्रन्थमें लक्षित 'ओज और कान्ति' गुण जिस (रीति) में हों, वह 'ओजःकान्तिमती' (ओज और कान्ति गुणोंसे युक्त) 'गौडी' नामकी रीति है। (३।१।२१-२२ में वक्ष्यमाण) 'माधुर्य और सौकुमार्य' गुणोंके नहीं रहनेसे यह (गौडी रीति) अधिक समासयुक्त और उत्कट पदोंवाली होती है। यहाँपर (उदाहरण स्वरूप यह) श्लोक है—

(अधिक) समासों तथा अत्यन्त उत्कट पदोंसे युक्त एवं 'ओज तथा कान्ति' गुणों वाली रीतिको रीतिके ज्ञानमें चतुरलोग 'गौडी' रीति कहते हैं।

(महावीरचरितका (१।५४) श्लोक) उदाहरण है—

(यह सीता-स्वयंवरमें, श्रेष्ठ धनुर्धर रामके अधिक खींचनेसे शिवधनुषके टूटने-पर, उसके टूटनेके कारण निरन्तर होनेवाली प्रतिध्वनिके वर्णनमें, रामके ही अति-शयित बाहुबलको लक्ष्य करते हुए लक्ष्मणकी उक्ति है—) हाथमें उठाये हुए शिव-धनुषके टूटनेसे उत्पन्न तथा आर्य (अग्रज रामचन्द्र) के बाल-चरितकी प्रस्तावनाका उद्घोष करनेवाले टङ्कारकी ध्वनि, एकाएक कम्पित होनेवाले कपाल-सम्पुट (पृथ्वी तथा आकाश-स्वरूप दो कपालों के संयोग) में (फैलनेकी अधिक जगह नहीं होनेसे) सीमित ब्रह्माण्ड-स्वरूप भीड़ (विशाल पात्र-विशेषके भीतर सतत भ्रमणशील होनेसे अतिशय भयङ्कर आज (बहुत-से वर्षोंके व्यतीत हो जानेपर) भी क्यों शान्त नहीं हो रहा है ? (प्रकृत श्लोकमें समासाधिक्य एवं उत्कट पदोंकी भरमार होनेसे 'गौडी' रीति है) ॥ १२ ॥

क्रमप्राप्तां गौडीयामाह—ओजःकान्तिमतीति । प्रत्ययार्थं प्रत्याययति । ओजः कान्तिश्च विद्येते इति । अत्र भूमार्थेन मतुपा ओजःकान्त्योः प्राचुर्यप्रतिपादनानुकूलाना-मनुल्बणानामन्येषां गुणानामनिराकरणम् । प्रतिकूलयोस्तु माधुर्यसौकुमार्ययोरप-वारणम्, अत एव दीर्घसमासत्वमत्युद्भटपदत्वं च सूचितम् । तदिदमभिसन्धायाह—माधुर्यसौकुमार्ययोरभावादिति ॥ प्रतिपादितेऽर्थे प्राचामाभाणकं प्रमाणयति—समस्तेति ॥ समस्तानि समासवृत्तिमापन्नानि, अत्युद्भटानि पदानि यस्या इति विग्रहः । लक्षिताया रीतेर्लक्ष्यमुपक्षिपति—उदाहरणमिति ॥ एषा खलु, धनुर्धरधुरन्धरेण रघुनन्दनेन गाढा-कर्षणात् खण्डिते खण्डपरशोः कोदण्डे तद्भङ्गसङ्घटितनिराघातघोषवर्णनोपोद्घातेन तस्यैव भुजबलभूमानमभिलक्षयतो लक्ष्मणस्योक्तिः । दोर्दण्डेन अञ्चितमाकृष्टम् । औचित्यादञ्चतिरत्र आकर्षणे वर्तते । ननु यद्याकर्षणमञ्चतेरर्थस्तर्हि, अपूजनार्थस्य तस्य 'नाञ्चेः पूजायाम्' (पा० ६।४।३०) इति नलोपप्रतिषेधो न सिद्ध्येत् । 'अञ्चेः पूजायाम्' (पा० ७।२।५३) इति इडागमश्च न स्यादिति न चोदनीयम् । अत्र कवेः कार्यकारणयोरभेदोपचाराद् दुराधर्षधनुराकर्षणमेव पूजनं विवक्षितमित्यविरोधः । आर्यो-ऽग्रजः । तदुक्तं भामहेन—'भगवन्तोऽवरैर्वाच्या विद्वद्देवर्षिलिङ्गिनः । विप्रामात्याग्रजा-स्त्वार्या नटीसूत्रभृतौ मिथः' इति । तस्य यद् बालचरितं ताडकावधादि धनुर्भङ्गान्तं,

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तदेव प्रस्तावना, तत्र डिण्डिमः। अत्र बालचरितस्य प्रस्तावनात्वनिरूपणेन रावणवधान्तस्य तस्य कुमारचरितस्यापि नाटकत्वमासूत्र्यते। तथा च कुमारचरितनाटकस्य बालचरितं प्रस्तावना प्राथमिकमङ्गलमिति [1]परम्परितरूपकौचित्यमपि परिगृहीतं भवति। प्रस्तावनास्वरूपं दशरूपके प्रदर्शितम्—'सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्। स्वकार्य[2]प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्। प्रस्तावना वा यत्र स्याद्' इति। अन्यच्च—'वस्तुनः प्रतिपाद्यस्य तीर्थं प्रस्तावनोच्यते' इति। द्राक्पर्यस्ते झटिति चलिते, कपाले शकले, तयोः सम्पुटः समुद्गकस्तेन मितं परिमितं परिच्छिन्नं यद् ब्रह्माण्डं तदेव भाण्डम्, तस्योदरे भ्राम्यन् समन्तात् पर्यटन् पिण्डितः सङ्कोचितश्चण्डिमा यस्येति विग्रहः। तथा च पुराणम्—'अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपासृजत्। तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्॥ तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरान्॥ स्वयमेवात्मनो ध्यानात् तदण्डमकरोद् द्विधा। ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे'॥ इति। अद्यापि चिरातीतेऽपि टङ्कारे, ध्वनिः प्रतिश्रुतं,[3] न विश्राम्यति न विरमति। अत्र बन्धस्य गाढौज्ज्व[4]ल्ययोरुत्कटत्वाद् उल्बणावोजःकान्तिगुणौ। समासभूयस्त्वोल्बणपदत्वे चातिस्फुटे॥ १२॥

माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पाञ्चाली॥ १३॥

माधुर्येण सौकुमार्येण च गुणेनोपपन्ना पाञ्चाली नाम रीतिः। ओजःकान्त्यभावादनुल्बणपदा विच्छाया च। तथा च श्लोकः—

आश्लिष्टश्लथभावां तां पूरणच्छाययाश्रिताम्।
मधुरां सुकुमारां च पाञ्चालीं कवयो विदुः॥

यथा[5]—

ग्रामेऽस्मिन् पथिकाय नैव वसतिः पान्थाऽधुना दीयते
रात्रावत्र विहार[6]मण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा।
तेनोत्थाय खलेन गर्जति घने स्मृत्वा प्रियां तत् कृतं
येनाऽद्यापि करङ्कदण्डपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति॥

एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव चित्रं काव्यं प्रतिष्ठितमिति॥ १३॥

(क्रमप्राप्त तृतीय एवं अन्तिम 'पाञ्चाली' रीतिका लक्षण ग्रन्थकार इस सूत्रमें कहते हैं—) माधुर्य और सौकुमार्य (आगे (३।१।२१-२२ में) कहे जानेवाले दो) गुणों से युक्त 'पाञ्चाली' रीति होती है।

माधुर्य और सौकुमार्य (आगे (३।१।२१-२२) में वक्ष्यमाण) दो गुणों से युक्त 'पाञ्चाली' नामकी तृतीय रीति होती है। ओज तथा कान्ति (३।१।५,२५ में

१. 'प्राथमिकमङ्गमिति 'ख' पु० पा०। २. 'स्वकार्य···' इति पृथक् पदं 'ख' पु०।
३. 'टङ्कारध्वनिः प्रतिश्रुत्' इति 'ख' पु० पा०। ४. 'गाढत्वौज्ज्वल्य···' इति 'ख' पु० पा०।
५. 'उदाहरणम्' इति 'क-ख' पु० 'अत्रोदाहरणम्' इति 'ग' पु० पा०।
६. 'विवाह······' इति पाठः क्वचित्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वक्ष्यमाण गुणद्वय) का अभाव होनेसे यह 'पाञ्चाली' रीति उत्कट पदों एवं समासाधिक्यसे रहित होती है। तथा श्लोक भी है—

उत्कट (क्लिष्ट) पदों तथा अधिक समासोंसे रहित, मधुर तथा सुकुमार पदोंवाली (रीतिको) कविलोगोंने 'पाञ्चाली' रीति कहा है।

जैसे—

(किसी गाँवमें भद्रवेदीपर सोनेके लिए आये हुए पथिकसे वहाँ रहनेवाली भयभीत ग्रामीण वृद्धा कहती है—) हे पथिक ! इस गाँवमें पथिकको (सोनेके लिए) निवास-स्थान अब नहीं दिया जाता है, (क्योंकि) रातमें इस विहारमण्डपके नीचे युवक सो गया। बादलोंके गरजनेपर उस दुष्टने उठकर प्रियाको यादकर वह (काम) किया अर्थात् प्रिया का स्मरण होने पर उसके वियोगजन्य कष्ट से मर गया), जिससे आज भी यहाँ रहनेवाले लोग पथिकके मारणरूप दण्डपात होनेसे शङ्कित रहते हैं अर्थात् पथिकवधका पाप लगनेसे डरते हैं।

इन तीनों (वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली) रीतियोंमें, रेखाओंमें चित्रके समान काव्य प्रतिष्ठित होता है ॥ १३ ॥

अथ पाञ्चालीं प्रपञ्चयति—माधुर्येति ॥ माधुर्यसौकुमार्यप्रतिपक्षयोरोजःकान्त्योरभावाद् बन्धस्य शैथिल्यमनुल्बणपदत्वं चेत्याह—ओज इति ॥ आश्लिष्टेति ॥ श्लोकः स्पष्टार्थः। उदाहरति—ग्राम इति ॥ इयं हि कस्यचिद् ग्रामीणस्य गृहे निद्रातुं भद्रवेदिमधिशय्य पर्जन्यगर्जितैस्तर्जिते निजनिदेशापचारनिष्क्रपकुपितकुसुमशरशरव्रातपातक्लिष्टतया निर्विष्टवति कष्टां दशां वैदेशिके करङ्कः शवः[1]। तद्दण्डपातभीतिसमाकुलायाः कुलवृद्धायाः पुनरन्यमध्वन्यं प्रत्युक्तिः। [2]'पथः ष्कन्' (५।१।७५) 'पन्थो ण नित्यम्' (पा० ५।१।७६) इति 'नित्यं गच्छतः पान्थत्वम्। अन्यस्य पथिकत्वमिति वृत्तिकारवचनादर्थभेदमाश्रित्य पथिकाय यदि वसतिर्न दीयेत तत् पान्थेन किमपराद्धमिति न चोदनीयम्। पान्थपथिकशब्दयोः पर्यायतयाभिधानदर्शनात् कविभिरविशेषेण प्रयुज्यमानत्वात्। 'अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि' इत्यमरः ॥ तदिति अमङ्गलतयोच्चारयितुमनुचितत्वान्मरणं तच्छब्देन व्यपदिश्यते।[3]

रीतिस्वरूपं निरूप्य तदुपयोगं सदृष्टान्तमाचष्टे—एतास्विति ॥ १३ ॥

तासां पूर्वा ग्राह्या, गुणसाकल्यात् ॥ १४ ॥

तासां तिसृणां रीतीनां पूर्वा वैदर्भी ग्राह्या, गुणानां साकल्यात् ॥ १४ ॥

(क्या इन तीनों वृत्तियों (रीतियों) को समान रूपसे कवियोंको ग्रहण करना चाहिए ? इसका निषेध करते हुए आचार्य वामन वैदर्भीकी ग्राह्यता प्रतिपादित

---

१. 'करङ्कः शवः' इत्यंशः 'क' पु० एतत्पद्यव्याख्याया अन्ते 'व्यपदिश्यते' इत्यस्मादग्रे लभ्यते।

२. एतत्पूर्वं 'अत्र' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

३. 'ख' पु० तु एतदग्रे 'करङ्कः शवः' इति पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

करते हैं--) उनमेंसे पहली (वैदर्भी रीति) कवियोंको ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि उसमें सभी (ओज आदि) गुण हैं।

उन तीनों (वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली) रीतियोंमें-से पहली वैदर्भी रीति सभी (ओज आदि दसों) गुणोंसे युक्त होनेसे ग्रहण करने योग्य है ॥ १४ ॥

नन्वेतास्तिस्रो वृत्तयः समशीर्षकतया किं कविभिरुपादेयाः ? नेत्याह—तासामिति ॥ वृत्तिः स्पष्टार्था ॥ १४ ॥

न पुनरितरे, स्तोकगुणत्वात् ॥ १५ ॥

इतरे गौडीयपाञ्चाल्यौ न ग्राह्ये, स्तोकगुणत्वात् ॥ १५ ॥

कम गुणोंसे युक्त होनेसे अन्य दो (गौडी और पाञ्चाली) रीतियाँ ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

अन्य दो रीतियाँ गौडी तथा पाञ्चाली थोड़े गुणोंवाली होनेसे ग्रहण करने योग्य नहीं हैं ॥ १५ ॥

प्रयोजकत्वाभावादन्ययोर्न ग्राह्यत्वमित्याह—नेति[1] ॥ १५ ॥

तदारोहणार्थमितराभ्यास इत्येके ॥ १६ ॥

तस्या वैदर्भ्या एवारोहणार्थमितरयोरपि रीत्योरभ्यास इत्येके मन्यन्ते ॥ १६ ॥

(ग्राह्य नहीं होनेसे क्या अन्य (गौडी और पाञ्चाली) रीतियाँ उपादेय नहीं हैं ? इसके उत्तरमें ग्रन्थकार उन दोनोंकी उपादेयता सोलहवें सूत्रसे बतला रहे हैं—) उस (वैदर्भी रीतिके आरोहणार्थ अन्य दोनों (गौडी और पाञ्चाली) रीतियोंका अभ्यास आवश्यक है' ऐसा कुछ आचार्योंका मत है।

उस वैदर्भी रीतिके ही आरोहण (वैदर्भी रीति-रचनामें निपुणता पाने) के लिए दूसरी दो (गौडी और पाञ्चाली) रीतियोंका अभ्यास भी आवश्यक है, ऐसा कुछ आचार्योंका मत है ॥ १६ ॥

वाहारोहालस्य मेषारोहानुशीलनवद् वैदर्भीसन्दर्भलाभाय तदितराभ्यास इति केचिदाचक्षते । तत्पक्षं प्रतिक्षेप्तुमुपक्षिपति—तदारोहणार्थमिति ॥ १६ ॥

तच्च[2] न, अतत्त्वशीलस्य तत्त्वानिष्पत्तेः ॥ १७ ॥

न ह्यतत्त्वं शीलयतस्तत्त्वं निष्पद्यते ॥ १७ ॥

(पूर्व सूत्रोक्त कुछ आचार्योंके सिद्धान्तसे असहमत वामनाचार्य उनके सिद्धान्तका इस सूत्रसे खण्डन कर रहे हैं—) वह ठीक नहीं है, क्योंकि अतत्त्वका अभ्यास करने वालेको तत्त्वप्राप्ति नहीं होती है।

तत्त्व-भिन्नका अभ्यास करनेवालोंको तत्त्वलाभ नहीं होता है ॥ १७ ॥

---

१. 'न पुनरितरे' इति 'ख' पु० पा०। २. 'तत्तु' इति 'क.ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तेषां मतं दूषयति—तच्च नेति ।। न ह्यतादृशं कर्म परिशीलयतस्तादृशकर्मकौशलं सिद्ध्यति ।। १७ ।।

निदर्शनार्थमाह—

न शणसूत्रवानाभ्यासे त्रसरसूत्रवानवैचित्र्यलाभः ।। १८ ।।

न हि शणसूत्रवानमभ्यस्यन् कुविन्दस्त्रसरसूत्रवानवैचित्र्यं लभते ।। १८ ।।

अब आचार्य वामन निदर्शन (दृष्टान्त) से अपने मतकी पुष्टिके लिए यह सूत्र प्रस्तुत करते हैं—

सनके सूतसे बुननेका अभ्यास करनेपर तसरके सूतसे (रेशमी वस्त्र आदि की) बुनाईकी विचित्रता नहीं मिलती है।

सनकी सुतलीसे (टाट, बोरी आदि की) बुनाईका अभ्यास करनेवाला बुनकर (जुलाहा आदि) तसरके सूतसे (रेशमी कपड़ा—साड़ी, पीताम्बर आदि) की बुनाईकी विचित्रता (निपुणता) को नहीं पाता है ।। १८ ।।

यथा लोके वाजिनमारुरुक्षतो राजपुत्रादेस्तदुपयोगिजान्ववष्टम्भजवगतिमण्डलीक्रियादिसिद्धये मेषारोहाभ्यासो दृश्यते, न तथा कस्यचिदपि कुविन्दस्य सूक्ष्मतन्तुवानकौशलसिद्धये गोणीवानाभ्यासो दृष्टः, तयोर्वैसादृश्येनोपयोगाभावात् । अतो वैदर्भीसन्दर्भलाभाय गौडीयपाञ्चालरीत्योरभ्यास इति मतमनादरणीयम् । शणसूत्रं गोण्याद्युपादानम् । त्रसरसूत्रं[2] श्लक्ष्णवस्त्राद्युपादानम् ।। वानमिति वयतेर्ल्युटि रूपम् ।। १८ ।।

साऽपि समासाभावे शुद्धवैदर्भी[3] ।। १९ ।।

साऽपि वैदर्भी रीतिः शुद्धवैदर्भी भण्यते । यदि [4]समासवत् पदं न भवति ।।

(आगे वैदर्भी रीतिमें भी विशिष्टता इस सूत्रसे कहते हैं—) यह भी समास के नहीं रहनेपर शुद्ध वैदर्भी कही जाती है।

वह वैदर्भी रीति भी (तब) शुद्ध वैदर्भी कही जाती है, (जब उसमें) समासयुक्त पद नहीं हों ।। १९ ।।

साऽपीति । स्पष्टम् ।। १९ ।।

तस्यामर्थगुणसम्पदास्वाद्या ।। २० ।।

तस्यां वैदर्भ्यामर्थगुणसम्पदास्वाद्या भवति ।। २० ।।

उस (वैदर्भी) में अर्थगुणरूपी सम्पत्ति स्वयमेव अनुभव योग्य है।

उस वैदर्भी (रीति) में अर्थगुणरूपी सम्पत्ति स्वयमेव आस्वादनीय है ।। २० ।।

---

१. 'वाने…' इति 'क-ख' पु० पा० । २. 'त्रसरन्तुः' इति 'ख' पु० पा० ।

३. 'साऽपि च वैदर्भी रीतिः शुद्धवैदर्भी भण्यते । यदि समासवत्पदं न भवति, तस्यां वैदर्भ्यामर्थगुणसम्पत्स्वाद्या भवति । तदुपारोहादर्थगुणलेशोऽपि तदुपादानतः ।। १९ ।।' इति 'ग' पु० टिप्पणी ।

४. 'समासवर्तिपदं' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

शब्दभाग इवार्थभागेऽपि गुणसम्पत्तिर्वैदर्भ्युपरागादास्वादनीयेऽत्याह—तस्यामिति ॥ वैदर्भरीत्यवष्टम्भादर्थेऽप्यारोपिता गुणसम्पद[1]ास्वादनीयेत्यर्थः ॥ २० ॥

तदुपारोहादर्थगुणलेशोऽपि ॥ २१ ॥

तदुपधानतः खल्वर्थलेशोऽपि[2] स्वदते । किमङ्ग ! पुनरर्थगुणसम्पत् । तथा चाहुः—

[जीवन् पदार्थपरिरम्भणमन्तरेण
शब्दावधिर्भवति न स्फुरणेन सत्यम् ।[3]]
[4]'किन्त्वस्ति काचिदपरैव पदानुपूर्वी
यस्यां न किञ्चिदपि किञ्चिदिवावभाति ।'
'आनन्दयत्यथ च कर्णपथं प्रयाता
चेतः सताममृतवृष्टिरिव प्रविष्टा ॥'
'वचसि यमधिगम्य[5] स्यन्दते वाचकश्री-
र्वितथमवितथत्वं यत्र वस्तु प्रयाति ।
उदयति हि स तादृक् क्वापि वैदर्भरीतौ
सहृदयहृदयानां रञ्जकः कोऽपि पाकः' ॥ २१ ॥

(उक्त मतकी विशेषतया पुष्टि करते हुए कहते हैं—) उस (वैदर्भी) रीतिके प्रभावसे अर्थगुणका लेशमात्र भी आस्वादनीय होता है ।

उस (वैदर्भी रीति) के प्रभाव से अर्थ-(गुण)की लेशमात्र (अत्यल्प) स्थिति भी आस्वादनीय हो जाती है, फिर अर्थ-गुणकी सम्पत्ति (परिपूर्ण अर्थ-गुण) का क्या कहना, अर्थात् जब वैदर्भी रीतिके प्रभावसे सामान्यतम अर्थ-गुण स्वाद्य होता है, तब परिपूर्ण अर्थगुण-संपत्ति तो अवश्य ही आस्वाद्य होगी । जैसाकि कहते हैं—

('पद तथा पदार्थका चमत्कार वैदर्भी रीतिके प्रभावसे प्राप्य है' यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि वैदर्भी रीतिके स्फुरणमात्रसे जीवित (सहृदय-हृदयाह्लादक) वाक्य-विश्रान्ति असम्भव है । इस शङ्काका निवारण करते हुए कहते हैं कि—वैदर्भी के स्फुरणमात्रसे पदार्थज्ञानके बिना वाक्य-विश्राम जीवित अर्थात् सहृदयश्रोताओंका

---

१. 'गुणसम्पत्तिः' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'अर्थगुणलेशोऽपि' इति 'ख' पु० पा० न सम्यक् प्रतिभाति, अग्रे 'किमङ्ग ! पुनरर्थगुण-सम्पत्' इति पाठानुरोधात् ।

३. 'कामधेनु'व्याख्यानुरोधात् 'जीवन्……सत्यम्' इति पाठः परिवर्तितः ।

४. 'कामधेनुव्याख्याकृता 'किन्त्वस्ति……वावभाति' इति श्लोकस्योत्तरार्द्धे 'जीवन्…… सत्यम् ।' इति च श्लोकस्य पूर्वार्द्धे पाठमभिप्रेत्य व्याख्यातः, आनन्दयत्यथ प्रविष्टा ।' इति च न व्याख्यातः ।

५. '''मधिशय्य' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

हृदयाह्लादक नहीं होता, यह कहना ठीक है, किन्तु यह वैदर्भी रीति कोई विलक्षण पद-रचना है, जिसमें असत् वस्तु भी असत्के समान नहीं प्रतीत होती, (बल्कि रचयिताकी प्रौढ़तासे प्रकटकी हुई पद-रचनाकी परिपाटीके कारण कल्पनीय वस्तु भी प्रत्यक्ष-सी प्रतीत होती है ।

काव्यात्मक वाक्यमें शब्द-शोभा जिसके सहारे रस बरसानेवाली अर्थात् सरस हो जाती है, जिसमें नीरस वस्तु (भी) सरस (सहृदय-हृदयाह्लादक) हो जाती है; वैदर्भी रीतिमें कोई वैसा शब्द-पाक उदित हो जाता है, जो सहृदयलोगोंके हृदयका आह्लादक होता है ॥ २१ ॥

अमुमेवार्थं कैमुतिकन्यायेन समर्थयते—तदुपधानत इति ॥ उपधानमुपरञ्जनम् । 'अङ्गेत्यामन्त्रणेऽव्ययम्' इत्यमरः । उक्तार्थेऽभियुक्तोक्तिमभिव्यनक्ति—तथा चाहुरिति ॥ किन्त्वस्तीति ॥ अत्र 'जीवन् पदार्थपरिरम्भणमन्तरेण शब्दाऽवधिर्भवति न स्फुरणेन सत्यम्' इति पूर्वार्धं पठन्ति । ननु पदपदार्थयोर्गुणचमत्कारो वैदर्भीप्रसादलभ्य इति यदुक्तं, तदयुक्तम्; पदार्थपरिरम्भणमन्तरेण वैदर्भीस्फुरणमात्रेण जीवन्त्या वाक्यविश्रान्तेरसम्भवादिति शङ्कामनुभाषते—जीवन्निति ॥ जीवन्—तर्कवाक्यवैलक्ष्येण [1]सहृदयाह्लादकारीत्यर्थः । शब्दावधिर्वाक्यविश्रान्तिः । यदुक्तं शङ्कावादिना, तत् सत्यमस्त्येव; किन्तु पदार्थव्यतिरिक्ता तत उत्कृष्टा पदसङ्घटनापरिपाटी काचिदस्ति, सा च पदपदार्थयोः सजीवत्त्वायावश्यमङ्गीकरणीयेत्याह—किन्त्विति ॥ यस्यां पदानुपूर्व्यां, न किञ्चिदपि असदपि वस्तु, किञ्चिदिव सदिवावभाति, प्रबन्धृप्रौढिप्रकटितपदकल्पनापरिपाटीवशात् कल्प्यं वस्तु प्रत्यक्षायमाणं प्रतिभासत इत्यर्थः । यदाहुः—'अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः । यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते' इति ॥ वचसीति ॥ काव्यात्मके वाक्य इत्यर्थः । वाचकश्रीः शब्दसम्पत् ॥ [2]यमधिगम्याधिशय्येत्यर्थः । स्पन्दते रसवर्षिणी भवति ॥ यत्र यस्मिन् वैदर्भीपाके, वितथं नीरसं वस्तु, अवितथत्वं सरसत्वं प्रयाति । यदुक्तं लोचने—'जगद् ग्रावप्रख्यं निजरसभरात् पूरयति च' इति । अन्यच्च—'भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत् । व्यवहारयति यथेच्छं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया' इति ॥ शिष्टं स्पष्टम्[3] ॥ २१ ॥

साऽपि वैदर्भी, तात्स्थ्यात् ॥ २२ ॥

साऽपीयमर्थगुणसम्पद् वैदर्भीत्युक्ता । तात्स्थ्यादित्युपचारतो व्यवहारं दर्शयति ॥ २२ ॥

इति श्रीपण्डितवरवामनविरचितकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ
शारीरे प्रथमेऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः ।
अधिकारिचिन्ता, रीतिनिश्चयश्च ।

---

१. 'सहृदया……' इति 'ख' पु० पा० । २. 'यं वैदर्भीपाकमधिग……' इति 'ख' पु० पा० ।
३. 'स्पष्टमवशिष्टम्' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(वैदर्भी-निष्ठ होनेसे अर्थगुणसम्पत्तिमें भी उपचार (आरोप) से वैदर्भी शब्दका व्यवहार होता है—यह बात इस सूत्रमें ग्रन्थकार कह रहे हैं—) वह अर्थगुणसम्पत् भी उपचारके कारण वैदर्भी कही जाती है।

वह अर्थगुणसम्पत् भी वैदर्भी कही जाती है, क्योंकि वह वैदर्भी रीतिमें सदैव रहती है ॥ २२ ॥

वैदर्भीनिष्ठत्वादर्थगुणसम्पदि वैदर्भीति व्यवहारोऽप्युपचर्यत इत्याह—साऽपीयमिति ॥ तस्मिन् तिष्ठतीति तत्स्थः । तस्य भावस्तात्स्थ्यम् । तस्माद् इत्युपचारे सम्बन्ध उक्तः ॥ २२ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां काव्यालङ्कारसूत्र-
वृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ शारीरे प्रथमे-
ऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ १।२ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तृतीयोऽध्यायः

अधिकारिचिन्तां रीतितत्त्वं च[1] निरूप्य काव्याङ्गान्युपदर्शयितुमाह—

लोको विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि ॥ १ ॥

(अङ्गीके निरूपणानन्तर अङ्गोंका निरूपण उचित होनेसे कहते हैं—) अधिकारी की चिन्ता एवं रीतियोंके तत्त्वका निरूपणकर काव्यके अङ्गोंके निरूपणके लिए वामनाचार्य तृतीय अध्यायको आरम्भ करते हुए कहते हैं—

लोक (सांसारिक व्यवहार), विद्या (सू० ३ में उक्त व्याकरणशास्त्रादि) और प्रकीर्ण (सू० ११ में कथित लक्ष्यज्ञता आदि छह); काव्यके ये तीन अङ्ग हैं ॥ १ ॥

वरिवस्यामि मनसा वचसामधिदैवतम्[2] ।
लीलालास्यगृहं[3] यस्य चतुर्मुखचतुर्मुखी ॥

अध्यायान्तरमारभमाणः प्रागध्यायप्रपञ्चितमर्थं सङ्क्षिप्य दर्शयन्नध्यायद्वयमैत्रीमासूत्रयति—अधिकारिचिन्तामिति ॥ अङ्गिनि निरूपितेऽङ्गानां निरूपणमुचितमिति सङ्गतिः । अङ्गान्युद्दिशति—लोक इति ॥ वर्णनीयमन्तरेण किं वर्ण्यत इति लोकः प्रथममुद्दिष्टः । ततश्च संस्कृताः शब्दाः तदनु तदर्थाः । अथ वृत्तम् । अनन्तरमितिवृत्तवैचित्र्यहेतुः शृङ्गाराङ्गं कलाकौशलम् । ततो रसोपयोगिका[4]मव्यवहारः । ततश्चार्थानर्थविवेकहेतुर्दण्डनीतिः । पश्चाल्लक्ष्यज्ञत्वादय इत्युद्देशक्रमः । अत्र 'नैसर्गकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम् । अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः' इति । 'शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणम् ।[5] काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे' इति उक्तनीत्या कवीत्वबीजं प्रथमं परिगणनीयम् । यत्तु पश्चात् परिगणितमिति तच्चिन्त्यम् ॥ १ ॥

उद्देशक्रमेणैतद् व्याचष्टे—

लोकवृत्तं लोकः ॥ २ ॥

लोकः स्थावरजङ्गमात्मा । तस्य वर्तनं वृत्तमिति ॥ २ ॥

उद्देश्यके क्रमसे ग्रन्थकार इस प्रकार कहते हैं—

लोक-व्यवहार 'लोक' है ।

चराचररूप 'लोक' है । उसका व्यवहार 'लोकवृत्त' है ॥ २ ॥

---

१. 'अधिकारितत्त्वम्' इति 'च' इति च 'क' पु० नास्ति ।
२. '……देवताम्' इति 'ख' पु० पा० ।   ३. '…गृहा यस्याः' इति 'ख' पु० पा० ।
४. 'रसोपयोगी' इति पदं पृथक् 'ख' पु० ।
५. '……द्यवेक्षणात्' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

लोकशब्दोऽयमुपचाराल्लोकवर्तने वर्तत इत्याह—लोकवृत्तमिति ॥ २ ॥

शब्दस्मृत्यभिधानकोश[1]च्छन्दोविचितिकलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा विद्याः[2] ॥ ३ ॥

शब्दस्मृत्यादीनां तत्पूर्वकत्वं पूर्वं काव्यबन्धेषु अपेक्षणीयत्वात् ॥ ३ ॥

(अब क्रमागत 'विद्या' का विवरण कहते हैं—) शब्दस्मृति (व्याकरणशास्त्र), अभिधानकोश (अमरकोशादि शब्दकोष), छन्दोविचिति (पिङ्गलसूत्र, छन्दोमञ्जरी आदि छन्दोग्रन्थ), कलाशास्त्र (६४ कलाओं तथा ४०० उपकलाओंका ज्ञान करानेवाला शास्त्र), कामशास्त्र (कामसूत्र आदि) और दण्डनीति (कौटिल्यरचित अर्थशास्त्रादि ग्रन्थ)—ये छः विद्याएँ हैं।

शब्द-स्मृति (व्याकरणशास्त्र) आदिका ज्ञान काव्य(रचना)के पहले होना चाहिए, क्योंकि काव्य-रचनामें उनकी आवश्यकता होती है ॥ ३ ॥

अथ विद्या उद्दिशति—शब्दस्मृतीति ॥ 'शास्त्रतस्ते' (१।१।४) इत्यत्र सूत्रे अलङ्कारविद्योपयोगस्य प्रागेव दर्शितत्वान्नात्र विद्यामध्ये परिगणितमित्यवगन्तव्यम् । शास्त्रशब्दः कलाकामशब्दाभ्यामभिसम्बन्धनीयः, तत्सम्बन्धं विनाऽपि अन्यत्र शास्त्रत्वप्रतिपत्तेः । पूर्वा इत्यनेन गणितविद्यादिपरिग्रहः । प्रधानस्योपकारकमङ्गमिति न्यायेन क्रमादङ्गानामङ्गिन्युपयोगं दर्शयिष्यन्ननन्तरसूत्रावताराय पीठिकां प्रतिष्ठापयति ॥ शब्दस्मृत्यादीनामिति ॥ ३ ॥

तासां काव्याङ्गत्वं योजयितुमाह—

शब्दस्मृतेः शब्दशुद्धिः ॥ ४ ॥

शब्दस्मृतेर्व्याकरणात्, शब्दानां शुद्धिः साधुत्वनिश्चयः कर्तव्यः । शुद्धानि हि पदानि निष्कम्पैः[3] कविभिः प्रयुज्यन्ते ॥ ४ ॥

उन (विद्याओं) का काव्याङ्गत्व सिद्ध करनेके लिए आगे सूत्र कहते हैं—

शब्द-स्मृति (व्याकरणशास्त्र) से शब्दोंकी शुद्धि होती है।

शब्द-स्मृति अर्थात् व्याकरणशास्त्रसे शब्दोंके शुद्ध होनेका निश्चय करना चाहिए। (क्योंकि) शुद्ध शब्दोंका प्रयोग निःशङ्क होकर कविलोग करते है ॥ ४ ॥

व्याकरणं हि मूलं सर्वविद्यानामिति युक्त्या प्रथमोद्दिष्टायाः शब्दविद्याया उपयोगं दर्शयति—शब्दस्मृतेरिति ॥ व्याचष्टे, शब्दस्मृतेर्व्याकरणादिति—साधुत्वनिश्चयः, अस्मिन्नर्थे शब्दः साधुरिति निश्चयः । [4]निष्कम्पैर्निर्भयैरित्यर्थः । अपशब्दप्रयोगे तु कविकाव्ययोरनादरणीयत्वप्रसङ्ग इति द्रष्टव्यम् । तदुक्तम्—'यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषो शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले । सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चाऽप-

१. '···कोष···' इति 'क-ख' पु० पा० । २. 'विद्या' इति 'क-ख' पु० पा० ।
३. 'निःशङ्कैः' इति 'क-ख-ग' पु० पा० । ४. 'निःशङ्कैः···' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

शब्दैः' इति। दण्डिनाऽप्युक्तम्—'गौगौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः। दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति' इति[1] ॥ ४ ॥

अभिधानकोशतः[2] पदार्थनिश्चयः ॥ ५ ॥

पदं हि रचनाप्रवेशयोग्यं भावयन् सन्दिग्धार्थत्वेन न गृह्णीयान्न वा जह्यादिति काव्यबन्धविघ्नः। तस्मादभिधानकोशतः पदार्थनिश्चयः कर्तव्य इति। अपूर्वाभिधानलाभार्थत्वं त्वयुक्तमभिधानकोशस्य, अप्रयुक्तस्याप्रयोज्यत्वात्। यदि तर्हि प्रयुक्तं प्रयुज्यते किमति[3] सन्दिग्धार्थत्वमाशङ्कितं पदस्य, तन्न। तत्र सामान्येनार्थावगतिः सम्भवति। यथा नीवीशब्देन जघनवस्त्रग्रन्थिरुच्यत इति कस्यचिन्निश्चयः। स्त्रिया वा पुरुषस्य वेति संशयो 'नीवी सङ्ग्रथने[4] नार्या जघनस्थस्य वाससः' इति नाममालाप्रतीकमपश्यत इति। अथ कथम् 'विचित्रभोजनाभोगवर्धमानोदरास्थिना[5]। केनचित् पूर्वमुक्तोऽपि नीवीबन्धः श्लथीकृतः ॥'[6] इति प्रयोगः। भ्रान्तेरुपचाराद्वा ॥ ५ ॥

अभिधानकोश (शब्दकोश) से पदोंके अर्थका निश्चय होता है।

(काव्यकी) रचनामें प्रयोग करनेके योग्य पदका विचार करता हुआ कवि पदके अर्थमें सन्देह होनेसे उस पदको ग्रहण करे या नहीं ग्रहण करे, अर्थात् वहाँ पर उस पदका प्रयोग करे अथवा छोड़ दे, ऐसी बाधा काव्य-रचनामें होती है। इससे अभिधानकोशों (वैजयन्ती, नामलिङ्गानुशासन, अभिधानचिन्तामणि, अमरकोष आदि शब्दकोशों) से पदके अर्थका निर्णय करना चाहिए। अभिधानकोश अपूर्व नामके लाभके वास्ते है, ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि अपूर्व (पहले कहीं पर प्रयोगमें नहीं आया हुआ) पद प्रयोग के योग्य नहीं होता है, अर्थात् किसी काव्यादि में अप्रयुक्त पदका प्रयोग नहीं होता है। ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ सामान्य रूप से अर्थका ज्ञान होता है। जैसे 'नीवि' शब्द कमरमें बँधी हुई (वस्त्र-साड़ी, धोती आदि की) गाँठको कहता (बोध कराता) है, ऐसा कोई जानता है। पर उससे पुरुषकी या स्त्रीकी वस्त्रकी ग ँठ अपेक्षित है ? यह सन्देह 'नीवी संग्र···वाससा' (स्त्रीकी जाँघके ऊपर वस्त्र—साड़ी की गाँठ अर्थमें 'नीवी' शब्द है) शब्दकोशके इस प्रतीक (श्लोकार्द्ध) को नहीं देखनेवाले (कवि) को होता है (अतः ऐसे संदेहोंका निवारण करनेके लिए शब्दकोषको देखना आवश्यक है)। यदि 'नीवी' शब्द

---

१. एतदग्रे 'तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्यं दुष्टं कथञ्चन ! स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥ इति च' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

२. अभिधानकोशात्' इति 'ग' पु० पा०। 'कोष' इति मूर्धन्य एव 'क-ख' पु० पा०।

३. 'यदि प्रयुक्तं प्रयुज्यते तर्हि किमिति' इति 'क-ख-ग' पु० पा०; सम्यक् प्रतिभाति।

४. 'सङ्ग्रन्थनं' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

५. 'दरास्थिभिः' इति 'ग' पु० पा०।

६. 'पद्यमिदं' पूर्वोत्तरार्द्धयोर्व्यत्यासेन 'क' पु० पठितम्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

स्त्रीके कटिप्रदेशीय वस्त्रकी गाँठका वाचक है, तब 'नीवी' शब्द 'विचित्र (अनेकविध स्वादिष्ट) भोजन करनेसे बढ़े हुए पेटवाले किसी पुरुषने पहले ढीली की हुई नीवीके बन्धनको फिर ढीला कर लिया' इस स्थलमें पुरुषके कटिप्रदेशस्थ वस्त्रग्रंथि अर्थमें कैसे प्रयुक्त किया गया है ? इसका प्रयोग भ्रमसे अथवा उपचार (लक्षणा) से है। (ऐसा समझना चाहिए) ॥ ५ ॥

पदं हीति[1]। 'आधानोद्धरणे तावद् यावद्दोलायते मन' (१।३।१५ वृ०) इत्युक्तनीत्या किमपि पदं काव्यबन्धे प्रयोगयोग्यं पुनः पुनश्चेतसि विनिवेशयन् कविरभिधानकोशपरिशीलनमन्तरेण सन्दिग्धार्थतया प्रयोक्तुं परित्यक्तुं वा नोत्सहते, अतो बन्धविघ्नो जायेत; तस्मादभिधानकोशतः पदस्यार्थं निश्चित्य निर्विचिकित्सं प्रयुञ्जीतेति। नन्वभिधानकोशस्येदमेव प्रयोजनमिति कोऽयं नियमः, अपूर्वपदप्रयोगलाभोऽपि किन्न स्यादिति चोद्यमनूद्यावद्यति—अपूर्वेति ॥ तत्र हेतुमाह—अप्रयुक्तस्येति ॥ कविभिरिति शेषः। 'यदप्रयुक्तं कविभिरप्रयुक्तं तदुच्यते' इत्यप्रयुक्तस्य दोषस्य[2] पददोषेषु लक्षितत्वात्। अप्रयोज्यत्वं चार्थाभिव्यक्तेरविलम्बेन समर्पकत्वाभावादिति द्रष्टव्यम्। यदि प्रयुक्तमेव पदं कविना प्रयुज्येत तर्हि कुतः सन्देहः स्यादिति शङ्कते—यदि तर्हीति[3] ॥ समाधत्ते—सामान्येनेति ॥ 'एषा हि मे रणगतस्य दृढप्रतिज्ञा द्रक्ष्यन्ति यन्न रिपवो जघनं हयानाम्।' इति प्रयोगदर्शनात्। जघनशब्दः पृष्ठवंशाधरत्रिकमात्रमभिधत्त इत्यभिमन्यमानस्य कस्यचिन्नीवीशब्दो जघनवस्त्रग्रन्थिमेवाभिधत्त इति प्रतिपत्तिर्जायते; तच्च स्त्रिया वा पुरुषस्य वेति संशय उपपद्यत इत्यर्थः। नाममाला अभिधानकोशः। तस्यां[4] प्रतीकमवयवम्। 'अङ्गं प्रतीकोऽवयव' इत्यमरः। अपश्यतोऽपरिशीलयत इति यावत्। यद्येवं, तर्हि प्रयोगविरोधः किं न स्यादिति शङ्कते—अथ कथमिति ॥ विचित्रभोजनाभोगेत्यस्मिन् पद्ये पुंसि विषये नीवीशब्दप्रयोगः कथमिति शङ्कितुरभिप्रायः। परिहरति—भ्रान्तेरिति ॥ भ्रान्तिप्रयुक्तोऽयं प्रयोगः, अथवा नीवीशब्दः पुरुषविषये लक्षणया प्रयुक्तः, पौरुषराहित्यप्रतिपत्तिः प्रयोजनमिति भावः ॥ ५ ॥

छन्दोविचितेर्वृत्तसंशयच्छेदः ॥ ६ ॥

काव्याभ्यासाद् वृत्तसङ्क्रान्तिर्भवत्येव। किन्तु मात्रावृत्तादिषु क्वचित् संशयः स्यात्। अतो वृत्तसंशयच्छेदश्छन्दोविचितेर्विधेय[5] इति ॥ ६ ॥

अब छन्दःशास्त्रके ज्ञानकी उपादेयता कहते हैं—छन्दःशास्त्र से छन्दसे सम्बद्ध अर्थात् छन्दोविषयक सन्देह दूर होता है।

(अनेक छन्दोंमें निर्मित होनेसे) काव्यके अभ्यासद्वारा वृत्तों (समवृत्तवाले छन्दों) का ज्ञान यद्यपि हो ही जाता है, तथापि मात्रावृत्त (आर्या, वैतालीय आदि

---

१. एतदग्रे 'अयमर्थः' इत्यधिकः 'क' पु० पा०। २. 'अप्रयुक्तत्वदोषस्य' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'यदीति' इति 'ख' पु० पा०।
४. 'तस्याः' इति 'ख' पु० पा०।
५. 'छन्दःशास्त्रतः' इति च क्वचित्पाठः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

छन्दों) में सन्देह होना सम्भव है; अतः छन्दःशास्त्रों (पिङ्गलसूत्र, छन्दोमञ्जरी आदि ग्रन्थों) से वृत्तोंका सन्देह दूर करना चाहिए ॥ ६ ॥

वृत्तविद्यायाः प्रयोजनं प्रस्तौति—छन्दोविचितेरिति ॥ काव्येति ॥ नानावृत्तात्मकत्वात् काव्यस्य तत्परिशीलनाद् वृत्तस्वरूपप्रतिफलनमस्त्येव, तथापि मात्रावृत्तादिषु मात्राकल्प्येषु वैतालीयादिषु छन्दश्शास्त्रं विना निर्णयो दुष्कर इत्यर्थः । वैतालीयलक्षणं तु वृत्तरत्नाकरे—'षड् विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नोऽनिरन्तराः । न समाऽत्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः' इति ॥ ६ ॥

कलाशास्त्रेभ्यः कलातत्त्वस्य संवित् ॥ ७ ॥

कला गीतनृत्यचित्रादिकास्तासामभिधायकानि शास्त्राणि विशाखिलादिप्रणीतानि कलाशास्त्राणि, तेभ्यः कलातत्त्वस्य संवित् संवेदनम् । न हि कलातत्त्वानुपलब्धौ कलावस्तु सम्यग् निबद्धुं शक्यमिति ॥ ७ ॥

(अब कलाशास्त्रका प्रयोजन कहते हैं—) कलाशास्त्रोंसे तत्त्वका अच्छा ज्ञान होता है ।

गीत, नृत्य, चित्र बनाना आदि ६४ कलाएँ हैं; उनका प्रतिपादन करनेवाले विशाखिल आदि रचित शास्त्र कला हैं, उनसे कलाओंका तात्त्विक ज्ञान अच्छी तरह होता है। कलाओं (चौंसठ कलाओं तथा चार सौ उपकलाओं) के तात्त्विक ज्ञानके न होनेपर (काव्योंमें) कलावस्तुओंका यथायोग्य प्रयोग नहीं हो सकता । ('कामधेनु' से भिन्न, चौंसठ कलाओंका अनेक ग्रन्थोंमें आया हुआ वर्णन अमरकोष की मद्रचित 'मणिप्रभा' नामकी हिन्दी व्याख्याके परिशिष्ट भागमें देखना चाहिए) ॥ ७ ॥

कला इति ॥ दिङ्मात्रं तु लोकतो विज्ञायते । तत्त्वज्ञानं तु तच्छास्त्रत एव सम्पद्यते इत्यर्थः । कला—नृत्यगीतादयश्चतुःषष्टिः[1] । उपकलाश्चतुश्शतम् । अत्र कलानामुद्देशः कृतो भामहेन—'नृत्तं[2] गीतं तथा वाद्यमालेख्यं मणिभूमिकाः । दशनाद्यङ्गरागश्च माल्यगुम्फविचित्रता ॥ वेणुवीणादिकालापपाटवं शेखरक्रिया । नेपथ्यं गन्धयुक्तिश्च कर्णपत्रक्रियाभिधा ॥ विशेषभेद्यक्लृप्तिश्च नानाभूषणयोजनम् । इन्द्रजालं कौचिमारं सामुद्रं हस्तलाघवम् ॥ [3]सूचिवानक्रिया सूत्रक्रिया सलिलवाद्यकम् । सूपशास्त्रपरिज्ञानं शारिकाशुकवादनम् ॥ रसवादो वास्तुविद्या तक्षणं मेचिकोत्करः । सजीवनिर्जीवद्यूतशास्त्रं सम्पाद्य[4]पाटवम् ॥ धोरणा मातृकायन्त्रं मातृकाकाव्यलक्षणम् । आकर्षकक्रीडितं च निमित्तागमवेदनम् ॥ अग्न्यम्बुसेनादिस्तम्भो विषप्रतिविषागमः । पाञ्चालीनृत्त[5]करणं

---

१. 'चतुःषष्टिकलाभेदाः मत्कृतस्यामरकोष-'मणिप्रभा'ख्य राष्ट्रभाषानुवादस्य (३।३।१९८) परिशिष्टस्यैकादशपृष्ठे सविस्तरे द्रष्टव्याः ।

२. 'नृत्यम्' इति 'ख' पु० पा० एव 'कला नृत्यगीतादयः……' इत्यनुपदमेव स्वयमुक्तत्वात् समीचीनः ।

३. 'सूची' इति 'ख' पु० पा० ।

४. '…शास्त्रसम्पाद्य…' इति 'ख' पु० पा० ।

५. '…नृत्य…' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तण्डुलादिबलिक्रिया ॥ प्रहेलिकादुर्वचकप्रतिमायाऽऽदियोजनम् । मन्त्रवादपरिज्ञानं विशीर्णाक्षरमुष्टिका ॥ सर्वाभिधानकोशोक्तिः परकायप्रवेशनम् । जयव्यायामचित्राप्तिः पत्रिकाचित्रकर्तनम् ॥ रत्नोत्पत्तिस्थानशास्त्रं दर्पणादिलिपिक्रिया । तिरस्करिण्याद्यावाप्तिः पुष्पशाटकिकागमः ॥ हस्त्यश्वलक्षणज्ञानं तिर्यग्हृदयवेदनम् । परेङ्गितपरिज्ञानं जलयानागमज्ञता ॥ परचेतःप्रवेशश्च चतुष्षष्टिरिमाः कलाः । अन्या उपकलाः प्रोक्तास्तासां सङ्ख्याश्चतुश्शतम् ॥ आभिरेव प्रपञ्चोऽयं वर्तते विजयी स्फुटम्' । अत्र ग्रन्थविस्तरभयादुपकलानामुद्देशो न कृतः । कलातत्त्वसंवित्तेरुपयोगं दर्शयति—न हीति ॥७॥

कामशास्त्रतः कामोपचारस्य ॥ ८ ॥

संविदित्यनुवर्तते । कामोपचारस्य संवित् कामशास्त्रत इति । कामोपचारबहुलं हि वस्तु काव्यस्येति ॥ ८ ॥

(अब क्रमप्राप्त कामशास्त्रका प्रयोजन प्रतिपादित करते हैं—) कामशास्त्रसे कामोपचार अर्थात् कामोचित व्यवहारका सम्यग् ज्ञान होता है ।

(इस सूत्रमें पूर्व (अनुपदोक्त सप्तम) सूत्रसे 'संवित्' की अनुवृत्ति होती है । कामोचित व्यवहारका सम्यग् ज्ञान कामशास्त्र (कामसूत्र, अनङ्गरङ्ग, कोकशास्त्र आदि) से करना चाहिए । (काव्यका सरस होना आवश्यक है, रसोंमें श्रृङ्गाररस ही प्रधान है, तथा उस श्रृङ्गाररसकी बहुलता काव्यव्यवहारमें ही होती है; अत एव) काव्यवस्तु भी कामोपचार बहुल है ॥ ८ ॥

कामोपचारबहुलमिति ॥ वस्तु काव्यप्रतिपाद्यमितिवृत्तम् । काव्यस्य रसवत्त्वावश्यम्भावाद्रसस्य च श्रृङ्गारप्रमुखत्वात्, तस्य च कामोपचारप्रचुरत्वात्, काव्यवस्त्वपि कामोपचारबहुलमिति भावः ॥ ८ ॥

दण्डनीतेर्नयापनययोः ॥ ९ ॥

दण्डनीतेरर्थशास्त्रान्नयस्यापनयस्य[1] च संविदिति । तत्र षाड्गुण्यस्य यथावत् प्रयोगो नयः । तद्विपरीतोऽपनयः । नहि तावविज्ञाय नायकप्रतिनायकयोर्वृत्तं शक्यं काव्ये निबद्धुमिति[2] ॥ ९ ॥

(क्रमानुगत दण्डनीतिका काव्य-रचनामें प्रयोजन कहते हैं—) दण्डनीति अर्थात् अर्थशास्त्रसे नय (नीति) और अनय (अनीति) का सम्यग् ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।

दण्डनीति (अर्थशास्त्र—अर्थात् कौटिल्य-अर्थशास्त्र आदि) से नय (नीति) और अनय (अनीति) का सम्यग् ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । उसमें षड्गुण (संधि, विग्रह=युद्ध, यान=शत्रुपर चढ़ाई करना, आसन=प्रबल शस्त्रसे आक्रान्त होने

१. 'तदुक्तम्—' आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयीस्थितौ । अर्थानर्थौ तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ । इति किरातार्जुनीयमहाकाव्यस्य (२।६) व्याख्यायां मल्लिनाथेन ।

२. 'निबन्धुम्' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पर किलेमें सेनादि सहित रुकना, द्वैधीभाव=शत्रुपक्षके मंत्री सेना आदि प्रमुख अधिकारियोंमें परस्पर फूट=मतभेद फैलाना) का यथोचित प्रयोग अनय (उक्त षड्गुणोंका यथोचित प्रयोग नहीं करना) है। उन दोनोंके सम्यग् ज्ञानके बिना नायक और प्रतिनायक (पक्ष और विपक्ष) के व्यवहारको काव्यमें समाविष्ट नहीं किया जा सकता है ॥ ९ ॥

दण्डनीतेरुपयोगं दर्शयति—दण्डनीतेरिति ॥ षाड्गुण्यस्येति सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसमाश्रयाः षड् गुणाः[1] । षड्गुणा एव षाड्गुण्यम् । स्वार्थिकः ष्यण् ॥ ९ ॥

इतिवृत्तकुटिलत्वं च ततः ॥ १० ॥

---

१. तदुक्तममरकोषे—'सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। षड् गुणाः' (२।८।१८–१९)। एतेषां लक्षणं भेदादयश्चाग्निपुराणस्य चत्वारिंशदधिकद्विशततमाध्याये उक्तास्तद्यथा—'सन्धिं च विग्रहं यानमासनानि वदामि ते ॥ बलवद्विगृहीतेन सन्धिं कुर्याच्छिवाय च। कपाल उपहारश्च सन्तानः सङ्गतस्तथा ॥ उपन्यासः प्रतीकारः संयोगः पुरुषान्तरः। अदृष्टनर आदिष्ट आत्मापि स उपग्रहः ॥ परिक्रमस्तथा छिन्नस्तथा च परदूषणम्। स्कन्धोपनेयः सन्धिश्च सन्धयः षोऽशेरिताः ॥ परस्परोपकारश्च मैत्रः सम्बन्धकस्तथा। उपहारश्च चत्वारस्तेषु मुख्याश्च सन्धयः ॥ बालो वृद्धो दीर्घरोगस्तथा बन्धुबहिष्कृतः। भीरुको भीरुकजनो लुब्धो लुब्धजनस्तथा ॥ विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वतिशक्तिमान्। अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ दैवोपहतकश्चैव दैवनिन्दक एव च। दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसङ्कुलः ॥ स्वदेशस्थो बहुरिपुर्मुक्तः कालेन यश्च ह। सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी ॥ एतैः सन्धिं न कुर्वीत विगृह्णीयात्तु केवलम्। परस्परापकारेण पुंसा भवति विग्रहः ॥ आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा। देशकालबलोपेतः प्रारभेतेह विग्रहम् ॥ राज्यस्त्रीस्थानदेशानां ज्ञानस्य च बलस्य च। अपहारो मदो मानः पीडा वैषयिकी तथा ॥ ज्ञानात्मशक्तिधर्माणां विघातो दैवमेव च। मित्रार्थं चापमानं च तथा बन्धुविनाशनम् ॥ भूतानुग्रहविच्छेदस्तथा मण्डलदूषणम्। एकार्थाभिनिवेशित्वमिति विग्रहयोनयः ॥ सपत्न्यां वास्तुजं स्त्रीजं वाग्जातमपराधजम्। वैरं पञ्चविधं प्रोक्तं साधनैः प्रशमं नयेत् ॥ किञ्चित्फलं निष्फलं वा सन्दिग्धफलमेव च। तदात्वे दोषजननमायत्यां चैव निष्फलम् ॥ आयत्यां च तदात्वे च दोषसञ्जननं तथा। अपरिज्ञातवीर्येण परेण स्त्रीजितोदपि वा ॥ परार्थं स्त्रीनिमित्तं च दीर्घकालं द्विजैः सह। अकालदैवमुक्तेन बलोद्धतसखेन च ॥ तदात्वे फलसंयुक्तमायत्यां फलवर्जितम्। आयत्यां फलसंयुक्तं तदात्वे निष्फलं तथा ॥ इतीमं षोडशविधं न कुर्यादेव विग्रहम्। तदात्वायति संशुद्धं कर्म राजा सदाचरेत् ॥ हृष्टं पुष्टं बलं मत्वा गृह्णीयाद्विपरीतकम्। मित्रमास्कन्दमासारो सदा स्युर्दृढमक्तयः ॥ परस्य विपरीतं च सदा विग्रहमाचरेत्। विगृह्य सन्धाय तथा सम्भूयाथ प्रसङ्गतः ॥ उपेक्षया च निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतम्। परस्परस्य सामर्थ्यविघातादासनं स्मृतम् ॥ अरेश्च विजिगीषोश्च यानवत् पञ्चधा स्मृतम्। बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचात्मानं समर्पयन् ॥ द्वैधीभावेन तिष्ठेत काकाक्षिवदलक्षितः। उभयोरपि सम्पाते सेवेत बलवत्तरम् ॥ यदा द्वावपि नेच्छेतां संश्लेषं जातसंविदौ। तदोपसर्पेत्तच्छत्रुमधिकं वा स्वयं व्रजेत् ॥ उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः। कूलोद्धतं सत्यमायमासेवेत बलोत्कटम् ॥ तद्दर्शनोपास्तिकता नित्यं तद्भावभाविता। तत्कारितप्रश्रयिता वृत्तं संश्रयिणः श्रुतम् ॥ (२४०। ५-३२)। अधिकं तु कामन्दकीयनीतिशास्त्रे 'वाचस्पत्य' ५२१२-५२१३ पृष्ठयोः, मनुस्मृत्यां (७।१६२–१६८) च द्रष्टव्यं जिज्ञासुभिरित्यलम्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इतिहासादिरितिवृत्तं काव्यशरीरम्, तस्य कुटिलत्वम्। ततो दण्डनीतेराबलीयसप्रभृतिप्रयोगव्युत्पत्तौ व्युत्पत्तिमूलत्वात्तस्याः[1]। एवमन्यासामपि विद्यानां यथास्वमुपयोगो वर्णनीय इति ॥ १० ॥

(अब दण्डनीति अर्थात् अर्थशास्त्रसे काव्यमें लाभ कहते हैं—)

'इतिवृत्त' इतिहास आदिको कहते हैं। वह काव्यका अङ्ग है। नय और अनय (नीति और अनीति) रूप अर्थशास्त्रके सम्यग् ज्ञानसे उस इतिवृत्तमें कुटिलता (टेढ़ापन या क्लिष्टता आनेसे विचित्रता) आ जाती है (जैसे तापस 'वत्सराज' आदिमें)। बलीयस्त्व और आबलीयस्त्व आदिके प्रयोग (मित्रभेद, सुहृल्लाभ आदि) की व्युत्पत्तिका मूल कारण दण्डनीति अर्थात् अर्थशास्त्रका आबलीयस्त्व अधिकरण ही है। इसी प्रकार काव्य-रचनोपयुक्त अन्यान्य अट्ठारह[2] विद्याएँ भी काव्यके अङ्ग हैं। उन सबका उपयोग विद्वानोंको यथायोग्य करना चाहिए ॥ १० ॥

कुटिलत्वमिति। यथा तापसवत्सराजादौ। आबलीयसेति। आबलीयांसमधिकृत्य कृतमधिकरणमाबलीयसम्। तत्प्रभृतौ प्रयोगा मित्रभेदसुहृल्लाभादयः, तेषां व्युत्पत्तौ सा दण्डनीतिर्मूलमिति[3]। एवमन्यासामिति। गणितादिविद्यानामित्यर्थः। एवमष्टादश-[4]भेदभिन्नानामशेषाणामपि विद्यानां काव्याङ्गत्वमुक्तं भवति। तासामुपयोगश्च यथास्वं लब्धवर्णैर्द्रष्टव्यः। यदाहुः—'न स शब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला। जायते यन्न काव्याङ्गं महाभारो[5] गुरुः कवेः' इति ॥ १० ॥

लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो वृद्धसेवाऽवेक्षणं प्रतिभानमवधानं च प्रकीर्णम् ॥ ११ ॥

---

१. '···आबलीयसादिप्रयोगव्युत्पत्तिमूलत्वात्तस्याः' इति 'ख' पु० पा०, 'बलीयस्त्वाबलीयस्त्वादिप्रयोगो व्युत्पत्तिमूलत्वात् तस्याः' इति च 'क, ग' पु० पा०।

२. अष्टादश विद्या इमाः—

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्वश्चेति ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थन्तु विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥

इति प्रायश्चित्ततंत्रम्, विष्णुपुराणे इति शब्दकल्पद्रुमः।

अङ्गानि च षट्, यथोक्तम्—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः।
छन्दोविचितिरित्येवं षडङ्गो वेद उच्यते ॥ इति ॥

३. 'भावः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

४. अष्टादशविद्याश्चेमाः······'अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः। धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्याह्येताश्चतुर्दश। आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः। अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्याह्येताश्चतुर्दश ॥' इति विष्णुपुराणे।

५. 'काव्याङ्गमहो भारो' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अब 'प्रकीर्ण' के भेद कहते हैं—) लक्ष्यज्ञत्व, अभियोग, वृद्धसेवा, अवेक्षण, प्रतिभान अर्थात् प्रतिभा और अवधान; ये छह 'प्रकीर्ण' के भेद हैं ॥ ११ ॥

प्रकीर्णं वर्णयति—लक्ष्यज्ञत्वमिति ॥ ११ ॥

तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् ॥ १२ ॥

अन्येषां काव्येषु परिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् । ततो हि काव्यबन्धस्य व्युत्पत्तिर्भवति ॥ १२ ॥

(अब ग्रन्थकार पूर्वोक्त ११वें सूत्रमें आये हुए प्रकीर्णके छह भेदोंमें-से प्रथम 'लक्ष्यज्ञत्व' का लक्षण इस १२वें सूत्रमें कहते हैं—) उन (छहों) में-से अब लक्ष्यज्ञत्व कहा जाता है ।

दूसरे (कवियों) के काव्योंका परिचय (निरन्तर अध्ययन-मनन) 'लक्ष्यज्ञत्व' कहा जाता है । उससे काव्य-रचनामें व्युत्पत्ति होती है ॥ १२ ॥

अन्येषामिति—कवीनामिति शेषः ॥ १२ ॥

काव्यबन्धोद्यमोऽभियोगः ॥ १३ ॥

बन्धनं बन्धः । काव्यस्य बन्धो रचना काव्यबन्धः । तत्रोद्यमोऽभियोगः । स हि कवित्वप्रकर्षमादधाति ॥ १३ ॥

(अब क्रमागत 'अभियोग' का लक्षण कहते हैं—) काव्य-रचनामें उद्यम करना 'अभियोग' है ।

बन्धन (रचना) 'बन्ध' है, काव्यका बन्ध (रचना) 'काव्यबन्ध' है । उसमें उद्यम करना (क्रमशः—काव्यकी उत्कृष्टता और अपकृष्टताका परीक्षण, उसमें कमी-बेशीकर फल-प्राप्ति, तद्गत शृङ्गारादि रसमें सावधानी, उक्त रसके योग्य विभावानुभाव आदिके वर्णनमें अलङ्कारोंके औचित्य इत्यादिकी उल्लेखपूर्वक रचना करना) 'अभियोग' कहा गया है । वह अभियोग कवित्वको उत्कृष्टता प्रदान करता है ॥ १३ ॥

बन्धशब्दो भावसाधन इत्याह—बन्धनं बन्ध इति । पूर्वं कथापरीक्षा । तत्राऽधिकावापोद्वापौ[१] फलपर्यन्ततानयनम् । रसं प्रति जागरूकता । रसोचितविभावादिवर्णनायाम् अलङ्कारौचित्यम् इत्याद्युल्लेखपूर्वकं गुम्फनं काव्यबन्धः । तत्रोद्यमोऽभियोगः ॥१३॥

काव्योपदेशगुरुशुश्रूषणं वृद्धसेवा ॥ १४ ॥

काव्योपदेशे गुरव उपदेष्टारः, तेषां शुश्रूषणं वृद्धसेवा । ततः काव्यविद्यायाः सङ्क्रान्तिर्भवति ॥ १४ ॥

---

१. 'तत्राधिकावावापोद्वापौ' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अब क्रमानुसार आये हुए 'वृद्धसेवा' का लक्षण कहते हैं—) काव्यका उपदेश देनेमें श्रेष्ठलोगोंकी उपासना करना 'वृद्ध-सेवा' कहलाती है।

काव्योंके उपदेशमें श्रेष्ठ लोगों (गुरुओं) की सेवा वृद्ध-सेवा कहलाती है। उससे काव्यविद्या में श्रेष्ठता आती है ॥ १४ ॥

काव्योपदेश इति। यद्यपि श्रोतुमिच्छा शुश्रूषेति शब्दव्युत्पत्तिः। तथापि 'वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याप्युपासनम्' इति निरूढत्वेनाभिधानात् सामानाधिकरण्यं घटते ॥ १४ ॥

पदाधानोद्धरणमवेक्षणम् ॥ १५ ॥

पदस्याधानं न्यासः। उद्धरणमपसारणम्। तयोः खल्ववेक्षणम्। अत्र श्लोकौ—

आधानोद्धरणे तावद् यावद्दोलायते मनः।
पदस्य स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती ॥
यत् पदानि त्यजन्त्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम्।
तं शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

(अब क्रमानुसार 'अवेक्षण' का लक्षण कहते हैं—काव्यकी रचना करते समय उपयोगी) पदोंका ग्रहण और (अनुपयोगी) पदोंका त्याग करने की परीक्षाको 'अवेक्षण' कहा गया है।

(उपयुक्त) पदोंका न्यास (ग्रहण, समावेश) और (अनुपयुक्त) पदोंका अपसारण (त्याग; समावेश नहीं करना) पदाधानोद्धरण है। इन दोनोंका (उपयोगिता और अनुपयोगिताका) परीक्षण ही 'अवेक्षण' है। यहाँ (भामहके) दो श्लोक हैं—

(पदोंका ग्रहण और त्याग) तबतक होता रहता है, जबतक मन दोलायमान (अस्थिर) रहता है। (अमुक पदका ग्रहण और अमुक पदका त्याग करना चाहिए, इस प्रकार) पदकी स्थिरताका निश्चय होने पर ही (कविकी) सरस्वती सिद्ध हो गयी है (ऐसा समझना चाहिए)।

(जिस अवस्थामें) पद-परिवर्तनको नहीं सह सकते हैं, (उस अवस्थाको) शब्द-रचनामें निपुणलोग 'शब्द-पाक' कहते हैं ॥ १५ ॥

अवेक्षणमाह—पदाधानेति। अत्र भामहेन भणितं प्रमाणयति—आधानोद्धरणे इति। श्लोकद्वयेन क्रमादन्वयव्यतिरेकाभ्यां पदानां स्थैर्यं सम्पादनीयमित्युक्तम्। इत्थमर्थपाकोऽपि समर्थनीयः ॥ १५ ॥

कवित्वबीजं प्रतिभानम् ॥ १६ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कवित्वस्य बीजं कवित्वबीजम्, जन्मान्तरागतसंस्कारविशेषः कश्चित्। यस्माद्विना[1] काव्यं न निष्पद्यते, निष्पन्नं वा हास्या[2]ऽऽयतनं स्यात् ॥ १६ ॥

(अब अनुक्रमसे प्राप्त प्रतिभानका लक्षण कहते हैं—) कवित्वका बीज 'प्रतिभान' अर्थात् 'प्रतिभा' कही गयी है।

कवित्वका बीज (कविता-रचनामें मूल कारण) कवित्व-बीज है। वह दूसरे किसी जन्मसे आया हुआ कोई (विलक्षण) संस्कार-विशेष है, जिस (जन्मान्तरीय संस्कार-विशेष) के बिना काव्य सम्पन्न नहीं होता है, अथवा काव्य सम्पन्न होता भी है तो वह हास्यास्पद होता है ॥ १६ ॥

कवित्वस्येति। बीजमभिनवपदार्थस्फुरणहेतुः। संस्कारो वासनात्मा। यदाह भट्टगोपालः—'कवित्वस्य लोकोत्तरवर्णनानैपुणलक्षणस्य बीजमुपादानस्थानीयः, संस्कारविशेषः कार्यकल्पनीया काचिद्वासनाशक्तिः' इति। काव्यादर्शेऽपि—'न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्' इति। यस्माद्विनेति। पृथग्विनादिसूत्रे (पा० २।३।३२) विकल्पेन तृतीयाविधानात् पक्षे पञ्चमी। हास्यायतनं परिहासास्पदम्। तादृशं हि काव्यमनर्थाय भवति कवेः। तदुक्तम्—'नाऽकवित्वमधर्माय मृतये दण्डनाय वा। कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः' इति ॥ १६ ॥

चित्तैकाग्र्यमवधानम् ॥ १७ ॥

चित्तस्यैकाग्र्यं बाह्यार्थनिवृत्तिस्तदवधानम्। अवहितं हि चित्तमर्थान् पश्यति ॥ १७ ॥

(सम्प्रति 'अवधान' का लक्षण कहते हैं—) चित्तकी एकाग्रता 'अवधान' कहा जाता है।

चित्तकी एकाग्रता अर्थात् बाहरकी वस्तुओंसे चित्तका पराङ्मुख होना 'अवधान' कहा गया है। अवहित (एकाग्र) चित्त अर्थोंको देखता है अर्थात् नये-नये पदार्थोंका बिना रुके (निर्बाध रूपसे) काव्यमें समावेश करता है ॥ १७ ॥

चित्तस्येति। बहिरिन्द्रियव्यापारविरामान्मनसो बाह्यार्थाऽपरक्ति[3]रवधानम्। अवधानस्य प्रयोजनमभिधत्ते—अवहितमिति। अर्थान् पश्यति। अभिनवपदार्थानप्रतिबन्धमुल्लिखतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

तद्देशकालाभ्याम् ॥ १८ ॥

तदवधानं देशात् कालाच्च समुत्पद्यते ॥ १८ ॥

(उक्त 'अवधान' की उत्पत्तिका उपाय कहते हैं—) वह (चित्तकी एकाग्रता रूप) 'अवधान' देश और काल (समय) से उत्पन्न होता है।

---

१. 'यस्माद् बीजं विना' इति 'ग' पु० पा०। २. 'वाऽवहसा……' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'बाह्यार्थानुप……' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वह अवधान (चित्तैकाग्रय, आगे १९-२० सूत्रोंमें वक्ष्यमाण) देश और कालसे (दोनोंके प्राप्त होनेपर) होता है ॥ १८ ॥

तद्देशकालाभ्यामिति। अर्थाद्विशिष्टाभ्यां समुच्चिताभ्यामित्यवगन्तव्यम् ॥ १८ ॥

कौ पुनर्देशकालावित्याह—

विविक्तो देशः ॥ १९ ॥

विविक्तो निर्जनः ॥ १९ ॥

वे देश और काल कौन-से हैं ? इसका समाधान करते हुए कहते हैं—

(देश-कालके प्रतिपादन-प्रसंगमें प्रथमागत देशका वर्णन करते हैं—) विविक्त (निर्जन—मनुष्यादिके सञ्चारादिसे शून्य अर्थात् एकान्त) स्थान 'देश' कहा जाता है ।

विविक्त अर्थात् निर्जन (जनादि सम्पर्कसे रहित अर्थात् एकान्त) स्थान 'देश' कहा गया है ॥ १९ ॥

विविक्तो निर्जनप्रदेशः। 'विविक्तौ पूतविजनौ' इत्यमरः ॥ १९ ॥

रात्रियामस्तुरीयः कालः ॥ २० ॥

रात्रेर्यामो रात्रियामः प्रहरस्तुरीयश्चतुर्थः काल इति। तद्वशाद्विषयोपरतं चित्तं प्रसन्नमवधत्ते ॥ २० ॥

(अब द्वितीय 'काल' का वर्णन करते हैं—) रातका चतुर्थ प्रहर (काव्य-रचनोपयुक्त) 'काल' कहा गया है ।

रात्रिका याम रात्रियाम अर्थात् रातका चौथा (अन्तिम) पहर (काव्य-रचना के उपयुक्त ब्राह्ममुहूर्त) 'काल' है। उसके प्रभावसे लौकिक विषयोंसे उपरत (हटा हुआ) चित्त प्रसन्न रहता है ॥ २० ॥

तुरीय इति। प्रथमादिषु त्रिषु प्रहरेष्वाहारविहारनिद्रासु सामुख्यं मनसः, पश्चिमे तु प्रहरे प्रसादः सम्भवतीति तुरीय इत्युक्तम्। यद्वा, यद्यपि प्रथमादीनामपि चतुःसङ्ख्यापूरकत्वं तथाऽप्युपादानसामर्थ्यादिह पश्चिमो यामस्तुरीय इति गम्यते। तथा च कालिदासः—'पश्चिमाद् यामिनीयामात् प्रसादमिव चेतना' इति। माघोऽपि—'गहनमपररात्रप्राप्तबुद्धिप्रसादाः कवय इव महीपाश्चिन्तयन्त्यर्थजातम्' इति ॥ २० ॥

एवं काव्याङ्गान्युपदिश्य काव्यविशेषकथनार्थमाह—

काव्यं गद्यं तु पद्यं च ॥ २१ ॥

गद्यस्य पूर्वं निर्देशो दुर्लक्ष्यविशेषत्वेन[1] दुर्बन्धत्वात्। तथाहुः—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' ॥ २१ ॥

१. '......विषयत्वेन' इति 'क, ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इस प्रकार काव्यके अङ्गोंका निरूपणकर काव्य-विशेषके प्रतिपादनार्थ ग्रन्थकार यह सूत्र कहते हैं—)

काव्य—गद्य और पद्यके भेदसे दो तरहका होता है।

गद्यको पहले इस कारण निर्दिष्ट किया गया है कि—गद्य कठिनाईसे लक्षित होने योग्य गुरु-लघुके नियमादि विशेषवाला क्लिष्टतापूर्वक रचना करने लायक होता है। जैसा कि (आलोचक विद्वानोंने) कहा है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्यकाव्यको कवियोंकी कसौटी कहते हैं। (तात्पर्य यह है कि—) जैसे कसौटी (सुवर्ण-परीक्षणार्थ काले रंगका विशिष्ट पत्थर) से सोनेका खरा या खोटा होना पहचाना जाता है, वैसे ही गद्य-काव्यसे कविका उत्कृष्ट और निकृष्ट होना पहचाना जाता है) ॥ २१ ॥

वृत्तवर्तिष्यमाणयोः सङ्गतिमुल्लिङ्गयन् काव्यभेदान् कथयितुमाह—एवमिति। गद्यमिति। 'गद व्यक्तायां वाचि' इति धातोः 'गदमदचरयमश्चानुपसर्गे' (पा० ३।१। १००) इति कर्मणि यत्प्रत्यये सति गद्यमिति रूपम्। यद्वा, 'स्तनगदी देवशब्दे' इति चौरादिकणिजन्ताद् 'अचो यत्' (पा० ३।१।९७) इति भवार्थे यत्प्रत्यये सति गद्यमिति रूपम्। [1]पादेषु भवं पद्यम्। शरीरमिति विवक्षायां 'शरीरावयवाच्च' (पा० ४।३।५५) इति भवार्थे यत्प्रत्यये भसंज्ञायां पदादेशे च सति पद्यमिति रूपम्। अनेन पद्यसामान्य-लक्षणं सूचितं भवति। तदुक्तं काव्यादर्शे—'पद्यं चतुष्पदी, तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा' इति। गद्यस्य पूर्वनिर्देशे हेतुमाह—गद्यस्येति। दुर्लक्ष्याः कृच्छ्रेण लक्ष्या विशेषा गुरु-लघुनियमादयो यस्य तस्य भावः। तेन हेतुना दुर्बन्ध कृच्छ्रेण बद्धुं शक्यम्। तस्य भावस्तस्मात् पूर्वनिर्देशः कृत इति शेषः। अत्राभाणकमपि दर्शयति—तथाहुरिति। निकषो हेमादिकषणोपलः। 'निकषस्तु घृषिर्घृष्यो हेमादिनिकषोपलः' इति वैजयन्ती। कनकानामिव कवीनां प्रकर्षापकर्षपरीक्षास्थानमिति यावत् ॥ २१ ॥

तच्च त्रिधा भिन्नमिति दर्शयितुमाह—

गद्यं वृत्तगन्धि चूर्णमुत्कलिकाप्रायं च ॥ २२ ॥

वह (गद्यकाव्य) तीन तरह का होता है। यह दिखलाने के लिए यह सूत्र कहते हैं—

गद्य—वृत्तगन्धि, चूर्ण और उत्कलिकाप्रायके भेदसे तीन प्रकार का होता है ॥ २२ ॥

गद्यभेदान् गणयितुमाह—

तच्चेति। वृत्तगन्धि क्वचिद्भागे वृत्तच्छायानुकारि। चूर्णपदेनोपचाराद् व्यस्तपद-समाहारो लक्ष्यते, तेन व्यस्तपदबहुलं चूर्णम्। उत्कलिकाप्रायमिति—उत्कलिकोत्कण्ठा। 'उत्कण्ठोत्कलिके समे' इत्यमरः। उत्कलिकायाः [2]प्रयोगबाहुल्यं यस्मिंस्तद् उत्कलिका-

१. एतस्मात्पूर्वं 'देवैः शब्दनीयं गद्यमिति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।
२. 'प्रायः प्रयोग……' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रायं गद्यम् । यस्मिन् श्रूयमाणे श्रोतॄणामुत्कण्ठा बहुला भवतीत्यर्थः । कलिकाशब्दोऽत्र लक्षणया रुहरुहिकायां वर्तते । उल्लसन्तीं कलिकां रुहरुहिकां प्रति प्राप्नोतीत्युत्कलिकाप्रायम् । यत्र पदसन्दर्भपरिपाटी काण्डोपकाण्डसंरोहशालिनी कलिकेवोल्लसति तदुत्कलिकाप्रायमित्यर्थः ॥ २२ ॥

तल्लक्षणान्याह—

पद्यभागवद् वृत्तगन्धि ॥ २३ ॥

पद्यस्य भागाः पद्यभागाः, तद्वद् वृत्तगन्धि । यथा–'पातालतालुतलवासिषु दानवेषु' इति । अत्र हि वसन्ततिलकाख्यवृत्तस्य भागः प्रत्यभिज्ञायते ॥ २३ ॥

उन (त्रिविध गद्यकाव्यों) का लक्षण कहते हैं—

पद्यभागोंसे युक्त (गद्य) 'वृत्तगन्धी' कहलाता है ।

पद्यके भाग पद्यभाग हैं, उनसे युक्त (गद्य) को 'वृत्तगन्धी' कहा जाता है। इस तरहके गद्यमें कुछ-कुछ छन्दकी मात्रा (अंश) भी रहती है। जैसे—'पातालतालुतलवासिषु दानवेषु' अर्थात् पातालके तल (अधोभाग) में वसनेवाले दानवोंमें। यहाँपर 'वसन्ततिलका' नामक १२ अक्षरों वाले सम) वृत्तका एक पाद प्रतीत होता है ॥ २३ ॥

विशेषलक्षणानि विवरीतुमाह—तल्लक्षणानीति । वसन्ततिलकेति । 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति[1] ॥ २३ ॥

अनाविद्धललितपदं चूर्णम् ॥ २४ ॥

अनाविद्धान्यदीर्घसमासानि ललितान्यनुद्धतानि पदादि यस्मिस्तदनाविद्धललितपदं चूर्णमिति । यथा—'अभ्यासो हि कर्मणां कौशलमावहति । न हि सकृन्निपातमात्रेणोदबिन्दुरपि ग्रावणि निम्नतामादधाति' ॥ २४ ॥

(अब क्रमागत द्वितीय गद्यका लक्षण कहते हैं—) लम्बे समासोंसे एवं ललित (सुकुमार—अक्लिष्टोच्चारणीय) पदोंवाला गद्य 'चूर्ण' कहा गया है ।

अनाबिद्ध—लम्बे-लम्बे समासोंसे युक्त ललित (सुकोमल) पद है, जिसमें वह अनाबिद्ध ललितपदवाला गद्यकाव्य 'चूर्ण' कहलाता है। जैसे—

कामोंका अभ्यास कौशल अर्थात् निपुणता पाता है, केवल एक बार गिरनेमात्रसे पानीकी बूंद पत्थरमें गढ़ा नहीं करती है ॥ २४ ॥

अनाविद्धेति । वृत्तिः स्पष्टार्था । उदाहरति—अभ्यास इति । न हि सकृदिति । नहीति निपातसमुदायः प्रतिषेधवाचकः सकृदित्यनेन सम्बद्ध्यते । तथा चासकृदित्यर्थः सम्पद्यते । मात्रशब्देन सहकारिमात्रादिर्व्यावर्त्यते । तेनोदबिन्दुरप्यसकृन्निपातमात्रेण ग्रावणि पाषाणे निम्नतामादधातीत्यन्वयमुखेन पूर्ववाक्यार्थः समर्थितो भवति ॥ २४ ॥

---

१. 'इति तल्लक्षणम्' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विपरीतमुत्कलिकाप्रायम् ॥ २५ ॥

विपरीतमाविद्धोद्धतपदमुत्कलिकाप्रायम् । यथा—'कुलिशशिखरखरनखर[1]-प्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलगलन्मदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभार-भासुरमुखे केसरिणि' ॥ २५ ॥

(अब तृतीय भेदवाले गद्यकाव्यका लक्षण कहते हैं—) विपरीत अर्थात् पूर्वोक्त सूत्रमें लक्षित 'चूर्ण' से उलटा (उत्कट पदयुक्त) गद्यकाव्य 'उत्कलिकाप्राय' कहा गया है ।

('चूर्ण' नामक गद्यसे) विपरीत उद्धत (लम्बे-लम्बे समासों एवं उत्कट) पदोंसे युक्त 'उत्कलिकाप्राय' नामक गद्यकाव्य कहा जाता है । जैसे—वज्रके अगले भाग (नोक) के समान तेज नाखूनोंसे भयङ्कर थथेड़से फटे हुए मतवाले हाथीके कुम्भाकार मस्तकपिण्डसे टपकते मदकी धारासे लिपटे हुए सुन्दर केसर (अयाल—स्कन्धस्थ लम्बे बाल) के भारसे सुन्दर मुखवाले सिंहपर ॥ २५ ॥

विपरीतमिति । सुगमम् । चपेटा करतलाघातः । 'चपेटः प्रतले प्राणौ तदाघाते स्त्रियाम्' इत्यमरशेषः ॥ २५ ॥

पद्यमनेकभेदम् ॥ २६ ॥

पद्यं खल्वनेकेन समार्धसमविषमादिना भेदेन भिन्नं भवति ॥ २६ ॥

('गद्य' काव्यका निरूपण करनेके बाद अब क्रमागत 'पद्य' का भेद कहते हैं—) 'पद्य' के अनेक भेद होते हैं ।

'पद्य' समवृत्त (समान लक्षणयुक्त चारों चरणोंवाला छन्द, यथा—वसन्ततिलका, शिखरिणी आदि), अर्धसमवृत्त (प्रथम चरणके समान तृतीय चरणवाला तथा द्वितीय चरणके समान चतुर्थ चरणवाला छन्द, यथा—उपवक्त्र, पुष्पिताग्रा आदि) विषमवृत्त (विभिन्न लक्षणयुक्त चारो चरणोंवाला छन्द, यथा–उद्‌गता आदि) आदि ('आदि' पदसे आर्या, वैतालीय आदि मात्रावृत्त) के भेदसे अनेक प्रकारका होता है ॥ २६ ॥

पद्यं विभजते—समेति । समवृत्तमधर्मसमवृत्तं विषमवृत्तम् । आदिशब्देनार्या-वैतालीयादिमात्रावृत्तानां परिग्रहः । समवृत्तादिलक्षणमुक्तं भामहेन—'सममर्धसमं वृत्तं विषमं च त्रिधा मतम् । अङ्‌घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः ॥ तच्छन्दःशास्त्र-तत्त्वज्ञाः समवृत्तं प्रचक्षते । प्रथमाङ्‌घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत् ॥ द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्तं तदर्धसममुच्यते । यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम् ॥ तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दश्शास्त्रविशारदाः'[2] ॥ २६ ॥

तदनिबद्धं निबद्धं च ॥ २७ ॥

---

१. '…नखरप्रचयचपे…' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

२. वृत्तरत्नाकरेऽप्येतदेव लक्षणमुक्तम् ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तदिदं गद्यपद्यरूपं काव्यमनिबद्धं निबद्धं च । अनयोः प्रसिद्धत्वाल्लक्षणं नोक्तम् ।। २७ ।।

(अब गद्य तथा पद्यके अवान्तर भेद कहते हैं—) वह (पद्य और गद्यकाव्य) अनिबद्ध और निबद्ध भेदसे दो प्रकारका होता है ।

गद्य-पद्यरूप वह काव्य अनिबद्ध (प्रसङ्गहीन होनेसे परस्परमें असम्बद्ध अर्थात् 'मुक्तक') और निबद्ध (क्रमबद्ध प्रसङ्गयुक्त अर्थात् महाकाव्य, प्रबन्धकाव्य) भेदसे दो प्रकार का होता है । इन दोनों (अनिबद्ध और निबद्ध) के प्रसिद्ध होनेसे यहाँ उनका लक्षण नहीं कहा है ।। २७ ।।

गद्यपद्ययोरप्यवान्तरभेदावाह[1]—तदिति । गद्यपद्यात्मकं काव्यं प्रकृतं तच्छब्देन परामृश्यत इति व्याचष्टे—तदिदं गद्यपद्यरूपमिति । व्याख्याने जाडचमव्याख्याने मौढचमित्यत आह—अनयोः प्रसिद्धत्वादिति । अनिबद्धं मुक्तकं, निबद्धं प्रबन्धरूपमिति प्रसिद्धिः । मुक्तकलक्षणमुक्तं भामहेन—'प्रथमं मुक्तकादीनामृजुलक्षणमुच्यते । यदेव गाम्भीर्यौदार्यशौर्यनीतिमतिस्पृशा । भवेन्मुक्तकमेकेन द्विकं द्वाभ्यां त्रिकं त्रिभिः' इति । निबद्धानि सर्गबन्धादीनि । तल्लक्षणं काव्यादर्शे—'सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्' इत्यादिना द्रष्टव्यम् ।। २७ ।।

क्रमसिद्धिस्तयोः स्रगुत्तंसवत् ।। २८ ।।

तयोरित्यनिबद्धं निबद्धं च परामृश्यते । क्रमेण सिद्धिः क्रमसिद्धिः । अनिबद्धसिद्धौ निबद्धसिद्धिः स्रगुत्तंसवत् । यथा स्रजि मालायां सिद्धायामुत्तंसः शेखरः सिद्धचतीति ।। २८ ।।

(उन दोनों अर्थात् अनिबद्ध और निबद्धके अभ्यासका क्रम इस सूत्रमें कहते हैं—) उन दोनों (मुक्तक और प्रबन्ध) की सिद्धि माला तथा मुकुटकी सिद्धिके समान क्रमशः होती है ।

सूत्रमें कथित 'तयोः' पदसे अनिबद्ध (मुक्तक पद्यकाव्य) और निबद्ध (महाकाव्य-प्रबन्धकाव्य) का परामर्श (ज्ञान) होता है । क्रमसे सिद्धि 'क्रमसिद्धि' है । अनिबद्ध (मुक्तक पद्यकाव्य) और निबद्ध (प्रबन्धकाव्य-महाकाव्य) की सिद्धि पुष्पमाला और शेखर (मुकुट) के समान क्रमसे होती है । जैसे माला बनानेके बाद ही मुकुट—किरीट बन सकता है, वैसे ही मुक्तक पद्यकाव्यकी रचना करनेके बाद ही प्रबन्धकाव्यकी रचना की जा सकती है । (अत एव मुक्तककाव्यकी रचनाका अभ्यास करनेके बाद ही प्रबन्धकाव्यकी रचना करनी चाहिए) ।। २८ ।।

अनयोरभ्यासक्रममाह—क्रमसिद्धिरिति । अनिबद्धमभ्यस्य निबद्धरचनायां यतितव्यमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः—स्रगुत्तंसवदिति ।। २८ ।।

---

१. '……योरुभयोरप्य……' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

केचिदनिबद्ध एव पर्यवसितास्तद्दूषणार्थमाह—

नानिबद्धं चकास्त्येकतेजःपरमाणुवत् ॥ २९ ॥

न खल्वनिबद्धं काव्यं चकास्ति दीप्यते। यथैकतेजःपरमाणुरिति। अत्र श्लोकः—

असङ्कलितरूपाणां काव्यानां नास्ति चारुता।
न प्रत्येकं प्रकाशन्ते तैजसाः परमाणवः ॥ २९ ॥

कुछ गद्यकाव्य अनिबद्ध (मुक्तक) में ही समाप्त हो जाते हैं, वह ठीक नहीं है। इसके लिए सूत्रका अवतरण करते हैं—

अनिबद्ध (मुक्तककाव्य) तेज (आग इत्यादि) के एक परमाणु अर्थात् चिनगारीके समान प्रकाशित नहीं होता है।

अनिबद्ध (मुक्तककाव्य) वैसे ही सुन्दर नहीं होता है, जैसे तेज (आग आदि) का एक परमाणु—चिनगारी (चमकता नहीं है)। यहाँ श्लोक है—

असङ्कलित (पृथक्-पृथक् स्थित) काव्य (मुक्तककाव्य) सुन्दर नहीं होते हैं, क्योंकि तेज (आग आदि) के (अलग-अलग अवस्थित) प्रत्येक परमाणु प्रकाशित नहीं होते हैं (अतः मुक्तककाव्योंकी रचना करनेसे अपनेको 'कवि' मान लेना उचित नहीं है) ॥ २९ ॥

अनिबद्धसिद्धिमात्रेण कविम्मन्यमानानपवदितुमाह—केचिदिति। प्रावादुकसम्मतिं दर्शयति—अत्र श्लोक इति। असङ्कलितरूपाणामनिबद्धरूपाणामित्यर्थः ॥ २९ ॥

सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः ॥ ३० ॥

सन्दर्भेषु प्रबन्धेषु दशरूपकं नाटकादि श्रेयः ॥ ३० ॥

(निबद्ध अर्थात् प्रबन्धकाव्योंमें भी तारतम्य—उत्कृष्टता एवं निकृष्टता) का प्रतिपादन इस सूत्रमें करते हैं—) सन्दर्भ(प्रबन्ध)काव्योंमें भी दश तरहका रूपक श्रेष्ठ है।

सन्दर्भ अर्थात् प्रबन्धकाव्योंमें दश प्रकारका रूपक (नाटक आदि, यथा—अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तररामचरित आदि) श्रेष्ठ होता है। (जैसे कहा भी है—'काव्येषु नाटकं श्रेष्ठम्' अर्थात् काव्योंमें नाटक श्रेष्ठ होता है।) [नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथि, अङ्क और ईहामृग—ये दश भेद रूपकके हैं] ॥ ३० ॥

निबद्धेषु तरतमभावं निरूपयति—सन्दर्भेष्विति। रूपकस्वरूपं निरूपितं दशरूपके—'अवस्थाऽनुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपकं तत्समारोपाद्दशधैव रसाऽऽश्रयम्' इति। भावप्रकाशनेऽपि[1] 'रूपकं तद्भवद्रूपं दृश्यत्वात् प्रेक्षकैरिदम्। रूपकत्वं तदा-

१. 'भावप्रकाशेऽपि' इति 'ख' पु० पा० एव सम्यक्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

रोपात् कमलारोपवन्मुखे' ॥ इति । दशरूपकाणि—'नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः । व्यायोगसमवाकारौ वीथ्यङ्केहामृगा दश' इति । दशानां रूपकाणां समाहारो दशरूपकम् । पात्रादित्वात् स्त्रीत्वप्रतिषेधे[1] नपुंसकत्वम् । श्रेयः अतिशयेन प्रशस्यमित्यर्थः ॥ ३० ॥

कस्मात् तदाह—

तद्धि चित्रं चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात् ॥ ३१ ॥

तद्दशरूपकं हि यस्माच्चित्रं चित्रपटवत् । विशेषाणां साकल्यात् ॥ ३१ ॥

क्यों (निबद्धकाव्यमें दश रूपक क्यों श्रेष्ठ है) ? इसका उत्तर सूत्रमें देते हैं—

वह (दश रूपक) चित्रपटके समान 'चित्ररूप' है, क्योंकि वह सम्पूर्ण विशेषताओंसे युक्त है ।

सभी गुणोंसे परिपूर्ण होनेके कारण वह दश रूपक चित्रपटके समान चित्ररूप (अत एव श्रेष्ठ) है ॥ ३१ ॥

श्रेयस्त्वे हेतुं पृच्छति—कस्मादिति । हेतुमुपन्यस्यति—तदिति ॥ ३१ ॥

ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः ॥ ३२ ॥

ततो दशरूपकादन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति । दशरूपकस्यैव हीदं सर्वं विलसितम् । यच्च कथाख्यायिके महाकाव्यमिति, तल्लक्षणं च नातीव हृदयङ्गममित्युपेक्षितमस्माभिः । तदन्यतो ग्राह्यम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीपण्डितवरवामनविरचितकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ
शारीरे प्रथमेऽधिकरणे तृतीयोऽध्यायः ॥ १।३ ॥

काव्याङ्गानि काव्यविशेषाश्च ।

समाप्तं चेदं शारीरं प्रथममधिकरणम् ।

(दश रूपकोंसे भिन्न कथा आख्यायिका आदि महाकाव्योंकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—) उन दश रूपकोंसे अन्यान्य भेदोंकी कल्पना करनी चाहिए ।

उन दश रूपकोंसे दूसरे भेदोंकी कल्पना होती है । यह सब प्रपञ्च दश रूपकों का ही है । कथा और आख्यायिका जो महाकाव्य हैं, उनका लक्षण विशेषतः हृदयग्राही नहीं है । (जिज्ञासुओंको) उनका लक्षण अन्यत्र (भामहालङ्कारादि) से ग्रहण करना चाहिए ॥ ३२ ॥

---

१. पात्रादेराकृतिगणतया 'स नपुंसकम्' (पा० २।४।१७) इति सूत्रेण नपुंसकत्वं, 'पात्राद्यन्तस्य न' इति वार्तिकेन स्त्रीत्वनिषेधादित्यवधेयम् ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विशेषाणां भाषाभेदादिरूपाणां कथाख्यायिकादीनां महाकाव्यभेदानामस्मादेव वस्तुविन्यासकल्पनमिति प्रकारान्तरेणाऽपि श्रेयस्त्वमस्य प्रतिपादयितुमाह—तत इति—इदं सर्वमिति । कथाख्यायिकादिमहाकाव्यस्वरूपम् । विलसितमित्यस्य व्याख्यानं खण्डशः कृतमिति । [1]कथा चाख्यायिका च महाकाव्यमिति व्यपदिश्यते—तदिदं सर्वमिति व्याक्रम्य[2] योजनीयम् । यदि कथाख्यायिके महाकाव्ये तर्हि तल्लक्षणं किमिति न प्रदर्शितमिति तत्राह—तल्लक्षणमिति । यदि केनचित्तल्लक्षणमपेक्षितं तद् भामहालङ्कारादौ द्रष्टव्यमित्यत आह—तदन्यत इति । नाटकादिलक्षणं तु ग्रन्थविस्तरभयादस्माभिर्न लिखितम् ॥ ३२ ॥

इति कृतरचनायामिन्दुवंशोद्वहेन त्रिपुरहरधरित्रीमण्डलाखण्डलेन ।
ललितवचसि काव्यालङ्क्रियाकामधेनावधिकरणमयासीदादिमं पूर्तिमेतत् ॥ १ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां वामनालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ शारीरे प्रथमेऽधिकरणे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ १।३ ॥

---

१. 'यत्कथा' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'व्याकुट्य' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

दोषदर्शनं नाम द्वितीयमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

काव्यशरीरे स्थापिते काव्यसौन्दर्याक्षेपहेतवस्त्यागाय दोषा विज्ञातव्या इति दोषदर्शनं नामाधिकरणमारभ्यते । दोषस्वरूपकथनार्थमाह—

गुणविपर्ययात्मानो दोषाः ॥ १ ॥

गुणानां वक्ष्यमाणानां ये विपर्ययास्तदात्मानो दोषाः ॥ १ ॥

काव्य-शरीरके स्थापित हो जानेपर काव्य-सौन्दर्यको नष्ट करनेके कारणीभूत दोषोंके त्यागके लिए उन (दोषों) को जानना चाहिए, इससे (ग्रन्थकार) 'दोष-दर्शन' नामक द्वितीय अधिकरणका आरम्भ करते हैं। 'दोष' का सामान्य लक्षण इस सूत्रमें कहते हैं—

गुणोंके प्रतिकूल स्वरूपवाले 'दोष' कहे जाते हैं।

तृतीयाध्यायमें वक्ष्यमाण (ओज आदि) गुणोंके विपरीत स्वरूपवाले दोष हैं ॥ १ ॥

निष्कलङ्कनिशाकान्तगर्वसर्वङ्कषप्रभाम् ।
कविकामगवीं वन्दे कमलासनकामिनीम् ॥ १ ॥

दोषदर्शनं द्वितीयमधिकरणमारभ्यते । अधिकरणद्वयसम्बन्धमेव बोधयति—काव्यशरीर इति । सौन्दर्यस्य गुणालङ्कारघटितचारुत्वस्याऽऽक्षेपः स्वस्थानात् प्रच्यावनं तस्य हेतवस्तथाविधा दोषाः कविना ज्ञातव्या इत्यनेन दोषज्ञानस्यावश्यकर्तव्यतोक्ता । तेषामज्ञाने परित्यागात्मनः फलस्य दुर्लभत्वादिति भावः, दृश्यन्तेऽस्मिन् दोषा इति दोषदर्शनम् । अधिकरणार्थे ल्युट् । दोषसामान्यलक्षणं वक्तुं सूत्रमवतारयति—दोषस्वरूपेति । गुणानामिति । विपरीयन्त इति विपर्यया विपरीताः । कर्मार्थेऽच् प्रत्ययः । त एवात्मानो येषां ते विपर्ययात्मानो विपरीतस्वरूपाः, न त्वभावरूपा इत्यर्थः । अनेन गुणविपरीतस्वरूपत्वं दोषसामान्यलक्षणमुक्तं भवति ॥ १ ॥

अर्थतस्तदवगमः ॥ २ ॥

गुणस्वरूपनिरूपणात्तेषां दोषाणामर्थादवगमोऽर्थसिद्धिः[१] ॥ २ ॥

अर्थतः उन (दोषों) का ज्ञान हो सकता है।

गुणों ('ओज' आदि) के स्वरूपका निरूपण हो जानेसे उन दोषोंका अर्थापत्ति न्यायसे ज्ञान हो जाता है ॥ २ ॥

---

१. '''गमोऽर्थाद् सिद्धिः' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ननु गुणेष्ववगतेषु तद्विपर्ययस्वरूपा दोषा विनापि लक्षणोदाहरणाभ्यां सामर्थ्यात् प्रेक्षावद्भिरुत्प्रेक्षितुं शक्यन्ते । किं लक्षणादिप्रपञ्चनेनेत्याशङ्क्य सूत्रमनुभाषते—अर्थत इति ॥ २ ॥

किमर्थं ते पृथक् प्रपञ्च्यन्त इत्याह—

सौकर्याय प्रपञ्चः ॥ ३ ॥

सौकर्यार्थः प्रपञ्चो विस्तरो[1] दोषाणाम् । उद्दिष्टा लक्षिता हि दोषाः सुज्ञाना[2] भवन्ति ॥ ३ ॥

(फिर) उन (दोषों) का प्रपञ्च क्यों करते है ? (इस शङ्काके निवारणके लिए यह सूत्र कहते है—)

सुविधाके लिए (दोषोंका) प्रपञ्च (सविस्तर वर्णन) है ।

(यद्यपि विचक्षण बुद्धिवालोंको गुण-लक्षणका ज्ञान होनेसे वे तद्विपरीत दोषोंको जान सकते हैं, फिर भी सामान्य बुद्धिवाले जिज्ञासुओंकी) सुविधाके लिए दोषोंका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है । नामोंके निर्देशपूर्वक लक्षित दोषोंको सरलतासे जाना जाता है ॥ ३ ॥

आशङ्कामिमामपाकर्तुमनन्तरसूत्रं व्याचष्टे—सौकर्यायेति । दोषस्वरूपे हि प्रेक्षावतामुत्प्रेक्षितुं शक्येऽपि व्युत्पित्सूनधिकृत्य प्रवृत्तत्वाच्छास्त्रस्य, तैस्तु पदपदार्थवाक्यवाक्यार्थदोषाणां स्थूलसूक्ष्माणामुद्देशलक्षणपरीक्षाभिर्विना दुरवगमत्वात् तेषां दोषविवेकस्य सौकर्याय प्रपञ्च इत्यर्थः । उद्दिष्टा इति । उद्दिष्टा नामत परिगणिताः । लक्षिताः परस्परव्यावृत्त्या[3] दर्शिताः । दोषाः, सुज्ञानाः सुखेन ज्ञातव्या भवन्ति । 'आतो युच्' (पा० ३।३।१२८) इति खलर्थे युच् प्रत्ययः । अस्मिन्नधिकरणे लक्षणीया दोषाः काव्यस्याऽसाधुत्वापादकाः स्थूला इत्यवगन्तव्यम् । यद् वक्ष्यति—'ये त्वन्ये शब्दार्थदोषाः सूक्ष्मास्ते गुणविवेचने लक्ष्यन्त' (३।२।२४ वृत्तिः) इति ॥ ३ ॥

पददोषान् दर्शयितुमाह—

दुष्टं पदमसाधु कष्टं ग्राम्यमप्रतीतमनर्थकं च ॥ ४ ॥

(काव्य-शरीर शब्दार्थ(पद और अर्थ)स्वरूप है । उनमें शब्द, पद और वाक्यस्वरूप तथा अर्थ, पदार्थ और वाक्यार्थ-स्वरूप है । इनमें पद-पदार्थके ज्ञानके बाद ही वाक्य-वाक्यार्थका ज्ञान हो सकता है, अतः) पहले 'पद'-दोषोंके प्रतिपादनार्थ यह सूत्र कहते हैं—

---

१. क्वचित् 'विष्टरः' इति नोपलभ्यते ।

२. 'उद्दिष्टलक्षणा हि दोषाः सुज्ञाता' इति 'क' पु० पा० ।

३. 'व्यावृत्ततया' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

असाधु (व्याकरणशास्त्रसे असिद्ध), कष्ट (श्रवणकटु), ग्राम्य (ग्राम्यजनमात्रप्रयुक्त), अप्रतीत (केवल शास्त्रमें ही प्रयुक्त) और अनर्थक (अर्थशून्य)—(ये पाँच प्रकारके) पददुष्ट हैं अर्थात् ये पाँच पद-दोष हैं ॥ ४ ॥

शब्दार्थशरीरं हि काव्यम् । अत्र शब्दः पदवाक्यात्मकः । अर्थश्च पदार्थवाक्यार्थरूपः । तत्र पदपदार्थप्रतिपत्तिपूर्विका वाक्यवाक्यार्थप्रतिपत्तिरिति क्रममभिसन्धाय प्रथमं पददोषान् प्रतिपादयितुमाह—पददोषानिति । दुष्टं पदमिति प्रत्येकं सम्बन्धनीयम् ॥४॥

क्रमेण व्याख्यातुमाह—

शब्दस्मृतिविरुद्धमसाधु ॥ ५ ॥

शब्दस्मृत्या व्याकरणेन विरुद्धं पदमसाधु । यथा 'अन्यकारकवैयर्थ्यम्' इति । अत्र हि 'अषष्ठ्यतृतीयास्थस्याऽन्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु' (पा० ६।३।९९) इति दुका भवितव्यमिति ॥ ५ ॥

क्रमसे लक्षण कहनेके लिए पहले 'असाधु' का लक्षण कहते हैं—

व्याकरणशास्त्रसे विरुद्ध (अशुद्ध) पद 'असाधु' दोष कहलाता है ।

शब्दस्मृति (व्याकरणशास्त्र) से विरुद्ध (असिद्ध) पद 'असाधु' (दोष) है । जैसे—'अन्यकारकवैयर्थ्यम्' । 'अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु' (पा० ५।३।९३, षष्ठ्यन्त और तृतीयान्तसे वर्जित 'अन्य' शब्द के 'दुक्' का आगम होता है, यदि उस (अन्य शब्द) से परे 'आशीः, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, राग, कारक और 'छ'-प्रत्ययान्त शब्द रहे तब) इस पाणिन्युक्त सूत्रसे 'दुक्' का आगम होनेपर अन्यत्कारकवैयर्थ्यम्' ऐसा शुद्ध पद होना चाहिए, न कि 'अन्यकारकवैयर्थ्यम्' ऐसा पद । (यद्यपि उक्त सूत्रमें 'अषष्ठ्यतृतीया.....' अर्थात् षष्ठ्यन्त और तृतीयान्त पदके साथ समास होनेपर सामान्यतः 'दुक्' आगमका निषेध किया गया है, तथापि 'कारके छे च नायं निषेधः' अर्थात् ''कारक' शब्द और 'छ'-प्रत्ययान्त शब्द रहनेपर यह (षष्ठी तथा तृतीया समास-विषयक) निषेध नहीं होता है'' एतदर्थक वार्तिकसे उस निषेधका अपवाद होनेसे 'दुक्' का आगम होनेसे अन्यत्कारकवैयर्थ्यम्' पद ही शुद्ध है ('अन्यकारकवैयर्थ्यम्' पद शुद्ध नहीं है । अत एव इस पदमें 'असाधु' नामक पददोष है ॥ ५ ॥

यथोद्देशं लक्षणं वक्तुमाह—क्रमेणेति । शब्दस्मृतीति । शब्दशास्त्रमर्यादामुल्लङ्घ्य प्रयुक्तं शब्दस्मृतिविरुद्धम् । तदुदाहरति—अन्यकारकेति । 'अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशीस्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु' (पा० ६।३।९९३) इति आशीरादिषु परतोऽन्यपदस्य दुगागमेन भवितव्यम् । स तु न कृतः । दुगागमो विशेषेण वक्तव्यः । कारकस्थयोः षष्ठीतृतीययोर्नेष्टः, आशीरादिषु सप्तस्विति कारकपदे परतो दुगागमो नियत इत्यन्यकारकपदमसाधु ॥ ५ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

श्रुतिविरसं कष्टम् ॥ ६ ॥

श्रुतिविरसं श्रोत्रकटु पदं कष्टम् । तद्धि रचनागुम्फितमप्युद्वेजयति । यथा—

'अचूचुरच्चण्डि ! कपोलयोस्ते कान्तिद्रवं द्राग्विशदः शशाङ्कः' ॥ ६ ॥

(अब क्रमप्राप्त 'कष्ट' नामक पददोषका लक्षण कहते हैं—) सुननेमें नीरस (कर्ण-कटु) पद 'कष्ट' दोष है ।

सुननेमें कटु पद 'कष्ट' दोष है । वह रचना-निबद्ध होकर भी (कर्ण-कटु होनेसे कानों को) उद्विग्न (व्याकुल) कर देता है । जैसे—

(अचूचुर····शशाङ्कः) अर्थात् हे चण्डि ! तुम्हारे कपोलोंकी सुन्दरताको शीघ्र चमकनेवाले चन्द्रमाने चुरा लिया । (यहाँ पर 'द्राक्' पद कर्ण-कटु' है) ॥ ६ ॥

श्रुतिविरसं कष्टमिति[1] । कर्णोद्वेगकरमित्यर्थः । यदुक्तं भामहेन—'सन्निवेशविशेषात् तु तदुक्तमभिशोभत' इति । तन्निराचष्टे—तद्धीति । विशिष्टसन्दर्भगर्भगतमपि सहृदय-हृदयोद्वेगमाविर्भावयतीत्यर्थः । अचूचुरदिति—अत्र द्रागिति पदं कष्टम् ॥ ६ ॥

लोकमात्रप्रयुक्तं ग्राम्यम् ॥ ७ ॥

लोक एव यत्प्रयुक्तं पदं, न शास्त्रे; तद् ग्राम्यम् । यथा—

'कष्टं कथं रोदिति फूत्कृतेयम्' ।

अन्यदपि तल्लगल्लादिकं द्रष्टव्यम् ॥ ७ ॥

(सम्प्रति क्रमागत 'ग्राम्य' नामक पद-दोषका लक्षण इस सूत्रमें बतलाते हैं—) लोकमात्र (केवल लोक में ही) प्रयुक्त पद 'ग्राम्य' नामक दोष होता है ।

जो पद लोकमें ही प्रयुक्त होता है, शास्त्रमें नहीं; वह पद 'ग्राम्य' दोष है । जैसे—

(कष्टं····कृतेयम्) अर्थात् खेद है, आग फूंकनेवाली यह (स्त्री) किस तरह रो रही है । यहाँ 'फूत्कृता' यह पद 'ग्राम्य' है ।

दूसरे भी ('ताम्बूलभृतगल्लोऽयं तल्लं जल्पति मानवः ।' इत्यादिमें) 'गल्ल, तल्ल' आदि पद 'ग्राम्य' दोष है ॥ ७ ॥

ग्रामे भवं ग्राम्यमिति व्युत्पत्तिः । लोकमात्रसिद्धमित्यर्थः । ग्राम्यं—कथमिति[2] । अत्र फूत्कृतेति पदं ग्राम्यम् । तस्य काव्ये प्राचुर्येण प्रयोगादर्शनात् । 'ताम्बूलभृतगल्लोऽयं तल्लं जल्पति मानवः' इत्यादौ यत्तल्लगल्लादिपदं प्रयुज्यते, तदपि ग्राम्यं द्रष्टव्यम् ॥७॥

शास्त्रमात्रप्रयुक्तमप्रतीतम् ॥ ८ ॥

---

१. 'श्रुतिविरसं कष्टम्' इत्यत्र 'श्रोतृकटि्वति' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'ग्राम्यं कथमिति' इत्यस्य स्थाने 'कष्टमिति' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

शास्त्र एव प्रयुक्तं यन्न लोके, तदप्रतीतं पदम्। यथा—

'किं भाषितेन बहुना रूपस्कन्धस्य सन्ति मे न गुणाः।
गुणानान्तरीयकं च प्रेमेति न [1]तेऽस्त्युपालम्भः॥'

अत्र रूपस्कन्धनान्तरीयकपदे न लोके, इत्यप्रतीतम्॥ ८॥

(अब 'अप्रतीत' पद का उदाहरण कहते हैं—) केवल शास्त्रमें ही प्रयुक्त होने वाला पद 'अप्रतीत' दोष है।

जो (पद) शास्त्रमात्रमें ही प्रयुक्त है, लोकमें नही (प्रयुक्त है); वह पद 'अप्रतीत' नामक दोष है। जैसे—

(किं···लम्भः) अर्थात् (कोई विप्रलब्धा नायिका शठ नायकसे कहती है कि—) वहुत कहनेसे क्या लाभ है, रूप मेरे शरीरका (सुन्दरता आदि) गुण नहीं है तथा प्रेम गुणोंके विना नहीं होता है अर्थात् प्रेम गुणका अभिन्न रूप है, अत एव तुम्हें कोई उलाहना नहीं है, अर्थात् तुमसे मैं कोई उलाहना नहीं देती हूँ।

यहाँ शरीर अर्थमें 'रूपस्कन्द' पद तथा अविनाभाव अर्थमें 'नान्तरीयक' पद शास्त्रमात्रमें ही प्रयुक्त होनेसे 'अप्रतीत' नामक पददोष है॥ ८॥

किम्भाषितेन बहुना रूपस्कन्धस्येति[2]। इयं हि कस्याश्चिद्विप्रलब्धायाः शठनायकं प्रत्युक्तिः। रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारलक्षणाः पञ्चस्कन्धाः सौगतमते प्रसिद्धाः। अत्र विषयेन्द्रियलक्षणस्य रूपस्कन्धस्य गुणा मे न सन्ति। गुणनान्तरीयकम्। अन्तरशब्दोऽत्र विनार्थः। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च' इत्यमरः। न अन्तरं नान्तरम्। ततो भवार्थे छप्रत्यये स्वार्थे च कप्रत्यये सति नान्तरीयकमिति रूपं सिद्धम्। अविनाभूतमित्यर्थः। प्रेम च गुणनान्तरीयकमिति हेतोरुपालम्भो निन्दावचनम्। ते तव नास्ति। व्यापकपरावृत्तौ व्याप्यपरावृत्तिरुचितेति भावः। अत्र रूपस्कन्धनान्तरीयकपदे अप्रतीते॥ ८॥

पूरणार्थमनर्थकम्॥ ९॥

पूरणमात्रप्रयोजनमव्ययपदमनर्थकम्। दण्डापूपन्यायेन पदमन्यदप्यनर्थकमेव। यथा—

'उदितस्तु हास्तिकविनीलमयं तिमिरं निपीय किरणैः सविता'।

अत्र 'तु'-शब्दस्य पादपूरणार्थमेव प्रयोगः। 'न वाक्यालङ्कारार्थम्'[3]। वाक्यालङ्कारप्रयोजनं तु नानर्थकम्। अपवादार्थमिदम्। यथा—

'न खल्विह गतागता नयनगोचरं मे गता'। इति।

तथा हि खलु हन्तेति॥ ९॥

---

१. 'मे' इति 'क' पु० पा०।

२. 'बहुना रूपस्कन्धस्य' इत्यंशः 'ख' पु० नास्ति।

३. 'न वाक्यालङ्कारार्थम्' इति 'ख' पु० दशमसूत्ररूपेण पृथक् पठितम्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अब क्रमप्राप्त 'अनर्थक' नामक पददोषका लक्षण कहते हैं—) केवल पद्यके चरणकी पूर्तिके लिए ही प्रयुक्त (अव्यय) पद 'अनर्थक' नामका पददोष होता है।

केवल पद्यके पादको छन्दके अनुसार पूरा करनेके लिए प्रयुक्त अव्यय पद 'अनर्थक' नामका पददोष होता है। 'दण्डापूप' न्यायसे (इस प्रकार—केवल पादपूरणार्थ) प्रयुक्त दूसरे पद भी 'अनर्थक' दोष ही हैं। जैसे—

(उदित····सविता) अर्थात् गज-समूहके समान अत्यन्त नीलवर्णवाले अन्धकारको किरणोंसे पीकर यह सूर्य उग गया।

यहाँ 'तु' शब्दका प्रयोग केवल पादको पूरा करनेके लिए ही हुआ है; वाक्यालङ्कारके लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है। वाक्यालङ्कारका प्रयोजन 'अनर्थक' नहीं होता। यह नियम अपवादके लिए है। जैसे—

('न····गता') अर्थात् मैंने आती-जाती हुई उसको नहीं देखा है। इस श्लोकार्द्धमें 'खलु' शब्द 'अनर्थक' नहीं है।

इसी प्रकार वाक्यालङ्कारके लिए प्रयुक्त 'तथा, हि, खलु और हन्त' आदि शब्द 'अनर्थक' दोषाधायक नहीं होते हैं॥ ९॥

पूरणार्थमिति। पूरणं पादपूरणमर्थः प्रयोजनं यस्येति विग्रहः। दण्डापूपेति। दण्डप्रोता अपूपा दण्डापूपाः। तथा च दण्डानयनप्रेरणायां दण्डानयनेनैवापूपानयने सिद्धे पुनरपूपानयनप्रेरणं व्यर्थमिति दण्डापूपन्यायः। अथवा, दण्डो[1] मूषकैर्भक्षित इत्युक्ते पुनरपूपभक्षणप्रश्नवचनं व्यर्थमिति दण्डापूपन्यायः। तन्न्यायेन चादीनामसत्त्ववचनानामसत्यपि योगे[2] तदर्थस्यान्यतोऽवगतत्वान्नैराकाङ्क्ष्येण वाक्यार्थविश्रान्तिसिद्धाविह प्रयुज्यमानानां तेषामव्ययानां द्योत्यराहित्येनानर्थकत्वं भवति। किमु वक्तव्यमात्मोपजीव्यवाच्यार्थविरहे वाचकानां पदानामनर्थकत्वमिति भावः। उदित इति। [3]हास्तिकम्। 'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्' (पा० ४।२।४७) इति ठक् प्रत्ययः। 'हास्तिकं गजता वृन्दे' इत्यमरः। तद्वद्विनीलम्। अत्र तुशब्दस्येति। भेदावधारणादेर्द्योत्यस्यानाकाङ्क्षितत्वादित्यर्थः। वाक्येति। पूरणं तु प्रतिभादौर्बल्यसूचकतया काव्यविद्भिः प्रयोजकत्वेन नाङ्गीकृतम्॥ ९॥

सम्प्रति पदार्थदोषानाह—

अन्यार्थनेयगूढार्थाश्लीलक्लिष्टानि च॥ १०॥

दुष्टं पदमित्यनुवर्तते। अर्थश्च वचनविपरिणामः[4]। अन्यार्थादीनि पदानि दुष्टानीति सूत्रार्थः॥ १०॥

---

१. 'अपूपदण्डो' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'प्रयोगे' इति 'ख' पु० पा०।
३. एतस्मात्पूर्वं 'हस्तिनां समूहः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।
४. 'अर्थतश्च विभक्तिविपरिणामः' इति 'ख' पु०, 'अर्थतश्च वचन···' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(पदगत 'असाधु' आदि दोषोंका लक्षण (सू० ५-९ में) कहकर) अब क्रम-प्राप्त पदार्थदोषोंके वर्णनार्थ उनके भेद इस सूत्रमें कहते हैं—)

अन्यार्थ, नेयार्थ, गूढार्थ, अश्लील और क्लिष्ट ये पाँच पदार्थ-दोष हैं ।

(पूर्वोक्त चतुर्थ सूत्रसे) 'दुष्टं पदम्' की अनुवृत्ति होती है । अर्थसे वचनका विपरिणाम (परिवर्तन) होता है । 'अन्यार्थ' आदि (पाँच) पद दुष्ट (दोष) हैं यह सूत्रका अर्थ है ॥ १० ॥

पदार्थदोषान् प्रपञ्चयितुमाह—सम्प्रतीति । अन्यादिभिस्त्रिभिरर्थशब्दः प्रत्येकमभि-सम्बन्धनीयः । तेषामश्लीलक्लिष्टशब्दयोरिवार्थपदप्रयोगमन्तरेण न हठादर्थप्रतिपत्ति-हेतुत्वमित्यर्थपदं प्रयुक्तम् । [1]अन्यार्थादीनीति । अर्थदौष्ट्यात् पदान्यपि दुष्टानी-त्यर्थः ॥ १० ॥

एषां क्रमेण लक्षणान्याह—

रूढिच्युतमन्यार्थम् ॥ ११ ॥

रूढिच्युतम्,[2] रूढिमनपेक्ष्य यौगिकार्थमात्रोपादानात् । अन्यार्थं पदम् । स्थूलत्वात् सामान्येन घटशब्दः पटशब्दार्थ इत्यादिकमन्यार्थं नोक्तम् । यथा—

'ते दुःखमुच्चावचमावहन्ति ये प्रस्मरन्ति प्रियसङ्गमानाम्'[3] ।

अत्राऽऽवहतिः करोत्यर्थो धारणार्थे प्रयुक्तः । प्रस्मरतिर्विस्मरणार्थः प्रकृष्ट-स्मरण[4] इति ॥ ११ ॥

इन (पदार्थदोषों) के क्रमसे लक्षण कहते हैं—

रूढिसे च्युत (हीन, अर्थात् रूढिकी उपेक्षा कर यौगिक अर्थमात्रमें प्रयुक्त) पद 'अन्यार्थ' दोष होता है ।

रूढ पदोंमें रूढिका त्याग कर केवल यौगिकार्थमात्रमें जो प्रयुक्त हो, वह 'अन्यार्थ' दोष है । सामान्यतः 'घट' शब्द 'पट' शब्दके अर्थमें प्रयुक्त हो तो वह 'अन्यार्थदोष है' ऐसा नहीं कहा है; क्योंकि यह तो स्थूल (मोटी) बात है, (और ऐसे स्थूल-बुद्धियोंको शिक्षित करनेका निषेध पहले (१।२।३ में) कर चुके हैं) । जैसे—

(ते''''मानाम् ।') अर्थात् जो लोग प्रिय जनोंके सङ्गमोंको विशेषतः स्मरण करते हैं, वे लोग ऊँचे-नीचे (थोड़ा-बहुत) दुःख धारण करते (पाते) हैं ।

यहाँपर करने अर्थमें प्रयुक्त होनेवाले 'आङ्' पूर्वक 'वह' धातुका प्रयोग 'धारण' अर्थमें तथा विस्मरण (भूलना) अर्थमें प्रयुक्त होनेवाले 'वि' पूर्वक 'स्मृ' धातुका

---

१. एतदग्रे 'विभक्तीति ।' अत्र प्रथमाया विभक्तेरभेदेन विपरिणामासम्भवाद् वचनविपरिणामः' इति व्याख्येयम् ।' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

२. 'रूढेश्च्युतं रूढिच्युतम्' इति 'ख, ग' पु०, 'रूढिपु च्युतम्' इति च 'क' पु० पा० ।

३. 'प्रियसङ्गतानाम्' इति 'ग' पु० पा० ।

४. 'प्रकृष्टस्मरणार्थ' इति 'क-ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रयोग विशिष्ट स्मरण अर्थमें रूढ्यर्थको छोड़कर यौगिकार्थमें किया गया है (अत एव 'अन्यार्थ' दोष है । विशेष—इस सूत्रमें 'रूढिच्युतम्' पदमें सामान्यतः प्रयुक्त 'रूढि' शब्द 'योगरूढि' का भी बोधक है, अतः 'कमल' आदि अर्थमें रूढ 'पङ्कज' आदि शब्दोंको 'कुमुद' आदिमें प्रयोग नहीं करना चाहिए) ॥ ११ ॥

रूढिः प्रसिद्धिः । ततश्च्युतं रूढिच्युतम् । रूढेषु पदेषु रूढिमनादृत्य यौगिकार्थे यत् प्रयुज्यते, तदन्यार्थं पदम् । ननु यद् घटादिपदं पटादिषु प्रयुज्यते, तदन्यार्थं पदं दुष्टमिति किमिति नोच्यत ? इत्याशङ्क्याह–स्थूलत्वादिति । पटादिषु प्रयुज्यमानं घटादिपदमिति[1] सामान्येन नोक्तम् । कुतः ? स्थूलत्वात्, उत्तानबुद्धिभिरुपलब्धुं शक्यत्वात् । ये केचित् स्थूलमपि दोषमविज्ञाय तथा प्रयुञ्जते, ते पुनरविवेकिनः शासनयोग्या न भवन्तीति प्राक् प्रतिपादितम् । उदाहरणमुपदर्शयितुमाह—यथेति । ये प्रियसङ्गमानां प्रणयप्रयुक्त-सम्बन्धानां प्रस्मरन्ति प्रकर्षेण स्मरन्ति । 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' (पा० २।३।५२) इति कर्मणि षष्ठी, ते जना उच्चावचमनेकभेदम्, 'उच्चावचं नैकभेदम्' इत्यमरः । दुःखमावहन्ति धारयन्तीति कवेर्विवक्षितोऽर्थः । अन्यार्थमुपपादयति—अत्रेति । आङ्पूर्वो वहिधातुः करोत्यर्थे रूढः । तथा च प्रयोगः—'व्रीडमावहति मे स सम्प्रति व्यस्तवृत्ति-रुदयोन्मुखे त्वयि' इति । स च रूढिमनादृत्य धारणे यौगिकार्थे प्रयुक्त इत्यन्यार्थत्वम् । प्रपूर्वः स्मरतिरपि विस्मरणार्थे रूढः । तथा च प्रयोगः—'नाक्षराणि पठता किमपाठि प्रस्मृतः किमथवा पठितोऽपि' इति । स च रूढिमगणयित्वा प्रकृष्टस्मरणे यौगिकार्थे प्रयुक्त इत्यन्यार्थत्वम् । किञ्च रूढिच्युतमित्यत्र रूढीति सामान्येनोपात्तत्वाद्योगरूढिरपि परिगृह्यते । तेन पङ्कजादयः शब्दाः कुमुदादिषु न प्रयोज्याः ॥ ११ ॥

कल्पितार्थं नेयार्थम् ॥ १२ ॥

[2]अश्रौतस्याप्युन्नेयस्य पदार्थस्य कल्पनात् कल्पितार्थं नेयार्थम् । यथा—

'सपदि पङ्क्तिविहङ्गमनामभृत्तनयसंवलितं बलशालिना ।
विपुलपर्वतवर्षि शितैः शरैः प्लवगसैन्यमुलूकजिता जितम्' ॥

अत्र विहङ्गमश्चक्रवाकोऽभिप्रेतः । तन्नामानि चक्राणि, तानि[3] बिभ्रतीति विहङ्गमनामभृतो रथाः । पङ्क्तिरिति दशसङ्ख्या लक्ष्यते । पङ्क्तिर्दश विहङ्गमनामभृतो रथा यस्य स पङ्क्तिविहङ्गमनामभृद् दशरथः । [4]तत्तनयाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां संवलितं प्लवगसैन्यं जितम् । उलूकजिता इन्द्रजिता । कौशिकशब्देनेन्द्रोलूकयोरभिधानमिति कौशिकशब्दवाच्यत्वेनेन्द्र उलूक उक्तः ।

---

१. 'घटादिपदमन्यार्थमिति' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'अश्रुतार्थस्य कल्पना, कल्पितार्थं' इति 'क' पु०, 'अश्रौतस्याप्युन्नेयस्य पदार्थस्य कल्पनात् कल्पितार्थं' इति 'ख' पु०; 'अश्रौतस्याप्युन्नेयपदार्थस्य कल्पनात् कल्पितार्थं' इति 'ग' पु० पा० ।

३. 'तानि' इति पदं 'क-ख' पु० नास्ति ।

४. 'तस्य तनयाभ्यां' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ननु चैवं रथाङ्गनामादीनामपि प्रयोगोऽनुपपन्नः। न, तेषां निरूढलक्षणात्वात् ॥ १२ ॥

(अब 'नेयार्थ' नामक दोषका लक्षण कहते हैं—) कल्पित अर्थको बोध्र करानेवाला पद 'नेयार्थ' नामक दोष होता है।

अश्रुतपूर्व (पहले नहीं सुने गये अर्थात् अनभिधेय), अनुमानद्वारा कल्पना करने योग्य पदार्थ 'नेयार्थ' नामक दोष है। जैसे—

('सपदि····जितम्') अर्थात् पङ्क्ति अर्थात् दश, चकवा पक्षीके अर्थमें प्रयुक्त चक्रके नामको धारण करनेवाला रथ, अर्थात् दशरथके पुत्रोंसे युक्त तथा विशाल पहाड़ोंको बरसानेवाली वानरोंकी सेनाको बलवान्, उलूक अर्थात् इन्द्रको जीतनेवाले (मेघनाद) ने तीक्ष्ण बाणोंसे जीत लिया।

यहाँ 'विहङ्गम' शब्दसे चकवा पक्षी अभीष्ट है। उसके नामों (चक्रों अर्थात् पहियों) को धारण करनेवाले 'रथ' हुए। (दश अक्षरोंके प्रत्येक चरणवाले छन्द होनेसे 'पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्ठिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्' (पा० ५।१।५९) सूत्रसे रूढि अर्थमें निपातित) 'पङ्क्ति' शब्द 'दश' संख्याका बोधक है। अतः पङ्क्ति (दश) विहङ्गम नाम (चकवा पक्षी अर्थात् 'चक्र') को धारण करनेवाले (रथ—दश रथ) हैं, जिसके वह 'विहङ्गमनामभृत्' अर्थात् राजा दशरथ। उनके दोनों पुत्रों (राम-लक्ष्मण) से युक्त वानर-सेना जीती गयी। यहाँ उलूकजित् शब्दसे इन्द्रको जीतनेवाला मेघनाद अभिप्रेत है। क्योंकि कौशिक शब्दका इन्द्र और उल्लू पक्षी—दोनों अर्थ है। यहाँ 'कौशिक' से 'इन्द्र' अभीष्ट है। (अतः इस पद्यमें 'नेयार्थ' दोष है) ॥ १२ ॥

नेयार्थं लक्षयति—कल्पितार्थमिति। अश्रौतस्येति। सङ्केतसहायः शब्दव्यापारस्तद्विशिष्टः शब्दव्यापारो वा श्रुतिः, तत आगतोऽर्थः श्रौतः, स न भवतीति अश्रौतः, अनभिधेय इत्यर्थः। नन्विदमश्रौतत्वमर्थस्य किं लाक्षणिकत्वम्? नेत्याह—उन्नेयस्य। 'अभिधेयाविनाभूतप्रतीतिर्लक्षणोच्यते' इत्येवं लक्षणलक्षणाकक्ष्यामधिक्षिप्य कस्यचिदर्थस्य कल्पने कल्पितार्थं, न तु लाक्षणिकार्थमित्यर्थः। उदाहरणमाह—यथेति। उदाहरणवाक्यार्थं विवृणोति—अत्रेति। पक्षिसामान्यवाचिना विहङ्गमपदेन तद्विशेषश्चक्रपरनामा चक्रवाको लक्ष्यते, 'कोकश्चक्रश्चक्रवाक' इत्यमरः। तस्य नामेव नाम येषां तानि तन्नामानि चक्राणीत्यर्थः। पङ्क्तिरिति। पङ्क्तिच्छन्दसः पादस्य दशाक्षरात्मकत्वात् पङ्क्तिपदेन दशसंख्या लक्ष्यते। विपुलपर्वतवर्षीति प्लवगसैन्यविशेषणम्। कौशिकशब्देनेति। 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः। कौशिकशब्देनेन्द्रोलूकयोरभिधानादित्यर्थः। उलूकशब्देन कौशिकशब्द उन्नीयते। तेनेन्द्रोऽभिधीयत इति, उलूकजित्पदेन इन्द्रजिदुन्नीयत इत्यभिप्रायः। एवं तर्हि प्राचीनकविप्रयोगः पर्याकुलः स्यादिति शङ्कते—नन्विति। रथाङ्गनामादीनामित्यादिपदेन रथाङ्गपाणिप्रभृतीनां परिग्रहः। रथाङ्गनामादिपदानां चक्रवाकादौ निरूढत्वेन रूढ्या योगस्य निगीर्णत्वान्न काचिदनुपपत्तिरिति परिहरति—नेति। निरूढा लक्षणा येषामिति बहुव्रीहिः। लक्षणा हि रूढिप्रयोजन-

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वशाद् द्विविधा भवति । तत्र रूढलक्षणाः कुशलादयः शब्दाः प्रयोगप्राचुर्यबलेन वाचकशब्दवत् प्रयुज्यन्ते । प्रयोजनलक्षणास्तु 'मुखं विकसितस्मितं वशितवक्रिमप्रेक्षणम्' इत्यादौ विकसितादयः शब्दाः स्मितविलासादिलक्षकतयाऽद्यापि प्रयुज्यन्ते । तदुक्तं— 'निरूढा लक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवत् । क्रियन्ते साम्प्रतं काश्चित् काश्चिन्नैव त्वशक्तित' इति ॥ १२ ॥

अप्रसिद्धार्थप्रयुक्तं गूढार्थम् ॥ १३ ॥

यस्य पदस्य लोकेऽर्थः प्रसिद्धश्चाप्रसिद्धश्च तदप्रसिद्धेऽर्थे प्रयुक्तं गूढार्थम् । यथा—

'सहस्रगोरिवानीकं दुस्सहं भवतः परैः' इति । सहस्रं गावोऽक्षीणि यस्य स सहस्रगुरिन्द्रः, तस्येवेति । गोशब्दस्याऽक्षिवाचित्वं कविष्वप्रसिद्धमिति ॥१३॥

(अब 'गूढार्थ' नामक दोषका लक्षण कहते हैं—) लोकमें प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अर्थोंमें-से अप्रसिद्ध अर्थमें प्रयुक्त पद 'गूढार्थ' नामक दोष है ।

जिस पदका अर्थ लोकमें प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध भी है, उनमें-से प्रसिद्ध अर्थमें ही प्रयुक्त पद हो तो 'गूढार्थ' नामक दोष होता है । जैसे—

('सहस्र····परैः') अर्थात् हजार गौएँ (नेत्रों) वाले—इन्द्रके समान आपकी सेना शत्रुओंको दुःसह है ।

हजार गौएँ अर्थात् नेत्र हैं जिसके, वह इन्द्र, उसके समान । 'गो' शब्दका नेत्र अर्थ कवियोंमें प्रायः अप्रसिद्ध है (अत एव यहाँ 'गूढार्थ' नामक दोष है) ॥ १३ ॥

गूढार्थं लक्षयितुमाह—अप्रसिद्धेति । अभिमतमनेकत्वमर्थस्य दर्शयति—प्रसिद्धश्चेति । उदाहरणमुपदर्शयितुमाह—यथेति । गोशब्दस्येति । 'गौर्नाके वृषभे चन्द्रे वाग्भूदिग्धेनुषु स्त्रियाम् । द्वयोस्तु रश्मिदृग्बाणस्वर्गवज्राम्बुलोमसु' इत्यभिधाने सत्यपि गोशब्दस्य प्राचुर्येणाऽक्षिण प्रयोगाऽदर्शनादक्षिवाचकत्वमप्रसिद्धमित्यर्थः । एतेन 'तीर्थान्तरेषु स्नानेन समुपार्जितसत्पथः । सुरस्रोतस्विनीमेष हन्ति सम्प्रति सादरम्' इत्यादिषु हन्तीत्यादीनां गमनाद्यर्थेषु प्रयोगाः प्रत्युक्ताः ॥ १३ ॥

असभ्यार्थान्तरमसभ्यस्मृतिहेतुश्चाश्लीलम् ॥ १४ ॥

यस्य पदस्यानेकार्थस्यैकोऽर्थोऽसभ्यः स्यात्, तदसभ्यार्थान्तरम् । यथा— 'वर्चः' इति पदं तेजसि विष्ठायां च । यत्तु पदं [1]सभ्यार्थवाचकमप्येकदेशद्वारेणासभ्यार्थं स्मारयति, तदसभ्यस्मृतिहेतुः । यथा—'कृकाटिका' इति ॥ १४ ॥

(अब क्रमानुगत 'अश्लील' नामक दोषका लक्षण कहते हैं—) जिस पदका दूसरा अर्थ असभ्य हो, वह तथा जो असभ्य अर्थका स्मरण करानेवाला हो; वह 'अश्लील' नामक दोष है ।

१. 'सभ्यार्थवाचकमपि' इत्यंशः 'क-ख-ग' पु० नास्ति ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

जो पद सभ्यार्थवाचक होनेपर भी किसी एक भागसे असभ्य अर्थको स्मरण कराता है, वह 'असभ्यस्मृतिहेतु' हुआ (वह भी 'अश्लील' नामक दोष है)। जैसे—'वर्चस्' शब्द तेज और विष्ठा (मैला) दो अर्थोंमें है। (अतः एक अर्थ 'तेज' सभ्य होनेपर भी दूसरा अर्थ 'विष्ठा' असभ्य होनेसे 'अश्लील' दोष है); अनेक अर्थवाले जिस पदका एक अर्थ असभ्य हो, वह असभ्यार्थान्तर है। जैसे—'कृकाटिका'। 'कान-का पश्चाद्भाग' (कनपटी) अर्थमें प्रसिद्ध यह पद सभ्यार्थक होनेपर भी इसके मध्यगत दो वर्णों 'काटि' शब्दसे शवयान (मुर्दको ले जानेके लिए सीढ़ीनुमा बाँसका बनाया गया चाँचर) असभ्यार्थका स्मरण होनेसे यह 'अश्लील' नामक दोष है ॥१४॥

अश्लीलं लक्षयितुमाह—असभ्येति। सूत्रार्थं विवृण्वन् क्रमेण लक्षणोदाहरणे लक्षयति[1]—यस्येति। यस्यानेकार्थवाचकस्य पदस्यैकोऽर्थोऽसभ्यः स्यात्, तदसभ्यार्थान्तरं पदमश्लीलम्। वर्च इति। 'वर्चोसि ज्वालविड्भासः' इत्यभिधानाज्ज्वालप्रभावाचकत्वेऽपि विड्वाचितया वर्च इति पदमसभ्यार्थान्तरम्। यत्त्विति। सभायां साधुः सभ्यः। 'सभाया यः' (पा० ४।४।१०५) इति यप्रत्ययः। यत्तु पदं सभ्यार्थवाचकमप्येकदेशेन यद्यसभ्यार्थस्मृतिं जनयेत्, तदप्यश्लीलम्। कृकाटिकेति। 'प्रेतयानं खटिः काटीरि'ति वैजयन्त्यां शवयानपर्यायत्वेनाभिधानात् कर्णापर[2]भागवाचकमपि कृकाटिकापदं काटीत्येकदेशेनासभ्यार्थस्मृतिहेतुरित्यश्लीलमित्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

न गुप्तलक्षितसंवृतानि ॥ १५ ॥

अपवादार्थमिदम्। गुप्तं लक्षितं संवृतं च नाश्लीलम् ॥ १५ ॥

(पूर्वोक्त (चौदहवें) सूत्रका अपवाद करनेवाला (बाधक) सूत्र कहते हैं—) गुप्त, लक्षित और संवृत पद 'अश्लील' दोष नहीं है।

यह सूत्र (पूर्व सूत्रके) अपवादके लिए है। गुप्त (अप्रसिद्ध असभ्यार्थान्तर—एक अर्थ सभ्य होनेपर भी दूसरा असभ्य अर्थ जिसका अप्रसिद्ध हो, वह), लक्षित (लक्षणासे असभ्यार्थवाला) और संवृत (छिपे हुए अर्थवाला)—ये 'अश्लील' दोष नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

अश्लीलस्य क्वचिदपवादं वक्तुमाह—न गुप्तेति[3] ॥ १५ ॥

एषां लक्षणान्याह—

अप्रसिद्धासभ्यं गुप्तम् ॥ १६ ॥

अप्रसिद्धासभ्यार्थान्तरं पदमप्रसिद्धासभ्यं यत् तद् गुप्तम्। यथा—'सम्बाधः' इति पदम्। तद्धि सङ्कटार्थं प्रसिद्धं, न गुह्यार्थमिति ॥ १६ ॥

---

१. 'दर्शयति' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'कण्ठापर···' इति 'ख' पु० पा०।

३. एतदग्रे 'वृत्तिः स्पष्टार्था' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(क्रमशः) इनका लक्षण कहते हैं—

अप्रसिद्ध असभ्य अर्थवाला पद 'गुप्त' है—

जिस पदका दूसरा—असभ्य-अर्थ प्रसिद्ध नहीं है, वह पद 'अप्रसिद्धासभ्य' है तथा वही 'गुप्त' है। जैसे—'सम्बाध' पद। इसका (सभ्य) संकट (भीड़) अर्थ तो सुप्रसिद्ध है, (परंतु असभ्य) गुह्य (गुप्तेन्द्रिय—लिंग, भग) अर्थ प्रसिद्ध नहीं है।

अप्रसिद्धेति। यस्यानेकार्थस्य पदस्यैकोऽर्थोऽसभ्योऽपि यद्यप्रसिद्धो भवति, तदप्रसिद्धासभ्यं गुप्तमित्यर्थः। तदिदमभिसन्धायाह--असभ्यार्थान्तरमिति। सम्बाध इति। 'वेशेऽपि गन्धः सम्बाधो गुह्यसङ्कटयोर्द्वयोः' इत्यभिधाने सत्यपि 'सम्बाधे सुरभीणाम्' 'आसने मित्रसम्बाधे' इत्यादिषु प्रयोगप्राचुर्यात् सम्बाधशब्दः सङ्कटार्थः प्रसिद्धः। तदभावाद् गुह्यार्थोऽप्रसिद्ध इत्यर्थः॥ १६॥

लाक्षणिकासभ्यं[1] लक्षितम्॥ १७॥

तदेवासभ्यार्थान्तरं लाक्षणिकेनासभ्येनार्थेनान्वितं[2] पदं लक्षितम्। यथा—'जन्मभूमिः'[3] इति। तद्धि लक्षणया गुह्यार्थं न स्वशक्त्येति॥ १७॥

(अब क्रमागत 'लक्षित' का लक्षण कहते हैं—) लक्षणासे बोध्य असभ्य अर्थवाला पद 'लक्षित' कहा गया है।

जिस पदका दूसरा असभ्य अर्थ लाक्षणिक है, उस अर्थसे युक्त पद 'लक्षित' है। जैसे—'जन्मभूमि' शब्द। यह शब्द 'अभिधा' शक्तिसे सामान्यतः जन्मस्थान (नगर, ग्राम आदि) का बोधक है। पर लक्षणासे ही 'स्त्री-योनि' रूप असभ्य अर्थका बोधक है, अभिधासे नहीं; अतः यह पद 'लक्षित' है॥ १७॥

लाक्षणिकासभ्यमिति। लक्षणया सान्तरार्थनिष्ठशब्दव्यापारेण प्रतिपाद्यं लाक्षणिकम्। अध्यात्मादित्वाद् भवार्थे ठञ्। तथाविधमसभ्यमर्थान्तरं यस्य तल्लक्षितमिति सूत्रार्थः। अमुमर्थमभिसन्धायाह--तदेवेति। लाक्षणिकं च तदसभ्यं चेति कर्मधारयः। अर्थविशेषणम्। तेनार्थेनान्वितं तादृगर्थप्रतिपादकमित्यर्थः। जन्मभूमिशब्देन जननस्थानसामान्यमभिधया प्रतिपाद्यते। तद्विशेषस्तु लक्षणयेति व्याचष्टे--तद्धीति। न स्वशक्त्येति। मुख्यव्यापारेणेत्यर्थः॥ १७॥

लोकसंवीतं संवृतम्॥ १८॥

लोकेन संवीतं लोकसंवीतम्, यत्तत् संवृतम्। यथा—'सुभगा भगिनी, उपस्थानम्, अभिप्रेतम्, कुमारी, दोहदम्'[4] इति। अत्र हि श्लोकः—

'संवीतस्य हि लोकेन न दोषान्वेषणं क्षमम्।
शिवलिङ्गस्य संस्थाने कस्यासभ्यत्वभावना'॥ १८॥

---

१. '…कासभ्यान्वितम्' इति 'क, ग' पु० पा०।
२. 'लाक्षणिकासभ्यान्वितम्' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'जन्मभूः' इति 'ग' पु० पा०।
४. 'दोहदः' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अब क्रमानुसार 'संवृत' का लक्षण कहते हैं—) लोक (व्यवहार) से गृहीत अर्थवाला पद संवृत है ।

लोक (व्यवहार) से जो पद गृहीत हो गया है, वह 'संवीत' है । जैसे— 'सुभगा' पद में 'भग' शब्द स्त्रीयोनि रूप असभ्य अर्थमें गुप्त (छिपा हुआ) है और सौभाग्यशालिनी अर्थमें लोकव्यवहारसे गृहीत है । 'भगिनी' शब्दका 'भग' योनि रूप असभ्य अर्थ गुप्त और 'वहन' अर्थ लोकव्यवहारमें गृहीत है । 'उपस्थान' शब्दमें उपस्थ (स्त्री या पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय) रूप असभ्य अर्थ गुप्त और 'नमस्कार' (यथा—सूर्योपस्थान अर्थात् सूर्यको नमस्कार) सभ्य अर्थ लोक-व्यवहारमें गृहीत है । 'अभिप्रेत' शब्दमें 'प्रेत' शब्द शवरूप असभ्य अर्थमें गुप्त तथा 'अभीष्ट' रूप सभ्य अर्थ लोकव्यवहारसे गृहीत है । 'कुमारी' शब्दके 'मारी' का 'महामारी' रूप असभ्य अर्थ गुप्त और 'क्वाँरी कन्या' सभ्य अर्थ लोकव्यवहारमें गृहीत है । 'दोहद' पदका 'हद' भाग 'मलत्याग' रूप असभ्य अर्थ गुप्त और 'गर्भवती स्त्रीकी प्रबल रुचि अर्थ लोकव्यवहारमें गृहीत है । (अतः 'सुभगा' इत्यादि पद एकभाग (भग इत्यादि) में असभ्य अर्थका स्मारक होनेपर भी लोकव्यवहारमें गृहीत होनेसे काव्यमें प्रयोग-योग्य है ।) इस विषयमें एक श्लोक है—

लोक (व्यवहार) से गृहीत (काव्यमें प्रयुक्त) पदका दोष खोजना उचित नहीं है, (क्योंकि) शिवलिङ्गकी स्थापनामें असभ्य भावना किसे होती है ? अर्थात् किसीको असभ्य भावना नहीं होती ।। १८ ।।

लोकेन संवीतमावृतं परिगृहीतमिति यावत्[1] । सुभगादिपदान्येकदेशेनासभ्यार्थस्मृतिहेतुत्वेऽपि लोकपरिगृहीतत्वात् प्रयोज्यानि । तदुक्तं दण्डिना––'भगिनी-भगवत्यादि सर्वत्रैवानुमन्यते' इत्यादि । दोहद इति[2] । 'हद पुरीषोत्सर्गे' इति धातुं स्मारयन्नेकदेशेन असभ्यार्थस्मृतिहेतुः । अत्र प्राचीनाचार्यसंवादं प्रकटयति––अत्र हि श्लोक इति ।। १८ ।।

तत्त्रैविध्यं व्रीडाजुगुप्सामङ्गलातङ्कदायिभेदात् ।। १९ ।।

तस्याश्लीलस्य त्रैविध्यं भवति, व्रीडाजुगुप्सामङ्गलातङ्कदायिनां भेदात् । किञ्चिद् व्रीडादायि[3] । यथा—'वाक्काटवम्,[4] हिरण्यरेता' इति । किञ्चिज्जुगुप्सादायि[5] । यथा—'कपर्दकः' इति । किञ्चिदमङ्गलातङ्कदायि[6] । यथा—'संस्थितः' ।। १९ ।।

(अब दशम सूत्रमें प्रतिपादित 'अश्लील' के भेदको कहते हैं—) व्रीडादायी (लज्जा देनेवाला), जुगुप्सादायी (घृणा उत्पन्न करनेवाला) और अमङ्गलातङ्कदायी (अमङ्गलकी शङ्का उत्पन्न करनेवाला) भेदसे तीन प्रकारका होता है ।

---

१. '……मित्यर्थः' इति 'ख' पु० पा० ।
२. वृत्त्यनुरोधादत्र 'दोहदमिति' 'ख' पु० पा० एवोचितः ।
३. '…दायि भवति' इति 'क-ख-ग' पु० पा० । ४. 'वाक्याटवम्' इति 'क' पु० पा० ।
५–६. '…दायि भवति' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वह अश्लील तीन प्रकार का होता है—व्रीडादायी (लज्जाजनक), जुगुप्सादायी (घृणाजनक) और अमङ्गलातङ्कदायी (अमङ्गलशङ्काजनक) भेदसे। कोई पद व्रीडादायी (लज्जाजनक) होता है, जैसे—'वाक्काटवम्' कहनेकी तीक्ष्णता अर्थात् कटुवचन अर्थ में प्रयुक्त पदके एकदेश 'काटव' का 'लिङ्ग' अर्थ और हिरण्यरेताः', अग्नि अर्थमें प्रयुक्त पदके एकदेश 'रेतस्' का अर्थ पुरुष-शुक्र (वीर्य) अर्थ असभ्य (अश्लील) होनेसे ये दोनों (वाक्काटव और हिरण्यरेतस्) शब्द लज्जाजनक हैं। कोई पद 'जुगुप्सादायी' (घृणाजनक) होता है, जैसे—कपर्दः, 'शिवजीका जटाजूट' अर्थमें प्रयुक्त इस शब्दके एकभाग 'पर्द' का अर्थ गुदावायु का निकलना अर्थात् पादना अर्थ असभ्य होनेसे घृणादायी है। कोई पद 'अमङ्गलातङ्कदायी' (अमङ्गलकी शङ्का उत्पन्न करनेवाला अर्थ असभ्य होनेसे 'अमङ्गलातङ्कदायी') होता है। जैसे—'संस्थितः' शब्दका 'मर गया' असभ्य अर्थ होनेसे यह 'अमङ्गलातङ्कदायी' है। (अतः ऐसे अश्लील पदोंका प्रयोग काव्यमें नहीं करना चाहिए) ॥ १९ ॥

द्विविधमश्लीलं त्रेधा विभजते––तत्त्रैविध्यमिति। तिस्रो विधा[1] यस्य तत् त्रिविधं, त्रिप्रकारमिति यावत्। 'विधा विधौ प्रकारे च' इत्यमरः। तस्य भावस्त्रैविध्यम्। ब्राह्मणादेराकृतिगणत्वात् ष्यञ्। तस्याश्लीलस्य त्रैविध्यम्। अमङ्गलस्यातङ्कः शङ्का। 'रुक्तापशङ्कास्वातङ्कः' इत्यमरः। दायि-शब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। तत्राद्यमुदाहर्तुमाह––किञ्चिदिति। वाक्काटवमिति कटोर्भावः काटवम्। वाचः काटवं वचस्तैक्ष्ण्यमित्यर्थः। अत्र काटव इत्येकदेशेन लिङ्गप्रतीतेर्व्रीडादायि 'काटवश्चार्णवश्च' इत्यत्र मन्त्रभाष्ये तथादर्शनात्। द्वितीयं दर्शयितुमाह––किञ्चिदिति। पर्दः पायवीयपवनध्वनिः 'पर्दस्तु गुदजे शब्दे कुर्दः कुक्षिजनिःस्वने' इति वैजयन्ती। अवशिष्टमश्लीलं दर्शयति[2]–– किञ्चिदिति। संस्थितो मृत इत्यर्थः[3] ॥ १९ ॥

व्यवहितार्थप्रत्ययं क्लिष्टम् ॥ २० ॥

अर्थस्य प्रतीतिरर्थप्रत्ययः। स व्यवहितो यस्माद् भवति तद् व्यवहितार्थप्रत्ययं क्लिष्टम्। यथा—

'दक्षात्मजादयितवल्लभवेदिकानां ज्योत्स्नाजुषां जललवास्तरलं पतन्ति'।

दक्षात्मजास्ताराः। तासां दयितो दक्षात्मजादयितश्चन्द्रः। तस्य वल्लभाश्चन्द्रकान्ताः। तद्वेदिकानामिति। अत्र हि व्यवधानेनार्थप्रत्ययः॥ २०॥

(अब क्रमानुसार 'क्लिष्ट' दोषका लक्षण कहते हैं—) जिससे अर्थका बोध व्यवहित (विलम्बसे) हो, वह 'क्लिष्ट' नामका दोष होता है।

अर्थकी प्रतीति (बोध) अर्थप्रत्यय है। वह (अर्थप्रत्यय अर्थात् अर्थबोध) जिससे व्यवहित (विलम्बसे) होता है, वह व्यवहितार्थप्रत्यय 'क्लिष्ट' नामका दोष है। जैसे—

---

१. 'एतदग्रे प्रकाराः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०। २. 'स्पष्टयति' इति 'ख' पु० पा०।
३. एतदग्रे 'प्रमीतः संस्थितो मृतः। इत्यमरः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

चाँदनीसे संपृक्त दक्ष प्रजापतिकी आत्मजाओं (कन्याओं) के दयित (प्रिय अर्थात् पति—चन्द्रमा) की वल्लभाओं अर्थात् चन्द्रकान्तमणियोंकी वेदियोंके तरल (पिघले हुए) जल-कण गिर रहे हैं।

दक्ष प्रजापतिकी आत्मजाएँ (पुत्रियाँ—तारे)। उनका दयित (प्रिय–पति–चन्द्र) उसकी वल्लभाएँ प्रिय चन्द्रकान्तमणि उनसे बनी हुई वेदियाँ। यहाँ विलम्बसे 'चन्द्रमणि' रूप अर्थका बोध होता है (अतः 'क्लिष्ट' दोष है) ॥ २० ॥

क्लिष्टमाचष्टे--व्यवहितेति। समासार्थं विग्रहेण दर्शयति--अर्थस्य प्रतीतिरिति। प्रत्ययोऽत्र ज्ञानम्, 'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः। उदाहरति--दक्षात्मजेति। ननु नेयार्थे क्लिष्टमिदं किमिति नान्तर्भवति, व्यवहितार्थप्रत्ययहेतुत्वाविशेषादित्याशङ्क्य ततो वैषम्यं दर्शयँल्लक्ष्ये लक्षणमनुगमयति--अत्र हि व्यवधानेनेति। व्यवधानमर्थप्रतिपत्तेर्विलम्बः। विलम्बेनार्थाभिधायकं क्लिष्टम्। नेयार्थं तु कल्पितार्ऽथमिति ततो भेदः ॥ २० ॥

[1]अरूढार्थत्वात् ॥ २१ ॥

[2]अरूढार्थत्वेऽपि यतोऽर्थप्रत्ययो झटिति, न तत् क्लिष्टम्। यथा—

'काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः' इति ॥ २१ ॥

प्रकृत अर्थसे भिन्न अर्थमें अप्रसिद्ध अर्थवाला पद 'क्लिष्ट' दोष नहीं होता है।

अप्रसिद्ध होनेपर भी यदि शीघ्र अर्थ-बोध होता हो तो वह 'क्लिष्ट' दोष नहीं होता है। जैसे—

अनिन्दित (परम सुन्दरी—पार्वती) के करधनी पहननेका स्थान अर्थात् कटिप्रदेश। (यहाँ 'काञ्चीगुणस्थान' पद कटिप्रदेशमें (कमर) अर्थमें प्रसिद्ध नहीं होनेपर भी 'कटिप्रदेश' अर्थका उस पदसे शीघ्र बोध हो जाता है, अतः 'क्लिष्ट' दोष नहीं है) ॥ २१ ॥

[3]अन्यार्थेऽपि चेन्नान्तर्भवतीत्याह--अरूढार्थत्वादिति। प्रकृतादर्थादर्थान्तरे क्वचिदप्यरूढत्वादप्रसिद्धत्वाद् विलम्बेनापि योगवशात् प्रकृतमर्थमभिधत्त इत्यर्थः। अप्रसिद्धमप्यविलम्बेनार्थमभिधायकं चेन्न तत् क्लिष्टमित्याह--अरूढार्थत्वेऽपीति। उदाहरति--यथेति ॥ २१ ॥

अन्त्याभ्यां वाक्यं व्याख्यातम् ॥ २२ ॥

अश्लीलं क्लिष्टं चेत्यन्त्ये पदे। ताभ्यां वाक्यं व्याख्यातम्। तदप्यश्लीलं क्लिष्टं च भवति। अश्लीलं यथा—

---

१. 'अन्यत्रारूढत्वात्' इति पृथक् सूत्रं 'ख' पु० पठ्यते।

२. 'अन्यत्रारूढत्वात्' इति वृत्तिसहितः पूर्वसूत्रस्य वृत्त्यन्तर्गत एव 'ग' पु० पा०।

३. 'अन्यत्रार्थेऽपि चेदं नान्तर्भवतीत्याह—अन्यत्रेति। प्रकृत्या···' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'न सा धनोन्नतिर्या स्यात् कलत्ररतिदायिनी[1]।
परार्थबद्धकक्ष्याणां[2] यत् सत्यं पेलवं धनम्' ॥
सोपानपथमुत्सृज्य वायुवेगः समुद्यतः[3]।
महापथेन गतवान् कीर्त्यमानगुणो जनैः' ॥

क्लिष्टं यथा--

'धम्मिल्लस्य न कस्य प्रेक्ष्य निकामं कुरङ्गशावाक्ष्याः।
रज्यत्यपूर्वबन्धव्युत्पत्तेर्मानसं शोभाम्' ॥

एतान् पदपदार्थदोषान् ज्ञात्वा[4] कविस्त्यजेदिति तात्पर्यार्थः ॥ २२ ॥

इति श्रीकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ दोषदर्शने द्वितीयेऽधिकरणे
प्रथमोऽध्यायः पदपदार्थदोषविभागः।

(अब 'वाक्य'की व्याख्याके लिए कहते हैं—) अन्तवाले दोनों (अश्लील और क्लिष्ट) पदोंसे ही 'वाक्य' की व्याख्या हो गयी।

'अश्लील और कष्ट' दो पद अन्तिम हैं। उन्हींसे 'वाक्य' की भी व्याख्या हो गयी। वह (वाक्य) 'अश्लील और क्लिष्ट' (भेदसे दो तरहका) होता है। (उसके भी तीन भेद हैं—व्रीडादायी, जुगुप्सादायी और अमङ्गलातङ्कदायी। उनमें) व्रीडादायी अश्लील जैसे—धनकी उन्नति वह नहीं है, जो स्त्रीको ही सुख देनेवाली है, क्योंकि दूसरों (की भलाई) के लिए कमर कसे हुए अर्थात् तत्पर लोगोंका धन सचमुचमें ही उत्तम है। अर्थान्तरमें—लिङ्ग (पुरुष-मूत्रेन्द्रिय) की वह उन्नति स्व-स्त्रीको सुख देनेवाली नहीं है, जो दूसरी स्त्रियोंके लिए तत्पर अर्थात् पर-स्त्रीमें आसक्त लोगोंका धन विरला ही होता है। यहाँ 'व्रीडादायित्व' अर्थ स्पष्ट है। अवशिष्ट दो (जुगुप्सादायी तथा अमङ्गलातङ्कदायी) के उदाहरण—सोपानमार्गको छोड़कर वायुके समान वेगवाला एवं जन-समुदायसे स्तूयमान (प्रशंसित) गुणोंवाला राजमार्गसे गया। अर्थान्तरमें 'अपानमार्ग (गुदमार्ग) का त्यागकर वायुवेग उत्पन्न हुआ' अर्थात् निन्द्यध्वनि किया—यहाँ (सः + अपानमार्गम्=सोपानमार्गम्—गुदमार्ग अर्थात् गुदद्वार अर्थ होनेसे) जुगुप्सादायी अश्लील दोष है और महापथसे अर्थात् परलोकमार्गसे गया—यहाँ ('पथिन्' शब्दके पूर्व 'महत्' शब्दका प्रयोग गर्हित[5] होनेसे) अमङ्गला-

---

१. 'कलत्रसुख…' इति 'ख-ग' पु० पा०। २. '…कक्षाणां' इति 'क' पु० पा०।

३. 'वायुवेगसमुद्धतम्' इति 'क, ग' पु० पा०।

४. 'एतान् पञ्च पदार्थदोषान् विभक्तान् ज्ञात्वा' इति 'क-ख' पु० पा०।

५. तदुक्तम्—'शङ्खे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्योतिषिके द्विजे।
यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥'

अस्य 'गर्हितः पन्थाः' इति विग्रहो बोध्यः, उक्तनिषेधान्महच्छब्दस्य गर्हितार्थकत्वमिति। कथासरित्सागरेऽपि 'तच्छोकादिन्द्रदत्तस्य पिता यातो महापथम्'। इत्यस्य 'तच्छोकादिन्द्रदत्तस्य पिता मृत' इत्यर्थ इत्यलं पल्लवितेनेति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तङ्कदायी 'अश्लील' दोष है। (अब 'क्लिष्ट' दोषका उदाहरण देते हैं—) 'बाल-मृगनयनीके बँधे केशों को विचित्र बाँधने या गूँथनेकी शोभाको देखकर किसका मन अतिशय रञ्जित नहीं होता है ? अर्थात् सभीका मन रञ्जित हो जाता है। यहाँ ('उक्त शोभाको देखकर किसका मन रञ्जित नहीं होता ? इस अर्थकी प्रतीति से) अतिशय अन्वयव्यवधान होनेसे 'क्लिष्ट' दोष है। इन पदार्थदोषोंको जानकर कविको इनका त्याग करना चाहिए ॥ २२ ॥

अथाऽश्लीलक्लिष्टाख्यदुष्टपदद्वयलक्षणसाम्याद्[1]अश्लीलं क्लिष्टवाक्यद्वयमपि लक्षितप्रायमेवेत्युपपादयितुं सूत्रमुपादत्ते--अन्त्याभ्यामिति। प्रतिपत्तिलाघवार्थमप्रकरणेऽप्यभिधानमित्यवगन्तव्यम्। अश्लीलं वाक्यमपि त्रिविधम्, तत्र व्रीडादाय्यश्लीलमुदाहरति--यथेति। सा तादृशी धनोन्नतिः अर्थसम्पत्तिर्न भवति, या कलत्ररतिदायिनी। कलत्रस्य रतिं प्रीतिं दातुं शीलमस्या इति कलत्ररतिदायिनी। न तु परप्रीतिदायिनी यस्मात्, तस्मात्, परार्थबद्धकक्ष्याणां, परेषामर्थे प्रयोजने बद्धा कक्ष्या कच्छो यैस्तेषां परोपकारबद्धप्रतिज्ञानामित्यर्थः। 'कक्ष्या कच्छे वरत्रायाम्' इति वैजयन्ती। धनमर्थो यत् सत्यं परमार्थतः। पेलवं मनोज्ञमिति प्रकृतार्थः। अर्थान्तरन्तु साधनस्य शेफस उन्नतिः। 'साधनमुपगमनत्योः शेफसि सिद्धौ निवृत्तिदापनयोः' इति नानार्थमाला। यस्मात् कलत्रस्य रतिं सुरतं दातुं शीलमस्या इति तादृशी न भवति। तस्मात् परासामर्थे बद्धकक्ष्याणां परस्त्रीवशंवदचित्तानामित्यर्थः। धनं पेलवं विरलं भवति। 'पेलवं विरलं तनु' इत्यमरः। अत्र व्रीडादायित्वमतिरोहितम्। अवशिष्टमश्लीलद्वयमुदाहरति--सोपानेति। सोपानपथमुत्सृज्य, वायुवेगः--वायोर्वेग इव वेगो यस्य स तादृशः, समुद्यतः सन् जनैः स्तूयमानगुणः सन्, महापथेन राजमार्गेण गतवानिति प्रकृतार्थः। वायुवेगोऽपानपथमुत्सृज्य समुद्यत इति जुगुप्सादायि। महापथेन परलोकमार्गेण गतवानित्यमङ्गलातङ्कदायि। क्लिष्टमुदाहरति--धम्मिल्लस्येति। कुरङ्गशावाक्ष्या धम्मिल्लस्य संयतकचनिचयस्याऽपूर्वोऽदृष्टचरो बन्धो ग्रथनं तस्य व्युत्पत्तेश्चातुर्यस्य शोभां वीक्ष्य[2] कस्य मानसं निकामं न रज्यति ? सर्वस्याऽपि मानसं रज्यतीत्यर्थः। रज्यतीति कर्मकर्तरि रूपम् 'कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च' इति परस्मैपदम्। अपूर्वबन्धव्युत्पत्तेरिति धम्मिल्लविशेषणं वा। अत्रान्वयव्यवधानान्न हाठिकी वाक्यार्थप्रतिपत्तिरिति स्पष्टमेव क्लिष्टत्वम्। ननु किं फलममीषां दोषाणामवबोधनेनेत्याशङ्क्य, परित्याग एव फलमित्याह--एतानिति ॥ २२ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां वामनालङ्कारसूत्र-
वृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ दोषदर्शने
द्वितीयेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः।

---

१. 'अश्लीलक्लिष्टाख्यवाक्य...' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'प्रेक्ष्य' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वितीयोऽध्यायः

[1]पदपदार्थदोषान् प्रतिपाद्य वाक्यदोषान् दर्शयितुमाह—

भिन्नवृत्तयतिभ्रष्टविसन्धीनि वाक्यानि ॥ १ ॥

दुष्टानीत्यभिसम्बन्धः ॥ १ ॥

पददोष और पदार्थदोषोंका प्रतिपादनकर अब वाक्यदोषोंको दिखलानेके लिए यह सूत्र कहते हैं—

भिन्नवृत्त, यतिभ्रष्ट और विसन्धि—ये तीन वाक्य दुष्ट हैं, अर्थात् काव्यके ये तीन 'वाक्यदोष' हैं।

'दुष्टं पदमसाधु' (२।१।४) सूत्रसे 'दुष्टं' पदकी अनुवृत्तिकर वचनविपरिणामसे 'वाक्यानि' का विशेषण किया जाता है ॥ १ ॥

चिन्तयामि चिदाकाशचन्द्रलेखां सरस्वतीम् ।
शिरसा श्लाघनाद् यस्याः सार्वज्ञ्यं समवाप्यते ॥

अध्यायद्वयसौहार्दमुन्मुद्रयति--पदपदार्थेति । पदपदार्थदोषनिरूपणानन्तरं वाक्यवाक्यार्थदोषनिरूपणं लब्धावसरमिति सङ्गतिः। वाक्यदोषानुद्दिशति भिन्नवृत्तेति । 'दुष्टं पदम्' (२।१।४) इत्यादिसूत्राद् दुष्टमित्येतद् वचनविपरिणामेन वाक्यविशेषणतयाऽनुवर्तत इत्याह--दुष्टानीति ॥ १ ॥

क्रमेण व्याचष्टे —

[2]स्वलक्षणच्युतवृत्तं भिन्नवृत्तम् ॥ २ ॥

स्वस्माल्लक्षणाच्च्युतं वृत्तं यस्मिंस्तत् स्वलक्षणच्युतवृत्तं वाक्यं भिन्नवृत्तम् । यथा—

'अयि पश्यसि सौधमाश्रितामविरलसुमनोमालभारिणीम्' ।

वैतालीययुग्मपादे लघ्वक्षराणां षण्णां नैरन्तर्यं निषिद्धम् । तच्च कृतमिति भिन्नवृत्तत्वम् ॥ २ ॥

(अब) क्रमसे (वाक्यदोषोंकी व्याख्याके प्रसंगमें पहले 'भिन्नवृत्त' नामक 'वाक्यदोष'की) व्याख्या करते हैं—

अपने लक्षणसे च्युत (भ्रष्ट अर्थात् रहित) वृत्त (छन्द) 'भिन्नवृत्त' नामक 'वाक्यदोष' है।

---

१. 'वाक्यदोषान् दर्शयितुं······' इति 'क' पु०, 'पदपदार्थदोषान् प्रतिपाद्य इदानीं वाक्य······' 'ख ग' पु० पा०।

२. क्वचित्पुस्तके 'लक्षणच्युतम्' इत्येव पाठः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अपने लक्षण से च्युत (रहित) वृत्त (छन्द) है, जिसमें वह 'स्वलक्षणच्युत-वृत्त' अर्थात् 'भिन्नवृत्त' नामका 'वाक्यदोष' है। जैसे—

अरे! कोठेपर बैठी हुई एवं सघन फूलकी मालाके भारको धारण की हुई (स्त्री) को तुम देखते हो?

यहाँ 'वैतालीय' छन्द है। इस वैतालीय छन्द के सम (द्वितीय और चतुर्थ) चरणोंमें लगातार छः लघु मात्रावाले अक्षरोंका निषेध है, परन्तु प्रकृत उदाहरणके सम चरणमें 'अविरलसुम' यहाँपर लगातार छः लघु मात्रावाले अक्षरोंका प्रयोग होनेसे 'भिन्नवृत्त' नामका 'वाक्यदोष' है॥ २॥

यथोद्देशमेषां लक्षणानि दर्शयिष्यन्ननन्तरसूत्रमवतारयति—क्रमेणेति। स्वलक्षण-च्युतवृत्तमिति स्वलक्षणच्युतवृत्तानुबन्धि[1] वाक्यमित्यर्थः। उदाहरति—यथेति। अयि पश्यसीति। सुमनोमालभारिणीमित्यत्र 'इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु' (पा० ६।३।६५) इति मालाशब्दस्य ह्रस्वः। वैतालीयलक्षणं प्रागु(का० धे० १।३।६)क्तम्। तत्र, 'ताश्च समे स्युर्नो निरन्तरा' इति समपादे लघ्वक्षरषट्कस्य नैरन्तर्यं निषिद्धम्। अत्राविरलसुमेति समपादे षडपि लघ्वक्षराणि प्रयुक्तानीति लक्षणच्युतत्वम्॥ २॥

विरसविरामं यतिभ्रष्टम्॥ ३॥

विरसः श्रुतिकटुर्विरामो यस्मिंस्तद् विरसविरामं यतिभ्रष्टम्॥ ३॥

(अब द्वितीय 'यतिभ्रष्ट' नामक वाक्यदोषका लक्षण इस सूत्रमें कहते हैं—) विरस (रसहीन) विश्रामवाला वाक्य 'यतिभ्रष्ट' नामका दोष है।

विरस (रसहीन अर्थात् सुननेपर कर्णकटु), विराम (विश्राम—ठहराव) है जिसमें, वह 'विरसविराम' हुआ और वह 'यतिभ्रष्ट' नामक दूसरा 'वाक्यदोष' है॥ ३॥

द्वितीयं व्याख्यातुं सूत्रमुपादत्ते—विरसविराममिति। विरामो विच्छेदनियमः। शेषं सुगमम्॥ ३॥

तद्धातुनामभागभेदे स्वरसन्ध्यकृते प्रायेण॥ ४॥

तद् यतिभ्रष्टं धातुभागभेदे नामभागभेदे च सति भवति। स्वरसन्धिनाऽकृते प्रायेण बाहुल्येन। धातुभागभेदे मन्दाक्रान्तायां यथा—

'एतासां राजति सुमनसां दाम कण्ठावलम्बि'।

नामभागभेदे शिखरिण्यां यथा—

'कुरङ्गाक्षीणां गण्डतलफलके स्वेदविसरः।'

मन्दाक्रान्तायां यथा—

'दुर्दर्शश्चक्रशिखिकपिशः शार्ङ्गिणो बाहुदण्डः'।

---

१. 'स्वलक्षणहीनवृत्तानुबन्धि' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

धातु-नामभागपदग्रहणात् तद्भागातिरिक्तभेदे न भवति यतिभ्रष्टत्वम्। यथा मन्दाक्रान्तायाम्—

'शोभां पुष्यत्ययमभिनवः सुन्दरीणां प्रबोधः'[१]।

शिखरिण्यां यथा—

'विनिद्रः श्यामान्तेष्वधरपुटसीत्कारविरुतैः'[२]।

स्वरसन्ध्यकृत इति वचनात् स्वरसन्धिकृते भेदे न दोषः। यथा—

'किञ्चिद्भावालसमसरलं प्रेक्षितं सुन्दरीणाम्' ॥ ४॥

(वह 'यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष' कहाँ होता है ? इसे कहते हैं—) वह ('यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष') स्वर-सन्धिके द्वारा नहीं किये गये धातुओं और नाम (प्रातिपदिकों) के भागोंके भेद (टुकड़े) करनेमें होता है।

वह 'यतिभ्रष्ट' (नामका 'वाक्यदोष') धातु-भागके भेद और नाम (प्रातिपदिक) भागके भेद (खण्ड) होनेपर होता है। वह स्वर-सन्धिसे नहीं किये भेदोंमें अधिकतर होता है (अर्थात् वह 'यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष' स्वरसंधिके नियम का त्यागकर धातु तथा नामके भागको खण्डित करनेपर होता है (धातुभागभेद अर्थात् क्रियावाचक पदका और नामभाग भेदसे प्रातिपदिकसंज्ञक पदका खण्ड करना समझना चाहिए)। धातुभागभेद करनेपर मन्दाक्रान्ता (छन्द) में जैसे—

इनके गलेमें लटकती हुई फूलोंकी माला शोभती है। (इसमें 'मन्दाक्रान्ता' छन्द है। इस छन्दमें चार, छः और सात अक्षरों के बाद यति (विराम) होनेका नियम होनेसे प्रकृत पद्यमें 'एतासां रा' इन चार अक्षरोंके बाद जो विराम है, वह 'राजति' क्रियापदके भागको खण्डित कर होनेसे 'यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष' है)।

नाम (प्रातिपदिक) भागके खण्ड करनेपर 'शिखरिणी' छन्दमें जैसे—

मृगलोचनी (स्त्रियों) के कपोलपर पसीनेकी ढेर (बहुत पसीना) है। (यहाँ शिखरिणी छन्दके प्रत्येक चरणमें छः और ग्यारह अक्षरोंपर यति होनेका नियम होनेसे प्रकृत पद्यके चरणमें 'कुरङ्गाक्षीणां ग—' इस प्रकार विश्राम है, वह 'गण्ड' पदके (प्रातिपदिक) 'गण्ड'-भागको खण्डित कर होनेसे 'यतिभ्रष्ट' नामक 'वाक्यदोष' है)।

(नामभागभेदमें एक और उदाहरण—) 'मन्दाक्रान्ता' छन्दमें जैसे—

विष्णुके सुदर्शनचक्रकी आग (की ज्वाला) से कपिशवर्ण भुजदण्ड (देखनेवाले लोगोंके लिए) दुर्दश हो गया है। (यहाँ भी मन्दाक्रान्ता छन्दमें चार, छः और

---

१. एतदग्रे 'इतः परम्—अन्ये तु पदान्त एव प्रतिषिध्यन्ति, पदं च विभक्त्यन्तम्। यथा—'निकामं क्षामाङ्गी सरसकदलीगर्भसुभगा कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी। अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दामविधुरा प्रियं नः कल्याणी रमयति मनः कम्पयति च॥' इत्यधिकः पाठः क्वचिद् दृश्यते। इति 'क' पु० अधिकः पाठः। 'ग' पु० तु प्रथमपाद एवोपलभ्यते।

२. 'विमिश्रः श्यामान्तेष्वररपुटसीत्कारविरुतैः।' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

सात अक्षरोंपर विश्रामका नियम होनेसे प्रकृत पद्यके चरणके चार अक्षर 'दुर्दर्शश्च' इस प्रकार है, यहाँ प्रातिपदिक 'चक्र' पदके एक अक्षरको खण्डितकर विश्राम होनेसे 'यतिभ्रष्ट' नामक 'वाक्यदोष' है)।

(इस सूत्रमें) धातुनामभागभेद (धातु और नामके भागका भेद खण्ड करनेपर) पद होनेसे उन (धातु और नामसे) भिन्न (प्रकृति-प्रत्यय) आदि भागके खण्ड करनेपर 'यतिभ्रष्ट' नामक 'वाक्यदोष' नहीं होता है। जैसे मन्दाक्रान्ता छन्दमें (धातुभागभेदका उदाहरण—)।

सुन्दरियोंका यह नया जागरण (प्रभातकालमें जगना) शोभाको बढ़ा रहा है। (यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्दमें नियमानुसार 'शोभां पुष्यत्ययमभिनव'के शोभां पुष्य— इन चार अक्षरोंपर किया गया धातुभागका विराम (खण्ड) 'यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष' नहीं है)।

शिखरिणी छन्दमें (नामभाग विरामके दोष नहीं होनेका उदाहरण) जैसे—

रातके अन्तिम भागों (प्रभातवेलाओं) में अधरोष्ठके सीत्कार (दन्त-दंशनजन्य 'सी-सी') ध्वनियोंसे निद्राहीन (जगा हुआ)। यहाँ शिखरिणी छन्दमें छः अक्षरोंपर होनेवाला 'विनिद्रः श्यामान्ते—' में विराम 'श्यामान्तेषु' पदमें 'श्यामान्ते' अंशमें किया गया विराम 'प्रत्ययगत' होनेसे 'यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष नहीं है)।

'स्वरसन्ध्यकृते अर्थात् 'स्वरसन्धिको छोड़कर किये गये' (धातु और नामके भाग का भेद (खण्ड) करनेपर) इस कथन से स्वरसन्धिसे किये गये (धातुनामभाग) भेदमें ('यतिभ्रष्ट' नामका) 'वाक्यदोष' नहीं होता है जैसे—

कुछ (थोड़े-से) भाव और आलसयुक्त, सुन्दरियोंका तिर्यगवलोकन अर्थात् कटाक्ष। यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्दमें नियमानुसार चार अक्षरोंपर होनेवाला विराम 'किञ्चिद्भाषा' पर हुआ है, किन्तु किञ्चिद्भाष + अलस' पदमें 'अकः सवर्णे दीर्घः' (पा० ६।१।१०१) सूत्र से स्वरसन्धि होनेपर प्रकृत पद्यमें 'यतिभ्रष्ट' नामका 'वाक्यदोष' नहीं है ॥ ४ ॥

तद्विभागं दर्शयितुमाह—तदिति। धातुर्भू-वादिः। नाम प्रातिपदिकम्। धातोः प्रातिपदिकस्य वा भागतो भेदेंऽशतो विच्छेदे। भागभेदमेव विशिनष्टि—स्वरसन्ध्यकृत इति। स च भागभेदो यदि स्वरसन्धिना कृतो न स्यात्, तस्मिन् भागभेदे सति यतिभ्रष्टं नाम दुष्टं भवति। स्वरसन्धिकृते तु भागभेदे न दुष्टमिति सूचितम्। तत्र प्रथममुदाहर्तुमाह—धातुभागभेद इति। एतासामिति। मन्दाक्रान्ताख्यमिदं वृत्तम्। 'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ न तौ तो गुरू चेत्' इति तल्लक्षणादादितश्चतुर्भिस्ततः षड्भिस्ततः सप्तभिर्वर्णैर्विरामः कर्तव्यः। तथा सति, एतासां रा, इत्यत्र धातुभागभेदे प्राप्तस्य तस्य वैरस्यादिदं वाक्यं यतिभ्रष्टं नाम दुष्टं भवति। द्वितीयमुदाहरति—नामभागभेद इति। कुरङ्गाक्षीणामिति। शिखरिणीवृत्तमिदम्। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति लक्षणादादितः षड्भिस्तत एकादशभिर्यतिः कर्तव्या। ततश्च कुरङ्गाक्षीणां गण्—इत्यत्र प्रातिपदिकभागभेदे प्राप्तायास्तस्या वैरस्याद् यति भ्रष्टं भवति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उदाहरणान्तरमाह—दुर्दर्श इति । मन्दाक्रान्तालक्षणमुक्तम् । दुर्दर्शश्च, इत्यत्र विरामो विरसः । ननु पदभागभेद इति सूत्रकरणे धातुनाम्नोरुभयोरपि सङ्ग्रहाल्लाघवं भवति, किं धातुनामग्रहणगौरवेणेत्याशङ्क्य, पदग्रहणे प्रकृतिप्रत्ययमध्यविरामेऽपि यतिभ्रंशः स्यात् । स मा भूदिति धातुनामग्रहणं कृतमित्याशयवानाह—धातुनामिति । तयोर्धातुनाम्नोर्भागास्तद्भागाः । तेभ्योऽतिरिक्तभेदे धातुनामभागभेदव्यतिरिक्त[1]भागच्छेद इत्यर्थः । उदाहरति—यथेति । शोभां पुष्येत्यत्र विरामो न वैरस्यमावहतीति भावः । धातुप्रत्ययमध्यविरामे दोषाभावं निरूप्य प्रातिपदिकप्रत्ययमध्यभेदेऽप्युदाहरति—विनिद्र इति । श्यामा रात्रिः[2] । श्यामान्त इत्यत्र प्रातिपदिकप्रत्ययमध्यविरामो न दुष्यति । विशेषणव्यावर्त्यं कीर्तयति—स्वरसन्धीति । उदाहरति—किञ्चिद्भावालसमिति । अत्र चतुर्थाक्षराऽवसाने यतिर्विहिता । तथा चालसमित्यत्र अकारस्य सवर्णदीर्घेणैकादेशेन कवलितत्वात् स्वरसन्धिकृतोऽयं नामभागभेद इति न यतिभ्रष्टत्वम् ॥ ४ ॥

न वृत्तदोषात् पृथग् यतिदोषः, वृत्तस्य यत्यात्मकत्वात् ॥ ५ ॥

वृत्तदोषात् पृथग् यतिदोषो न वक्तव्यः । वृत्तस्य यत्यात्मकत्वात् ॥ ५ ॥

('भिन्नवृत्त' और 'यतिभ्रष्ट' दोषोंमें वास्तविक भेद नहीं होनेसे उन दोनों ('भिन्नवृत्त' और 'यतिभ्रष्ट') को पृथक् कहना सार्थक नहीं है ? इस शङ्काको अङ्कुरित करनेके लिए यह सूत्र कहते हैं—) वृत्तके यतिस्वरूप होनेसे 'वृत्तदोष' से पृथक् 'यतिदोष' नहीं होता ।

'वृत्तदोष' से पृथक् 'यतिदोष' नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वृत्त यतिस्वरूप होता है ॥ ५ ॥

ननु भिन्नवृत्तयतिभ्रष्टयोरर्थतो भेदाभावाद्, न पृथक् कथनमर्थवदिति शङ्कामङ्कुरयितुमुपरितनं सूत्रमुपन्यस्यति—न वृत्तेति । गुरुलघुनियमवद् यतिनियमस्यापि वृत्तलक्षणवाक्येनैवावगन्तव्यत्वाद् यतिविशिष्टं च वृत्तमिति वृत्तदोषे एव यतिदोषोऽन्तर्भवतीति शङ्कितुरभिप्रायः ॥ ५ ॥

यत्यात्मकं हि वृत्तमिति भिन्नवृत्त एव यतिभ्रष्टस्यान्तर्भावान्न पृथग्ग्रहणं कार्यमत आह—

न, लक्ष्मणः पृथक्त्वात् ॥ ६ ॥

नाऽयं दोषः, लक्ष्मणो लक्षणस्य पृथक्त्वात् । अन्यद्धि लक्षणं वृत्तस्यान्यच्च यतेः । गुरुलघुनियमात्मकं वृत्तम् । विरामात्मिका च यतिरिति ॥ ६ ॥

'वृत्त' यत्यात्मक अर्थात् यतिस्वरूप ही होता है, अत एव 'भिन्नवृत्त' में ही 'यतिभ्रष्ट' दोषका अन्तर्भाव होनेसे उनका पृथक् ग्रहण नहीं करना चाहिए—इसके निराकरणार्थ कहते हैं—

---

१. '……व्यतिरिक्ते भागभेद इत्यर्थः' इति 'ख' पु० पा० ।

२. एतदग्रे 'अररं कवाटम्' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि लक्षणोंकी भिन्नता होनेसे (दोनों—'वृत्तदोष' और 'यतिदोष' को एक नहीं कहा जा सकता है)।

यह (दोनोंको पृथक् कहना) कोई दोष नहीं है, क्योंकि दोनों—वृत्त और यतिके लक्षण पृथक् हैं। वृत्तका लक्षण भिन्न है और यतिका लक्षण (उस वृत्तसे) भिन्न है। (इसीको स्पष्ट करते हैं—) गुरु और लघुका नियमस्वरूप वृत्त होता है और विरामस्वरूप वृत्ति होती है ॥ ६ ॥

शङ्कामिमां शकलयितुमुत्तरसूत्रमुपादत्ते—न लक्ष्मणः पृथक्त्वादिति। यतिवृत्तयोर्लक्षणभेदात् स्वरूपभेदोऽङ्गीकर्तव्यः। तथा च वृत्तदोषे यतिदोषस्यान्तर्भावो दुर्भर इति भावः। लक्षणभेदमेवाह—गुरुलघ्विति। स्थानविरामेऽपि गुरुलघुविपर्यासे भवति वृत्तभङ्गः। अस्थानविरामात्मके यतिभङ्गेऽपि यथोक्तगुरुलघुनियमे सति न वृत्तभङ्ग इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां भिन्नवृत्तयतिभ्रष्टयोर्भिन्नत्वात् पृथक्कथनमर्थवदित्यर्थः ॥ ६ ॥

विरूपपदसन्धिर्विसन्धिः[1] ॥ ७ ॥

पदानां सन्धिः पदसन्धिः। स च स्वरसमवायरूपः प्रत्यासत्तिमात्ररूपो वा। स विरूपो यस्मिन्निति विग्रहः ॥ ७ ॥

(व्याकरणशास्त्रसे विरुद्ध विसन्धि वाक्यकी व्याख्या करनेके लिए सूत्र कहते हैं—) विरूप अर्थात् व्याकरणशास्त्र-विरुद्ध, पदोंकी सन्धिवालेको 'विसन्धि' कहते हैं।

पदोंकी सन्धि पदसन्धि है। वह (पदसन्धि) स्वरसमवायरूप अथवा केवल प्रत्यासत्तिरूप है ('किञ्चिद्भावालसम्' में स्वरसमवायरूप तथा 'ते गच्छन्ति प्रभुपरिवृढम्' केवल प्रत्यासत्तिरूप पदसन्धि है)। वह (पदसन्धि) विरूप है, जिसमें वह वाक्य विरूपपदसन्धि है ॥ ७ ॥

अथ विसन्धिवाक्यं विवरीतुमाह[2]—विरूपपदसन्धिरिति[3]। स चेति। 'किञ्चिद्भावालसमि'त्यत्र स्वरसमवायरूपः। 'ते गच्छन्ति प्रभुपरिवृढमि'त्यत्र प्रत्यासत्तिरूपः ॥ ७ ॥

पदसन्धिवैरूप्यं विश्लेषोऽश्लीलत्वं कष्टत्वञ्च ॥ ८ ॥

विश्लेषो[4] विभागेन पदानां संस्थितिरिति। अश्लीलत्वमसभ्यस्मृतिहेतुत्वम्। कष्टत्वं पारुष्यमिति। विश्लेषो यथा—

---

१. 'विरूपपदसन्धि विसन्धि' इति 'ख' पु०, 'विरूपपदसन्धि विसन्धिः' इति 'ग' पु० पा०।

२. 'विसन्धि वाक्यं' इति 'ख' पु० पा०।

३. 'विरूपपदसन्धीति' इति 'ख' पु० पा०। अग्रिमसूत्रे 'विसन्धिनस्त्रैविध्यम्' इति क्लीबत्वोक्त्या 'विरूपपदसन्धि विसन्धि' इति पाठ एवोचितः।

४. एतदग्रे 'अवग्रहः' इत्यधिकः 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'मेघाऽनिलेन अमुना एतस्मिन्नद्रिकानने[१] ।'
'कमले इव लोचने इमे अनुबध्नाति विलासपद्धतिः ।'
'लोलालकानुबद्धानि आननानि चकासति ।'

अश्लीलत्वं यथा—

'विरेचकमिदं नृत्तमाचार्याभासयोजितम् ।'
'चकासे पनसप्रायैः पुरी षण्डमहाद्रुमैः ।'
विना शपथदानाभ्यां पदवादसमुत्सुकम् ।'

कष्टत्वं यथा—

'मञ्जर्युद्गमगर्भास्ते गुर्वाभोगा द्रुमा बभुः' ॥ ८ ॥

(विसन्धि वाक्यके तीन भेद कहते हैं—) पदसन्धिका वैरूप्य अर्थात् विरूपपद-सन्धिके तीन भेद हैं—विश्लेष, अश्लीलत्व और कष्टत्व ।

(प्राप्त सन्धिका त्यागकर) पदोंको अलग रखना 'विश्लेष' है। असभ्य अर्थका स्मरण होनेपर 'अश्लीलत्व' और सन्धि करनेपर कठोरताका अनुभव होनेसे 'कष्टत्व' नामक 'विसन्धिपददोष' होते हैं। विश्लेष जैसे—(विश्लेषके दो भेद हैं—सन्ध्य-विवक्षानिमित्तक सन्ध्यभावजन्य विश्लेष और प्रगृह्यसंज्ञानिमित्त सन्ध्यभावजन्य विश्लेष । उनमेंसे सन्ध्यविवक्षानिमित्तक सन्ध्यभावका उदाहरण—)

इस पहाड़ी जंगलमें मेघकी इस हवाने । (यहाँ 'मेघानिलेन + अमुना' पदोंमें 'अकः सवर्णे दीर्घः' (पा० ६।१।१०१) सूत्रसे प्राप्त दीर्घसन्धिका और 'अमुना + एतस्मिन्' पदोंमें 'वृद्धिरेचि' (पा० ६।१।८८) सूत्रसे प्राप्त वृद्धिसन्धिका त्याग अविवक्षासे किया गया है) ।

(इसकी यह) विलास-पद्धति दोनों नेत्रोंको (दो) कमलोंके समान सुशोभित करता है। (यहाँ 'कमले + इव, लोचने + इमे, और इमे + अनुबध्नाति'—इन तीन स्थलोंमें 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' (पा० १।१।११) सूत्रसे 'प्रगृह्य संज्ञा होनेपर प्रथम दो स्थलों (कमले + इव और लोचने + इमे) में 'एचोऽयवायावः' (पा० ६।१।७८) सूत्रसे प्राप्त 'अय्' आदेश तथा अन्तिम स्थल (इमे + अनुबध्नाति) में उक्त 'अय्' आदेशका बाधक 'एङि पररूपम्' (पा० ६।१।९४) सूत्रसे प्राप्त पररूप सन्धिका त्याग 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' (पा० ६।१।१२५) सूत्रसे प्रकृतिभाव होनेसे किया गया है) ।

चञ्चल बालोंसे किञ्चित् ढँकें हुए मुख शोभते हैं। (यहाँ 'बद्धानि + आननि' पदोंमें 'इको यणचि' (पा० ६।१।७७) सूत्र से प्राप्त 'यण्' सन्धिका त्याग संधिकी अविवक्षासे किया गया है) ।

'अश्लीलत्व' जैसे—(इसके भी तीन भेद हैं—'जुगुप्साबोधक', व्रीडाबोधक और अमङ्गलातङ्कबोधक । क्रमप्राप्त प्रथम 'जुगुप्साबोधक'का उदाहरण—)

---

१. 'मेघानिलेन······कानने ।' इति श्लोकार्द्धं कुत्रचिन्न दृश्यते ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

आचार्यके आभासवाले (स्वयं आचार्य नहीं होने पर भी आचार्यतुल्य बननेवाले) व्यक्तिके द्वारा सम्पादित नृत्तविरेचक अर्थात् नाटचाचार्य 'भरत' के द्वारा उक्त—दोनों पैर, दोनों हाथ, कटि और ग्रीवासे सम्पादनीय चार प्रकारके रेचकोंमें से कोई भी न होनेसे विरेचक है (प्रकृत उदाहरणके 'रेचक' और 'याभ' अंशका अर्थ 'वमन' और 'मैथुन' होनेसे 'अश्लीलत्व' दोष है)।

(दूसरा 'अश्लीलत्व' जैसे—) फले हुए बहुत कटहलोंवाले बड़े-बड़े वृक्षोंकी कतारसे युक्त यह नगरी सुशोभित हुई। (इस उदाहरण के अन्तर्गत 'पुरीष' पदका अर्थ 'विष्ठा' (मैला) होनेसे 'अश्लीलत्व' दोष है)।

(तीसरा 'अमङ्गलातङ्कदायी' जैसे—) शपथ (सौगन्ध) और दानके बिना पद पानेके लिए उत्कण्ठित। (इस उदाहरणमें पृथक् स्थित 'विना' और 'शपथ' पदोंको मिलानेपर बना हुआ 'विनाशपथ' शब्द अमङ्गलकी शङ्का उत्पन्न करनेसे 'अश्लीलत्व' दोष है)।

'कष्टत्व' दोष जैसे—

मञ्जरियोंका उद्गम (प्रादुर्भाव) भीतरमें है, अर्थात् जिनके भीतरसे मञ्जरियाँ निकलनेवाली हैं, ऐसे बहुत दूरतक फैले हुए वृक्ष शोभित हुए। (इस उदाहरणमें 'मञ्जर्युद्गम' और 'गुर्वाभोग' पदोंमें यण्-सन्धि करनेसे 'क्लिष्टत्व' दोष है)॥ ८॥

विसन्धिनस्त्रैविध्यं वक्तुमाह—पदसन्धीति। विश्लेषोऽवग्रह इत्यत्र पदकालप्रसिद्धोऽवग्रहो न विवक्षितः, किन्तु मात्राकालव्यवधानसाम्यादसंहिताप्रगृह्यलक्षण इत्यभिसन्धायाह—विभागेनेति। स च विश्लेषो द्विविधः—प्रगृह्यनिबन्धनः, सन्ध्यविवक्षानिबन्धनश्च। तत्राद्यमुदाहरति—कमले इति। यदवादि दण्डिना—'न संहितां विवक्षामी'त्यसन्धानं पदेषु यत्। तद्विसन्धीति निर्दिष्टं, न प्रगृह्यादिहेतुकम्' इति। अत्र प्रगृह्यादिहेतुकं विसन्धि न भवतीति सकृत्प्रयोगविषयमिदं द्रष्टव्यम्। असकृत्प्रयोगे तु दुष्टमेव। तदुक्तं साहित्यचूडामणौ—'प्रगृह्यादिनिबन्धनत्वे पुनरसकृद्दोषः।' यथा—'धीदोर्बले अतितते उचिताऽर्थवृत्ती' इत्यादि। सकृत्तु न दोष इति[1]। तथा च प्रयोगः—'लीलयैव धनुषा[2] अधिज्यताम्'। 'सहंसपाते इव लक्ष्यमाणे' इति च। द्वितीयमुदाहरति—लोलालकेत्यादि। अत्र 'न सहितां विवक्षामि' इति कामचारप्रयुक्तः सकृदपि दोष एव। 'नित्येयं[3] संहितैकपदवत् पादेष्वर्धान्तवर्जम्' इति काव्यसमयाऽध्याये वक्ष्यमाणत्वात्। त्रिविधमश्लीलं क्रमेणोदाहरति—अश्लीलत्वं यथेति[4]। रेचका नाम नृत्ते पाणिपादादिभ्रमणरूपाश्चत्वारो भरतशास्त्रे प्रसिद्धाः। तदुक्तं सङ्गीतरत्नाकरे—'रेचकानथ वक्ष्यामश्चतुरो भरतोदितान्। पदयोः करयोः कटचा ग्रीवायाश्च भवन्ति ते॥' इति। आचार्येण सता नृत्तं सरेचकं योजनीयम्। इदं नृत्तं[5] विरेचकं रेचकविहीनम्। अत एवाचार्याभास-

१. 'इति' एतत् 'ख' पु० नास्ति। २. 'धनुषी' इति 'ख' पु० पा०।

३. 'नित्या' इत्येव 'ख' पु० पा०।

४. मूलपाठानुरोधादत्र 'अश्लीलत्वं यथा' इति 'ख' पु० पा० एवोचितः।

५. 'इदं तु नृत्यं' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

योजितम् । यः स्वयमनाचार्य आचार्यवदवभासते, सोऽयमाचार्याभासः, तेन योजितम् । अत्र विरेचक-याभ[1]-पुरीषविनाशपदविन्यासैः, विरेचन-मिथुनीभाव[2]-पुरीष-विनाश-प्रतीते-स्त्रिविधान्यश्लीलानि द्रष्टव्यानि । कष्टत्वमुदाहर्तुमाह—कष्टत्वं यथेति ॥ ८ ॥

एवं वाक्यदोषानभिधाय वाक्यार्थदोषान् प्रतिपादयितुमाह—

व्यर्थैकार्थसन्दिग्धाप्रयुक्तापक्रम[3]लोकविद्याविरुद्धानि च ॥ ९ ॥

वाक्यानि दुष्टानीति सम्बन्धः ॥ ९ ॥

इस प्रकार 'वाक्यदोषों'का प्रतिपादनकर 'वाक्यार्थदोषों' का प्रतिपादन करनेके लिए यह सूत्र कहते हैं—

व्यर्थ, एकार्थ, सन्दिग्ध, अप्रयुक्त, अपक्रम, लोक-विरुद्ध और विद्या-विरुद्ध—ये सात वाक्यार्थदोष हैं ।

इन अर्थोंसे युक्त वाक्य 'वाक्यार्थदोष' है । (पूर्वोक्त २।१।४ सूत्रसे 'दुष्टे' की और २।२।१ सूत्रसे 'वाक्यानि' की अनुवृत्ति कर 'वाक्यानि' का विशेषण बनानेके लिए 'दुष्टं' का वचनविपरिणाम करनेसे 'वाक्यानि दुष्टानि' का 'वाक्य दुष्ट' होते हैं, ऐसा अर्थ होता है) ॥ ९ ॥

उक्तवक्तव्यसङ्गतिपूर्वकमुत्तरसूत्रमवतारयति—एवमिति । चकारेण समुच्चयमाह—वाक्यानि दुष्टानीति सम्बन्ध इति ॥ ९ ॥

क्रमेण व्याख्यातुमाह—

व्याहतपूर्वोत्तरार्थं व्यर्थम् ॥ १० ॥

व्याहतौ पूर्वोत्तरावर्थौ[4] यस्मिंस्तद् व्याहतपूर्वोत्तरार्थं वाक्यं व्यर्थम् । यथा—

'अद्यापि स्मरति रसालसं[5] मनो मे मुग्धायाः स्मरचतुराणि चेष्टितानि' । मुग्धायाः कथं स्मरचतुराणि चेष्टितानि ? तानि चेत् कथं मुग्धा ? अत्र पूर्वोत्तरयोरर्थयोर्विरोधाद् व्यर्थमिति ॥ १० ॥

क्रमसे 'वाक्यार्थ' दोषोंकी व्याख्या अर्थात् लक्षण कहते हैं—

परस्परमें विरुद्ध पूर्व एवं उत्तर (पहले और आगेवाले) पदोंके अर्थसे युक्त वाक्य 'व्यर्थ' नामक दोष है ।

परस्परमें विरुद्ध पूर्व और उत्तर (पहले और उसके बाद कहे गये) अर्थ हैं जिसमें, वह 'व्याहतपूर्वोत्तरार्थ' वाक्य 'व्यर्थ'दोष है । जैसे—

---

१. 'याभ-शेष-पुरीष……' इति 'ख' पु० पा० ।
२. '……मिथुनीभाव-मेदन-पुरीष' इति 'ख' पु० पा० ।
३. '……सन्दिग्धायुक्तापक्रम…' इति 'ख-ग' पु० पा० ।
४. 'पूर्वोत्तरार्थौ' इति 'क-ग' पु० पा० । ५. 'रसोल्लसत्' इति 'क-ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

रससे सालस अर्थात् रति-जन्य श्रमसे आलसयुक्त मेरा मन आज भी मुग्धा की कामचतुर चेष्टाओं (चतुर कामकेलियों) को स्मरण कर रहा है।

'मुग्धा' नायिका की चेष्टाएँ कामचतुर कैसे हो सकती हैं ? अर्थात् कदापि नहीं हो सकती हैं। और यदि वे होती हैं तब वह नायिका 'मुग्धा कैसे हुई ? (रतिकालमें विविध प्रकारकी कामकेलि करनेवाली नायिका 'प्रौढा' कहलाती है। 'मुग्धा'[1] नहीं कहलाती)। इस उदाहरणमें पहले और उसके बाद कहे गये अर्थोंमें परस्पर विरोध होनेसे 'व्यर्थ' दोष है ॥ १० ॥

व्याहतौ परस्परविरुद्धावित्यर्थः। मुग्धायाः कथं स्मरचतुराणि चेष्टितानीति। न कथञ्चित् सम्भवन्ति व्याहतत्वादित्यर्थः। व्याहतिमेव व्याहरति—स्मरचतुराणीति ॥ १० ॥

उक्तार्थपदमेकार्थम् ॥ ११ ॥

उक्तार्थानि पदानि यस्मिंस्तदुक्तार्थपदमेकार्थम्। यथा—

'चिन्तामोहमनङ्गमङ्ग ! तनुते विप्रेक्षितं[2] सुभ्रुवः'।

अनङ्गः शृङ्गारः। तस्य चिन्ता[3] मोहात्मकत्वाच्चिन्तामोहशब्दौ प्रयुक्तावुक्तार्थौ भवतः। एकार्थपदत्वाद् वाक्यमेकार्थमित्युक्तम् ॥ ११ ॥

(अब 'एकार्थ' दोष का लक्षण कहते हैं—) पहले कहे गये अर्थयुक्त पदोंवाला वाक्य 'एकार्थ'-दोष है।

उक्तार्थक (जिनका अर्थ पहले कहा जा चुका है, ऐसे) पद जिसमें हों, वह 'उक्तार्थपदयुक्त' वाक्य 'एकार्थ'-दोष है। जैसे—

सुन्दर भौंहोंवाली (प्रिया) का कटाक्ष चिन्ता तथा मोहयुक्त अनङ्ग अर्थात् शृङ्गारको बढ़ा रहा है।

यहाँ अनङ्ग पदसे (विप्रलम्भ) शृङ्गार विवक्षित है। चिन्ता और मोह (आदि) से ही शृङ्गार वृद्धि होनेसे 'शृङ्गार'वाचक अनङ्ग पदसे ही 'चिन्ता और मोह' को पूर्वप्रयुक्त होनेके कारण पुनः कहे गये 'चिन्ता और मोह' पद उक्तार्थक है, अतः इस वाक्यमें 'एकार्थ'-दोष है। एकार्थ अर्थात् पुनरुक्तके लक्षणका विचार करनेपर पदमें एकार्थत्व (पुनरुक्तत्व) प्रतीत होता है, वाक्यमें नहीं; फिर यह (एकार्थ) वाक्यदोष कैसे हुआ ? इस शङ्काका निराकरण 'छत्रिन्याय' से एकदेशीय धर्मका समुदाय पर्यवसान होनेके कारण एकार्थपद होनेपर वाक्य भी एकार्थ ही है, ऐसा कहा है ॥ ११ ॥

---

१. मुग्धालक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—'प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।' इति (३।५८)।

२. 'विश्लेषित' इति 'क' पु० पा०।

३. 'चिन्ता' इति पृथक् पदं 'ग' पु०, 'तस्य चिन्तायाः' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

एकार्थं समर्थयितुमाह—उक्तार्थपदमिति । उक्ताः [1]प्रतिपादिता अर्था येषां तान्युक्तार्थानि । तथाविधानि पदानि यस्मिन् वाक्ये तदुक्तार्थपदं वाक्यमेकार्थं नाम दुष्टं भवतीति वाक्यार्थः । चिन्तामोहमिति । कामिनीकटाक्षपातकलुषिताऽन्तःकरणस्य विरहवेदनामसहमानस्य कस्यचित् कामुकस्येयमुक्तिः । अनङ्गशब्देनात्र विप्रलम्भशृङ्गारो विवक्षितः । तस्य चिन्तामोहाद्युपचितात्मकस्यैव शृङ्गारपदार्थत्वात् । तत्कथनेनैव चिन्तामोहयोरवगतत्वाच्चिन्तामोहशब्दौ गतार्थावित्येकार्थौ । नन्वेकार्थलक्षणपरीक्षायामेकार्थत्वं पदस्य प्रतीयते, न तु वाक्यस्य, तत् कथमयं वाक्यदोषः स्यादित्याशङ्क्य छत्रिन्यायेनैकदेशधर्मः समुदाये पर्यवस्यतीत्याशयवानाह—एकार्थपदत्वादिति ॥ ११ ॥

न, विशेषश्चेत्[2] ॥ १२ ॥

न गतार्थं दुष्टं विशेषश्चेत् प्रतिपाद्यः स्यात् ॥ १२ ॥

(पूर्वोक्त दोषका अपवाद सूत्र कहते हैं—) यदि कोई विशेष प्रयोजन हो, तो उक्त दोष नहीं होता ।

किसी विशेषके प्रतिपादनी होनेपर उक्तार्थ दोष नहीं होता है ॥ १२ ॥

क्वचिदपवादं वक्तुमाह—न विशेषश्चेदिति । यदि विशेषः प्रतिपाद्यस्तदानीमेकार्थं दुष्टं न भवतीति सूत्रार्थः ॥ १२ ॥

तं विशेषं प्रतिपादयितुमाह—

धनुर्ज्याध्वनौ धनुःश्रुतिरारूढेः प्रतिपत्त्यै ॥ १३ ॥

धनुर्ज्याध्वनावित्यत्र ज्याशब्देनोक्तार्थत्वेऽपि धनुःश्रुतिः प्रयुज्यते । आरूढेः प्रतिपत्त्यै आरोहणस्य प्रतिपत्त्यर्थम् । न हि धनुःश्रुतिमन्तरेण धनुष्यारूढा ज्या धनुर्ज्येति शक्यं प्रतिपत्तुम् । यथा—

'धनुर्ज्याकिणचिह्नेन दोष्णा विस्फुरितं तव' इति ॥ १३ ॥

उस विशेषके प्रतिपादनके लिए कहते हैं—

'धनुर्ज्याध्वनि' (धनुषकी डोरीकी आवाज)—इस पदमें 'ज्या' शब्दसे 'धनुषकी डोरी' अर्थका बोध होनेपर 'धनुष्' शब्दका, धनुष्कोटिपर चढ़ाई हुई डोरी अर्थका बोध करानेके लिए 'धनुष्' शब्दका प्रयोग किया गया है ।

'धनुर्ज्याध्वनौ' (धनुषकी डोरीकी ध्वनि) यहाँपर 'धनुषकी डोरी' वाचक 'ज्या' शब्दसे ही 'धनुष्'का अर्थ-ज्ञान हो जानेपर भी 'धनुष्' शब्दका प्रयोग 'धनुष पर चढ़ाई गयी डोरी' ऐसे विशेष अर्थज्ञानके लिए हुआ है । 'धनुष्' पदके बिना प्रयोग किये 'धनुष पर चढ़ी हुई डोरी' ऐसा अर्थज्ञान नहीं हो सकता । जैसे—

---

१. इतः प्राक् 'पदान्तरैः' इत्यधिकः 'क-ख' पु० पा० ।

२. एतदग्रे 'एकार्थं दुष्टम्' इत्यधिकः 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

धनुषकी डोरीके घट्ठे (मणिबन्धपर हुए कठोर चिह्न) से तुम्हारी भुजा फड़क गयी ॥ १३ ॥

धनुर्ज्याध्वनाविति । श्रुतिरत्र वाचकः । स्पष्टमवशिष्टम् । धनुर्ज्याकिणेति । ज्याशब्दमात्रप्रयोगे ज्याबन्धनेनापि किणसम्भवाद् भवेदनौचित्यम् । तथा च प्रयोगः—

'ज्याबन्धनिष्पन्दभुजेन यस्य' इति ॥ १३ ॥

कर्णावतंसश्रवणकुण्डलशिरःशेखरेषु कर्णादि-निर्देशः सन्निधेः ॥ १४ ॥

कर्णावतंसादिशब्देषु कर्णादीनामवतंसादिपदैरुक्तार्थानामपि निर्देशः, सन्निधेः प्रतिपत्त्यर्थमिति सम्बन्धः । न हि कर्णादिशब्दनिर्देशमन्तरेण कर्णादिसन्निहितानामवतंसादीनां शक्या प्रतिपत्तिः कर्तुमिति । यथा—

'दोलाविलासेषु विलासिनीनां कर्णावतंसाः कलयन्ति कम्पम् ।'

'लीलाचलच्छ्रवणकुण्डलमापतन्ति ।'

'आययुर्भृङ्गमुखराः शिरःशेखरशालिनः'[1] ॥ १४ ॥

(यही नियम अन्यान्य कतिपय शब्दोंमें लागू होते हैं । इसका प्रतिपादन करते हैं—) 'कर्णावतंस, श्रवणकुण्डल और शिरःशेखर' शब्दोंमें 'कर्ण' आदि ('श्रवण और शिरस्') समीपताके बोधक हैं ।

'कर्णावतंस' आदि ('आदि' शब्दसे 'श्रवणकुण्डल और शिरःशेखर' का ग्रहण है) में 'कर्ण' आदि (यहाँ 'आदि' शब्दसे 'श्रवण और शिरस्' का ग्रहण है) का प्रयोग 'अवतंस, कुण्डल और शेखर' शब्दोंद्वारा ही उक्तार्थक होनेपर भी 'कर्ण' (कान) आदिके पासमें 'अवतंस' आदि हैं, इस प्रकारका सामीप्य ज्ञान करानेके लिए है । कर्णादि शब्दोंके प्रयोग नहीं करनेपर कर्ण आदिके पासमें अवतंस आदि हैं, ऐसा अर्थज्ञान नहीं हो सकता । जैसे—

झूलेके (झूलनेके) विलासोंमें विलासिनियोंके कर्णावतंस (कर्णभूषण) काँप (झूल) रहे हैं । (यहाँ कर्ण शब्दके बिना प्रयोग किये अवतंसका कर्णके पास होना प्रतीत नहीं होता ।)

(दूसरा उदाहरण जैसे—) लीलासे हिलते हुए श्रवणकुण्डल (कानके कुण्डल) पर (भ्रमर आदि) गिर रहे हैं । (यहाँ श्रवण शब्दके बिना प्रयोग किये कुण्डलका श्रवणके निकट होना प्रतीत नहीं होता ।)

(तृतीय उदाहरण जैसे—) भौंरोंसे गुञ्जायमान, शेखरसे शोभनेवाले आ गये । (यहाँ 'शिरस्' शब्दके अप्रयुक्त होनेपर मस्तकके पास शेखरके होनेका बोध नहीं होता । अतः उक्त 'कर्णावतंस, श्रवणकुण्डल और शिरःशेखर' शब्दोंमें क्रमशः 'अवतंस,

---

१. 'तूर्णं शेखर······' इति प्राक्तनः पा० ।
'······मुखराः शिरः···' इति पृथक् पदं क्वचित् ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कुण्डल और शेखर' शब्दोंसे ही कर्ण, श्रवण और शिरस् का बोध, 'कर्ण श्रवण शिरस्' शब्दोंका प्रयोग न करनेपर भी हो ही जाता है, परन्तु 'कर्णा'दिके प्रयोग न करनेपर 'अवतंसा'दिके 'कर्णा'दिके निकटस्थ होनेका बोध करानेके लिए 'कर्णा'दिका प्रयोग किया गया है। अतः एकार्थ (पुनरुक्त) दोष इन पद्यांशोंमें नहीं है) ॥१४॥

उक्तन्यायमन्यत्रापि सञ्चारयितुमाह—कर्णावतंसेत्यादि । उक्तार्थानामपीति । अवतंसादिभिः कर्णाभरणादीन्येवोच्यन्त इति अवतंसादिप्रयोगे कर्णादीनां गतार्थत्वमित्यभिप्रायः । अन्वयं द्रढयितुं व्यतिरेकमाह—नहीति[१] । कर्णावतंसाः कलयन्ति कम्पम् । लीलाचलच्छ्रवणकुण्डलमापतन्तीत्यत्र लीलाचलनक्रियायोगादारूढप्रतिपत्तिर्भवत्येव । अतः 'अस्याः कर्णावतंसेन जितं सर्वं विभूषणम् । तथैव शोभतेऽत्यन्तमस्याः श्रवणकुण्डलम्' इत्याद्युदाहर्तव्यम् । आद्यधुरिति स्पष्टार्थम् । धनुर्ज्यादिसूत्र एवैकत्र कर्णावतंसादीनामपि परिगणने कर्तुं शक्येऽपि प्रयोजनभेदं प्रतिपादयितुं सूत्रभेदः कृत इति द्रष्टव्यम् ॥ १४ ॥

मुक्ताहारशब्दे मुक्ताशब्दः शुद्धेः ॥ १५ ॥

मुक्ताहारशब्दे मुक्ताशब्दो हारशब्देनैव गतार्थः प्रयुज्यते, शुद्धेः प्रतिपत्त्यर्थमिति सम्बन्धः । [२]शुद्धानामन्यरत्नैरमिश्रितानां हारो मुक्ताहारः । यथा—

प्राणेश्वरपरिष्वङ्गविभ्रमप्रतिपत्तिभिः ।
मुक्ताहारेण लसता हसतीव स्तनद्वयम् ॥ १५ ॥

'मुक्ताहार' शब्दमें 'मुक्ता' शब्दका प्रयोग 'शुद्धि' (अर्थात् दूसरे रत्नोंसे हीन—केवल मुक्तानिर्मित हार) की प्रतीतिके लिए है।

'मुक्ताहार' शब्दमें 'मुक्ता' (मोती) शब्द 'हार' शब्दसे ही 'हारो मुक्तावली' इस कोषोक्त वचनसे गतार्थ है, अर्थात् 'हार' कहनेसे ही मुक्ताओंकी माला का अर्थज्ञान हो जानेसे 'मुक्ता' शब्द गतार्थ (पुनरुक्त) होनेपर भी (माणिक्य, हीरा आदि दूसरे रत्नोंसे अमिश्रित केवल मुक्ताओंसे ही निर्मित हारका अर्थबोध होनेके लिए) प्रयुक्त होता है। शुद्ध अर्थात् दूसरे रत्नोंसे अमिश्रित हार 'मुक्ताहार' अर्थ है। (अथवा—मोतियोंकी शुद्धता = कीटानुविद्धादि-दोष-हीनता विशालता = बड़ा-बड़ा एवं वृत्ताकार सुडौल होना, पानीदार = अत्यधिक चमकीला होनेका बोध करानेके लिए 'मुक्ताहार' शब्दमें 'मुक्ता' शब्दका प्रयोग 'पुष्पहार' शब्दमें 'पुष्प' शब्दके समान किया गया है) । जैसे—

प्राणनाथके आलिङ्गनके विलासकी उपलब्धियोंके द्वारा शोभायमान मुक्ताहारसे (मेरे) दोनों स्तन मानो हँस रहे हैं ॥ १५ ॥

मुक्ताहारेत्यादि सुबोधम् । ननु हसतीव स्तनद्वयमिति हासोत्प्रेक्षणसामर्थ्यादेव हारस्य रत्नान्तरासंवलनलक्षणा शुद्धिः प्रतीयते, न मुक्ताशब्दसन्निधानात् । अन्यथा

१. एतदग्रे 'दोलेति ।' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।
२. 'सम्बन्धः । मुक्तानां शुद्धाना…' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

हासोत्प्रेक्षैव नोदयमासादयेत् । अतो नेदमुदाहरणमिति चेन्नैवम् । हारशुद्धिप्रतिपत्त्या हासोत्प्रेक्षा हासोत्प्रेक्षया च हारशुद्धिप्रतिपत्तिरिति परस्पराश्रयप्रसङ्गात् । अतो मुक्ताशब्दसन्निधानादेव हारशुद्धिप्रतिपत्तिरिति भवत्युदाहरणमिदम् । 'हारो मुक्तावली'त्यभिधानादत्र हारशब्दो मुख्यया वृत्त्या रत्नान्तरासंवलितमुक्तागुणमभिधत्ते । अतः शुद्धेः प्रतिपत्तिः शब्दत एव सिद्धेति यदि पक्षस्तदा पुष्पमालाशब्दे पुष्पपदवन्मुक्ताहारशब्देऽपि मुक्तापदं कस्यचिदुत्कर्षस्य प्रतिपत्त्यै प्रयुज्यते । स चोत्कर्षस्त्रासादिदोषशून्यत्वं, स्थूलवृत्तत्वं, स्वच्छतातिशयश्चेति व्याख्येयम् ॥ १५ ॥

पुष्पमालाशब्दे पुष्पपदमुत्कर्षस्य ॥ १६ ॥

पुष्पमालाशब्दे मालाशब्देनैव गतार्थं पुष्पपदं प्रयुज्यते । उत्कर्षस्य प्रतिपत्त्यर्थमिति । उत्कृष्टानां पुष्पाणां माला पुष्पमालेति । यथा—

'प्रायशः पुष्पमालेव कन्या सा कं न लोभयेत्' ।

ननु मालाशब्दोऽन्यत्राऽपि दृश्यते । यथा—रत्नमाला, शब्दमालेति । सत्यम् । [1]स तावदुपचरितस्य प्रयोगः । निरुपपदो हि मालाशब्दः पुष्परचनाविशेषमेवाभिधत्त इति ॥ १६ ॥

'पुष्पमाला' शब्दमें 'पुष्प' पद उत्कृष्ट (खुशबूदार एवं सुन्दर आदि) अर्थज्ञानका बोध करानेके लिए प्रयुक्त होता है ।

'पुष्पमाला' शब्दमें 'माला' शब्दसे ही गतार्थ 'पुष्प' पद प्रयुक्त होता है । (वह फूलोंकी) उत्कृष्टताके ज्ञानके लिए है । उत्कृष्ट (खुशबूदार और देखनेमें सुन्दर) फूलोंकी माला 'पुष्पमाला' कहलाती है । जैसे—

पुष्पमालाके समान वह कन्या प्रायः किसे नहीं मोह लेती है ? अर्थात् सबको मोह लेती है ।

'माला' शब्दका प्रयोग (पुष्पेतर निर्मित) दूसरे प्रयोगोंमें भी देखा जाता है । जैसे—रत्नमाला, शब्दमाला (हंसमाला, मेघमाला इत्यादि) में । (अतः केवल 'माला' शब्दके प्रयोगसे ही 'पुष्पोंकी माला' अर्थकी प्रतीति नहीं होनेसे 'पुष्पमाला' शब्दमें 'पुष्प' पदका प्रयोग गतार्थ नहीं कहा जा सकता, यदि ऐसा कहते हैं तो) ठीक (?) है, किन्तु वह प्रयोग (रत्नमाला, शब्दमाला आदिमें 'माला' शब्दका प्रयोग) लक्षणासे होता है । निरुपपद अर्थात् 'पुष्प' पदके बिना प्रयुक्त 'माला' शब्द पुष्पोंसे बनी हुई मालाका ही बोधक है ॥ १६ ॥

पुष्पमालेत्यादि । स्पष्टार्थम् । ननु मालाशब्दस्य रूपहंसमेघादिमालासु प्रयोगदर्शनात् तद्व्यावृत्तिः प्रयोजनं पुष्पपदस्य, न पुनरुक्त[2] इति शङ्कते—नन्विति । मालाशब्दः पुष्परचनायां मुख्यो, लाक्षणिकः पुनरन्यत्रेति वृत्तिभेदान्नायं दोष इति परिहरति—स तावदिति ॥ १६ ॥

---

१. 'स तावत्' इति 'क' पु० नास्ति । २. 'पुनरुक्तिः' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

करिकलभशब्दस्ताद्रूप्यस्य[1] ॥ १७ ॥

करिकलभशब्दे करिशब्दः कलभेनैव गतार्थः प्रयुज्यते; ताद्रूप्यस्य प्रतिपत्त्यर्थमिति । करी प्रौढकुञ्जरः, तद्रूपः कलभः करिकलभ इति । यथा—

'त्यज करिकलभ ! त्वं प्रीतिबन्धं करिण्याः' ॥ १७ ॥

'करिकलभ' शब्द (में प्रयुक्त 'करि' शब्द) ताद्रूप्य का बोधक है ।

'करिकलभ' शब्दमें ('कलभः करिशावकः' अर्थात् हाथीके बच्चेको 'करिकलभ' कहते हैं, इस कोषवाक्यसे) केवल 'कलभ' शब्दसे ही हाथीका भी बोध होनेसे गतार्थ 'करि' प्रयुक्त होता है, ताद्रूप्यके ज्ञानके लिए । 'करी' प्रौढ (युवावस्था-प्राप्त) करी (हाथी) को कहते हैं । तद्रूप युवावस्था-प्राप्त हाथीके तुल्य 'करिकलभ' हुआ । जैसे—

हे करिकलभ ! तू हथिनीके प्रेम-बन्धनको छोड़ दे, अर्थात् बच्चा होनेके कारण हथिनीके साथ प्रेम मत करो (क्योंकि स्त्रीके प्रेम-बन्धनोंमें फँसना युवकों को ही उचित है, न कि बच्चोंको) ॥ १७ ॥

करिकलभेत्यादि व्यक्तार्थम् ॥ १७ ॥

विशेषणस्य च ॥ १८ ॥

विशेषणस्य विशेषप्रतिपत्त्यर्थमुक्तार्थस्य पदस्य प्रयोगः । यथा—

'जगाद मधुरां वाचं विशदाक्षरशालिनीम्' ॥ १८ ॥

विशेषणके विशेष अर्थके बोधके लिए भी (उक्तार्थ विशेष्यका) प्रयोग होता है ।

विशेषणके विशिष्ट अर्थके बोधके लिए भी उक्तार्थ (गतार्थ, विशेष्य) का प्रयोग होता है । जैसे—

स्पष्ट अक्षरोंसे शोभित मधुर वचन कहा । (यहाँ पर स्पष्ट वचनबोधक 'गद व्यक्तायां वाचि' धातुके 'जगाद' क्रिया पदसे ही 'स्पष्ट वचन बोला' अर्थ होनेसे गतार्थ 'मधुराधरशालिनीम्' पदका प्रयोग 'माधुर्यसे पूर्ण अक्षरों वाला वचन' रूप विशिष्टताका बोधक है) ॥ १८ ॥

विशेषणस्येति । शब्दान्तरस्य सन्निधानादुक्तार्थोऽपि विशेष्यशब्दः प्रयुज्यते स च विशेषणस्य प्रतिपत्त्यै भवति । [2]जगादेत्यनेन गतार्थस्य वाक्शब्दस्य माधुर्यवर्णवैशद्यलक्षणविशेषणप्रतिपत्त्यै प्रयोग इष्यत इति वाक्यार्थः । 'जगाद मधुरोदारविशदाक्षर-

---

१. '......शब्दे करिशब्दस्ताद्रूप्यस्य प्रतिपत्त्यर्थम्' इति 'क' पु०, 'करिशब्दस्ताद्रूप्यस्य' इति 'ख-ग' पु० पा० ।

२. 'भवति । जगादेति' इत्येवं 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

मीश्वरः' इति विन्यासकल्पनायां विशेषणस्य प्रयोगः क्रियाविशेषणत्वेऽप्युपपद्यते। अतो 'नीलनीरजविकासहारिणा कान्तमीक्षणयुगेन वीक्षते' इत्युदाहार्यम् ॥ १८ ॥

तदिदं प्रयुक्तेषु ॥ १९ ॥

तदिदमुक्तं प्रयुक्तेषु, नाप्रयुक्तेषु। न हि भवति; यथा—'श्रवणकुण्डलमि'ति। तथा—'नितम्बकाञ्ची'त्यपि। यथा वा—'करिकलभ' इति, तथा 'उष्ट्रकलभ' इत्यपि। अत्र श्लोकः—

'कर्णावतंसादिपदे कर्णादिध्वनिनिर्मितिः।
सन्निधानादिबोधार्थं स्थितेष्वेतत् समर्थनम्'[1] ॥ १९ ॥

(उक्तार्थ अर्थात् गतार्थ पदोंके प्रयोगका समर्थन अभियुक्त महाकवियोंके द्वारा प्रयुक्त पदोंके निर्वाह मात्रके लिए होता है, अतएव सर्वत्र उक्तार्थका प्रयोग तो कदापि नहीं करना चाहिए। इस आशयसे यह सूत्र कहते हैं—) उक्तार्थ पदका वह प्रयोग महाकवियोंके प्रयुक्त पदोंमें ही होता है।

यह उक्तार्थ पदका प्रयोग (महाकवियोंके) प्रयुक्त पदोंमें ही होता है; अप्रयुक्त पदोंमें नहीं। जैसे (महाकवि-प्रयुक्त)—'श्रवणकुण्डल' शब्दमें उक्तार्थ 'श्रवण' शब्दका प्रयोग मान्य है, वैसे 'नितम्बकाञ्ची' शब्दमें 'काञ्ची' पदसे गतार्थ 'नितम्ब' शब्दका प्रयोग महाकवि-प्रयुक्त न होने से मान्य नहीं है। अथवा जैसे (महाकवि-प्रयुक्त)—'करिकलभ'शब्दमें उक्तार्थ 'करि' शब्दका प्रयोग मान्य है; वैसे 'उष्ट्रकलभ' शब्दमें उक्तार्थ 'उष्ट्र' शब्दका प्रयोग महाकवि-प्रयुक्त नहीं होनेसे मान्य नहीं है। इस विषयमें श्लोक हैं—

'कर्णावतंस' आदि (श्रवणकुण्डल, शिरःशेखर, पुष्पमाला आदि) में 'कर्ण' आदि (श्रवण, शिरः, पुष्प आदि उक्तार्थ) पदका प्रयोग 'सामीप्य' आदि अर्थ के बोधार्थ है, (पर) ऐसे प्रयोग का समर्थन महाकवियोंके प्रयुक्त पदोंके लिए ही है, (अन्यत्र नहीं) ॥ १९ ॥

तदेतत् सार्थकत्वसमर्थनमभियुक्तपदनिर्वाहाय, न सर्वत्रेति नियन्तुमाह—तदिदमिति। प्रयुक्तेषु, अभियुक्तैरिति शेषः। नाऽप्रयुक्तेषु। तथोक्तं काव्यप्रकाशे—'कर्णावतंसादिपदे कर्णादिध्वनिनिर्मितिः। सन्निधानादिबोधार्थं स्थितेष्वेतत् समर्थनम्' इति। अप्रयुक्तानि दर्शयति—यथेति ॥ १९ ॥

संशयकृत् सन्दिग्धम् ॥ २० ॥

यद्वाक्यं साधारणानां धर्माणां श्रुतेर्विशिष्टानां वा [2]श्रुतेः संशयं करोति, तत् संशयकृत् सन्दिग्धमिति। यथा—

१. 'अत्र श्लोकः—कर्णावतं······समर्थनम्।' इत्यंशः 'ख' पु० वृत्तिरूपेण न पठितः, किन्तु 'तथोक्तं काव्यप्रकाशे—कर्णा······समर्थनम्।' इत्येवं कामधेनुव्याख्यायामेव पठितः।

२. 'चाश्रुतेः' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'स महात्मा भाग्यवशान्महापदमुपागतः'।

किं भाग्यवशान्महापदमुपागतः, आहोस्विदभाग्यवशान्महतीमापदमिति संशयकृद् वाक्यं, प्रकरणाद्यभावे सतीति ॥ २० ॥

(अब इस अध्यायके नवम सूत्रमें प्रतिपादित दोषोंमें-से क्रमप्राप्त 'सन्दिग्ध' दोषका लक्षण कहते हैं—) संदेह उत्पन्न करनेवाला वाक्य 'सन्दिग्ध' नामक 'वाक्यार्थदोष' है।

जो वाक्य सामान्य या विशेष धर्मोंके सुननेसे सन्देह उत्पन्न करता है, वह सन्देह-कारक वाक्य 'सन्दिग्ध'-दोष है। जैसे—

उस महात्माने भाग्यवश महापद पाया।

क्या उस महात्माने भाग्यवश महापद (श्रेष्ठस्थान) पा लिया अथवा भाग्यवश (महा+आपद्) महापद् बड़ी आपत्ति पा ली। प्रकरणके अभावमें यह वाक्य (सन्धिद्वारा) सन्देह उत्पन्न करनेसे 'सन्दिग्ध' नामक दोष है ॥ २० ॥

इत्थमेकार्थं समर्थ्य सन्दिग्धं समर्थयितुमाह—संशयकृत्सन्दिग्धमिति—व्याचष्टे। यद्वाक्यमिति। विशिष्टानामिति—असाधारणानामित्यर्थः। उक्तलक्षणमुदाहरणे योजयति—किम्भाग्यवशादिति। लक्षणं विशिनष्टि—प्रकरणादीति। अत्रादिपदेन संयोगादयो गृह्यन्ते। यथोक्तं हरिणा—

'संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्याऽन्यस्य सन्निधिः ॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्याऽनवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः ॥' इति ॥ २० ॥

मायादिकल्पितार्थमप्रयुक्तम्[1] ॥ २१ ॥

मायादिना कल्पितोऽर्थो यस्मिंस्तन्मायादिकल्पितार्थमप्रयुक्तम्। अत्र स्तोकमुदाहरणम्[2] ॥ २१ ॥

माया (कपट) आदिसे कल्पित अर्थ है जिस वाक्यमें, वह 'अप्रयुक्त' नामक दोष है।

माया (कपट) आदिके साथ कल्पित अर्थ है, जिसमें वह मायादि कल्पितार्थ (वाक्य) 'अप्रयुक्त'-दोष है। इस विषयमें कम उदाहरण हैं ॥ २१ ॥

अप्रयुक्तं[3] व्यक्तयितुमाह—मायादिकल्पितार्थमप्रयुक्तमिति। मायादिना कुशलमतिकुण्ठनपटिष्ठकुहनादिना कल्पितोऽर्थो यस्मिंस्तद्वाक्यमप्रयुक्तं भवति। अत्र स्तोकमुदाहरणमिति। विवृतं हि विदग्धमुखमण्डने—'प्राहुर्व्यस्तं समस्तं च दिर्व्यस्तं द्विस्समस्तकम्। तथा व्यस्तसमस्तं च द्विर्व्यस्तकसमस्तके ॥' इत्यादिना ॥ २१ ॥

१, ३. 'विकल्पितार्थमयुक्तम्' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'कल्पितः, कल्पितार्थमयुक्तम्, स्तोकम्' इत्येषां स्थाने क्रमेण 'विकल्पितः' विकल्पितार्थमयुक्तम्, 'अस्तोक' इत्येवं 'ख' पु० मूले एतदनुरूपमेव कामधेनु च पठितम्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

क्रमहीनार्थमपक्रमम् ॥ २२ ॥

उद्देशितानामनुद्देशितानां[1] च क्रमः सम्बन्धः। तेन [2]विहीनोऽर्थो यस्मिन्स्तत् क्रमहीनार्थमपक्रमम्। यथा—

'कीर्तिप्रतापौ भवतः सूर्याचन्द्रमसोः समौ'।

अत्र कीर्तिश्चन्द्रमसस्तुल्या, प्रतापः सूर्यस्य तुल्यः, सूर्यस्य पूर्वनिपातादक्रमः। अथवा—प्रधानस्यार्थस्य [3]निर्देशः क्रमः, तेन [4]विहीनोऽर्थो यस्मिंस्तदपक्रमम्। यथा[5]—

'तुरङ्गमथ मातङ्गं प्रयच्छास्मै मदालसम्'[6] ॥ २२ ॥

(अब क्रमागत 'अपक्रम' नामक वाक्यदोष कहते हैं—) क्रमसे हीन अर्थवाला (वाक्य) 'अपक्रम' नामक दोष है।

उद्देशितों (पूर्ववर्णितों) और अनुद्देशितों (पूर्व अवर्णितों) का सम्बन्ध क्रम है। उससे विहीन अर्थ जिस वाक्यमें है, वह वाक्य क्रमहीनार्थक (क्रमशून्य अर्थवाला) होनेसे 'अपक्रम' नामक वाक्यार्थ दोष है। जैसे—

आपकी कीर्ति और प्रताप सूर्य और चन्द्रमाके तुल्य हैं।

यहाँ कीर्ति चन्द्रमाके और प्रताप सूर्यके तुल्य है, यह कविका उद्देश्य है। इसके लिए 'चन्द्रमस्' शब्द पहले और 'सूर्य' शब्दका बादमें निपात उचित है, परन्तु 'सूर्य' शब्दका पहले निपात करनेसे 'अपक्रम' दोष है। अथवा—मुख्य अर्थका निर्देश 'क्रम' है, उससे विहीन अर्थ जिस वाक्यमें है, वह 'अपक्रम' नामक वाक्यदोष है। जैसे—

इसके लिए घोड़ा दो, अथवा मतवाला हाथी। (यहाँ मुख्य मतवाला हाथीको देना पहले कहना उचित है, पर घोड़ेके न होने पर मतवाला हाथी को देना बादमें कहनेसे 'अपक्रम' नामक वाक्यदोष है) ॥ २२ ॥

अपक्रममालोचयितुमुपक्रमते—क्रमहीनार्थमपक्रममिति। प्रतियोगिप्रतिपत्तिपूर्वकत्वात् क्रमाभावप्रतिपत्तेः प्रथमतः क्रममेकं प्रथयितुमाह–उद्देशितानामिति। तेन विहीनं[7] स्तदभाववान्। उदाहरति–यथेति। उज्ज्वलार्थमन्यं[8] क्रममभिधत्ते–अथवेति। प्रधानस्य अभ्यर्हितस्येत्यर्थः। मातङ्गं, तुरङ्गं[9] वा प्रयच्छेति वक्तव्ये व्युत्क्रमेणोक्तं वाक्यमस्य कवेरनभिज्ञतामापादयतीति दुष्टम् ॥ २२ ॥

---

१. 'उद्देशिनामनुद्देशिनां' इति 'ख' पु० पा०।

२, ४. मूलानुराधादत्रापि 'हीन' इति 'ख-ग' पु० पा० एव सम्यक्।

३. 'प्रथमनिर्देश' इति 'ख-ग' पु० पा०।

५. कुत्रचित् 'अत्र……अपक्रमः' इत्यंशः, कुत्रचिच्च 'अत्र……यथा' इत्यंशो नोपलभ्यते।

६. एतदग्रे 'इति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

७. 'उद्देशिनामिति। तेन हीनः' इति 'ख' पु० पा०।

८. 'उदाहरति यथेति। उज्ज्वलार्थमन्यं' इत्यत्र 'कीर्तीति। उदाहरणमुज्ज्वलार्थम्। अन्यं' इति 'ख' पु० पा०।

९. 'मित्यर्थः। तुरङ्गमिति—मातङ्ग' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

देशकालस्वभावविरुद्धार्थानि लोकविरुद्धानि ॥ २३ ॥

देशकालस्वभावैर्विरुद्धोऽर्थो येषु तानि देशकालस्वभावविरुद्धार्थानि वाक्यानि लोकविरुद्धानि । अर्थद्वारेण लोकविरुद्धत्वं वाक्यानाम् । देशविरुद्धं यथा—

'सौवीरेष्वस्ति नगरी [1]मधुरा नाम विश्रुता ।
अक्षोटनालिकेराढ्या यस्याः पर्यन्तभूमयः ॥'

कालविरुद्धं यथा—

'कदम्बकुसुमस्मेरं मधौ वनमशोभत' ।

स्वभावविरुद्धं यथा—

'मत्तालिमे[2]ङ्गमुखरासु च मञ्जरीषु सप्तच्छदस्य तरतीव शरन्मुखश्रीः ।'

सप्तच्छदस्य स्तबका भवन्ति, न मञ्जर्य इति स्वभावविरुद्धम् । यथा—

'भृङ्गेण कलिकाकोशस्तथा भृशमपीडयत[3] ।
यथा गोष्पदपूरं हि ववर्ष बहुलं मधु ॥'

कलिकायाः सर्वस्या मकरन्दस्यैतावद् बाहुल्यं स्वभावविरुद्धम् ॥ २३ ॥

(सम्प्रति क्रमानुसार 'लोकविरुद्ध' वाक्यदोषोंको कहते हैं—) देश, काल (समय) और स्वभावसे विरुद्ध अर्थवाले वाक्य 'लोकविरुद्ध' नामक 'वाक्यदोष' है ।

देश, काल और स्वभावसे विरुद्ध अर्थ है जिन (वाक्यों) में, वे देश-काल-स्वभाव विरुद्धार्थ वाक्य लोकविरुद्धार्थ वाक्य हैं । अर्थके द्वारा ही वाक्यों की लोक-निरुद्धता होती है । (उनमें क्रमागत) 'देशविरुद्ध' जैसे—

सौवीर देशमें मधुरा नामकी प्रसिद्ध नगरी है, जिसके आस-पासकी भूमि अखरोट और नारियलोंसे भरपूर है । यहाँपर—उत्तरप्रदेशमें यमुना नदीके तटपर स्थित श्रीकृष्णकी क्रीडास्थली मधुरा (या मथुरा) नगरी है, जहाँ करील और झरबेरी की झाड़ियोंका बाहुल्य है, परन्तु प्रकृतमें उसका वर्णन अखरोट और नारियलसे भरपूर सौवीर देशमें किया गया है, अतएव यह 'देशविरुद्ध' है ।

कालविरुद्ध जैसे—

वसन्त ऋतुमें कदम्बके फूलोंसे मुस्कराता वन (प्रदेश) शोभित हुआ । (वर्षा ऋतुमें कदम्ब वृक्ष फूलते हैं, न कि वसन्त ऋतुमें । अतः यहाँ वसन्तमें कदम्बके फूलोंसे वनको विकसित होनेका वर्णन 'कालविरुद्ध' दोष है) ।

स्वभावविरुद्ध जैसे—

मतवाले भौंरे रूप वन्दियों (स्तुतिपाठकों) से मुखर सप्तच्छद (छितौने) की मञ्जरियोंमें शरत्कालीन प्रारम्भिक शोभा मानो तैर रही है ।

छितौने फूलोंके गुच्छे होते हैं, लम्बी मञ्जरियाँ नहीं होतीं; अतएव यहाँ सप्तच्छदोंकी मञ्जरियोंका वर्णन 'स्वभावविरुद्ध' दोष है । और (दूसरा उदाहरण—) ।

१. 'मथुरा' इति 'क-ख' पु० पा० । २. '···सङ्ग···' इति 'क' पु० पा० ।
३. 'भङ्गौघैः······स्तथा सन्धावपीडयत' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

भौंरेने कली (अविकसित पुष्प) के कोशको इतना अधिक दबाया कि गायके खुरसे बने गर्त (गढ़े) को भरने लायक अधिक मधु बरस (बह) गया।

कलिका-कोशमें इतने अधिक मधु (पराग) का होना कलिकास्वभावके प्रतिकूल होनेसे यहाँ भी 'स्वभावविरुद्ध' वाक्यार्थ दोष है ।। २३ ।।

लोकविरुद्धं दर्शयितुमाह—देशकालस्वभावविरुद्धार्थानीति । अर्थद्वारेणेति । विरुद्धाऽर्थप्रतिपादकत्वाद्वाक्यानि विरुद्धानि व्यपदिश्यन्ते । क्रमेणोदाहरति—देशविरुद्धमिति । सौवीरेष्विति । अक्षोटाः शैलोत्पन्ना गुडफलवृक्षाः । 'पीलौ गुडफलस्त्रंसी तस्मिंस्तु गिरिसम्भवे । अक्षोटकन्दरालौ द्वौ' इत्यमरः । यमुनातीरवर्तिन्या [1]मधुराया नगर्याः । सौवीरेषु देशेष्वसम्भवाद् देशविरोधः । कदम्बेति । मधुर्वसन्तः । 'चैत्रवसन्तमधुद्रुमदैत्यविशेषेषु पुंसि मधुशब्दः' इति नानार्थरत्नमाला । प्रावृषि प्रसवोद्गमशालिनः कदम्बस्य वसन्ते प्रसूनप्रसङ्गासम्भवात् कालविरोधः । मत्तालिमङ्खेति । मङ्खः स्तुतिपाठकः । 'नान्दीकारश्चाटुकारो मङ्खश्च स्तुतिपाठकः' इति वैजयन्ती । स्तबकाः गुच्छाः । 'स्याद् गुच्छकस्तु स्तबकः' इत्यमरः । ते नाम स्तबकाः पुष्पाणि पुञ्जीभूय यत्र [2]प्रवर्तन्ते । मञ्जर्यो वल्लर्यः । 'वल्लरी मञ्जरी स्त्रियाम्' इत्यमरः । यत्राऽऽयामवती प्रसूनपरिपाटी ता मञ्जर्यः । अतः सप्तच्छदस्य स्वभावतो गुच्छा एव, न तु मञ्जर्यः सम्भवन्तीति स्वभावविरुद्धम् । भृङ्गेणेति । कलिका कोरकः । अनुद्भिन्नमुकुला कलिका, कालिका कोशः । [3]तत्र गोष्पदपूरणपर्याप्तस्य मधुनोऽसम्भवात् स्वभावविरुद्धम् । गोष्पदपूरमित्यत्र, गोः पदं प्रमाणतयाऽवच्छेदकमस्य वर्षस्येत्यस्मिन्नर्थे गोष्पदमिति भवति । 'गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु' (पा० ६।१।१४५) इति गोष्पदशब्दो निपातितः । गोष्पदं पूरयित्वा ववर्ष गोष्पदपूरं ववर्ष । 'वर्षप्रमाण ऊलोपश्चान्यतरस्याम्' (३।४।३२) इति णमुल् । लोकविरुद्धमपि क्वचित् कविसमयप्रसिद्धेः प्राबल्यान्न दुष्टम् । यथा—'सुसितवसनालङ्कारायां कदाचन कौमुदीमहसि सदृशि स्वैरं यान्त्यां गतोऽस्तमभूद्विधुः । तदनु भवतः कीर्तिः केनाप्यगीयत येन सा प्रियगृहमगान्मुक्ताशङ्का क्व नाऽसि शुभप्रदः' इति । एवमन्यत्र[4] लोकयात्राकविमर्यादयोर्विप्रतिषेधे पूर्वदौर्बल्यमवगन्तव्यम् ।। २३ ।।

कलाचतुर्वर्गशास्त्रविरुद्धार्थानि विद्याविरुद्धानि ।। २४ ।।

कलाशास्त्रैश्चतुर्वर्गशास्त्रैश्च विरुद्धोऽर्थो येषु तानि कलाचतुर्वर्गशास्त्रविरुद्धार्थानि वाक्यानि विद्याविरुद्धानि । वाक्यानां विरोधोऽर्थद्वारकः । कलाशास्त्रविरुद्धं यथा—

'कालिङ्गं लिखितमिदं वयस्य ! पत्रं पत्रज्ञैरपतितकोटिकण्टकाग्रम् ।'

कालिङ्गं पतितकोटिकण्टकाग्रमिति पत्रविदामाम्नायः । तद्विरुद्धत्वात् कलाशास्त्रविरुद्धम् । एवं कलान्तरेष्वपि विरोधोऽभ्यूह्यः । चतुर्वर्गशास्त्रविरुद्धानि तूदाह्रियन्ते—

१. 'मथुराया' इति 'ख' पु० पा० । २. 'वर्तन्ते' इति 'ख' पु० पा० ।
३. 'तत्र' इति पाठः 'ग' पु० अनुरोधादौचित्याच्च वर्धितः ।
४. 'एवमन्यत्रापि' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'कामोपभोगसाफल्यफलो[1] राज्ञां महीजयः ।'

'धर्मफलोऽश्वमेधादियज्ञफलो वा राज्ञां महीजयः' इत्यागमः । तद्विरोधाद् धर्मशास्त्रविरुद्धमेतद्वाक्यमिति[2] ।

'अहङ्कारेण जीयन्ते द्विषन्तः किं नयश्रिया' ।

द्विषज्जयस्य नयमूलत्वं स्थितं दण्डनीतौ । तद्विरोधादर्थशास्त्रविरुद्धं[3] वाक्यमिति ।

'दशनाङ्कपवित्रितोत्तरोष्ठं[4] रतिखेदालसमाननं स्मरामि' ।

'उत्तरोष्ठमन्तर्मुखं नयनान्तमिति मुक्त्वा चुम्बननखरदशनस्थानानि' इति कामशास्त्रे स्थितम् । तद्विरोधात् कामशास्त्रविरुद्धार्थं वाक्यमिति ।

'देवताभक्तितो मुक्तिर्न तत्त्वज्ञानसम्पदा' ।

एतस्यार्थस्य मोक्षशास्त्रे स्थितत्वात् तद्विरुद्धार्थम् । एते वाक्यवाक्यार्थदोषास्त्यागाय ज्ञातव्याः । ये त्वन्ये शब्दार्थदोषाः सूक्ष्मास्ते गुणविवेचने लक्ष्यन्ते । उपमादोषाश्चोपमाविचार इति[6] ॥ २४ ॥

इति श्रीकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ दोषदर्शने द्वितीयेऽधिकरणे
द्वितीयोऽध्यायः । [7]वाक्यवाक्यार्थदोषविभागः ।
समाप्तं चेदं दोषदर्शनं द्वितीयमधिकरणम् ॥२॥

(अब अन्तमें क्रमप्राप्त 'विद्याविरुद्ध' वाक्योंको कहते हैं—) कला और चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के प्रतिपादक शास्त्रोंसे विरुद्ध अर्थवाले वाक्य 'विद्याविरुद्ध' नामक दोष है ।

कलाशास्त्र और चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) शास्त्रोंके विरुद्ध अर्थ जिन (वाक्यों) में हैं, वे 'कलाचतुर्वर्गशास्त्रविरुद्धवाक्यार्थ' 'विद्याविरुद्ध' नामक दोष होते हैं । वाक्योंका विरोध अर्थद्वारा होता है । (क्रमप्राप्त पहला) 'कलाशास्त्र-विरुद्ध' जैसे—

हे वयस्य ! पत्रके विद्वानोंके द्वारा कालिङ्ग(कलिङ्ग देशके लोगोंमें देखी गयी)-पद्धतिसे लिखा गया यह पत्र लोहेकी वनी हुई नुकीली खड़ी कीलके अग्रभागसे लिखा है ।

कलिङ्ग देशकी लेखन-पद्धति कीलके गिरे हुए अग्रभाग (नोक) से लिखनेकी है, ऐसा पत्र-लेखक विद्वानोंका सम्प्रदाय (परम्परा) है । किन्तु प्रकृत उदाहरणमें

१. 'साकल्पफलो' इत्येव 'ख' पु० पा० सम्यक् 'ख' पु० अनुरोधादौचित्याच्च ।
२–३. 'विरुद्धार्थ······' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।
४–५. '···तोत्तरौष्ठं' इति 'क' पु० पा० 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा' (वा०) इति वार्तिकप्रवृत्तेः ।
६. 'गुणविवेचन एवोच्यन्ते' इति 'क, ग' पु०, '······विवेचन वक्ष्यन्ते' इति 'ख' पु० पा० ।
७. 'वाक्यवाक्यार्थदोषविभागो नाम द्वितीयोऽध्यायः' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उसके विरुद्ध वर्णन होनेसे यहाँ 'कलाशास्त्रविरुद्ध' दोष है। इसी प्रकार दूसरी (लेखनसे भिन्न) कलाओंमें जानना चाहिए। अब चतुर्वर्गशास्त्रविरुद्धोंके उदाहरण कहते हैं (उनमें-से प्रथम 'धर्मशास्त्रविरुद्ध'का उदाहरण—)।

राजाओंके पृथ्वीपर विजय पानेका फल कामका उपभोग है।

'राजाओंके पृथ्वी-विजयका फल धर्म अथवा अश्वमेध आदि (विश्वजित् आदि) यज्ञ करना है। यह शास्त्रीय वचन है। परन्तु प्रकृत उदाहरणमें उसके विरुद्ध (कामका उपभोगरूप) फल कहनेसे धर्मशास्त्रविरुद्ध यह वाक्यार्थ है।

(द्वितीय 'अर्थशास्त्रविरुद्ध'का उदाहरण—) शत्रु अहङ्कारसे जीते जाते (पराजित होते) हैं, नीतिसे क्या प्रयोजन है।

शत्रुओंकी विजयको दण्डनीति (शास्त्र) में नय(नीति)मूलक कहा गया है। परन्तु प्रकृत वाक्य उसके विरुद्ध होनेसे 'अर्थशास्त्रविरुद्ध' है।

तृतीय 'कालशास्त्रविरुद्ध' का उदाहरण—दन्तक्षत (सुरतकालमें दाँतोंसे काटने) के चिह्नसे युक्त ऊपरके ओष्ठवाले रतिजन्य थकावटसे अलसित (आलस्यपूर्ण प्रिया के) मुख का स्मरण करता हूँ।

ऊपरका ओष्ठ, मुख भीतरी भाग और नेत्रप्रान्त—इनको छोड़कर (शेष) चुम्बन, नखक्षत और दंतदशनके स्थान हैं, ऐसी कामशास्त्रकी मर्यादा है। प्रकृत उदाहरणमें ऊपरवाले ओष्ठके दन्तक्षतके चिह्नका वर्णन करनेके कारण कामशास्त्र-विरुद्ध वाक्य है।

(चतुर्थ 'मोक्षशास्त्रविरुद्ध' का उदाहरण—) देवताकी भक्तिसे मुक्ति (मोक्ष) होती है, तत्त्वज्ञानकी सम्पत्तिसे नहीं।

इस विषयके मोक्षशास्त्रमें प्रतिपादित होनेसे उसके विरुद्ध (ज्ञानसंपत्तिमें मुक्ति नहीं होती है) कथन प्रकृत उदाहरणमें होनेसे 'मोक्षशास्त्रविरुद्ध' है। (प्रकृत उदाहरणमें 'आर्त, जिज्ञासु और अर्थेच्छुक' द्वारा की गयी भक्ति अपेक्षित है; ज्ञानलक्षणा भक्ति नहीं। परन्तु 'ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, 'ज्ञानसे ही कैवल्य (मोक्ष) होता है' मोक्षशास्त्रोंमें प्रतिपादित इन वाक्योंसे विरुद्ध देवताभक्तिद्वारा मुक्ति कहनेसे यह 'मोक्षशास्त्रविरुद्ध' वाक्य है। इस प्रकार 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष'रूप चतुर्वर्ग-शास्त्रके विरुद्धार्थक वाक्य 'विद्याविरुद्ध' दोष हैं)। इन वाक्यदोषों और वाक्यार्थदोषोंको त्यागके लिए जानना चाहिए अर्थात् इन्हें जानकर काव्य-रचनामें त्याग करना चाहिए। जो दूसरे शब्ददोष और अर्थदोष सूक्ष्म हैं, वे 'गुणविवेचन' (नामक तृतीयाध्याय) में कहे जायेंगे तथा 'उपमा-दोष' उपमा (अलङ्कार) विचार प्रकरणमें कहे जायेंगे ॥ २४ ॥

विद्याविरुद्धानि विवरीतुमाह—कलाचतुर्वर्गेति। शास्त्रपदस्योभयत्र सम्बन्धः। प्रतिपाद्यस्य दुष्टत्वे प्रतिपादकमपि दुष्टं भवतीत्याह—वाक्यानामिति। कलाशास्त्रविरुद्धमुदाहरति—[1]कालिङ्गमिति। कलिङ्गजनेषु दृष्टं पत्रं कालिङ्गमित्युच्यते—तच्च

१. 'कालिङ्गमिति' एतत्पूर्वं 'कलाशास्त्रेति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पतितकोटिकण्टकाग्रतया लेखनीयम् । तत्रार्थे तच्छास्त्रफक्किकामाह—कालिङ्गं पतितकोटिकण्टकाग्रमिति । पत्रविदामाम्नाय इति । विरोधस्तु परिस्फुट एव । एवमिति । भरतकलाविरोधो यथा—'रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः' इत्यादावानुलोम्येन प्रातिलोम्येन वा नभस्वत्सञ्चारक्रमेण स्वरा उत्पद्यन्ते, न पुनर्वैचित्र्येणेति कुतो रागसम्बन्धिनीनां मूर्च्छनानां स्फुटीभाव इत्यादि द्रष्टव्यम् । धर्मार्थकाममोक्षाश्चतुर्वर्गः । 'त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः' इत्यमरः । तत्प्रतिपादकशास्त्राणि चतुर्वर्गशास्त्राणि । तद्विरुद्धानि क्रमेणोदाहर्तुं प्रतिजानीते—चतुर्वर्गेति । तत्र धर्मशास्त्रविरुद्धमुदाहरति—कामोपभोगेति । तत्रागमवाक्यं दर्शयति—अश्वमेधादीति । महीजयस्य राज्ञामश्वमेधादिफलत्वेन धर्मशास्त्रेऽभिधानात् । तद्विरुद्धं कामोपभोगसाकल्यफलवाक्यम् । यथा वा—'सदा स्नात्वा निशीथिन्यां सकलं वासरं बुधः । नानाविधानि शास्त्राणि व्याचष्टे च शृणोति च' । अत्र ग्रहोपरागं विना रात्रौ स्नानं धर्मशास्त्रविरुद्धम् । 'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत राहोरन्यत्र दर्शनाद्' इति स्मृतेः । अर्थशास्त्रमत्र दण्डनीतिः । यत्र पुनरर्थकामौ प्रधानं, लोकयात्रानुवृत्तिमात्राय धर्मः, सा दण्डनीतिः । यस्या भगवान् बृहस्पतिः प्रवक्ता । तद्विरुद्धमुदाहरति—अहङ्कारेणेति । विरोधं विवृणोति—[1]द्विषज्जयस्येति । [2]कामशास्त्रं, यत्र त्रिवर्गस्य परस्परानुपरोधादुपयोगोपदेशः । यस्य भगवान् भार्गवः प्रणेता । कामशास्त्रविरुद्धं दर्शयति । उक्तं हि रतिरहस्ये—'अङ्गुष्ठे पदगुल्फजानुजघने' इत्यादि । मोक्षशास्त्रविरुद्धमुदाहरति—देवताभक्तित इति । विरोधं व्युत्पादयति—एतस्येति । 'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते' इत्युक्तनीत्या या ज्ञानलक्षणा भक्तिः, साऽत्र न विवक्षिता । किन्त्वार्तत्वादिप्रयुक्ता त्रिरूपा । ज्ञानरूपायास्तु भक्तेर्मोक्षो भवत्येव । तदुक्तं तत्रैव । 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता) इति । अतो 'न तत्त्वज्ञानसम्पदे'त्येतत्, 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' इत्यादिमोक्षशास्त्रविरुद्धम् । प्रतिपादितानाममीषां दोषाणां परिज्ञानस्य फलमाह—एत इति । ये त्वन्य इति । सूक्ष्माः काव्यसौन्दर्याक्षेपाऽनतिक्षमाः, ओजोविपर्ययात्मा दोष इत्यारभ्य तदुदाहरणप्रत्युदाहरणाभ्यां वक्ष्यन्ते, ते गुणविवेचने यथायथमवबोध्याः । यद्येवं तर्हि स्थूलत्वादुपमादोषादयो[3] दोषविवेचने विविच्यन्तामित्यत आह—उपमादोषाश्चेति । उपमाविचारे तद्दोषविचारणं प्रति सौकर्याय भवतीति भावः ॥ २४ ॥

इति कृतरचनायामिन्दुवंशोद्वहेन त्रिपुरहरधरित्रीमण्डलाखण्डलेन ।
ललितवचसि काव्यालङ्क्रियाकामधेनावधिकरणमयासीत् पूर्तिमेतद् द्वितीयम् ॥१॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां वामनालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ दोषदर्शने द्वितीयेऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २।२ ।

---

१. प्राक्तनः 'द्विषज्जयस्येति । कामशास्त्र······प्रणेता । उक्तं हि' इत्ययं पाठः 'ख' पु० अनुरोधेनेत्थं परिवर्तितः ।

२. 'तत्कामशास्त्रं' इति 'ख' पु० पा० । ३. '······पमादोषा' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

गुणविवेचनं नाम तृतीयमधिकरणम् ।

प्रथमोऽध्यायः

यद्विपर्ययात्मानो दोषास्तान् गुणान् विचारयितुं गुणविवेचनमधिकरणमारभ्यते । तत्रौजःप्रसादादयो गुणाः, यमकोपमादयस्त्वलङ्कारा इति स्थितिः काव्यविदाम् । तेषां किं भेदनिबन्धनमित्याह—

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः[1] ॥ १ ॥

ये खलु शब्दार्थयोर्धर्माः काव्यशोभां कुर्वन्ति ते गुणाः । ते चौजःप्रसादादयः । न यमकोपमादयः; कैवल्येन[2] तेषामकाव्यशोभाकरत्वात् । ओजःप्रसादादीनां तु केवलानामस्ति काव्यशोभाकरत्वमिति ॥ १ ॥

(अब 'गुणविवेचन' नामक तृतीय अधिकरण आरम्भ करते हैं—) जिनके विपर्यय(विपरीत)स्वरूप दोष होते हैं, उन गुणों का विचार करनेके लिए 'गुणविवेचन' नामक (यह तृतीय) अधिकरण आरम्भ किया जाता है। उनमें ओज, प्रसाद (माधुर्य आदि) गुण हैं; यमक, उपमा आदि (रूपक, आदि) अलङ्कार हैं; यह काव्यविदोंका मत है। उन (गुणों तथा अलङ्कारों) में भेदका कारण क्या है? (इस सूत्रमें) कहते हैं—

काव्यकी शोभा उत्पन्न करनेवाले धर्म 'गुण' हैं।

शब्द और अर्थके जो गुण काव्यकी शोभा उत्पन्न करते हैं, वे गुण कहे जाते हैं। तथा वे (गुण) ओज, प्रसाद आदि (माधुर्य आदि) हैं। यमक, उपमा आदि (रूपक, उत्प्रेक्षा आदि) गुण नहीं हैं। क्योंकि वे (यमक, उपमा आदि अलङ्कार) केवल दूसरेकी सहायताके विना काव्यकी शोभा उत्पन्न नहीं करते। ओज, प्रसाद आदि (माधुर्य आदि गुण) तो दूसरेकी सहायताके बिना भी काव्यकी शोभा उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

देव्याः कृतिषु दीव्यन्त्या वाचां वैचित्र्यकारिणीम् ।
चेतोहरचमत्कारां प्रस्तौमि गुणविस्तृतिम् ॥

अथ गुणविवेचनं तृतीयमधिकरणमारभ्यते––उक्तवक्तव्यसङ्गतिमुल्लिङ्गयति—यद्विपर्ययात्मानो दोषा इति । निर्वृत्ते दोषनिरूपणे तत्प्रतिभटानां गुणानां निरूपणं लब्धावसरमिति सङ्गतिः । गुणा अलङ्कारेभ्यो विविच्यन्ते । ते च परस्परं विविच्यन्ते विभज्यन्तेऽस्मिन्निति गुणविवेचनं नामाधिकरणमारभ्यते । 'काव्यशोभाकरान् धर्मानल-

---

१. 'धर्मगुणाः' इति क्वचित्पाठः ।

२. 'कैवल्ये' इति पाठोऽपि क्वचित् ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ङ्कारान् प्रचक्षते। काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ताः प्रागप्यलङ्क्रियाः' इति दण्डिमतं खण्डयितुं गुणालङ्कारभेदं दर्शयिष्यन् पीठिकां प्रतिष्ठापयति—तत्रेति। काव्यविदां कविकर्ममर्मविदाम् ओजःप्रसादादीनां गुणा इति यमकोपमादीनामलङ्कारा इति च विभिन्नव्यवहारविषयत्वं व्यवस्थितमित्यर्थः। उत्तरसूत्रं प्रश्नपूर्वकं[1] प्रसञ्जयति—तेषामिति। तेषां गुणालङ्काराणां भेदस्य किं निबन्धनं कारणमिति प्रश्नः। व्याचष्टे—ये खल्विति। गुणा वस्तुतो रीतिनिष्ठा अपि उपचाराच्छब्दधर्मा इत्युक्तम्। एतच्च गुणोद्देशसूत्रे कुशलमुपपादयिष्यामः। गुणशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमयोगाऽन्ययोगव्यवच्छेदाभ्यां परिच्छेत्तुं प्रक्रमते—ते चेति। अन्ययोगव्यवच्छेदं तावदाख्याति—कैवल्येनेति। तेषामलङ्काराणां कैवल्येन गुणसाहचर्याभावेन काव्यशोभाकलनाक्षमत्वादित्यर्थः। अयोगं व्यवच्छिनत्ति—ओजःप्रसादादीनां त्विति। केवलानामसाहचर्याणाम्[2]स्त्येवेति सम्बन्धः॥ १॥

तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः ॥ २॥

तस्याः काव्यशोभाया अतिशयस्तदतिशयस्तस्य हेतवः। तुशब्दो व्यतिरेके। अलङ्काराश्च यमकोपमादयः। अत्र श्लोकौ—

'युवतेरिव रूपमङ्ग! काव्यं[3] स्वदते शुद्धगुणं तदप्यतीव।
विहितप्रणयं निरन्तराभिः सदलङ्कारविकल्पकल्पनाभिः॥' १॥
'यदि भवति वचश्च्युतं गुणेभ्यो वपुरिव यौवनवन्ध्यमङ्गनायाः।
अपि जनदयितानि दुर्भगत्वं नियतमलङ्करणानि संश्रयन्ते॥' २॥

(अलङ्कार शब्दके प्रवृत्ति-निमित्तको इस सूत्रमें कहते हैं—) उस (काव्यकी शोभा) को बढ़ानेमें कारण अलङ्कार हैं।

उस काव्य-शोभाका अतिशय (अधिकता) तदतिशय हुआ, उसके कारण (अलङ्कार हैं)। यहाँ (सूत्रमें) 'तु' शब्द (गुण तथा अलङ्कारमें) भेदका बोधक है। अलङ्कार यमक, उपमा आदि (रूपक आदि) हैं। (इसके उदाहरणमें) दो श्लोक हैं—

(प्रसाद आदि) शुद्ध गुणोंसे युक्त वह काव्य, नौजवान स्त्रीके आभूषणोंकी अच्छी संरचनाके कारण सुन्दर रूपके समान रसिकलोगोंका अधिक आकर्षक तथा निरन्तर (प्रत्यङ्गमें पहने गये) अलङ्कारोंसे विभूषित युवतिका यह रूप आनन्दप्रद होता है। (इसी प्रकार ओज आदि गुणों और उपमा आदि अलङ्कारोंवाला काव्य भी काव्यरस-मर्मज्ञोंके लिए आनन्दप्रद होता है।)

(अब व्यतिरेकसे द्वितीय श्लोक कहते हैं—) यदि काव्यरूपी वचन गुणों (ओज, प्रसाद आदि गुणों) से हीन होता है, तो यौवन-हीन स्त्रीके शरीरके समान मालूम

---

१. 'प्रश्नपूर्वकमुत्तरसूत्रं' इति 'ख' पु० पा०।
२. '⋯मसहचरितानामस्त्ये⋯⋯' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'रूपमङ्ग!' इति पृथक् पाठः 'क-ख' पु० '⋯⋯मङ्ग! वाक्यं' इत्यपि पा० क्वचित्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पड़ता है और लोगोंके प्रिय लगनेवाले आभूषण भी सौन्दर्यहीन होनेसे अप्रिय लगते हैं, एवमेव उपमा आदि अलङ्कारोंसे युक्त, (ओज, प्रसाद आदि) गुणोंसे हीन काव्य भी काव्यरसिकोंको प्रिय नहीं लगते हैं ॥ २ ॥

अलङ्कारपदप्रवृत्तिनिमित्तमावेदयितुमाह—तदतिशयहेतव इति । जडबुद्धिषु जातानुग्रहो विग्रहमाह—तस्य इति । तुशब्द इति । व्यतिरेको भेदः । 'तुः स्याद् भेदेऽवधारणे' इत्यमरः । अमुमेवार्थमन्वयव्यतिरेकाभ्यामभियुक्तसंवादेन द्रढयति—अत्र श्लोकाविति । शुद्धा अलङ्काराऽसङ्कलिता, गुणा ओजःप्रसादादयो लावण्यादयश्च यस्य तत् । गुणमात्रविशिष्टमपि काव्यं युवते रूपमिव स्वदते रोचते रसिकेभ्य इति[1] । निरन्तराभिर्निबिडाभिः । अलङ्कारा यमकोपमादयः कटकादयश्च, तेषां विकल्पा विच्छित्तयस्तेषां कल्पनाभी रचनाभिः । विहितप्रणयं रचितानुबन्धं, सत् काव्यं युवते रूपमिवातीवातिमात्रं स्वदते । इत्यन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह—यदीति । वचः काव्यात्मकं गुणेभ्यश्च्युतं यदि, तद्वचो यौवनवन्ध्यं लावण्यशून्यमङ्गनाया वपुरिव भाति[2] । तदा जनदयितान्यपि लोकप्रियाण्यपि, अलङ्करणानि, नियतमवश्यं, दुर्भगत्वं सौन्दर्यवैधुर्यादनादरणीयत्वं संश्रयन्ते इति श्लोकद्वयार्थः ॥ २ ॥

पूर्वे नित्याः ॥ ३ ॥

पूर्वे गुणा नित्याः । तैर्विना काव्यशोभानुपपत्तेः ॥ ३ ॥

('परस्परमें विरुद्ध धर्मोंका अध्यास भेद बतलाता है । इस न्यायसे नित्यत्व और अनित्यत्वके द्वारा गुणों और अलङ्कारोंमें भेद सिद्ध है । यही बात इस सूत्रमें कहते हैं—) पहलेवाले अर्थात् 'गुण नित्य हैं' ।

पहलेवाले अर्थात् प्रथमोक्त गुण (ओज आदि) नित्य हैं । उन (ओज, प्रसाद आदि) गुणोंके बिना काव्यकी शोभा नहीं होती है ॥ ३ ॥

'विरुद्धधर्माध्यासो भावं भिन्द्यादि'ति न्यायेन 'नित्यत्वानित्यत्वाभ्यां[3] गुणालङ्कारभेदः सिद्ध' इति दर्शयितुमाह—पूर्वे नित्या इति । पूर्वे गुणा नित्या इत्युक्तेऽन्ये पुनरलङ्कारा अनित्या इति गम्यते एव । गुणानां नित्यत्वे हेतुस्तैर्विनेति । गुणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् काव्यशोभाया इत्यर्थः ॥ ३ ॥

एवं गुणालङ्काराणां भेदं दर्शयित्वा शब्दगुणनिरूपणार्थमाह—

ओजःप्रसादश्लेषसमतासमाधिमाधुर्यसौकुमार्योदारताऽर्थव्यक्तिकान्तयो बन्धगुणाः ॥ ४ ॥

बन्धः पदरचना, तस्य गुणा बन्धगुणा ओजःप्रभृतयः ॥ ४ ॥

---

१. 'एतदग्रे 'शेषः' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'भवति' इति 'ख' पु० पा० ।

३. '……त्वाभ्यामपि' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(इस प्रकार 'गुण और अलङ्कार अभिन्न हैं' यह सिद्धान्त खण्डित हो गया। अब उसीको क्रमशः कहते हैं—) इस प्रकार गुणों (ओज, प्रसाद आदि) और अलङ्कारों (उपमा, यमक आदि) का भेद दिखलाकर शब्दगुणके निरूपणके लिए यह सूत्र कहते हैं—

ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति और कान्ति; (ये १०) पद-रचना के गुण हैं।

'बन्ध' शब्दका अर्थ पद-रचना है। उसके गुण 'बन्धगुण' हैं और वे ओज आदि (प्रसाद आदि) हैं ॥ ४ ॥

एवमभेदमतं खण्डितम्। अथोक्तानुवादपूर्वकमुद्देशसूत्रमुदीरयति—एवमिति[1]। वस्तुतो रीतिधर्मत्वेऽपि गुणानामात्मलाभस्य शब्दार्थाधीनत्वात् तस्य निरूप्यत्वाच्च शब्दार्थधर्मत्वमुपचारादुक्तम्। अथ शब्दनिष्ठा गुणा[2] इदानीं मुख्यया वृत्त्या रीतिधर्मत्वमिति आत्मसिद्धान्तमाविष्कुर्वन् सौत्रं पदं व्याकरोति—बन्धः पदरचना तस्य गुणा इति। न तु शब्दार्थयोरिति शेषः। एवञ्च सत्युपक्रमोपसंहारलिङ्गैराचार्यतात्पर्यपर्यालोचनायामात्मभूतरीतिनिष्ठा गुणास्तच्छरीरभूतशब्दार्थनिष्ठाः पुनरलङ्कारा इति निश्चीयते। अतो मन्यामहे गुणत्वादोजःप्रभृतीनामात्मनि समवायवृत्त्या स्थितिरलङ्कारत्वाद्यमकोपमादीनां शरीरे संयोगवृत्त्या स्थितिरिति ग्रन्थकारस्याभिमतमिति। न ह्यविपश्चिदपि कश्चिदभिजानीयादभिवदेद्वा न[3] गुणानामात्मनि रीताविवालङ्काराणां शरीरभूते शब्दार्थयुगले समवायवृत्त्या स्थितिरिति। एवञ्च गुणाऽलङ्काराणामुभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरित्यभिमन्यमानैर्भेदाभिधानं गड्डुरिका[4]प्रवाहनयेनेति यदुक्तं तन्निरस्तम्। किञ्च 'रीतिरात्मा काव्यस्य'(१।२।६)इति शब्दार्थयुगलकाव्यशरीरस्य रीतिमात्मानमुपपाद्य, 'विशिष्टा पदरचना रीतिः' (१।२।७) इति रीतिं लक्षयित्वा, 'विशेषो गुणात्मा' (१।२।८) इति गुणमात्रस्यैवात्मभूतरीतिनिष्ठत्वे प्रतिष्ठापित्ते यमकोपमादीनामलङ्काराणां तच्छरीरभूतशब्दार्थनिष्ठत्वमर्थात् समर्थितं भवति। अत एवौजःप्रसादादीनां गुणत्वं यमकोपमादीनामलङ्कारत्वमिति च व्यपदेशभेदोऽप्युपपद्यते। एवञ्च सति 'पूर्वे नित्या' (३।१।३) इति सूत्रे गुणानां नित्यत्वमलङ्काराणाम् अनित्यत्वमित्यादि सूत्रयता सूत्रकृता गुणानां काव्यव्यवहारप्रयोजकत्वमुक्तं भवति। [5]तथा च परमते व्यङ्ग्यस्य प्राधान्ये ध्वनिरुत्तमं काव्यं, गुणभावे गुणीभूतव्यङ्ग्यं मध्यमं काव्यं, सम्भावनामात्रे चित्रमवरं काव्यमिति काव्यभेदाः कथिताः। तथाऽत्रापि गुणसामग्र्ये वैदर्भी, अविरोधगुणान्तरानिरोधेन ओजःकान्तिभूयिष्ठत्वे गौडीया, माधुर्यसौकुमार्यप्राचुर्ये पाञ्चालीति काव्यभेदाः कथ्यन्ते। रीतिध्वनिवादमतयोरियांस्तु भेदः—ध्वनिरात्मा

---

१. 'एवमिति। शब्दगुणेति। शब्दनिष्ठा गुणाः शब्दगुणाः।' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'अथ शब्दनिष्ठा गुणाः' इत्यत्र 'अथेदानीं' इत्येव 'ख' पु० पा०।
३. 'न' इति 'ख' पु० नास्ति।
४. '…गण्डुरिका…' इति 'ख' पु० पा०।
५. 'यथा च' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

काव्यस्य, स एव[1] तद्व्यवहारप्रयोजक इत्युभयत्राप्यात्मनिष्ठा गुणाः। शब्दार्थयुगलं शरीरं, तन्निष्ठा अलङ्कारा इति च सर्वमविशिष्टम्। 'किं[2] समस्तैर्गुणैः काव्यव्यवहारः, उत कतिपयैः? यदि समस्तैस्तत् कथमसमस्तगुणा गौडीया पाञ्चाली वा रीतिः काव्यस्यात्मा। अथ कतिपयैः, 'अद्रावत्र प्रज्वलत्यग्निरुच्चैः प्राज्यः प्रोद्यन्नुल्लसत्येष धूमः' इत्यादावोजःप्रभृतिषु गुणेषु सत्सु काव्यव्यवहारप्राप्तिः। 'स्वर्गप्राप्तिरनेनैव देहेन वरवर्णिनि। अस्या रदच्छदरसो न्यक्करोतितरां सुधाम्'॥ इत्यादौ गुणनैरपेक्ष्येण विशेषोक्तिव्यतिरेकालङ्कारयोरेव काव्यव्यवहारप्रयोजकत्वं च दृश्यत इति स्वसङ्कल्पमात्रकल्पितविकल्पानां नावश्यमवकाशं पश्यामः। अथापि यदि पाण्डित्यकण्डूलवैतण्डिकचण्डिम्ना चिखण्डयिषा परस्य, तर्हि स्वमतं पृष्टः स्वयमेवाचष्टाम्। 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' इति काव्यसामान्यलक्षणे शब्दार्थयोर्गुणसाहित्यमिष्यते[3]। किं गुणसमष्टिविशिष्टं काव्यम्? तद्व्यष्टिविशिष्टं वा? नाद्यो निरवद्यः, एकैकगुणोदाहरणेषु काव्यत्वाभावप्रसङ्गात्। गुणसमष्टिवैशिष्ट्याभावात्। न द्वितीयः, वस्त्वलङ्कारध्वनिषु गुणिनो रसस्याऽभावेन गुणस्यैवाभावात्। किञ्च, सर्वे रसाः सम्भूय काव्यात्मीभवन्ति, उत एको रसः? आद्ये न कुत्रापि काव्यात्मसम्भावना, विरोधिरसानामैकाधिकरण्यासम्भवात्। द्वितीये वस्त्वलङ्कारध्वनिषु रसासम्भवात्। आत्मविधुरेषु काव्यव्यवहाराभावप्रसङ्ग इत्यलं परमतदोषोद्घाटनपाटवप्रकटनेन। प्रकृतमनुसरामः॥ ४॥

तान् क्रमेण दर्शयितुमाह—

गाढबन्धत्वमोजः॥ ५॥

बन्धस्य गाढत्वं यत् तदोजः। यथा—

'विलुलितमकरन्दा मञ्जरीर्नर्तयन्ति'।

न पुनः—

'विलुलितमधुधारा मञ्जरीर्लोलयन्ति'॥ ५॥

उन (ओज, प्रसाद आदि) गुणों (के लक्षण) को क्रमसे कहते हैं—(उनमें-से क्रमप्राप्त प्रथम 'ओज' का लक्षण इस सूत्रसे कहते हैं—)।

पद-रचनाका गाढत्व 'ओज' नामका गुण है।

बन्ध अर्थात् पद-रचनाका जो गाढत्व (सघनत्व–संयुक्ताक्षरत्व, लगातार शिरपर रेफवाले वर्णों (कवर्ग, चवर्ग आदि) के प्रथम-द्वितीय, तृतीय-चतुर्थ और प्रथम-तृतीय वर्ण (अक्षरोंके संयोग, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अन्तमें गुरुत्व और समास आदिके तारतम्यसे स्थित—) हैं, वह 'ओज' गुण हैं। यथा—

१. 'भेदः—तत्र प्रथमे रीतिरात्माकाव्यस्य; तद्व्यवहारप्रयोजका गुणाः। चरमे तु ध्वनिरात्मा, स एव' इति 'ख' पु० पा०।

२. '……शिष्टम्। ततश्च किं' इति 'ख' पु० पा०।

३. '……मिष्यते। 'काव्यस्यात्मा रसः' इति चोच्यते तत्र' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

मकरन्द (फूलोंके पराग) को चञ्चल (इधर-उधर) करते हुए भौंरे मञ्जरियोंको नचा रहे हैं। (यह गाढत्व होनेसे 'ओज' गुण है)।

किन्तु—

मधु-धाराको चञ्चल करते हुए भौंरे मञ्जरियोंको कँपा (हिला) रहे हैं। यहाँ 'ओज' गुण नहीं है। (क्योंकि प्रथमोक्त श्लोकार्द्धके 'मकरन्द'के स्थानपर 'मधु-धारा' और 'नर्तयन्ति' के स्थानपर 'लोलयन्ति' पद रखनेसे गाढत्व नहीं रह जाता है) ॥ ५ ॥

उद्देशक्रमादमीषां गुणानामसाधारणधर्मानाख्यातुमारभते—तान् क्रमेणेति। बन्धस्य पदरचनाया गाढत्वं कनकशलाकावयवघटनवन्निबिडत्वम्। तत्र हेतवः—संयुक्ताक्षरत्वं, निरन्तररेफशिरस्कैर्वर्गाणां प्रथमद्वितीयैस्तृतीयचतुर्थैः प्रथमैस्तृतीयैश्च संयोगाः, विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयाः, गुर्वन्तता, समासाश्चेत्येवमादयस्तरतमभावेनावस्थिताः। तत्रोदाहरणप्रत्युदाहरणे दर्शयति—यथेति। उभयत्र गाढत्वशैथिल्ये स्फुटे ॥ ५ ॥

शैथिल्यं प्रसादः ॥ ६ ॥

बन्धस्य शैथिल्यं शिथिलत्वं प्रसादः ॥ ६ ॥

(अब क्रमागत 'प्रसाद' गुणका लक्षण कहते हैं—) रचना (पदरचना) की शिथिलता 'प्रसाद' नामका गुण है।

बन्ध अर्थात् पद-रचनाकी शिथिलता 'प्रसाद' नामका गुण है ॥ ६ ॥

शैथिल्यमिति। अस्य वृत्तिः स्पष्टार्था ॥ ६ ॥

नन्वयमोजोविपर्ययात्मा दोषः, तत् कथं गुणः, इत्याह—

गुणः सम्प्लवात् ॥ ७ ॥

गुणः प्रसादः, ओजसा सह सम्प्लवात् ॥ ७ ॥

यदि ओज गुणके विपर्ययरूप (ठीक विपरीत) 'प्रसाद' है तो यह (गुण नहीं, अपितु) दोष हुआ, तब इसे (प्रसादको) गुण कैसे कहा? इसका उत्तर देते हैं—

(प्रसाद) गुण है, (ओज गुणके साथ) मिश्रित होनेसे।

'प्रसाद' गुण है, ओज गुणके साथ मिश्रित होनेसे ॥ ७ ॥

शिथिलत्वमोजोगुणविपर्ययरूपम्। तदात्मकत्वे प्रसादस्य दोषत्वमेव स्यादिति परशङ्कां पुरस्कृत्य तां पराकर्तुमुत्तरसूत्रमवतारयति[1]—नन्विति। सम्प्लवो मेलनम्। प्रसादो गुणो भवत्येव। ओजसा सह गुणेन सम्प्लवात् ॥ ७ ॥

---

१. '……शङ्कां प्रस्तुत्य तां पराकर्तुमनन्तरसूत्र……' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

न शुद्धः[१] ॥ ८ ॥

[२]शुद्धस्तु दोष एवेति ॥ ८ ॥

शुद्ध अर्थात् ओज गुणसे मिश्रित नहीं रहनेपर तो दोष ही है।

शुद्ध अर्थात् ओज गुणसे मिश्रित नहीं होने पर वह शैथिल्य दोष ही है ॥ ८ ॥

तदमिश्रं तु शैथिल्यं दोष एवेत्याह—शुद्धस्त्विति[३] ॥ ८ ॥

ननु विरुद्धयोरोजःप्रसादयोः कथं सम्प्लव ? इत्याह—

स त्वनुभवसिद्धः ॥ ९ ॥

स तु सम्प्लवस्त्वनुभवसिद्धः, तद्विदां रत्नादिविशेषवत्। अत्र श्लोकः—

'करुणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः।
यथाऽनुभवतः सिद्धस्तथैवौजःप्रसादयोः ॥ ९ ॥

(अन्धकार और प्रकाशके समान परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले) ओज और प्रसादका मिश्रण कैसे हो सकता है ? इसका खण्डन करते हुए यह सूत्र कहते हैं—

वह (ओज और प्रसादका मिश्रण—एक साथ होना—अनुभवसे सिद्ध है।

(परस्परमें विरुद्ध ओज और प्रसाद गुणोंका) मिश्रण (एक साथ होना) उस प्रकार अनुभवसे सिद्ध है, जिस प्रकार रत्न-परीक्षकों (जौहरियों) को किसी एक रत्नमें ही उसके गुण और दोषका होना अनुभवसे सिद्ध है। यहाँ एक श्लोक है—

जैसे करुण-रसवाले नाटकोंको देखने या पढ़नेवालोंको सुख और दुःखका एक साथ होना अनुभवसे सिद्ध है, वैसे ही परस्पर-विरुद्ध ओज और प्रसाद गुणोंका मिश्रण (एक साथ होना) अनुभवसे सिद्ध है ॥ ९ ॥

ननु गाढत्वशैथिल्ययोस्तमःप्रकाशवद् विरुद्धस्वभावयोः सम्प्लव एव न सम्भवतीति शङ्कामनूद्यानन्तरसूत्रेणापवदितुमाह—नन्विति। व्याचष्टे—स तु सम्प्लव इति। रत्नविशेषवत् परीक्षानुभवसाक्षिक इत्यर्थः। विरुद्धयोरपि क्वचित् सम्प्लवः सम्भवतीत्यभियुक्तोक्तिमभिदर्शयति—करुणेति। यानि करुणानि कारुण्यावहानि यानि मनोज्ञानि च वस्तूनि, तेषु युगपदनुभूयमानेषु समसमयसमुत्पन्नयोः सुखदुःखयोः सम्प्लवो यथाऽनुभवतः स्वसंवेदनात् सिद्धस्तथौजःप्रसादयोरपि सम्प्लवः स्वसंवित्संवेद्यतया सिद्ध इति श्लोकार्थः ॥ ९ ॥

साम्योत्कर्षौ च ॥ १० ॥

---

१. सूत्रमिदं 'ग' पु० नास्ति।

२. 'स शुद्धस्तु' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

३. '......ऽवेत्याह—स शुद्धः......' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

साम्यमुत्कर्षश्चौजःप्रसादयोरनुभवादेव । साम्यं यथा—

'अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे,
नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम्' ।

क्वचिदोजः प्रसादादुत्कृष्टम् । यथा—

'व्रजति गगनं भल्लातक्याः फलेन सहोपमाम्' ।

क्वचिदोजसः प्रसादस्योत्कर्षः । यथा—

'कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमरीचयो,
न च मलयजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः' ॥ १० ॥

(ओज और प्रसाद गुणोंमें कभी समानता, कभी ओज गुणमें और कभी प्रसाद गुणमें उत्कृष्टता—ये तीन भेद भी अनुभवसे सिद्ध हैं, यही अगले सूत्रमें कहते हैं—) समानता और उत्कृष्टता अनुभवसे सिद्ध है ।

समानता और उत्कृष्टता भी ओज और प्रसाद गुणोंके ही अनुभवसिद्ध हैं । समानता जैसे—

इसके उपरान्त विषय-भोगोंसे विरक्त राजा दिलीपने विधिपूर्वक राज़चिह्न श्वेतच्छत्र, नवयुवक पुत्र (रघु) के लिए देकर (स्त्री-सहित वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया । प्रकृत पद्यके 'विषयव्यावृत्तात्मा' पदमें 'ओज' गुण और 'यथाविधि सूनवे' पदमें 'प्रसाद' गुण है । परस्पर-विरुद्ध भी इन दोनों गुणोंके परस्पर छायानुकरणसे मिश्रित है, अतः दोनों गुणोंकी समानता है) ।

कहीं 'ओज' गुण 'प्रसाद' गुणसे उत्कृष्ट होता है । जैसे—

आकाश भिलावे (एक प्रकारके विषैले फलवाला वृक्ष-विशेष) के फलके साथ समानता पा रहा है, अर्थात् भिलावेके फलके समान आकाश हो रहा है । (यहाँ 'प्रसाद' गुण की अपेक्षा 'ओज'की उत्कृष्टता है) ।

कहींपर 'ओज'की अपेक्षा 'प्रसाद' गुणकी उत्कृष्टता होती है । यथा—

(विरहिणियोंके लिए) न तो नवीन पुष्पशय्या, न तो चाँदनी, न तो सम्पूर्ण अङ्गोंमें (लीपा गया) चन्दन और न तो मणियोंके हारकी लड़ियाँ सुख देती हैं । (प्रकृत उदाहरणमें ओजकी अपेक्षा 'प्रसाद' की उत्कृष्टता है) ॥ १० ॥

अत्रोजःप्रसादयोः साम्ये पर्यायतः प्रकर्षे च त्रिप्रकारो भवति । ते च प्रकारा अप्यनुभवगम्या इति दर्शयितुमाह—साम्योत्कर्षौ चेति । क्रमेण त्रिविधं प्रसादमुदाहृत्य दर्शयति—साम्यं यथेति[१] । 'विषयव्यावृत्तात्मे'त्यादावोजः, 'यथाविधि सूनव' इत्यादौ प्रसादः । भिन्नदेशयोरप्योजःप्रसादयोः परस्परच्छायाऽनुकारितया सम्प्लवः । उभयोरत्र साम्यं वेदितव्यम् । औजसः प्रसादादुत्कर्षमुदाहरति—व्रजतीति । भल्लातकी नाम वीर-

---

१. एतदग्रे 'अथेति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वृक्षः । 'वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिषु' इत्यमरः[1] । 'कुसुमशयनमि'त्यत्र प्रसादस्योत्कर्षो द्रष्टव्यः ॥ १० ॥

मसृणत्वं श्लेषः ॥ ११ ॥

मसृणत्वं नाम[2] यस्मिन् सति बहून्यपि पदान्येकवद्भासन्ते । यथा—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः' ।

न पुनः—

'सूत्रं ब्राह्ममुरःस्थले' । 'भ्रमरीवल्गुगीतयः ।'
'तडित्कलिलमाकाशम्' इति ।

एवं तु श्लेषो भवति—

'ब्राह्मं सूत्रमुरःस्थले' । 'भ्रमरीमञ्जुगीतयः ।'
'तडिज्जटिलमाकाशम्' इति ॥ ११ ॥

(चतुर्थ सूत्रोक्त दश गुणोमें-से क्रमप्राप्त 'श्लेष'का लक्षण कहते हैं—) मसृणता (शब्दगत चिक्कणता–सरलता 'श्लेष' गुण है ।

जिसके विद्यमान रहनेपर बहुत-से पद एक-से मालूम पड़ते हैं, वह मसृणता है । जैसे—

उत्तर दिशामें देवतारूप हिमालय नामक पर्वतराज है । (प्रकृत श्लोकार्द्धके 'अस्ति उत्तरस्यां दिशि'—ये पद पृथक् होनेपर भी 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि' पढ़नेमें एक-से प्रतीत होनेसे 'श्लेष' नामका शब्द-गुण है) ।

किन्तु (वक्ष्यमाण तीन उदाहरणोंमें शब्दोंके एक-सा प्रतीत नहीं होनेके कारण 'मसृणत्व' का अभाव है, अतएव इनमें 'श्लेष' गुण नहीं है; वे तीनों उदाहरण ये हैं—)

छातीपर ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत (जनेउ) ।
भौंरियोंके मधुर गान (गूँजना) ।
बिजली से चमकता आकाश ।

इस प्रकार उन्हें परिवर्तित करनेपर मसृणत्व होनेसे 'श्लेष' गुण हो जायेगा । (इस परिवर्तनसे उनका अर्थ पूर्ववत् रहेगा) ।

'सूत्रं ब्राह्ममुरःस्थले' की जगह 'ब्राह्मं सूत्रमुरःस्थले' ।
'भ्रमरीवल्गुगीतयः' की जगह 'भ्रमरीमञ्जुगीतयः' ।
और—'तडित्कलिलमाकाशम्' की जगह 'तडिज्जटिलमाकाशम्' ॥ ११ ॥

श्लेषं विशदयितुमाह—मसृणत्वं श्लेष इति । मसृणत्वं विशिष्य दर्शयति—यस्मिन्निति । यत्र हि व्यासेऽपि समासवदवभासः स श्लेषः । अस्त्युत्तरस्यामिति सामान्ये-

---

१. '⋯मरः । कुसुमेति' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'नाम तत्' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नोदाहरणमुक्त्वा श्लेषस्य व्यतिरेकमुखेनान्वयमाविष्करोति—न पुनरिति। 'सूत्रं ब्राह्ममुरःस्थले', 'भ्रमरीवल्गुगीतयः', 'तडित्कलिलमाकाशम्' इत्यत्र श्लेषः पुनर्नास्तीति सम्बन्धः। 'सूत्रं ब्राह्ममि'त्यत्र परसवर्णेऽपि परुषाक्षरोत्थानान्न श्लेषः। तर्हि कीदृशि विन्यासे श्लेषो भवतीत्यत आह—एवं त्विति। अस्य गुणस्य विपर्ययो विसन्धेर्वाक्यदोषस्य विश्लेषात्मा भेदः॥ ११॥

मार्गाभेदः समता ॥ १२ ॥

मार्गस्याभेदो मार्गाभेदः समता, येन मार्गेणोपक्रमस्तस्याऽत्याग इत्यर्थः। श्लोके प्रबन्धे चेति। पूर्वोक्तमुदाहरणम्। विपर्ययस्तु यथा—

'प्रसीद चण्डि ! त्यज मन्युमञ्जसा जनस्तवाऽयं पुरतः कृताञ्जलिः।
किमर्थमुत्कम्पितपीवरस्तनद्वयं त्वया लुप्तविलासमास्यते॥ २१॥

(अब क्रमप्राप्त 'समता' का लक्षण कहते हैं—) मार्गका भेद न होने अर्थात् आद्यन्त एक ही शैलीको चालू रखना 'समता' गुण है।

मार्गका अभेद मार्गाभेद है (वह) 'समता' गुण है। अर्थात् जिस शैलीसे आरम्भ हुआ हो (उसको अन्ततक) नहीं छोड़ना 'समता' है। (आदिसे अन्ततक एक ही शैलीका पालन करना) श्लोक अर्थात् मुक्तक और प्रबन्धकाव्य—दोनों स्थलोंमें अपेक्षित है। इसका 'अस्त्युत्तरस्यां' इत्यादि पूर्वोक्त उदाहरण है। इसके विपरीत (प्रत्युदाहरण) जैसे—

हे चण्डि ! खुश हो जाओ, क्रोधको शीघ्र छोड़ दो, यह तुम्हारा दास हाथ जोड़कर तुम्हारे आगे खड़ा है। अधिक काँपते हुए बड़े-बड़े स्तनोंके साथ तुम विलास-हीन होकर क्यों बैठी हो ? (प्रकृत श्लोकके पूर्वार्द्धमें 'प्रसीद और त्यज'—ये दो क्रियापद कर्तृवाच्य हैं, किन्तु उत्तरार्द्धमें 'आस्यते' क्रियापद भाववाच्य है, अत एव आरम्भमें कर्तृवाक्य और अन्तमे भाववाच्य क्रियाका प्रयोग होनेसे आदि में आरम्भ की गयी शैलीका अन्तमें त्याग करनेसे प्रकृत श्लोकमें 'समता' गुण नहीं है॥ १२॥

समतां समाख्यातुमाह—मार्गाभेद इति। आदिमध्यावसानेष्वैकरूप्यं समतेत्यर्थः। तस्या विषयं दर्शयति—श्लोके प्रबन्धे चेति। किमत्रोदाहरणमिति चेदाह—पूर्वोक्तमिति। 'अस्त्युत्तरस्यामि'त्यादि। प्रत्युदाहरणमाह—विपर्ययस्त्विति। प्रसीद त्यजेति कर्तृवाचितया प्रक्रान्तस्य मार्गस्यास्यत[1] इत्यत्र त्यागान्न समता॥ १२॥

आरोहावरोहक्रमः समाधिः ॥ १३ ॥

आरोहावरोहयोः क्रम आरोहावरोहक्रमः समाधिः परिहारः। आरोहस्यावरोहे सति परिहारः, अवरोहस्य वाऽऽरोहे सतीति। तत्रारोहपूर्वकोऽवरोहो यथा—

१. 'नासम्पृक्तत्वात्' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'निरानन्दः कौन्दे मधुनि परिभुक्तोज्झितरसे' ।

अवरोहपूर्वकस्त्वारोहो यथा—

'नराः शीलभ्रष्टा व्यसन इव मज्जन्ति तरवः' ।

आरोहस्य क्रमोऽवरोहस्य च क्रम आरोहावरोहक्रमः । क्रमेणारोहणमवरोहणं चेति केचित् । यथा—

'निवेशः स्वःसिन्धोस्तुहिनगिरिवीथीषु जयति' ॥ १३ ॥

(अब चतुर्थ सूत्रोक्त दश गुणोंमें-से पञ्चम 'समाधि' गुणका लक्षण कहते हैं—) आरोह और अवरोह अर्थात् पद-रचनाके चढ़ाव और उतारके क्रमको 'समाधि' गुण कहते हैं ।

आरोह (चढ़ाव) और अवरोह (उतार) का क्रम 'आरोहावरोहक्रम' है, वह 'समाधि' गुण है, यह 'समाधि' परिहार ही है । अर्थात् 'आरोह' का 'अवरोह' होने पर परिहार तथा 'अवरोह'का 'आरोह' होनेपर परिहार । उनमें आरोहपूर्वक अवरोह जैसे—

पराग-पानके वाद छोड़े हुए कुन्दपुष्पके मधुमें आनन्दानुभव नहीं करनेवाला । (प्रकृत उदाहरणमें 'कौन्दे' तक 'आरोह' तथा 'मधुनि'में 'अवरोह' होनेसे 'समाधि' गुण है ।)

अवरोहपूर्वक 'आरोह' जैसे—

शील-भ्रष्ट मनुष्योंके व्यसनमें डूबनेके समान पेड़ पानीमें डूब रहे हैं । (प्रकृत पद्यमें लघु स्वरवाला' 'नराः' पदमें 'अवरोह' तथा दीर्घ एवं गुरु स्वरवाले 'शील-भ्रष्टाः' पदमें 'आरोह' होनेसे 'समाधि' गुण है) ।

('आरोहश्च अवरोहश्चेति आरोहावरोहौ' इस प्रकार द्वन्द्वसमासके वाद 'आरोहावरोहयोः क्रम इति आरोहावरोहक्रमः' ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास करनेपर 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' अर्थात् 'द्वन्द्वके वाद सुने जाने वाले पदका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध होता है' इस नियमसे 'क्रम' पदका 'आरोह और अवरोह' दोनोंके साथ सम्वन्ध होनेसे) 'आरोहका क्रम और अवरोहका क्रम' 'आरोहावरोह-क्रम' है । अतः 'क्रमसे आरोह और अवरोह हो' ऐसा कुछ लोगोंका मत है ।

हिमालय पर्वतके मार्गोंमें गङ्गाका प्रवाह शोभित हो रहा है । (यहाँ 'निवेशः स्वसिन्धोः'में सीढ़ीके क्रमसे 'आरोह' है और 'तुहिनगिरि' में 'अवरोह' है, अतः 'समाधि' गुण है) ॥ १३ ॥

पञ्चमगुणं प्रपञ्चयितुमाह—आरोहावरोहक्रम इति । अत्र स्वाभिमतं तावदेकमर्थं लक्षणवाक्यस्य समर्थयते समाधिः परिहार इति । अवरोहे प्रवर्तमाने सत्यारोहस्य प्रवृत्तस्य परिहारः परित्यागः । आरोहे च सत्यवरोहस्य परिहारः, आरोहावरोहयोर्विरुद्धत्वेन यौगपद्यासम्भवादिति भावः । दीर्घादिगुर्वक्षरप्राचुर्ये आरोहः । लघ्वादिशिथिलप्रायत्वे चावरोह इति द्रष्टव्यम् । तथा चारोहपूर्वकोऽवरोहः, क्वचिदवरोहपूर्वक आरोह इति समाधेर्द्वैविध्यमुक्तं भवति । [illegible] 'निरा-

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नन्दः कौन्द' इत्यत्र गुर्वक्षरबाहुल्यादारोहः । 'मधुनी'त्यत्र लघ्वक्षरप्राचुर्यादवरोहः । द्वितीयमुदाहरति—अवरोहपूर्वक इति । नरा इत्यत्र शैथिल्यादवरोहः शीलभ्रष्टा इत्यत्र गुर्वक्षरप्रचुरत्वादारोहः । अस्यैव लक्षणवाक्यस्यान्यैरभिहितमर्थमभ्यनुजिज्ञासुरनुवदति—आरोहस्य क्रम इति । निःश्रेणिकारोहावरोहन्यायेन क्रमेणारोहणं, क्रमेण चावरोहणमिति लक्षणवाक्यार्थः । उदाहरति—निवेश इति । निवेशः स्वःसिन्धोरित्यत्र निःश्रेणिकाक्रमेणारोहः । तुहिनगिरीत्यत्रावरोहः ॥ १३ ॥

न पृथक्, आरोहावरोहयोरोजःप्रसादरूपत्वात् ॥ १४ ॥

न पृथक्समाधिर्गुणः, आरोहावरोहयोरोजःप्रसादरूपत्वात् । ओजोरूपश्चारोहः प्रसादरूपश्चावरोह इति ॥ १४ ॥

('आरोहावरोहक्रमः समाधिः' (३।१।१३) इस पूर्वोक्त लक्षणसूत्रकी समीक्षा 'ओज और प्रसाद' गुणोंसे भिन्न 'समाधि' गुण नहीं है । इस शङ्काको उठाकर कहते हैं—) 'समाधि' गुण (ओज और प्रसाद गुणोंसे) अलग नहीं है, क्योंकि 'आरोह तथा अवरोह' (क्रमशः) ओज और प्रसादके स्वरूप ही हैं ।

'समाधि' नामक गुण ('ओज तथा प्रसाद' गुणोंसे) अलग नहीं है, क्योंकि 'आरोह और अवरोह' क्रमशः 'ओजः'स्वरूप तथा 'प्रसाद'स्वरूप ही होते हैं, अर्थात् 'ओजःस्वरूप' आरोह और 'प्रसादस्वरूप' अवरोह है ॥ १४ ॥

ननु लक्षणवाक्यार्थपर्यालोचनया समाधेरोजःप्रसादानतिरेकान्न पृथक्त्वमिति शङ्कामङ्कुरयितुमुत्तरसूत्रमुपक्षिपति—न पृथगिति । व्याचष्टे—न पृथक् समाधिरिति ॥ १४ ॥

[१]न, सम्पृक्तत्वात् ॥ १५ ॥

यदुक्तम्—'ओजःप्रसादरूपत्वमारोहावरोहयोः' इति, तन्न; [२]सम्पृक्तत्वात् । सम्पृक्तौ खल्वोजःप्रसादौ नदीवेणिकावद् वहतः[३] ॥ १५ ॥

(आरोह और अवरोह अमिश्रित होनेसे ओज-प्रसाद-स्वरूप नहीं होते; अत एव परस्पर छायानुकारितासे सम्पृक्त (मिश्रित) ओज और प्रसादमें 'समाधि' गुणका अन्तर्भाव नहीं हो सकता, ऐसा मानकर सिद्धान्तसूत्र कहते हैं—) उक्त कथन ठीक नहीं है, क्योंकि समाधि गुणमें ओज और प्रसाद गुण मिश्रित हैं ।

ओज और प्रसादस्वरूप (क्रमशः) आरोह और अवरोह है, यह जो कहा है, वह ठीक नहीं है; क्योंकि (समाधिमें ओज और प्रसाद गुण) मिश्रित होते हैं । मिश्रित वे ओज और प्रसाद एक साथ बहनेवाली नदीकी दो धाराओंके समान 'समाधि' गुणमें मिश्रित हैं ॥ १५ ॥

---

१. 'नासम्पृक्तत्वात्' इति 'ख-ग' पु० पा० । (पृष्ठ ९६ तः एकसङ्ख्याका टिप्पणीं निरस्य अत्र पठेत् ।)

२. 'असम्पृक्तत्वात्' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

३. 'नदीवेणिकासङ्गमगुद्वहतः' इत्यपि क्वचित्पाठः ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

आरोहावरोहावोजःप्रसादरूपौ न भवतः, असम्पृक्तत्वात्। अतः परस्परच्छायानुकारितया सम्पृक्तयोरोजःप्रसादयोर्न समाधिरन्तर्भवतीत्यभिसन्धाय सिद्धान्तसूत्रं व्याचष्टे—यदुक्तमिति। सम्पृक्तत्वं सदृष्टान्तमुपपादयति—सम्पृक्तौ खल्विति। सम्पृक्तसरिद्द्वयसलिलन्यायेन सम्पृक्तावोजःप्रसादाविति। तद्विलक्षणयोरारोहावरोहयोः सम्पृक्तत्वव्यतिरेकादसम्पृक्तत्वहेतोरसिद्धिरुद्धृता ॥ १५ ॥

अनैकान्त्याच्च ॥ १६ ॥

न चायमेकान्तः,[1] यदोजस्यारोहः प्रसादे चावरोह इति ॥ १६ ॥

(नदीकी सहगामिनी (साथ बहनेवाली) दो धाराओंके समान ओज और प्रसाद समान रूपसे नहीं रहते हैं, किन्तु 'साम्योत्कर्षौ च' (३।१।१०) इस सूत्रके अनुसार डिब्बेमें रखे हुए रत्नके प्रभापुञ्ज अधिक एवं कम (रूपमें) रहते हैं; तब 'समाधि' गुण पृथक् कैसे हो सकता है? इस शङ्काको दूर करनेके लिए यह सूत्र कहते हैं—) अनैकान्तिक (ऐकान्तिकसे अर्थात् नियमतः भिन्न) होनेसे भी।

यह एकान्त (कोई स्थायी नियम) नहीं है कि 'ओज' गुणमें आरोह तथा 'प्रसाद' गुणमें अवरोह अवश्य ही हो। (क्योंकि 'ओज' गुणमें आरोह तथा 'प्रसाद' गुणमें अवरोह भी होनेसे नियम व्यभिचरित है। यथा—'उद्गच्छदच्छसुभगच्छविगुच्छकच्छम्' यहाँ आरोहसे रहित 'ओज' गुण और 'यतो यतो निवर्तते, ततस्ततो विमुच्यते' यहाँ अवरोहसे रहित 'प्रसाद' गुण पाये जाते हैं, अत एव ओजमें आरोह का और प्रसादमें अवरोहका होना अनिवार्य नहीं है) ॥ १६ ॥

ननु, न केवलं नदीद्वयवेणिकान्यायेनौजःप्रसादयोः साम्येनाऽवस्थितिः, किन्तु 'साम्योत्कर्षौ च' (३।१।१०) इत्युक्तत्वात् समुद्गकस्थमणिप्रभासमूहन्यायादुच्चावचभावेन स्थितिः। तस्मिन् पक्षे कथमयं समाधिः पृथग्गुण? इति शङ्कामपनेतुमाह—अनैकान्त्याच्चेति। ओजःप्रसादयोरारोहावरोहसाहचर्यनियमो न सम्भवति, व्यभिचारात्। व्यभिचारस्तु—'उद्गच्छदच्छसुभगच्छविगुच्छकच्छम्' इत्यादौ। 'यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते' इत्यादौ च आरोहशून्यस्यौजसः, अवरोहशून्यस्य प्रसादस्य च स्थितत्वादित्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

ओजःप्रसादयोः क्वचिद्भागे [2]तीव्रावस्थायां ताविति चेदभ्युपगमः ॥ १७ ॥

ओजःप्रसादयोः क्वचिद्भागे तीव्रावस्थायामारोहोऽवरोहश्चेत्येवं[3] चेन्मन्यसे, अभ्युपगमः, न विप्रतिपत्तिः ॥ १७ ॥

१. 'एकान्तो नियमः' इति 'ग' पु० पा०।
२. 'तीव्रावस्था, ताविति' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'क्वचित्तीव्रावस्था, सा चारोहावरोहाख्या इत्येवं' इति 'क, ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(आरोह तथा अवरोह क्रमसे ओज तथा प्रसादके अनवस्थाविशेष हैं अतः समाधि गुण पृथक् नहीं है, यदि ऐसा कहें तो 'समाधि' गुणको हाथका सहारा मिल गया अर्थात् 'समाधि' गुणका पृथक् अस्तित्व सिद्ध हो गया, यह दिखलानेके लिए यह सूत्र कहते हैं—) ओज और प्रसादमें कहीं तीव्र अवस्था होनेपर क्रमशः आरोह और अवरोह होते हैं, ऐसा मानते हैं तो 'समाधि' गुण पृथक् होना स्वीकार्य है ।

ओज और प्रसादके किसी अंशमें (सर्वत्र और सर्वदा नहीं) तीव्र अवस्था होने पर क्रमसे आरोह और अवरोह (चढ़ाव और उतार) होते हैं; यदि ऐसा माने, तब 'समाधि' का पृथक् अस्तित्व स्वीकार्य है, इस विषयमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है ॥ १७ ॥

नन्वारोहावरोहावोजःप्रसादयोरवस्थाविशेषौ स्यातामतो न पृथक् समाधिरिति यदि चोद्यते, तर्हि समाधेर्दत्तो हस्तावलम्ब इति दर्शयितुमनन्तरसूत्रमवतारयति—ओजः-प्रसादयोः क्वचिद्भाग इति । शङ्कां सङ्कलय्य[1] दर्शयति—ओजःप्रसादयोरिति[2] ॥ १७ ॥

विशेषापेक्षित्वात्तयोः ॥ १८ ॥

स विशेषो गुणान्तरात्मा[3] ॥ १८ ॥

(पूर्वोक्त शङ्का करनेवाले-की स्वीकृतिका निष्कर्ष इस सूत्रमें कर रहे हैं—) ओज तथा प्रसादमें उन दोनों (आरोह तथा अवरोह) की नियमित स्थितिमें विशेष कारण की अपेक्षा रहनेसे ।

वह विशेष गुणरूप है, अर्थात् ओज और प्रसादके व्यतिरेकसे 'समाधि' गुण है ॥ १८ ॥

परोक्तस्याभ्युपगमे पर्यवसितमर्थं समर्थयितुमाह—विशेषेति । विशेषस्तीव्राव-स्थात्मा । तमपेक्षितुं शीलमनयोरिति विशेषापेक्षिणौ तयोर्भावस्तत्त्वं तस्मात् । आरोहा-वरोहाभ्यामोजःप्रसादयोस्तीव्रावस्था हि स्वनिमित्तत्वेनापेक्षिता । सोऽयमोजःप्रसाद-व्यतिरेकेण समाधिरन्यो गुण इति सूत्रार्थः ॥ १८ ॥

आरोहावरोहनिमित्तं समाधिराख्यायते ॥ १९ ॥

आरोहावरोहक्रमः समाधिरिति गौण्या वृत्त्या व्याख्येयम् ॥ १९ ॥

---

१. 'दयोस्तीव्रावस्था तावविति शङ्काशं सङ्कलय्य' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'प्रसादयः क्वचिदिति । सा चेति—सा च तीव्रावस्था आरोहावरोहाख्येति । कारणे कार्यत्वमुपचर्योक्तम्, यद्वक्ष्यति—'विशेषापेक्षित्वात्' (३।१।१८) इति, 'आरोहावरोहनिमित्तम्' (३।१।१९) इति च । अनुपचारे तु 'विशेषरूपत्वात्, आरोहावरोहौ' इति च ब्रूयात् । ओजःप्रसादयो-स्तीव्रावस्था आरोहावरोहयोः कारणमित्यर्थः । अनिष्टमापादयन् भवानभीष्टमेवाचष्टे इत्याह—अभ्युपगम इति ।' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

३. 'गुणान्तरमेव' इति 'ग' पु०.पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

('समाधि' गुणके लक्षणका प्रतिपादक (३।१।१३) सूत्र पूर्वोक्त मतको सिद्ध करनेमें असमर्थ है ? ऐसी शङ्काके निवारणके लिए यह सूत्र कहते हैं—) आरोह और अवरोहका निमित्त 'समाधि' गुण कहा जाता है।

आरोह और अवरोहका क्रम 'समाधि' (गुण) है। इस लक्षणसूत्र (३।१।१३) में कथित 'क्रम' पद गौणी वृत्तिसे निमित्तका वाचक है ॥ १९ ॥

नन्वमुमर्थमभिधातुं समाधिलक्षणवाक्यं न क्षमत इत्याशङ्क्य गौणवृत्तिराश्रयणीयेत्याह—आरोहावरोहेति। क्रमपदेन तन्निमित्तं लक्ष्यत इत्यर्थः ॥ १९ ॥

क्रमविधानार्थत्वाद्वा[1] ॥ २० ॥

पृथक्करणमिति। [2]पाठधर्मत्वं च न सम्भवतीति 'न पाठधर्माः, सर्वत्रादृष्टेः' (अधि० ३।१।२८) इत्यत्र[3] वक्ष्यामः ॥ २० ॥

(अवस्था तथा अवस्थावान्में भेद होनेका नियम नहीं है तो तीव्रावस्था ओजः-प्रसाद-स्वरूप ही हुई। यद्यपि 'जो-जो' ओज है, वह-वह आरोह है, यह नियम नहीं है, तथापि जो-जो 'आरोह' है, वह-वह आरोह होता है। इससे प्रसाद गुण समाधि गुणको स्वीकार नहीं करता, परन्तु प्रसाद गुणसे समाधि गुणका संग्रह होता ही है, ऐसी स्थितिमें इसका ग्रहण क्यों किया ? इसका समाधान करते हैं—) अथवा (आरोह तथा अवरोहमें) क्रम-विधानार्थ (समाधि पृथक् गुण) है।

परस्परमें क्रम अपेक्षित नहीं है, अपितु क्रमसे आरोह रूप और अवरोह रूप क्रम अपेक्षित है। आरोह और अवरोह का क्रम पाठधर्म (काव्यगुण) क्यों नहीं है ? इसका खण्डन अग्रिम सूत्र (३।१।२८) में किया गया है ॥ २० ॥

ननु पुनरवस्थाऽवस्थावतो यदा न भिद्यते, तदा तीव्रावस्था ओजःप्रसादात्मिकैव भवति। यद्यपि, यद् यदोजस्तत्तदारोह इति नास्ति नियमः, तथापि यो य आरोहस्तत्तदोज इति भवति। ततः सत्यं न समाधिना प्रसादः स्वीक्रियते, प्रसादेन च समाधिः सङ्गृह्यत एवेति किमर्थमस्योपादानमित्यत आह—क्रमविधानेति[4]। नात्र क्रमः परस्परम्, अपि तु क्रमेणारोहणं क्रमेणाऽवरोहणमित्येवरूपः क्रमो ज्ञेयः। नन्वारोहावरोहक्रमः पाठधर्मः किन्न स्यादिति चोद्यं, वक्ष्यमाणयुक्त्या विघटितमित्याह—पाठधर्मत्वं चेति ॥२०॥

पृथक्पदत्वं माधुर्यम् ॥ २१ ॥

बन्धस्य पृथक्पदत्वं यत् तन्माधुर्यम्। पृथक् पदानि यस्य स पृथक्पदः, तस्य भावः पृथक्पदत्वम्। समासदैर्घ्यनिवृत्तिपरं चैतत्। पूर्वोक्तमुदाहरणम्। विपर्ययस्तु यथा—

---

१. 'क्रमविधानार्थं वा' इति 'ग' पु० पा०।
२. 'पाठधर्मश्च' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'इत्येवं' इति 'ग' पु० पा०।
४. 'क्रमविधानार्थत्वाद्वेति' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'चलितशबरसेनादत्तगोशृङ्गचण्ड-
ध्वनिचकितवराहव्याकुला विन्ध्यपादाः' ॥ २१ ॥

(चतुर्थ सूत्रमें प्रतिपादित दश गुणोंमें-से अब क्रमप्राप्त छठे 'माधुर्य गुणका लक्षण कहते हैं—काव्य-रचनामें) पदोंका पृथक्-पृथक् होना 'माधुर्य' गुण है।

पृथक्-पृथक् पद हैं जिसके, वह 'पृथक्पद' हुआ तथा उस (पृथक्पद) का भाव 'पृथक्पदत्व' है। अतः काव्य-रचनाके पदोंका पृथक्-पृथक् रहना 'माधुर्य' गुण है। इस 'पृथक्पदत्व'से माधुर्य गुणमें बड़े समासका अभाव होना सूचित होता है। इसका पूर्वोक्त (अस्त्युत्तरस्यां····) उदाहरण है। विपर्यय अर्थात् प्रत्युदाहरण जैसे—

आगे बढ़ती हुई शबरों (किरात, कोल, भील आदि वन्य जाति वालों) की सेनाके द्वारा बजाये गये 'गोशृङ्ग' नामक वाद्य-विशेषोंके तुमुल (घनघोर) ध्वनिसे चकित हुए (जंगली) सूअरोंसे विन्ध्य पर्वतकी तलहटी (तराइयाँ) व्याकुल हैं ॥ २१ ॥

माधुर्यमवधारयितुमाह—पृथक्पदत्वमिति। सूत्रार्थं विविङ्क्ते—बन्धस्येति। अव्याप्तिं परिहरति—समासदैर्घ्यनिवृत्तिपरमिति। पूर्वोक्तमिति। 'अस्त्युत्तरस्यामि'त्याद्युदाहरणम्। प्रत्युदाहरणमाह—विपर्ययस्त्विति। समासपददैर्घ्याद्विपर्ययः। दत्तं धूतम् ॥ २१ ॥

अजरठत्वं सौकुमार्यम् ॥ २२ ॥

बन्धस्याजरठत्वमपारुष्यं यत् तत् सौकुमार्यम्। पूर्वोक्तमुदाहरणम्। विपर्ययस्तु यथा—

'निदानं निर्द्वंतं प्रियजनसदृक्त्वव्यवसितिः।
सुधासेकप्लोषौ फलमपि विरुद्धं मम हृदि' ॥ २२ ॥

(अब क्रमानुसार सातवें 'सौकुमार्य' गुणका लक्षण कहते हैं—काव्य-रचनामें) पदोंकी परुषता (कठोरता) का अभाव 'सौकुमार्य' गुण है।

(काव्य-रचनाकी जो अपरुषता अर्थात् कटुताका अभाव है, वह 'सौकुमार्य' गुण है। पूर्वोक्त (अस्त्युत्तरस्यां···) इसका उदाहरण है। प्रत्युदाहरण जैसे—

प्रिय व्यक्तिके समान रूप ही स्मरण एवं विरह आदि उद्दीपनके कारण हैं, अतएव मेरे हृदयमें स्मरण से ही अमृत-सिञ्चन-रूप सुख तथा विरह से ही दाह-रूप पीड़ा—ये दोनों उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥

सौकुमार्यं पर्यालोचयितुमाह—अजरठत्वं सौकुमार्यमिति। बन्धस्याजरठत्वं कोमलत्वं श्रुतिसुखत्वमिति यावत्। पूर्वोक्तमिति। 'अस्त्युत्तरस्यामि'त्याद्युदाहरणम्। प्रत्युदाहरणमाह—विपर्ययस्त्विति। सौकुमार्यस्य विपर्ययः कष्टत्वभिन्नवृत्तत्वे[1]। निर्द्वंतं संशयाभावः। अत्र निर्द्वंतमिति कष्टम् ॥ २२ ॥

---

१. एतदग्रे 'निदानमिति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विकटत्वमुदारता ॥ २३ ॥

वन्धस्य विकटत्वं यदसावुदारता । यस्मिन् सति नृत्यन्तीव पदानीति जनस्य वर्णभावना[1] भवति तद्विकटत्वम् । लीलायमानत्वमित्यर्थः । यथा—

'स्वचरणविनिविष्टैर्नूपुरैर्नर्तकीनां
झणिति[2] रणितमासीत् तत्र चित्रं कलं च ।'

न पुनः—

'चरणकमललग्नैर्नूपुरैर्नर्तकीनां
झटिति रणितमासीन्मञ्जु चित्रं च तत्र' ॥ २३ ॥

(अब चतुर्थ सूत्रोक्त दश गुणोंमें-से आठवें 'उदारता' गुणका लक्षण कहते हैं—) रचनाकी विकटता 'उदारता' गुण है ।

पद-रचनाकी जो विकटता है, वह 'उदारता' गुण है, अर्थात् वर्धमानाक्षरपदत्व 'विकटता' है, इसमें पदके प्रथमादि अक्षरोंका पदान्तरोंके प्रथमादि अक्षरोंका सादृश्य होता है । 'जिसके रहनेपर पद मानों नाच (लीला कर) रहे हैं' ऐसी मनमें भावना उठे, वह विकटता है । यथा—

नर्तकियोंके अपने पैरोंमें पहने हुए पायलोंसे निकला हुआ झङ्कार विचित्र एवं सुन्दर (कर्णमधुर) था ।

फिर यह नहीं अर्थात् कुछ पदोंके 'चरणकमल''''च तत्र' इस प्रकार परिवर्तन करनेपर विकटताका अभाव हो जानेसे 'उदारता' गुण नहीं है ।

नर्तकियोंके चरणकमलमें पहने गये पायलोंसे मनोहर और विचित्र झङ्कार हुआ ॥ २३ ॥

उदारतामुदीरयितुमाह—विकटत्वमिति । क्रमशो वर्धमानाक्षरपदत्वम् । पदप्रथमाद्यक्षराणां पदान्तरप्रथमाद्यक्षरैः सादृश्यं च । उदाहरणप्रत्युदाहरणे दर्शयति—यथेति ॥२३॥

अर्थव्यक्तिहेतुत्वमर्थव्यक्तिः ॥ २४ ॥

यत्र झटित्यर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं स गुणोऽर्थव्यक्तिरिति । पूर्वोक्तमुदाहरणम् । प्रत्युदाहरणं तु भूयः सुलभं च ॥ २४ ॥

(अब चतुर्थ सूत्रमें कथित दस गुणोंमें-से क्रमागत नवें 'अर्थव्यक्ति' गुणका लक्षण कहते हैं—) अर्थके शीघ्र अर्थज्ञानका कारण 'अर्थव्यक्ति' गुण है ।

जहाँ अर्थके शीघ्र ज्ञान होनेका कारण हो, वह 'अर्थव्यक्ति' गुण है । (इसका) पूर्वोक्त ('अस्त्युत्तरस्यां''''''''नगाधिराजः ।') उदाहरण है । प्रत्युदाहण बहुत-से तथा सुलभ हैं (व्याकरणशास्त्रसे असाधु, अप्रतीति, अनर्थक, अन्यार्थ (लक्षणादिसे), नेयार्थ, गूढार्थ, यतिभ्रष्ट, क्लिष्ट, सन्दिग्ध और (सत्कवियोंसे) अप्रयुक्त इसके प्रत्युदाहण है) ॥ २४ ॥

---

१. 'वर्णना' इति 'क' पु० पा० । २. 'झटिति' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अर्थव्यक्तिं समर्थयितुमाह—अर्थव्यक्तीति। वृत्तिः स्पष्टार्था। पूर्वोक्तम् 'अस्त्युत्तरस्यामि'ति। सुलभं चेति। 'सपदि पङ्क्तिविहङ्गनामे'त्यादि। अव्यवहितान्वयप्रसिद्धार्थपदत्वे हि भवत्यर्थव्यक्तिः। अस्य च विपर्ययः—असाध्वप्रतीतानर्थकान्यार्थनेयार्थगूढार्थयतिभ्रष्टक्लिष्टसन्दिग्धाऽप्रयुक्तानि। असाधुत्वे हि भवति नार्थव्यक्तिः। यत्र च भवति, तत्र 'असाधुरनुमानेन वाचकः कैश्चिदिष्यते' इत्युक्तत्वादसाधुशब्दः साधुशब्दानुमानद्वारेणार्थबोधक इति नार्थव्यक्तिः। पूरणाऽर्थमव्ययं च, कस्मादस्य प्रयोग इति सन्देहावहत्वादर्थव्यक्तिं व्यवदधाति—यतिभ्रंशे चाऽर्थव्यक्तिहतिः। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम्॥ २४॥

औज्ज्वल्यं कान्तिः॥ २५॥

बन्धस्योज्ज्वलत्वं नाम यदसौ कान्तिरिति। यदभावे[1] पुराणच्छायेत्युच्यते। यथा—

'कुरङ्गीनेत्रालीस्तबकितवनालीपरिसरः'।

विपर्ययस्तु भूयान् सुलभश्च। श्लोकाश्चात्र भवन्ति—

पदन्यासस्य गाढत्वं वदन्त्योजः कवीश्वराः।
अनेनाधिष्ठिताः प्रायः शब्दाः श्रोत्ररसायनम्॥
श्लथत्वमोजसा मिश्रं प्रसादं च प्रचक्षते।
अनेन न विना सत्यं स्वदते काव्यपद्धतिः॥
यत्रैकपदवद्भावः पदानां भूयसामपि।
अनालक्षितसन्धीनां स श्लेषः परमो गुणः॥
प्रतिपादं प्रतिश्लोकमेकमार्गपरिग्रहः।
दुर्बन्धो दुर्विभावश्च समतेति मतो गुणः॥
आरोहन्त्यवरोहन्ति क्रमेण यतयो हि यत्।
समाधिर्नाम स गुणस्तेन पूता सरस्वती॥
बन्धे पृथक्पदत्वं च माधुर्यमुदितं बुधैः।
अनेन हि पदन्यासाः कामं धारामधुच्युताः॥
यथा हि च्छिद्यते रेखा चतुरं चित्रपण्डितैः।
तथैव वागपि प्राज्ञैः समस्तगुणगुम्फिता[2]॥
बन्धस्याजरठत्वं च सौकुमार्यमुदाहृतम्।
एतेन वर्जिता वाचो रूक्षत्वान्न श्रुतिक्षमाः॥
विकटत्वं च बन्धस्य कथयन्ति ह्युदारताम्।

१. 'तदभावे' इति 'ग' पु० पा०। 'पुराणी छाया' इति च क्वचित्पाठः।

२. 'यथा हि……गुम्फिता॥' इत्ययं श्लोकः 'औज्ज्वल्यं……कवेर्वचः।' इत्यन्तिमश्लोकादनन्तरं 'ग' पु० पठितः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वैचित्र्यं न प्रपद्यन्ते यया[१] शून्याः पदक्रमाः ॥
पश्चादिव गतिर्वाचः पुरस्तादिव वस्तुनः ।
यत्रार्थव्यक्तिहेतुत्वात् साऽर्थव्यक्तिः[२] स्मृतो गुणः ॥
औज्ज्वल्यं कान्तिरित्याहुर्गुणं गुणविशारदाः ।
पुराणचित्रस्थानीयं तेन वन्ध्यं कवेर्वचः ॥ २५ ॥

(अब पूर्वोक्त दश गुणोंमें-से अन्तिम 'कान्ति' नामक गुणका लक्षण कहते हैं—पदरचनाकी) उज्ज्वलता अर्थात् नवीनता 'कान्ति' गुण है ।

पदरचनाकी जो उज्ज्वलता अर्थात् नवीनता है, वह 'कान्ति' गुण है । जिस उज्ज्वलताके न रहनेपर यह 'पुरानी पदरचनाकी छाया कही जाती है । जैसे—

मृगियोंके नेत्र-समूहसे वन-प्रान्त फूलके गुच्छोंसे युक्त-सा प्रतीत हो रहा है ।

प्रत्युदाहरण तो बहुत और सुलभ हैं । (ओज आदि गुणोंके कहे गये लक्षणोंके संवाद (मिलाप) के लिए उन गुणोंके अन्याचार्यों द्वारा कथित लक्षण कहते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—इन अलङ्कारोंके लक्षणके वास्ते) ये श्लोक भी हैं—

कवीश्वर लोग पद-रचनाकी गहनता (चढ़ाव) को 'ओज' गुण कहते हैं । इससे युक्त पद कानोंके लिए प्रायः रसायन (के समान स्फूर्तिप्रद) होते हैं ।

ओजसे मिश्रित रचनाके शैथिल्य (उतार) को 'प्रसाद' गुण कहते हैं । इसके बिना काव्य-रचनाकी शैली सचमुच रुचिकर नहीं होती है ।

जिस स्थलमें अस्पष्ट सन्धिवाले बहुत-से पदोंकी प्रतीति एक पदके समान हो, 'वहाँ 'श्लेष' नामका उत्तम गुण होता है ।

(जहाँ) प्रत्येक पाद एवं प्रत्येक श्लोकमें एक समान रचना-शैली हो, एवं क्लिष्ट रचना और अर्थज्ञान हो; वहाँ 'समता' गुण होता है ।

जो पादोंकी यतियाँ (विराम-स्थल) क्रमशः आरोह और अवरोह (चढ़ाव और उतार) हो, वह 'समाधि' गुण है; इससे वाणी अर्थात् कविता पवित्र (शुद्ध अर्थात् सुन्दर) होती है ।

पद-रचनामें पदोंके पृथक्-पृथक् होनेपर विद्वान् लोग 'माधुर्य' गुण कहते हैं । इससे पद-विन्यास अतिशय मधु-धारा प्रवाहित करनेवाले होते हैं, अर्थात् सुननेमें रुचिकर होते हैं ।

जैसे चतुर चित्रकार चतुरतासे रेखा खींचते (खींचकर सुन्दर चित्र बनाते) हैं, वैसे ही निपुण कविलोग सर्व-गुण-सम्पन्न काव्य की रचना करते हैं ।

पद-रचनाकी अपरुषताको 'सौकुमार्य' गुण कहा गया है । इससे वर्जित वचन (काव्य) रूक्ष (रूखे) होनेसे कर्णप्रिय (सुननेमें मधुर) नहीं होते हैं ।

पद-रचनाकी विकटताको (विद्वान् लोग) 'उदारता' गुण कहते हैं । जिसके बिना पद-विन्यास विचित्रताको नहीं पाते हैं ।

---

१. 'यथा' इति 'क-ख' पु० पा० । २. 'सोऽर्थव्यक्तिः' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

जहाँ अर्थके (अधिक) सुस्पष्ट होनेसे पदोंकी गति मानो बादमें हो तथा अर्थ-ज्ञान पहले ही हो जाय, वह 'अर्थव्यक्ति' गुण कहा गया है।

गुणके विद्वान् लोग पदोंकी उज्ज्वलता अर्थात् नवीनताको 'कान्ति' गुण कहते हैं। उस (नवीनता) से हीन, कवि-वचन (काव्य) पुराने चित्र जैसा अर्थात् प्राचीन काव्यकी छाया (नकल) के समान जान पड़ता है ॥ २५ ॥

कान्ति कथयितुमाह—औज्ज्वल्यमिति। 'पत्रमि'ति वक्तव्ये 'किसलयमि'त्यादि। 'जलधावि'ति वक्तव्ये'ऽधिजलधौ'ति। 'राज्ञी'ति वक्तव्ये 'राजनी'ति। 'कमलमिवे'ति वक्तव्ये 'कमलायत' इत्यादिः कान्तिहेतुः। विपर्ययस्य विषयं दर्शयति—यदभाव इति। अत्र संवादं सन्दर्शयन्नमून् गुणान् अन्यश्लोकैरुपश्लोकयति—पदन्यासस्येत्यादि। श्लोकाः स्पष्टार्थाः ॥ २५ ॥

नाऽसन्तः, [1]संवेद्यत्वात् ॥ २६ ॥

न खल्वेते गुणा असन्तः [2]संवेद्यत्वात् ॥ २६ ॥

(केवल अपनी कल्पना (मनोभावना) से उत्पन्न होनेवाले ये गुण रूप-रस आदिके समान अपरोक्ष होनेसे नहीं जाने जा सकते हैं ? इस शङ्काका समाधान इस सूत्रसे करते हैं—) 'ये (गुण) नहीं है' ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि (ये गुण सहृदयोंके) संवेद्य अर्थात् ज्ञेय हैं।

ये (ओज आदि) गुण सहृदयोंके संवेद्य होनेके कारण 'नहीं है' ऐसी बात नहीं है ॥ २६ ॥

नन्वेते गुणाः स्वसङ्कल्पनामात्रसारा रूपरसादिवदपरोक्षतयाऽधिगन्तुमशक्यत्वादिति शङ्कामुट्टङ्कयितुमाह—नाऽसन्त इति। ओजःप्रमुखा एते गुणाः, असन्तः तुच्छा न भवन्ति। कुतः ? संवेद्यत्वात्, सहृदयसंवेदनस्य विषयत्वात् ॥ २६ ॥

तद्विदां [3]संवेद्यत्वेऽपि भ्रान्ताः स्युरित्याह—

न भ्रान्ताः, निष्कम्पत्वात् ॥ २७ ॥

न गुणा भ्रान्ताः, एतद्विषयायाः प्रवृत्तेर्निष्कम्पत्वात् ॥ २७ ॥

उन गुणज्ञाताओंके संवेद्य होनेपर भीतरहित लोगोंके लिए ये गुण भ्रामक (भ्रमोत्पादक) हो सकते हैं ? इस शङ्काका समाधान करनेके लिए यह सूत्र कहते हैं— (इन गुणोंसे सम्बन्धित प्रवृत्तिके) अबाधित होनेसे (ये गुण) भ्रमोत्पादक नहीं हैं।

ये गुण भ्रमोत्पादक नहीं हैं, क्योंकि एतद्विषयक प्रवृत्ति बाधित नहीं है।

असार्वजनीनत्वादियं प्रतीतिर्भ्रान्तिरेव किं न स्यादिति शङ्कामङ्कुरयित्वा समुन्मूलयितुमाह—न भ्रान्ता इति। निष्कम्पत्वादसार्वजनीनत्वेऽप्यबाधितत्वादित्यर्थः ॥२७॥

१-३. 'सद्वेद्य……' इति 'क, ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

न पाठधर्माः, सर्वत्रादृष्टेः ॥ २८ ॥

इति वामनविरचितकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ गुणविवेचने
तृतीयेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः ।

नैते गुणाः पाठधर्माः, सर्वत्राऽदृष्टेः । यदि पाठधर्माः स्युस्तर्हि विशेषानपेक्षाः सन्तः सर्वत्र दृश्येरन् । न च सर्वत्र दृश्यन्ते । विशेषापेक्षया विशेषाणां गुणत्वाद् गुणाभ्युपगम एवेति ॥ २८ ॥

इति श्रीकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ गुणविवेचने तृतीयेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः गुणालङ्कारविवेकः,
शब्दगुणविवेकश्च ॥ ३।१ ॥

(ये 'ओज' आदि गुण पाठधर्म हैं, ऐसा माननेवालोंसे कहते हैं—) ये सर्वत्र पाठमात्रमें नहीं देखे जानेसे (ये ओज आदि गुण) पाठके धर्म नहीं हैं ।

ये (ओज आदि गुण) पाठके धर्म नहीं हैं, क्योंकि सर्वत्रं (सभी पाठोंमें) नहीं देखे जाते हैं । यदि ये (ओज आदि) पाठधर्म होते, तो विशेषापेक्षाके बिना सर्वत्र देखे जाते, किन्तु सर्वत्र नहीं देखे जाते हैं । विशेषापेक्ष होनेसे ये विशेष गुण-स्वरूप हैं, ऐसा स्वीकार करना ही चाहिए ॥ २८ ॥

ओजःप्रमुखा गुणाः पाठधर्मा इति प्रत्यवस्थातारम्प्रत्याह––न पाठधर्मा इति । व्याचष्टे––नैते गुणा इति । सर्वत्रोदाहरणे प्रत्युदाहरणे पाठधर्मत्वे बाधकमाह—यदि पाठधर्माः स्युरिति । सहृदयसंविदालम्बनतया विशेषाः केचिदपेक्षणीयाः । त एव विशेषा गुणा इत्यभ्युपगन्तव्या इति ॥ २८ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ गुणविवेचने तृतीयेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः ॥ ३।१ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वितीयोऽध्यायः

[1]सम्प्रत्यर्थगुणविवेचनार्थमाह—

त एवार्थगुणाः ॥ १ ॥

त एवौजःप्रभृतयोऽर्थगुणाः ॥ १ ॥

(पूर्वाध्यायमें शब्द-गुणका विवेचन कर) अब 'अर्थ-गुण'के विवेचनार्थ (द्वितीयाध्यायका आरम्भ करते हुए) कहते हैं—

वे (ओज आदि) ही 'अर्थ-गुण' हैं।

वे ओज आदि (प्रसाद आदि दस) 'अर्थ-गुण' हैं ॥ १ ॥

कारुण्यसम्पदुत्कूललावण्यगुणशालिनीम् ।
स्वच्छस्वच्छन्दवाचालां भावये हृदि भारतीम् ॥ १ ॥

शब्दगुणविवेचने कृते लब्धावसरमर्थगुणविवेचनमिति सङ्गतिमुल्लिङ्गयन्ननन्तरसूत्रमवतारयति—सम्प्रतीति ॥ १ ॥

[2]शब्दार्थगुणानां वाच्यवाचकद्वारेण भेदं दर्शयति—

अर्थस्य प्रौढिरोजः ॥ २ ॥

अर्थस्याभिधेयस्य प्रौढिः[3] प्रौढत्वमोजः ।

पदार्थे वाक्यवचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा ।
प्रौढिर्व्याससमासौ च साभिप्रायत्वमेव च ॥

पदार्थे वाक्यवचनं यथा—

'अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः' ।

अत्र चन्द्रपदवाच्येऽर्थे नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिति वाक्यं प्रयुक्तम् । पदसमूहश्च वाक्यमभिप्रेतम् । अनया दिशाऽन्यदपि द्रष्टव्यम् । तद्यथा—

'पुरः पाण्डुच्छायं तदनु कपिलिम्ना कृतपदं
ततः पाकोत्सेकादरुणगुणसंसर्गितवपुः ।

---

१. एतत्पूर्वं 'शब्दगुणविवेके कृते' इत्यधिकः 'ख-ग' पु० पा० ।

२. 'वाच्यवाचकद्वारेण शब्दार्थगुणानां' इति 'ग' पु० पा० ।

३. 'प्रौढिः' इति 'ख' पु० नास्ति ।

४. '···त्वमस्य' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

५. '···दरुणगुण······' इति 'क-ख' पु०, 'पाकोत्सेधादरुण······' इति च क्वचित्पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

शनैः शोषारम्भे[1] स्थपुटनिजविष्कम्भविषमं
वने वीतामोदं बदरमरसत्वं कलयति ॥'

न चैवमतिप्रसङ्गः, काव्यशोभाकरत्वस्य गुणसामान्यलक्षणस्यावस्थितत्वात् । वाक्यार्थे पदाभिधानं यथा —

'दिव्येयं न भवति किन्तु[2] मानुषी'

इति वक्तव्ये 'निमिषति' इत्याहेति । अस्य वाक्याऽर्थस्य व्याससमासौ । व्यासो यथा—

'अयं नानाकारो भवति सुखदुःखव्यतिकरः
सुखं वा दुःखं वा न भवति[3] भवत्येव च ततः ।
पुनस्तस्मादूर्ध्वं भवति सुखदुःखं किमपि तत्
पुनस्तस्मादूर्ध्वं भवति न च दुःखं, न च सुखम् ॥'

समासो यथा—

'ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्रेक्ष्य च शूलिनम् ।
सिद्धश्चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः ॥'

साभिप्रायत्वं यथा—

'सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनयश्चन्द्रप्रकाशो युवा ।
जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्टचा कृतार्थश्रमः ॥'

आश्रयः कृतधियामित्यस्य च सुबन्धु[4] साचिव्योपक्षेपपरत्वात् साभिप्रायत्वम् । एतेन—

'रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः ।'

इत्यत्र 'सुकेश्या' इत्यस्य च साभिप्रायत्वं व्याख्यातम् ॥ २ ॥

(शब्द-गुण ही यदि 'अर्थ-गुण हैं, तो पुनः दूसरे प्रकारका प्रतिपादन क्यों करते हैं; क्योंकि उनका लक्षण पहले कहा जा चुका है ? ऐसी शङ्काके समाधानके लिए कहते हैं कि 'शब्द-गुण' और 'अर्थ-गुण' में नामाभेद होनेपर भी शब्द और अर्थके सम्बन्धमें अवश्य ही भेद है; यही कहते हैं—) 'शब्द गुणों' और अर्थ-गुणोंमें 'वाच्य और वाचक' के द्वारा भेद इस सूत्रसे प्रदर्शित करते हैं—

अर्थकी प्रौढता 'ओज' गुण है ।

अर्थ अर्थात् वाच्यकी प्रौढता 'ओज' नामका 'अर्थ-गुण' है ।

(अर्थकी यह प्रौढता पांच प्रकारकी है—) (क) पदार्थमें वाक्यका कहना, अर्थात् एक पदके अर्थको कहनेके लिए वाक्य (अनेक पदों) का कथन, (ख) वाक्यार्थमें पदका कहना, अर्थात् वाक्य (अनेक पदों) के अर्थको कहनेके लिए एक

---

१. 'शेषारम्भे' इति 'क' पु० पा० । २. किं तर्हि' इति 'क-ख' पु० पा० ।
३. 'भवति न' इति 'क-ग' पु० पा० । ४. 'वसुबन्धु' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पदका कहना, (ग) विस्तार अर्थात् किसी अर्थको विस्तृत (बढ़ा) कर कहना, (घ) समास अर्थात् किसी अर्थको बहुत संक्षेपमें कहना और (ङ) किसी अर्थका साभिप्राय (विशेष अभिप्रायके साथ) कहना—ये पाँच भेद प्रौढताके हैं ।

(अत्र क्रमसे उन पाँच प्रौढताके उदाहरण प्रस्तुत करते हुए—) (क) पदार्थमें वाक्य-कथनका उदाहरण जैसे—

अत्रि मुनिके नेत्रसे उत्पन्न ज्योति (चन्द्रमा) के समान । यहाँ 'चन्द्र' पदको कहनेके लिए 'अत्रि के नेत्रसे उत्पन्न ज्योति' यह वाक्य (अनेक पदसमूह) कहा गया है । यहाँ 'तिङ्सुबन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता' अर्थात् तिङन्त और सुबन्तका समुदाय या कारकान्वित क्रिया 'वाक्य' कहा गया है, यह वाक्य अपेक्षित नहीं है, किन्तु 'पद-समूह' रूप वाक्य अपेक्षित है । इसी प्रकार और भी जानना चाहिए । जैसे—

बेरका फल पहले पाण्डु वर्ण (कुछ श्वेतिमायुक्त पीले रंग) वाला, उसके बाद कपिल वर्ण, तदनन्तर अधिक पकनेसे अरुण (अधिक रक्त) वर्ण, धीरे-धीरे सूखनेपर उच्चावच (कहीं-कहीं सिकुड़ा हुआ), एवं अन्ततोगत्वा वनमें गन्ध-हीन तथा नीरस (पूर्णतः सूखा) हो जाता है । (प्रकृत पद्यमें—'कपिल' पदके लिए 'कपिलिम्ना कृतपदम्' 'अरुण' पदके लिए 'अरुणगुणसंसर्गितवपुः' और 'विषम' पदके लिए 'स्थपुटनिजविष्कम्भविषमम्' का प्रयोग बढ़ाकर किया गया है ।)

इस लक्षणसे 'दक्षात्मजादयितवल्लभवेदिकासु' आदिमें 'अतिव्याप्ति' (अलक्षणमें लक्षणका घटित होना) दोष होगा, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि काव्यशोभाकारकत्व रूप सामान्य गुण यहाँ रहता ही है । (ख) अब वाक्यार्थमें (अनेक पदोंके अर्थमें) पद (एक शब्द) का कथन जैसे—'यह दिव्या अर्थात् देवलोककी अप्सरा या देवी नहीं है, तो क्या है ? मानुषी है' ऐसा कहनेकी जगह 'निमिषति' अर्थात् 'यह पलक गिराती है' ऐसा कहा गया है । (अप्सरा या देवी आदि पलक नहीं गिराती हैं, किन्तु मनुष्य ही पलक गिराते हैं, ऐसा विधि-विधान होनेसे उसका दिव्य (देवलोककी अप्सरा या देवी) होना स्वतः खण्डित हो जाता है । 'पदार्थमें वाक्य तथा वाक्यार्थमें पद', इस प्रकार प्रौढ़ताके दो भेद माननेपर व्यास तथा समास अर्थात् विस्तार और संक्षेप पुनरुक्त हो जाते हैं ? ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वहाँ पदार्थ ही वाक्यार्थ और वाक्यार्थ ही पदार्थ हो जाता है, परन्तु यहाँ तो) वाक्यार्थके व्यास (विस्तार) और समास (संक्षेप) वाक्यसे ही होते हैं । (ग) वाक्यार्थका व्यास (विस्तार) जैसे—

सुख और दुःख होते ही नहीं हैं, या सुख और दुःख—दोनों ही होते हैं, या सुख होता है पर दुःख नहीं होता हैं, या सुख होता है दुःख नहीं होता । यहाँ पर सुख और दुःखके अनेक प्रकार होनेका सविस्तर वर्णन किया गया है ।

(घ) वाक्यार्थ समास अर्थात् संक्षेप जैसे—

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वे (सप्तर्षि) हिमालयसे पूछकर, पुनः शिवजीको देखकर (उनसे मिलकर) कार्यके पूरा होनेका निवेदनकर, उन (शिवजी) से विदा लेकर आकाश चले गये ! (प्रकृत पद्यमें वक्तव्य विषयको अत्यन्त संक्षेपमें कहा गया है) ।

(ङ) साभिप्रायत्व जैसे—(बिना दूसरे पदका प्रयोग किये ही प्रकृत अर्थका बोध कराना साभिप्रायत्व है ।)

चन्द्रगुप्तका युवक पुत्र चन्द्रप्रकाश विद्वानोंको आश्रय देनेवाला, परिश्रमी, इस समय भाग्यसे राजा हो गया है ।

इस पद्यमें 'आश्रयः कृतधियां (विद्वानोंको आश्रय देनेवाला) कहनेसे 'सुबन्धु'को उस (चन्द्रप्रकाश) का मंत्री बननेका संकेत होनेसे साभिप्रायत्वका उदाहरण है । इससे—

सुकेशी (सुन्दर बालोंवाली नायिका) की सुरतमें शिथिल केश-समूहमें ।

यहाँ 'सुकेशी' शब्दसे मयूरके पिच्छ-समूहको भी कदर्थित करनेवाला नायिकाके केश-पाशका वर्णन अभीष्ट होनेसे वह साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है ॥ २ ॥

शब्दगुणा एव चेदर्थगुणाः, किमनेन विधान्तरविधानव्यसनेन ? लक्षितत्वात् तेषामित्याशङ्क्य शब्दार्थगुणानान्नामतो भेदाभावेऽपि शब्दार्थोपश्लेषवशादस्ति भेद इत्याह—वाच्येति[१] । प्रागुद्देशपरिपाट्या प्रथमप्राप्तमोजः प्रतिपादयितुमाह––अर्थस्येति । वृत्तिः स्पष्टार्था । प्रौढि पद्येन पञ्चधा प्रपञ्चयति––पदार्थ इति । तत्राद्यमुदाहरति––पदार्थ इति । लक्ष्यलक्षणयोरानुकूल्यमुन्मीलयति––चन्द्रपदेति । 'तिङ्सुबन्तयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता' इत्युक्तलक्षणवाक्यं न विवक्षितम्, किन्तु पदसमुदायमात्रमभिमतमित्याह––पदसमूहश्चेति । अयं न्यायोऽन्यत्रापि सञ्चारणीय इत्याह––अनयेति । अन्यदपि दर्शयति––पुरः पाण्डुच्छायमिति । स्थपुटो निम्नोन्नतः । विष्कम्भ आभोगः । अत्र 'कपिलमि'ति वक्तव्ये 'कपिलिम्ना कृतपदमि'ति । 'शुष्कमि'ति वक्तव्ये 'शनैः शोषारम्भ' इत्यादि च वाक्यं प्रयुक्तमिति पदार्थे वाक्यरचना । 'दक्षात्मजादयितवल्लभवेदिकासु' इत्यादावतिप्रसङ्गं परिहरति––न चैवमिति । तत्र हेतुः––काव्यशोभाकरत्वस्येति । तत्र गुणसामान्यलक्षणाभावान्नातिप्रसङ्ग इत्यर्थः । द्वितीयां प्रौढि द्रढयति––वाक्यार्थ इति । 'किमियं देव्युत मानुषी'ति पृष्टः कश्चिदुत्तरमाह––'निमिषती'ति । अनेन मानुषधर्मवाचिता पदेन देवीयं न भवति, किं तर्हि ? मानुषीति वाक्यार्थः प्रतिपादितो भवति । पदार्थे वाक्यं, वाक्यार्थे पदमिति प्रौढेर्भेदाभ्यां व्याससमासौ पुनरुक्तौ स्यातामिति न शङ्कनीयम्, तत्र हि पदार्थो वाक्यार्थतां, वाक्यार्थश्च पदार्थतां प्रतिपद्यते । इह तु वाक्यार्थस्यैव व्यासो विस्तरः, समासश्च संक्षेपो वाक्येनैवेति भेदादित्याह––अस्य वाक्यार्थस्येति । व्यासमुदाहरति––अयं नानाकार इति । अयमविसंवादितयाऽनुभूयमानः सुखदुःखव्यतिकरः, नानाकारो विचित्ररूपो भवतीति वाक्यार्थः । अस्यैव विस्तरः––'सुखं वा, दुःखं वे'त्यादिना कृत इति व्यासः । समासं समुन्मेषयति––ते हिमालयमिति । अत्र संक्षेपः स्फुटः । पञ्चमीं प्रौढि प्रपञ्चयति––साभिप्रायत्वमिति । पदान्तरप्रयोग-

१. 'शब्दार्थेति' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

मन्तरेण तदर्थप्रत्यायनप्रागल्भ्यं साभिप्रायत्वम् । लक्ष्यलक्षणयोरानुरूप्यं निरूपयति–आश्रयः कृतधियामिति । एतेनेति । न्यायेनेति शेषः । सुकेश्या इत्यत्र कवेः केशसौष्ठवमभिप्रेतम् । कलापिकलापकदर्थन[1]सामर्थ्यं केशहस्तस्य समर्पयतीति साऽभिप्रायत्वम् । अस्य च विपर्ययो–व्यर्थमपुष्टार्थं च । अपुष्टार्थस्य दोषत्वं 'नापुष्टार्थत्वात्' (४।२।१९)। इति सूत्रे वक्ष्यते । व्यर्थं यथा—'श्यामां श्यामलिमानमानयत भोः' इत्यत्र श्यामाशब्दः कृष्णत्वमपि प्रतिपादयतीति श्यामलिमानमानयतेति श्यामलिम्नः करणं व्याहतमिति व्यर्थम् । 'चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी' इत्यादौ, 'तारकारिरि'ति स्थानेऽनुप्रासानुरोधात् प्रयुक्तं 'कार्तिकेय' इति पदमपुष्टार्थम् ॥ २ ॥

अर्थवैमल्यं प्रसादः ॥ ३ ॥

अर्थस्य वैमल्यं प्रयोजकमात्रपरिग्रहः[2] प्रसादः । यथा—

'सवर्णा कन्यका रूपयौवनारम्भशालिनी' ।

विपर्ययस्तु—

'उपास्तां हस्तो मे विमलमणिकाञ्चीपदमिदम्' ।

काञ्चीपदमित्यनेनैव नितम्बस्य लक्षितत्वाद् विशेषणस्याप्रयोजकत्वमिति ॥ ३ ॥

(अब क्रमागत 'प्रसाद' नामक अर्थ-गुणका लक्षण कहते हैं—) अर्थका सुस्पष्ट होना 'प्रसाद' नामक अर्थ-गुण है ।

अर्थकी सुस्पष्टता केवल विवक्षितार्थके प्रतिपादक पदसे ही होती है; वह 'प्रसाद' नामक अर्थगुण है । (पूर्व सूत्रमें कथित प्रौढ़ताके पञ्चम भेद 'साभिप्रायत्व' तथा इस 'प्रसाद' अर्थगुणमें कोई भेद नहीं है, ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन दोनोंमें परस्पर परिहार दीखता है । यथा—'रतिविगलित....' उदाहरणमें 'सुकेश्याः' के स्थानपर 'कृशाङ्ग्याः' पद रखनेसे 'अर्थ-वैमल्य' रहनेपर भी 'साभिप्रायत्व' नहीं रहता तथा 'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः' पद्यमें 'अवन्ध्यकोपस्य' पदसे 'साभिप्रायत्व' रहनेपर भी 'अर्थवैमल्य' नहीं होता ।) यथा—

'यह सवर्णा कन्या रूप एवं यौवनसे शोभायमान होती है ।' (यह 'प्रसाद' नामक 'अर्थगुण' का उदाहरण स्पष्ट है)।

प्रत्युदाहरण जैसे—

मेरा हाथ निर्मल (दोषहीन–वहुमूल्य) रत्न-जटित करधनीके स्थान (कटि-प्रदेश) को प्राप्त (स्पर्श) करे ।

इस पद्यमें करधनीके वाचक केवल 'काञ्ची' पदके प्रयोगसे ही 'कटि-प्रदेश' का बोध हो जानेसे उसके विशेषण 'विमलमणि' पदका प्रयोग व्यर्थ है, अतः इस पद्यमें 'प्रसाद' गुण नहीं है ॥ ३ ॥

१. '...दर्शन...' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'प्रयोजकमात्रपरिग्रहे' इति 'ग', 'प्रयोजकमात्रपदपरिग्रहे' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रसादं प्रसञ्जयितुमाह—अर्थवैमल्यमिति । प्रयोजकमात्रपदपरिग्रह इति विवक्षितार्थसमर्पकपदमात्रप्रयोगः, ततोऽर्थस्य[1] यद्वैमल्यं स प्रसादः । न च पञ्चमप्रौढिप्रसादयोः को भेद इति वाच्यम्, तयोः परस्परपरिहारेण दर्शनात् । यथा—'रतिविगलितबन्धे केशहस्ते' इत्यादौ 'कृशाऽङ्ग्या' इति पाठे वैमल्येऽपि न साभिप्रायत्वम् । 'अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदाम्' इत्यादौ साभिप्रायत्वेऽपि नार्थवैमल्यम् । 'सवर्णे'त्यादि स्पष्टम् । अस्य विपर्ययोऽपुष्टार्थमनर्थकं च, तत्राद्यमुदाहरति—विपर्ययस्त्विति । विशेषणस्याप्रयोजकत्वमित्यपुष्टार्थत्वमित्यर्थः । अनर्थकं तु प्रागुदाहृतम् ॥ ३ ॥

घटना श्लेषः ॥ ४ ॥

क्रमकौटिल्यानुल्बणत्वोपपत्तियोगो घटना । स श्लेषः । यथा—

'दृष्ट्वैकासनसङ्गते[2] प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।
ईषद्वक्रितकन्धरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥'

शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेष्वस्य भूयान् प्रपञ्चो दृश्यते ॥ ४ ॥

(अब क्रमप्राप्त 'श्लेष' नामक अर्थ-गुणका लक्षण कहते हैं—) घटना 'श्लेष' नामका अर्थ-गुण है ।

क्रम (विविध कार्योंका क्रमशः कथन), कौटिल्य (चमत्कारिक कुटिलता), उल्बणताका अभाव (उत्तम वर्णन) और उत्पत्तियोग (सयुक्तिक पद-विन्यास) का होना 'घटना' है । यही 'श्लेष' नामक अर्थ-गुण है । जैसे—

एक आसनपर बैठी हुई दो प्रेमिकाओंको देखकर कोई धूर्त (एकके साथ अधिक प्रेम करनेवाला शठ) नायक आदरपूर्वक पीछेसे उनके पास जाकर कपटके साथ क्रीडा करनेके व्याजसे एक नायिकाकी आँखोंको बन्द कर अपने कन्धेको कुछ झुकाकर रोमाञ्चित होकर, प्रेमसे उल्लसित मनवाली तथा अन्तर्हास (भीतरी मुस्कान) से शोभित गालोंवाली दूसरी (अपनी अधिक प्रिय) नायिकाको चूमता है ।

शूद्रक आदि कवियोंके रचे हुए ग्रन्थोंमें इसका बहुत प्रपञ्च (विस्तार) दिखलाई पड़ता है ॥ ४ ॥

श्लेषमुन्मेषयितुमाह—घटनेति । मणिपुत्रिकादिषु मुखाद्यवयवयोजनेऽपि श्लेषणं घटना भवति, सा मा भूदित्याह—क्रमेति । नेत्रनिमीलनादीनां यः क्रमः परिपाटी, कौटिल्यश्च तयोरनुल्बणत्वेनोपपत्त्या युक्ततया पृच्छाक्षेपरूपतया बाधाभावस्वभावतया च योजनं घटना विवक्षिता । उदाहरति—दृष्ट्वेति । प्रियतमयोरेका स्वकीया, अपरा तत्सखी प्रच्छन्नाऽनुरागा । अन्यथा नास्त्येकासनसङ्गतिः । निमील्यमाननयना च न

१. '·····प्रयोगेऽर्थस्य' इति 'ख' पु० पा० ।
२. '·····सनसंस्थिते' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वेष्या। तथात्वे हि 'प्रियतमे' इति कथम्। क्रीडामनुबध्नातीति क्रीडानुबन्धं तच्च तच्छलं च, विहितं क्रीडानुबन्धच्छलं येन स तथोक्तः। अस्य विपर्ययो लोकविरुद्धत्वम्। यथा हि मधुरा या सौवीरेषु सक्ता, यथा मधुरा याऽश्लेषणसक्ता, तथैवैकासने प्रसिद्ध-पत्न्योरवस्थितिः[१]। यथा मधौ कदम्बविकासः, तथा सपत्नीसन्निधावेकस्याः क्रीडा। यथा कलिका मकरन्दो गोष्पदपूरः, तथा क्रमेण युगपद् वा, द्वयोरेकस्या वा निधुवन-मिति देशकालस्वभावैर्विरुद्धम्। प्रबन्धान्तरेषु भूयिष्ठमुदाहरणमस्ति, तदूहनीयमित्याह—शूद्रकेति ॥ ४ ॥

अवैषम्यं समता ॥ ५ ॥

अवैषम्यं प्रक्रमाभेदः समता। क्वचित् क्रमोऽपि[२] भिद्यते। यथा—

'च्युतसुमनसः कुन्दाः पुष्पोद्गमेष्वलसा द्रुमा
मलयमरुतः सर्पन्तीमे वियुक्तधृतिच्छिदः।
अथ च सवितुः शीतोल्लासं लुनन्ति मरीचयो
न च जरठतामालम्बन्ते क्लमोदयदायिनीम् ॥'

ऋतुसन्धिप्रतिपादनपरेऽत्र द्वितीये पादे [३]क्रमभेदो, मलयमरुतामसाधारण-त्वात्। एवं[४] द्वितीयः पादः पठितव्यः—

'मनसि च गिरं बध्नन्तीमे किरन्ति न कोकिलाः'। इति ॥ ५ ॥

(अब 'समता' नामक अर्थ-गुणका प्रतिपादन करते हैं—) विषमताका अभाव 'समता' नामक अर्थ-गुण है।

विषमताके अभावसे आरम्भ की हुई शैलीका अभेद होना 'समता' नामक अर्थ-गुण है। कहीं-कहीं क्रमका भेद भी होता है। जैसे—

कुन्दकी झाड़ियोंके पुष्प गिर गये हैं, शिशिर और वसन्त ऋतुओंका सन्धि-काल होनेके कारण दूसरे पेड़ोंमें पुष्प विकसित नहीं हुए हैं, विरहियोंके धैर्यको नष्ट करनेवाला मलय-वायु बह रहा है, सूर्यकी किरणें ठण्डक (सर्दी) को दूर कर रही हैं और पसीना बहानेवाली तेज गर्मी नहीं है।

दो (शिशिर और वसन्त) ऋतुओंकी सन्धि-कालका वर्णन करनेवाले द्वितीय चरण ('मलयमरुतः·······च्छिदः') में मलय-वायुके अधिक बहनेसे क्रमका भेद है। अतएव दूसरा चरण इस प्रकार पढ़ना चाहिए—

'मनसि च गिरं बध्नन्तीमे किरन्ति न कोकिलाः' अर्थात् वे कोकिल मनसे बोलना चाहते हैं, परन्तु शिशिर तथा वसन्त ऋतुओंके सन्धि-काल होनेसे नहीं बोलते हैं। (वसन्त ऋतुमें ही कोयलका बोलना (कुहुकना) कवि-सम्मत है) ॥ ५ ॥

---

१. 'विरुद्धत्वम्। यथा हि मथुरायाः सौवीरेषु सत्ता, यथा मथुरायां श्लेषणसत्ता, तथैव एकासने प्रसिद्धसपत्न्योरवस्थितिः।' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'क्वचिद्धि प्रक्रमोऽपि' इति 'ख-ग' पु० पा०।

३. 'प्रक्रमभेदः' इति 'ख' पु० पा०। ४. 'एवं तु' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

समतां समुन्मीलयितुमाह—अवैषम्यमिति। अवैषम्यं नाम प्रक्रमाभेदः, सुगमत्वं वा भवतीत्यभिसन्धाय प्राथमिकं पक्षमुपक्षिपति—अवैषम्यं प्रक्रमाभेद इति। प्रक्रमस्याभेदो भेदाभावः। तत्प्रतिपत्तेः प्रक्रमभेदप्रतिपत्तिपूर्वकत्वात् प्रक्रमभेदं दर्शयितुं प्रथमतः प्रत्युदाहरणं दर्शयति—क्वचिदिति[1]। अत्र प्रक्रमभेदं प्रतिपादयति—ऋतुसन्धीति। ऋत्वोः शिशिरवसन्तयोः सन्धिः। असाधारणत्वाद् वसन्तैकधर्मत्वादित्यर्थः। इदमेवोदाहरणयितुं पाठान्तरं प्रकल्पयति—एवं[2] द्वितीय इति। 'मनसि च गिरं बध्नन्तीमे किरन्ति न कोकिलाः' इति पाठे प्रक्रमाऽभेदः स्फुटः॥ ५॥

[3]सुगमत्वं वाऽवैषम्यमिति ॥ ६ ॥

सुखेन गम्यते ज्ञायत इत्यर्थः[4]। यथा—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' इत्यादि। [5]यथा वा—

'का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥'

प्रत्युदाहरणं सुलभम्॥ ६॥

(शिष्योंके विवेकयुक्त होनेसे अवैषम्य प्रक्रमका अभेद कैसे है? ऐसा सन्देह होनेसे दूसरा लक्षण कहते हैं—) अथवा सुगमता अर्थात् अर्थज्ञानमें सरलता 'अवैषम्य' (विषमताका अभाव) है।

जो सुखपूर्वक ज्ञात हो, वह 'अवैषम्य' अर्थात् विषमताका अभाव है। यथा—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' आदि पूर्वोक्त उदाहरण।

अथवा दूसरा उदाहरण जैसे—

पके हुए पीले पत्तोंके बीचमें नये पल्लवके समान तपस्वियोंके बीचमें घूंघटवाली तथा पूर्णतया अविकसित शरीर-सौन्दर्यवाली यह कौन (नवोढा) है?

'सुगमता' का प्रत्युदाहरण सुलभ है॥ ६॥

विवेकिनोऽत्र शिष्या इति कथमवैषम्यं प्रक्रमाभेद इति। तत्रारुच्या पक्षान्तरमुपक्षिपति—सुगमत्वं वेति। उदाहरति—का स्विदिति। अत्र सुगमत्वं सुगमम्। प्रत्युदाहरणं सुलभमिति। अस्य विपर्ययः—क्रमादपक्रमं, क्लिष्टत्वं च। तदुभयमपि पूर्वमुदाहृतं द्रष्टव्यम्॥ ६॥

अर्थदृष्टिः समाधिः ॥ ७ ॥

अर्थस्य दर्शनं दृष्टिः। समाधिकारणत्वात् समाधिः। अवहितं हि चित्तमर्थान् पश्यति। (१।२।१७) इत्युक्तं पुरस्तात्॥ ७॥

---

१. 'क्वचिद्धि प्रक्रमः…' इति 'ख' पु० पा०। २. 'एवं तु' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'सूत्रमिदं' 'ख-ग' पु० वृत्तावेव पठितम्।
४. 'सुखेन गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः' इत्यंशः क्वचिन्नोपलभ्यते।
५. 'इत्यादि' एतदग्रे 'यथा वा—काचिदव…पाण्डुपत्राणाम्।' इत्यंशः 'क, ग' पु० नास्ति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अब क्रमप्राप्त 'समाधि' नामक अर्थ-गुणका लक्षण कहते हैं—) अर्थकी दृष्टि (स्पष्ट दर्शन) 'समाधि' नामक अर्थ-गुण है।

अर्थका दर्शन (स्पष्ट दिखायी देना) दृष्टि है। वह समाधिका कारण होनेसे 'समाधि' है। 'स्थिर चित्त अर्थोंको देखता है'—यह पहले (१।३।११ में) कह चुके हैं ॥ ७ ॥

समाधिं सम्प्रधारयितुमाह––अर्थदृष्टिरिति। ननु समाधिरवधानं, दर्शनं तु ज्ञानविशेषः, कथमुभयोः सामानाधिकरण्यमित्यत आह––समाधिकारणत्वादिति। समाधिः कारणं यस्येति बहुव्रीहिः। कार्यकारणयोरुभयोरभेदमुपचर्योक्तमित्यर्थः। कार्यकारणभावमेव ज्ञापयति––अवहितं हीति। 'चित्तैकाग्र्यमवधानम्' (१।३।१७) इति सूत्रे प्रागुक्तमित्यर्थः। 'सद्यः कृत्तद्विरदरदनच्छेदगौरैः' इत्यादौ यथा छेदश्छिद्यमाने दन्तादौ पर्यवस्यति, तथा दर्शनमत्र दृश्यमानेऽर्थे पर्यवस्यतीति भवत्ययमर्थगुणः ॥ ७ ॥

अर्थो द्विविधः, अयोनिरन्यच्छायायोनिर्वा ॥ ८ ॥

यस्यार्थस्य दर्शनं समाधिः, सोऽर्थो द्विविधः–अयोनिरन्यच्छायायोनिश्चेति। अयोनिरकारणः[1]। अवधानमात्रकारण इत्यर्थः। अन्यस्य काव्यस्य च्छायाऽन्यच्छाया तद्योनिर्वा[2]। तद्यथा—

'आश्वपेहि मम शीधुभाजनाद् यावदग्रदशनैर्न दश्यसे।
चन्द्र ! मद्दशनमण्डलाङ्कितः खं न यास्यसि हि रोहिणीभयात्' ॥

'मा भैः शशाङ्क मम शीधुनि नास्ति राहुः
खे रोहिणी वसति कातर ! किं बिभेषि।
प्रायो विदग्धवनितानवसङ्गमेषु
पुंसां मनः प्रचलतीति किमत्र चित्रम्' ॥

पूर्वस्य[3] श्लोकस्यार्थोऽयोनिः। द्वितीयस्य चान्यच्छायायोनिरिति ॥ ८ ॥

(अब अर्थका द्वैविध्य बतलाते हैं—) अर्थके दो भेद हैं––(क) अयोनि और (ख) अन्यच्छायायोनि।

जिस अर्थका दर्शन (स्पष्ट दीखना) 'समाधि' है, वह अर्थ दो प्रकारका है—(क) अयोनि और (ख) अन्यच्छायायोनि। उनमें-से (क) अयोनि निष्कारण होता है अर्थात् केवल अपनी प्रतिभासे (बिना किसी दूसरे कविकी रचना आदिका भाव ग्रहण किये स्वप्रतिभामात्रसे) रचना 'अयोनि' है। (ख) दूसरे काव्यकी छाया 'अन्यच्छाया' (दूसरे किसी कविकी रचनाका भाव आदि का ग्रहण) है तथा उससे उत्पन्न कवि-कृतिके भाव या शब्द आदिके आधार पर की गयी काव्यरचना 'अन्यच्छायायोनि' है। जैसे—

---

१. 'अयोनिरनन्यकारण' इति 'क' पु० पा०। २. 'तद्योनिश्च' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'अत्र पूर्वस्य' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अपने पान-पात्रमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमासे नायिका कहती है—) हे चन्द्र ! मैं जब तक अपने पान-पात्रमें प्रतिबिम्बित तुम्हारा चुम्बन करती हुई तुम्हें अपने दाँतोंसे काट नहीं लेती, तबतक (मेरे दाँतोंसे कटनेके पहले ही) मेरे मद्य-पात्रसे शीघ्र भाग जाओ, अन्यथा मेरे दाँतोंसे काट लेनेके बाद उससे अंकित चिह्नसे युक्त तुम (अपनी प्रेयसी) रोहिणीके डरसे आकाशमें नहीं जाओगे ।

(यहाँ भी मद-पानके लिए चाँदनी में बैठी हुई नायिका अपने मदिरा-पात्रको तथा चन्द्रमाको देखती हुई कहती है—) हे चन्द्र ! डरो मत, (क्योंकि तुम्हारे डरनेके दो कारणोंमें-से प्रथम कारण) राहु नहीं है और (द्वितीय कारण) रोहिणी आकाशमें रहती है । अतः हे कायर ! (भय का कारण न होनेपर भी भय करनेवाला चन्द्र !) तुम क्यों डरते हो ? (पुनः अपने मदिरा-पात्रमें प्रतिविम्ब चन्द्रमाको देखकर वह नायिका कहती है, कि—) प्रायः चतुर नायिकाकी नयी सङ्गति (भोग, विलासादि) में पुरुषोंका मन विचलित हो जाता है, इसमें आश्चर्य क्या है ?

पहले श्लोक (आश्वपेहि····भयात्) का अर्थ (कविकी अपनी प्रतिभासे उत्पन्न कल्पना होनेसे) 'अयोनि' और दूसरे श्लोक (मा भैः····चित्रम्) का अर्थ दूसरे कविकी रचनाका भाव लेकर की गयी कल्पना होनेसे) 'अन्यच्छायायोनि' है ॥ ८ ॥

द्वैविध्यमर्थस्य दर्शयितुमाह––अर्थो द्विविध इति । व्याख्यातुं पूर्वसूत्रार्थमनुवदति––यस्येति । अयोनिरिति । न विद्यते योनिः कारणं यस्येति विग्रहमभिसन्धायाभिधत्ते––अयोनिरकारण इति । कथमसति कारणमात्रे कार्योत्पत्तिरित्याशङ्क्य कवित्वबीजप्रतिभोन्मेषप्रयोजकमवधानमेवाऽत्र कारणमित्यवगमयितुं नञा प्रसिद्धकारणं प्रतिषिद्ध्यत इत्याह––अहधानेति । विधान्तरं व्याकरोति––अन्यस्य काव्यस्येति । तद्योनिरित्यत्र सा छाया योनिर्यस्येति बहुव्रीहिः । प्रथमं भेदं दर्शयति––आश्वपेपीति । स्पष्टम् । विधान्तरं व्युत्पादयति––मा भैरिति । बिभेषीत्यत्र मत्त इत्यध्याहार्यम् । स्त्रीणां प्रियस्य पुरतः स्ववैदग्ध्यप्रकटनमुचितमेवेत्यवगन्तव्यम् । लक्ष्ये लक्षणमवगमयति—पूर्वस्येति[1] । पूर्वभाविना कविना कृतत्वात् ॥ ८ ॥

[2]अर्थो व्यक्तः सूक्ष्मश्च ॥ ९ ॥

यस्यार्थस्य दर्शनं समाधिरिति,[3] स द्वेधा—व्यक्तः सूक्ष्मश्च । व्यक्तः स्फुट उदाहृत एव ॥ ९ ॥

(पूर्व सूत्रमें अर्थके दो भेद कहनेके उपरान्त अब प्रकारान्तरसे उसके दो भेद इस सूत्रमें कहते हैं—) अर्थके व्यक्त तथा सूक्ष्म—ये दो भेद हैं ।

जिस अर्थका दर्शन 'समाधि' गुण है, वह दो तरहका है—(क) व्यक्त (अत्यन्त स्पष्ट भाववाला अर्थ) और (ख) सूक्ष्म (गूढ भाववाला अर्थ) । (उनमें-से)

---

१. 'अत्र पूर्वस्येति' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'अर्थः' इति 'ख' पु० नास्ति ।
३. 'यस्यार्थ···समाधिरिति' इत्यत्र 'अयोनिरन्यच्छायायोनिश्च योऽयमर्थः' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

व्यक्त स्पष्ट अर्थ है। उसका उदाहरण (आश्वपेहि····मा भैः···· श्लोकोंमें) दिया जा चुका है ॥ ९ ॥

द्विविधस्याप्यर्थस्य द्वैविध्यं दर्शयितुमाह––व्यक्तः सूक्ष्मश्चेति । व्यक्तार्थद्वयस्य प्रागुक्तमुदाहरणाद्वयं प्रत्येतव्यमित्याह––उदाहृत एवेति ॥ ९ ॥

सूक्ष्मं व्याख्यातुमाह—

सूक्ष्मो भाव्यो वासनीयश्च ॥ १० ॥

सूक्ष्मो द्वेधा भवति—भाव्यो, वासनीयश्च । शीघ्रनिरूपणागम्यो भाव्यः । एकाग्रताप्रकर्षगम्यो वासनीय इति । भाव्यो यथा—

'अन्योन्यसंवलित[1]मांसलदन्तकान्ति सोल्लासमाविरलसंवलितार्धतारम् ।
लीलागृहे प्रतिकलं किलकिञ्चितेषु[2] व्यावर्तमाननयनं[3] मिथुनं चकास्ति ॥'

वासनीयो यथा—

अवहित्थवलितजघनं विवर्तिताभिमुखकुचतटं स्थित्वा ।
अवलोकितोऽहमनया दक्षिणकरकलितहारलतम् ॥ १० ॥

अव 'सूक्ष्म' की व्याख्या करनेके लिए सूत्र कहते हैं—

'सूक्ष्म' अर्थके दो भेद हैं—(क) भाव्य और (ख) दर्शनीय ।

'सूक्ष्म' अर्थ दो प्रकारका होता है—(क) भाव्य और (ख) दर्शनीय । उनमें-से शीघ्र निरूपणसे जानने योग्य अर्थ 'भाव्य' है और अधिक चित्तैकाग्रतासे जानने योग्य अर्थ 'वासनीय' है ।

(क) 'भाव्य' जैसे––

प्रेमी नायक और नायिका—दोनोंकी मांसल दशनकान्ति परस्परमें मिश्रित हो हो रही है, हर्षोल्लास तथा आलस्यसे युक्त उन दोनोंके नेत्र कुछ बन्द (अधखुले) हैं, विलास-प्रकोष्ठमें किलकिञ्चित् (यौवनावस्थामें उत्पन्न, नायिकाका अलङ्कार-विशेष) करते समय वे दोनों आपसमें एक-दूसरेको देखते और आकृष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार प्रेमी नायक और नायिकाकी जोड़ी प्रफुल्ल होकर सुशोभित हो रही है । (प्रकृत पद्यमें 'अन्योन्य···कान्ति' पदसे उनके 'स्मित, संलाप और अधर-पानादिका; 'सोल्लासम्' पदसे 'हर्ष और उत्कण्ठा' आदिका; 'अलसम्' पदसे 'श्रमजनित अङ्ग-शैथिल्य' आदिका; 'किलकिञ्चितेषु····नयनम्' पदसे 'प्रणयकलह, गर्व, भय, कम्पन आदिका होना सूचित होता है । यहाँ दोनों प्रेमियोंकी जोड़ी 'आलम्बन-विभाव', लीलागृह 'उद्दीपन-विभाव', अधर-पान, अङ्गशैथिल्य, स्मित कम्प, भ्रू-भङ्ग, दृष्टि-

१. '···सम्मिलित···' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।
२. 'किलकिञ्चितेन' इति 'ख' पु० टिप्पणी ।
३. '···मानविनयं' इति 'ख' पु० टिप्पणी ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

सङ्कोच आदि 'अनुभाव'; उल्लसित उन्मीलित हर्ष औत्सुक्य आदि 'किलकिञ्चित'[1] से आक्षिप्त क्रोध, भय, गर्व आदि 'सञ्चारीभाव' हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभावोंसे उत्पन्न रतिरूप स्थायी भावोंके साधारणीकरणसे सम्भोग शृङ्गारके बढ़नेका सङ्केत किया गया है। इनका भावना द्वारा शीघ्र ज्ञान होनेके कारण यह श्लोक 'भाव्य' अर्थका उदाहरण है)।

(ख) 'वासनीय' अर्थ जैसे—

दोनों जङ्घाओंको परस्परमें सटाकर, स्तनोंको सामनेकर, दाहिने हाथसे हारको पकड़ती हुई नायिकाने मुझे देखा। (प्रकृत श्लोकमें सम्भोगोत्सुक होनेपर भी नायिका द्वारा दोनों जङ्घाओंको सटाने आदिसे सम्पन्न 'अवहित्थ'[2] नामक व्यभिचारीभाव विशेष ध्यान देनेपर ही ज्ञात होता है, अत एव यह अर्थ 'वासनीय' है)॥ १०॥

सूक्ष्मविभागं दर्शयितुं सूत्रमवतारयति--सूक्ष्ममिति। विभागं व्युत्पादयति-- सूक्ष्म इति। भावुकानामवधानमात्रेण विमर्शो भावना। तद्योग्यो भाव्यः। सहृदयसद्व्यवहारसमुल्लसितसंस्कारसम्पन्नो योऽवधानप्रकर्षस्तेन गम्यो वासनीयः। तदिदमभिसन्धायाह—शीघ्रेति। आद्यमुदाहरति—भाव्यो यथेति। लीलागृहे मिथुनमुक्तविधं चकास्तीति वाक्यार्थः। 'अन्योन्यसंवलित[3]मांसलदन्तकान्ती'त्यनेन स्मितसँल्लापाधरास्वादादयः, 'सोल्लासमि'त्यनेन हर्षौत्सुक्यादयः, 'अलसमि'त्यनेन श्रमाङ्गदौर्बल्यादयः, 'किलिकिञ्चितेषु व्यावर्तमाननयनमि'त्यनेन प्रणयकलहगर्वभयकम्पादयश्च व्यज्यन्ते। 'क्रोधाश्रुहर्षभीत्यादेः सङ्करः किलिकिञ्चितम्' इति दशरूपके तल्लक्षणकथनात्। अत्र मिथुनमालम्बनविभावः। लीलागृहमुद्दीपनविभावाः। अधरास्वादाङ्कक्लमस्मितकम्पनयनव्यावर्तनभ्रूभेदादयोऽनुभावाः। उल्लासितोन्मीलितहर्षौत्सुक्यादयः किलिकिञ्चिताक्षिप्तक्रोधशोकभयगर्वाश्च सञ्चारिणः। इत्थं विभावानुभावसञ्चारिभिरास्वादनीयतामापाद्यमानो रतिलक्षणः स्थायीभावः साधारण्येन चर्व्यमाणतैकप्राणः सम्भोगशृङ्गारो रसः। तदुक्तं दशरूपके--

'विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वादुत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः॥' इति।

---

१. यदुक्तं साहित्यदर्पणे विश्वनाथेन—

'स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमादीनाम्।
साङ्कर्यं 'किलकिञ्चित'मीष्टतमसङ्गमादिजाद्धर्षात्॥' (३।१०१) इति।

धनिकस्य दशरूपके च—

क्रोधाश्रुहर्षभीत्यादेः सङ्करः 'किलकिञ्चितम्।' (२।३९) इति।

२. यथोक्तं साहित्यदर्पणे विश्वनाथेन—

'भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था।
व्यापारान्तरसक्त्यन्यथावभाषणविलोकनादिकरी॥' (३।१५८) इति।

दशरूपके धनिकेनाप्युक्तं यथा—

'लज्जाद्यैर्विक्रियागुप्ताववहित्थाऽऽङ्गविक्रिया।' (४।२९) इति।

३. '···सम्मिलित···' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वासनीयमुद्भासयति--वासनीय इति। अवहित्थेति। अवहित्थमाकारगोपनम्। दुर्लभस्त्वत्सम्भोगः त्वय्येव लग्नमिदं मदीयं मनः, दुरन्तसन्तापशान्तये हारलतिकेयमेका मयि दाक्षिण्यमवलम्बत इत्येवं स्वाभिप्रायप्रकाशनमवधानप्रकर्षेणात्र सहृदयसंवेद्यम्। अत्र विप्रलम्भशृङ्गारः। विभावादयः स्वयमूह्याः। अस्य गुणस्य विपर्ययो-ग्राम्यत्वम्, 'स्वपिति यावद्' (सू० १३ उदा०) इत्यादौ द्रष्टव्यम् ॥ १० ॥

उक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम् ॥ ११ ॥

उक्तेर्वैचित्र्यं यत्तन्माधुर्यमिति। यथा--

रसवदमृतं, कः सन्देहो मधून्यपि नान्यथा
मधुरमधिकं चूतस्यापि प्रसन्नरसं फलम्।
सकृदपि पुनर्मध्यस्थः सन् रसान्तरविज्जनो
वदतु यदिहान्यत् स्वादु स्यात् प्रियादशनच्छदात् ॥ ११ ॥

(क्रमागत 'माधुर्य' नामक अर्थगुणका लक्षण कहते हैं—) उक्ति की विचित्रता अर्थात् नवीनता 'माधुर्य' नामक अर्थगुण है।

उक्ति (वर्णन करने) की जो विचित्रता है, वह 'माधुर्य' नामका गुण है। यथा—

अमृत स्वादिष्ट होता है, इसमें क्या सन्देह है? मधुमें भी दूसरा स्वाद नहीं है अर्थात् मधु भी अमृतवत् स्वादिष्ट होता है, सुन्दर रसीले आमका फल भी अधिक स्वादयुक्त होता है, अन्यान्य (दूसरे-दूसरे) रसोंके स्वादको जानेवाला कोई मध्यस्थ (पक्षपातसे रहित) व्यक्ति एक बार भी यह कहे कि प्रियाके अधरके अतिरिक्त दूसरा कोई (अधिक) स्वादिष्ट होता है। (प्रकृत श्लोकमें अमृत, मधु और आमके फलके स्वादिष्ट होनेका वर्णनकर प्रियाके अधरको उनकी अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट होनेका वर्णन विचित्रताके साथ करनेसे 'माधुर्य' नामका अर्थगुण है) ॥ ११ ॥

माधुर्यं पर्यालोचयितुमाह--उक्तिवैचित्र्यमिति। वर्ण्यमानस्यार्थस्य प्रकर्षे प्रतिपाद्ये भङ्ग्यन्तरेणोक्तिरुक्तिवैचित्र्यम्। रसवदमृतमिति। कस्यचिन्नागरिकस्येयमुक्तिः। अमृतं रसवद्भवत्येव। मधून्यपि नान्यथा रसवन्त्येव। प्रसन्नरसं चूतस्यापि फलमधिकं मधुरमेव। कः सन्देह इति सर्वत्रानुषज्यते। तथापि रसान्तरवित् सकृदपि रसविशेषाभिज्ञो जनो मध्यस्थः सन् वदतु,[१] रसज्ञोऽपक्षपाती चेदन्यत् स्वादु भवतीति न वदेत्, तादृशवस्त्वन्तरासम्भवादित्यर्थः। नानाविधोपमानाऽतिशायि दशनच्छदमिति वक्तव्ये, रसवदमृतमित्यादिभङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादनादत्र माधुर्यम्। अस्य गुणस्य विपर्ययो--ह्येकस्यैवार्थस्य पुनः पुनः कथनमित्येकार्थत्वम्। प्राय एकार्थश्रुतेर्वैरस्यात् कष्टत्वं वा ॥ ११ ॥

अपारुष्यं सौकुमार्यम् ॥ १२ ॥

---

१. 'प्रियादशनच्छदादन्यद् यद्वस्तु स्वादु स्यात्, तद्वदतु' इत्येवं 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पुरुषेऽर्थे अपारुष्यं सौकुमार्यमिति यथा 'मृतं, यशःशेषमित्याहुः । एकाकिनं देवताद्वितीयमिति । गच्छेति साधयेति च ।। १२ ।।

(अब क्रमागत 'सौकुमार्य' नामक अर्थगुणका लक्षण कहते हैं—) परुषता अर्थात् कठोरताका नहीं रहना 'सौकुमार्य' नामक अर्थगुण है ।

परुष अर्थात् कठोर अमंगल या घबराहट उत्पन्न करनेवाले अर्थको कहनेमें परुषताका प्रयोग नहीं करना 'सौकुमार्य' नामक अर्थगुण है । जैसे—'मरे हुए' की जगह 'यश ही बाकी रहा'; 'अकेले'की जगह 'देवता है सहायक जिसका ऐसा' और 'जाओ' की जगह (अपना काम) 'साधन करो' (इस प्रकार कठोर अर्थका त्यागकर) कहना ('माधुर्य' नामक अर्थगुण है) ।। १२ ।।

सौकुमार्यं समाख्यातुमाह--अपारुष्यमिति । परुषे अमङ्गलातङ्कदायिन्यर्थे वर्णनीये यदपारुष्यं, तत् सौकुमार्यमिति लक्षणार्थः । उदाहरणानि स्पष्टानि । अस्य गुणस्य विपर्ययोऽश्लीलत्वम् ।। १२ ।।

अग्राम्यत्वमुदारता ।। १३ ।।

ग्राम्यत्वप्रसङ्गेऽग्राम्यत्वमुदारता । यथा—

त्वमेवं सौन्दर्या स च रुचिरतायां परिचितः
कलानां सीमानं परमिह युवामेव भजथः ।
अयि ! द्वन्द्वं दिष्टया तदिति सुभगे ! संवदति वा-
मतः शेषं चेत् स्याज्जितमिह तदानीं गुणितया ।।

विपर्ययस्तु—

स्वपिति यावदयं निकटे जनः स्वपिमि तावदहं किमपैति ते ।
इति निगद्य शनैरनुमेखलं मम करं स्वकरेण रुरोध सा ।। १३ ।।

(अब क्रमप्राप्त 'उदारता' नामके अर्थगुणका लक्षण कहते हैं—) ग्राम्यत्वका अभाव 'उदारता' नामक अर्थगुण है ।

ग्राम्यत्व (देहाती अर्थात् अश्लीलता) को कहनेके प्रसङ्गमें गाम्यत्वको नहीं कहना 'उदारता' नामक अर्थगुण है । जैसे—

तुम इस प्रकार (सर्वाधिक) सौन्दर्यवाली हो और वह युवक रुचिरतामें सर्वविदित है, अर्थात् उसकी सुन्दरता भी सभी जानते हैं, कलाओंकी चरम सीमाको तुम्हीं दोनों प्राप्त हो । हे सुन्दरि ! तुम दोनोंकी जोड़ी संयोगसे (भाग्यवश) मिल रही है; अत एव यदि बाकी काम (परस्पर प्रेम एवं विवाहादि सम्बन्ध) हो जाता है, तब तो गुणित्व की जीत हुई, ऐसा समझो । (प्रकृत श्लोकमें तू और वह (त्वं स च), फिर दोनोंको मिलाकर तुम दोनों (युवां), पुनः जोड़ी (द्वन्द्वम्) और सबसे अन्तमें बाकी (शेष) कार्य—विवक्षित (कहनेके लिए अभीष्ट) अर्थको

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रकट करनेसे फलका पर्यवसान वर्णन कामंदकी द्वारा मालतीसे करनेके कारण 'उदारता' नामक अर्थगुण स्पष्ट है)।

इसके प्रतिकूल अर्थात् प्रत्युदाहरण जैसे--

जबतक यह आदमी (पुरुष) सोता है, तब तक मैं सोती हूँ, इसमें तुम्हारा क्या चला जाता है ? ऐसा कहकर अपनी करधनीकी तरफ बढ़ते हुए मेरे हाथको उस (युवती) ने अपने हाथसे रोक लिया। (इस पद्यमें किसी कामुकका अपने मित्रसे वर्णन करना ग्राम्यत्वपूर्ण होनेसे 'उदारता' अर्थगुण नहीं है) ।। १३ ।।

उदारतामुदीरयितुमाह--अग्राम्यत्वमिति । अत्र 'कन्ये ! कामयमानं कान्तं कामयस्वे'ति वक्तव्ये ग्राम्यार्थे यदौचित्येन प्रतिपादनं सोदारता । त्वमेवमिति । एवं वर्णनापथोत्तीर्णतयाऽनुभूयमानं सौन्दर्यं यस्याः सा तथोक्ता । स च माधवो रुचिरतायां सौन्दर्यविषये परिचितः संस्तुतः, प्रसिद्ध इति यावत् । युवां, स च त्वं च । युवामेव परमिह लोके कलानां सीमानं भजथः । अयि ! हे मालति ! वां युवयोः द्वन्द्वं मिथुनं दिष्टया भाग्येन संवदति सदृशं भवतीत्यर्थः । अतः शेषं पाणिग्रहरूपं मङ्गलं कर्म स्याच्चेत् तदानीं गुणितया गुणवत्त्वेन जितम् । युवयोर्गुणसम्पत्तिर्विश्वातिशायिनी भवेदित्यर्थः । अत्र प्रथमं त्वं स चेति पृथक्तयोक्तेः, ततो युवामिति मिश्रीकरणेन, तदनन्तरं द्वन्द्वमिति, ततः शेषमिति च विवक्षितार्थव्यञ्जनमुखेन फलपर्यवसायित्वमित्यौचित्यशालिना क्रमेण कामन्दक्या मालतीमुद्दिश्योक्तमिति स्पष्टमुदाहरणत्वम् । प्रत्युदाहरणं प्रत्याययितुमाह--विपर्ययस्त्विति । स्वपितीति । अत्र कश्चित् कामी वयस्याय रहस्यं कथयति । अयं निकटे जनः परिसरसञ्चारी जनो यावत् स्वपिति, यावता कालेन नियतं कर्म निर्वृत्य निद्राति, तावत् तावन्तं कालं, स्वपिमि । ते किमपैति ? तावता कालविलम्बेन तव का हानिर्भवति ? इत्युक्तप्रकारेण शनैरुपांशु निगद्य कथयित्वा, अनुमेखलं मेखलासमीपे प्रसारितं मम मे करं स्वकरेण रुरोध निरुद्धवती । स्पष्टं ग्राम्यत्वम् ।। १३ ।।

वस्तुस्वभावस्फुटत्वमर्थव्यक्तिः ।। १४ ।।

वस्तूनां भावानां स्वभावस्य स्फुटत्वं यदसावर्थव्यक्तिः । यथा—

'पृष्ठेषु शङ्खशकलच्छविषु च्छदानां राजीभिरङ्कितमलक्तकलोहिनीभिः ।
गोरोचनाहरितबभ्रुबहिःपलाशमामोदते कुमुदमम्भसि पल्वलस्य ।।

यथा वा—

प्रथममलसैः पर्यस्ताग्रं[1] स्थितं पृथुकेसरै-
र्विरलविरलैरन्तःपत्रैर्मनाङ्मिलितं ततः ।
तदनु वलनामात्रं किञ्चिद् व्यधायि बहिर्दलै-
र्मुकुलनविधौ वृद्धाऽब्जानां बभूव कदर्थना ।। १४ ।।

---

१. 'पर्यस्ताग्रैः' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(अब क्रमानुसार 'अर्थव्यक्ति' नामक अर्थगुणका लक्षण कहते हैं—) वस्तुओंके स्वभावकी स्पष्टता 'अर्थव्यक्ति' नामक अर्थगुण है।

वस्तुओं (भावों) के स्वभावकी जो स्पष्टता (सम्पूर्ण विशेषोंके साथ स्पष्ट वर्णन) है, वह 'अर्थव्यक्ति' नामक अर्थगुण है। जैसे—

शङ्खके टुकड़ोंके समान शोभावाली पंखुड़ियोंके पीछेवाले भागमें महावरके समान लाल रेखाओंसे रंगा हुआ, गोरोचनके समान हरे रंगका तथा बाहरमें कपिशवर्ण पत्तोंवाला कुमुद (पुष्प) छोटे सरोवरके पानीमें प्रसन्नता फैला रहा है, अर्थात् जलाशयके जलको सुशोभित कर रहा है।

अथवा दूसरा उदाहरण जैसे—

पहले मुर्झाये हुए कमलके केसरोंका अगला भाग नीचेकी ओर झुक गया, तदनन्तर विरल-विरल पंखुड़ियाँ आपसमें सट गयीं, इसके बाद बाहरवाली पंखुड़ियाँ कुछ (थोड़ी-सा) सिकुड़ गयीं हैं। इस प्रकार पुराने कमलोंके सङ्कोचमें कष्टपूर्ण दशा हो गयी। (उक्त दोनों उदाहृत श्लोकोंमें-से प्रथममें कुमुद-विकासका तथा दूसरे श्लोकमें पुराने कमलोंके संकुचित होनेका क्रमशः स्पष्ट वर्णन होनेसे 'अर्थव्यक्ति' नामक अर्थगुण है) ॥ १४ ॥

अर्थव्यक्ति समर्थयितुमाह--वस्त्विति। व्याचष्टे—वस्तूनामिति। अशेषविशेषैर्वर्णने पुर इव प्रतिभासमानत्वमर्थस्य स्फुटत्वम् उदाहरति—पृष्ठेष्विति। शङ्खशकलच्छविषु पृष्ठेषु चरमभागेषु, अलक्तकलोहिनीभी रेखाभिरङ्कितं, गोरोचनावद्धरितानि बभ्रूणि कपिशानि, बहिःपलाशानि यस्य तत् कुमुदं, पल्वलस्य वेशन्तस्याऽम्भसि, आमोदते, आमोदमुद्गिरतीति योजना। उदाहरणान्तरमाह—प्रथममिति। प्रथमम्लसैः पृथुकेसरैः पर्यस्ताग्रं शैथिल्यशालिशिखरं स्थितम्। ततः परं विरलविरलैरत्यन्तशिथिलैरन्तःपत्रैर्मनागीषन्मिलितम्। तदनु बहिर्दलैर्वलनामात्रं सङ्कोचक्रियारम्भमात्रं, किञ्चिद् व्यधायि। इत्थं वृद्धाऽब्जानां कदर्थना क्लेशदशा बभूवेति योजना। अस्य विपर्ययः--सन्दिग्धत्वं, क्लिष्टत्वं च ॥ १४ ॥

दीप्तरसत्वं कान्तिः ॥ १५ ॥

दीप्ता रसाः शृङ्गारादयो यस्य स दीप्तरसः। तस्य भावो दीप्तरसत्वं कान्तिः। यथा—

प्रेयान् सायमपाकृतः सशपथं पादानतः कान्तया
द्वित्राण्येव पदानि वासभवनाद् यावन्न यात्युन्मनाः।
तावत् प्रत्युतपाणिसम्पुटलसन्नीवीनितम्बं धृतो
धावित्वैव कृतप्रणामकमहो[2] प्रेम्णो विचित्रा गतिः॥

१. 'प्रच्युतपाणि……' इति 'ख-ग' पु० पा०।
२. 'कृतप्रणाममहहा' इति 'ख' पु० टिप्पणी।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

एवं रसान्तरेष्वप्युदाहार्यम्[1]। अत्र श्लोकाः—

गुणस्फुटत्वसाकल्ये[2] काव्यपाकं प्रचक्षते।
चूतस्य परिणामेन स चाऽयमुपमीयते॥
सुप्तिङ्संस्कारसारं यत् [3]क्लिष्टवस्तुगुणं भवेत्।
काव्यं वृन्ताकपाकं तज्जुगुप्सन्ते जनास्ततः॥
गुणानां दशतामुक्तो[4] यस्यार्थस्तदपार्थकम्।
दाडिमानि दशेत्यादि न विचारक्षमं वचः॥ १५॥ इति॥

इति श्रीपण्डितवरवामनविरचितकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ
गुणविवेचने तृतीयेऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः।
समाप्तं चेदं गुणविवेचनं तृतीयमधिकरणम्।

(अब क्रमानुसार 'क्रान्ति' नामक अन्तिम अर्थगुणका लक्षण कहते हैं—) दीप्तरसत्व 'कान्ति' नामक अर्थगुण है।

दीप्त हैं श्रृङ्गार आदि रस जिस रचनाके, वह रचना दीप्तरस हुई; जिसका भाव दीप्तरसत्व है, वही (दीप्तरसत्व) 'कान्ति' नामक अर्थगुण है। जैसे—

प्रियाने सायंकाल शपथपूर्वक पैरोंपर गिरे (क्षमा-याचना करते) हुए पतिको हटा (विलास-गृहसे निकाल) दिया, पुनः वह निराश होकर विलास-गृहसे दो-तीन कदम भी नहीं गया कि तब तक (ढीली पड़नेके कारण) हाथसे नीवी (नाभिके नीचे वाली वस्त्रग्रंथि–फुफुती) और नितम्बको पकड़े हुए, दौड़कर नायिकाने प्रणामपूर्वक (पतिको प्रणाम करती हुई) पतिको पकड़ लिया। अहो ! प्रेमकी लीला विचित्र है। (प्रकृत श्लोकमें विप्रलम्भपूर्वक सम्भोगश्रृङ्गार का वर्णन है।

इसी प्रकार दूसरे रसोंके उदाहरण जानना चाहिए। यहाँ ये श्लोक हैं—

गुणोंकी विशदता तथा पूर्णताको 'काव्यपाक' अर्थात् श्रेष्ठकाव्य कहते हैं और पके हुए आमके फलके साथ इसकी उपमा दी जाती है।

जिस(काव्य-रचना)में केवल सुप् तथा तिङ् अर्थात् सामान्य पदमात्रका प्रयोग ही सार है, उस(काव्य-रचना)में वस्तुगुण कठिन हो जाता है; उसे 'वृत्तान्तपाक' (केवल वृन्त अर्थात् भेंटीपर पका हुआ एवं शेष भागमें कच्चा) कहते हैं, अत एव (काव्य-मर्मज्ञ) उसकी निन्दा करते हैं।

जिस काव्यका अर्थ (पूर्वोक्त) दश शब्दगुणों और अर्थगुणोंसे रहित है, वह काव्य विचारके अयोग्य अर्थात् निःसार है तथा (भाष्यकारके उदाहृत) दश दाडिमानि (षडपूपा····) अर्थात् दश अनार (छः पूए····) के समान विचारके

---

१. '···दाहरणीयम्।' इति 'क-ख-ग' पु० पा०। २. '···साकल्यं' इति 'क-ख' पु० पा०।
३. '···संस्कारमात्रं' इति 'क-ख' पु०, '···मात्रं स्याद' इति 'ग' पु० पा०।
४. 'दर्शनान्मुक्तः' इति 'क' पु०, 'दशता त्यक्तः' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

योग्य भी नहीं है (अत एव अच्छे कविको अलङ्कारशास्त्रोंसे दोष और गुणोंको ठीक-ठीक समझकर ही उत्तम काव्य-रचना करनी चाहिए) ॥ १५ ॥

कान्ति कथयितुमाह—दीप्तरसत्वमिति । व्याचष्टे—दीप्ता इति । दीप्ता विभावानुभावव्यभिचारिभिरभिव्यक्ताः । प्रेयानिति । अत्र विप्रलम्भपूर्वकः सम्भोगश्शृङ्गारः । एवं रसान्तरेष्विति । शृङ्गारो द्विविधः—सम्भोगो विप्रलम्भश्च । तत्राद्यः परस्परावलोकनपरिचुम्बनाद्यनन्तभेदादपरिच्छेद्यः । तत्रैको भेद उदाहृतः । विप्रलम्भस्तु परस्पराभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविधः । तत्राद्यो यथा—

प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढरागोदया-
स्तास्ता मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि ।
यास्वन्तःकरणस्य बाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणा-
दाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः ॥

एवमन्येऽपि विप्रलम्भभेदा ज्ञातव्याः ।

वीरो यथा—

क्षुद्राः सन्त्रासमेते विजहतु हरयो भिन्नशक्रेभकुम्भा
युष्मद्गात्रेषु लज्जां दधति परममी सायकाः सम्पतन्तः ।
सौमित्रे ! तिष्ठ, पात्रं त्वमसि न हि रुषो, नन्वहं मेघनादः
किञ्चिद् भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ॥

करुणो यथा—

हा मातस्त्वरिताऽसि कुत्र किमिदं हा ! देवताः क्वाऽऽशिषो ?
धिक् प्राणान् परितोऽशनिर्हुतवहो गात्रेषु दग्धे दृशौ ।
इत्थं गद्गदकण्ठरुद्धकरुणाः पौराङ्गनानां गिर-
श्चित्रस्थानपि रोदयन्ति शतधा कुर्वन्ति भित्तीरपि ॥

अद्भुतो यथा—

चित्रं महानेष बताधिकारः[1] क्व कान्तिरेषाऽभिनवैव भङ्गी ।
लोकोत्तरं धैर्यमहो प्रभावः काप्याकृतिर्नूतन एष सर्गः ॥

हास्यो यथा—

आकुञ्च्य पाणिमशुचिर्मम मूर्ध्नि वैश्या
मन्त्राऽम्भसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे
तारस्वनं प्रहितसीत्कमदात् प्रहारं
हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा ॥

भयानको यथा—

ग्रीवाभङ्गाऽभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभिया भूयसा पूर्वकायम् ।

---

१. 'बतावतारः' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥

रौद्रो यथा—

एतत्करालकरवालनिकृत्तकण्ठनालोच्चलद्बहुलबुद्बुदफेनिलौघैः ।
साधं डमड्डमरुडात्कृतिहूतभूतवर्गेण भर्गगृहिणीं रुधिरैर्धिनोमि ॥

बीभत्सो यथा—

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा-
[1]न्यस्थिस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवजटिलान्युग्रपूनीति जग्ध्वा ।
आत्तस्नाय्वान्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिसन्धिस्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥

शान्तो यथा—

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा
मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
क्वचित् पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥

एवं भावा अप्युदाहार्याः । इत्थमर्थगुणान् समर्थ्य काव्यस्य गुणस्फुटत्वसाकल्याभ्यां तदभावेन चोपादेयत्वानुपादेयत्वे सदृष्टान्तमाचष्टे—गुणस्फुटत्वेति । गुणानां स्फुटत्वं साकल्यं च, [2]स चायं काव्यपाकः । सुप्तिङां संस्कारो यथाशास्त्रं प्रकृतिषु प्रत्यययोजनमेव, सारः स्थिरांशो यस्य । क्लिष्टा अस्फुटा वस्तुनोऽर्थस्य गुणा यस्य । अनेन स्फुटगुणव्यावृत्तिः सूचिता । वृन्ताकस्य पाक इव पाको यस्य, तत् काव्यम् । ततो जना जुगुप्सन्ते, किमुत कवय इति भावः । गुणानामिति । दशता दशसंख्यापरिमितेन वर्गेणेत्यर्थः[3] । 'पञ्चद्दशतौ वर्गे वा' (पा० ५।१।६०)। इति निपातितो दशच्छब्दः । अपार्थं वाक्यमुदाहरति—दाडिमानीति । दश दाडिमानि, षडपूपाः, कुण्डमजाजिनं, पललपिण्ड इति वाक्यं विचारयोग्यं न भवति । अतोऽलङ्कारशास्त्राद् दोषगुणस्वरूपं विज्ञाय कविर्दोषाञ्जह्याद् गुणानाददीतेत्युपदेशः ॥ १५ ॥

इति कृतरचनायामिन्दुवंशोद्वहेन
त्रिपुरहरधरित्रीमण्डलाखण्डलेन ।
ललितवचसि काव्यालङ्क्रियाकामधेना-
वधिकरणमयासीत् पूर्तिमेतत् तृतीयम् ॥ १ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां वामनालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ गुणविवेचने तृतीयेऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३।२ ॥

---

१. '…न्यंसस्फिक्…' इति 'ख' पु० पा० । २. 'च यत्' इति 'ख' पु० पा० ।
३. एतदग्रे 'गुणदशकेन त्यक्त इत्यर्थः' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

आलङ्कारिकं नाम चतुर्थमधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

गुणनिर्वर्त्या[1] काव्यशोभा। तस्याश्चातिशयहेतवोऽलङ्काराः। तन्निरूपणार्थमालङ्कारिकमधिकरणमारभ्यते। तत्र शब्दालङ्कारौ द्वौ यमकानुप्रासौ क्रमेण दर्शयितुमाह—

पदमनेकार्थमक्षरं वाऽऽवृत्तं[2] स्थाननियमे यमकम् ॥ १ ॥

पदमनेकार्थं भिन्नार्थमेकमनेकं वा, तद्वदक्षरमावृत्तं स्थाननियमे सति यमकम्। स्ववृत्त्या[3] सजातीयेन वा कात्स्न्यैकदेशाभ्यामनेकपादव्याप्तिः स्थाननियम इति। यानि त्वेकपादभागवृत्तीनि यमकानि दृश्यन्ते, तेषु श्लोकान्तरस्थसंस्थानयमकापेक्षयैव[4] स्थाननियम इति ॥ १ ॥

काव्यकी शोभा गुणों (ओज आदि) से निष्पन्न होती है। उसकी वृद्धि करनेके अलङ्कार कारण हैं। उन(अलङ्कारों)के निरूपण के लिए आलङ्कारिक नामका (यह चौथा) अधिकरण आरम्भ किया जाता है। उसमें 'यमक और अनुप्रास' नामके दो अलङ्कारोंको क्रमशः दिखलानेके लिए यह सूत्र कहते हैं—

स्थानका नियम रहनेपर अनेक अर्थवाले पद या अक्षरको 'यमक' (अलङ्कार) कहते हैं।

स्थानका नियम रहनेपर भिन्न-भिन्न अर्थवाला एक या अनेक पदोंकी एवं उसी प्रकार (एक या अनेक) अक्षरोंकी आवृत्ति (पुनः कथन) 'यमक' अलङ्कार होता है (इस प्रकार 'पद-यमक और अक्षर-यमक'—ये दो भेद होते हैं)। पदकी अपनी वृत्ति (उपस्थिति) से, अथवा भिन्न-भिन्न पदावयवोंके मिश्रणसे ज्यों का त्यों (वैसा ही) प्रतीत होने वाले समानजातीयके साथ सम्पूर्णतया अथवा किसी एक अंशसे अनेक चरणोंमें वर्तमान रहना 'स्थान-नियम' है। (नियत स्थानमें आवृत्त (पुनः-पुनः उक्त) समान-संख्यक अक्षरोंका समावेश साजात्य है)। एक पादमें वर्तमान जो यमक देखे जाते हैं, वहाँ दूसरे श्लोकोमें (यथा —'द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्' में 'मवती मवती) उचित स्थानोंमें अर्थात् विभिन्न चरणोंवाले यमकोंकी सजातीयता होनेसे लक्षणाद्वारा स्थान-नियम होता ही है ॥ १ ॥

---

१. 'निवृत्या' इति 'क' पु० 'गुणानां निर्वृत्या' इति च क्वाचित्कः पा०।

२. 'चावृत्तं' इति 'ग' पु० पा०।

३. 'स्वावृत्त्या' इति 'ग' पु० पा०।

४. 'तेषु श्लोकान्तरस्य संस्थानं यमकाः' इति 'क, ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

निजसौन्दर्यनिर्धौतस्फुरन् मौक्तिकभूषणा ।
प्रसादविशदालोका शारदा वरदाऽस्तु मे ॥ १ ॥

आलङ्कारिकं चतुर्थमधिकरणमारभ्यते । अधिकरणद्वयसङ्घटनामुद्घाटयति—गुणनिर्वर्त्येति । गुणैर्निर्वर्त्या निष्पाद्या । अलङ्कारः प्रयोजनमस्येति आलङ्कारिकम् । प्रयोजनम्' (पा० ५।१।१०९) इति ठक् । अलङ्कारा द्विविधाः—शाब्दाः, आर्थाश्च । तत्र शब्दप्रतिपत्तिपूर्विकार्थप्रतिपत्तिरिति प्रथमं प्रतिपिपादयिषुस्तद्विभागं दर्शयति—तत्रेति । यमकं विवरीतुं यतते—क्रमेणेति । पदमनेकार्थमिति । अनेकार्थमिति पदविशेषणं, न त्वक्षरविशेषणम् । गवादिश्लिष्टपदवन्नानार्थमात्रं न भवति । किन्तु स्वरमपि[1] भिन्नार्थं पदं हि विवक्षितमित्याह—भिन्नार्थमिति । अनेकमिति । [2]जातावेकवचनम् । 'तुल्यश्रुतीनां भिन्नानामभिधेयैः परस्परम् । वर्णानां यः पुनर्वादो यमकं तन्निगद्यत ॥' इति भामहेनोक्तं प्रत्याख्यातुमाह—स्थाननियमे सतीति । यमनमत्र गुणनमावृत्तिरिति यावत् । यम्यते गुण्यते, आवर्त्यते पदमक्षरं वेति यमः । बहुलग्रहणात् कर्मणि घप्रत्ययः । यम एव यमकम् । अयमत्र वाक्यार्थः—भिन्नार्थमेकमनेकं वा पदं तद्वदेकमनेकं वाक्षरं च स्थाननियमे सत्यावृत्तं यमकं भवतीति । तथा च पदयमकमक्षरयमकमिति च द्वैविध्यं दर्शितं भवति । कीदृगत्र स्थाननियम ? इति तत्राह—स्ववृत्त्येति । यदेव पदमक्षरं वा यमकनिबन्धनं, तदेव यदि पादान्तरे वर्तते, यथा—'भ्रमरद्रुमपुष्पाणि' इत्यादौ, तत्र स्ववृत्त्यावृत्तिः । 'सजातीयनैरन्तर्ये चास्य प्रकर्ष' (४।१।२ वृ०) इतीहैव वक्ष्यमाणयुक्त्या सजातीयं यत्र पादान्तरे वर्तते, यथा—'हन्त हन्तः' इत्यादौ, तत्र सजातीयस्यावृत्तिः । नियतस्थानाऽऽवृत्तसमानसङ्ख्याक्षर[3]सन्निवेशोऽत्र साजात्यम् । कात्स्न्येंन समस्तपादगतत्वेन । एकदेशेन पादस्यादिमध्यान्तभागगतत्वेनेत्यर्थः । ननु 'अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम् । यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम्' ॥ इत्यादौ पादान्तरव्याप्तिलक्षणस्थाननियमासम्भवेन यमकता न स्यात्, अतो लक्षणस्याव्याप्तिरिति । तत्राह—यानि त्विति । एकस्यैव पादस्य भागेषु वृत्तिर्येषां तानि, एकपादभागवृत्तीनि, तेषु; 'द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्' इत्यादिश्लोकान्तरस्थं संस्थानं यस्य तत्तथाभूतं यमकम् । तदपेक्षया सजातीयेनानेकपादव्याप्तिर्भवतीति भवत्येव स्थाननियमः ॥ १ ॥

स्थानकथनार्थमाह—

[4]पादः पादस्यैकस्यानेकस्य चादिमध्यान्तभागाः स्थानानि ॥ २ ॥

[5]पादः, एकस्य च पादस्यादिमध्यान्तभागाः, अनेकस्य च पादस्य त एव स्थानानि । पादयमकं तथा—

---

१. 'स्वरव्यञ्जनात्मकं' इति 'ख' पु० पा० । २. एतत्पूर्वे 'पदमिति' इति 'ख' पु० पा० ।
३. '……संख्याकाक्षर……' इति 'ख' पु० पा० ।
४. 'पादा' इति 'ग' पु० पा० ।
५. 'पादाः' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

असज्जनवचो यस्य कलिकामधुर्गर्हितम् ।
तस्य न स्याद्विषतरोः कलिकामधु गर्हितम् ॥

एकपादस्थादिमध्यान्तयमकानि यथा—

हन्त हन्तररातीनां धीर धीर्र्चिता तव ।
कामं कामन्दकीनीतिरस्या रस्या दिवानिशम् ॥

वसुपरासु परासुमिवोज्झतीष्वविकलं विकलङ्कशशिप्रभम् ।
प्रियतमं यतमन्तुमनीश्वरं रसिकता सिकतास्विव तासु का ? ॥

सुदृशो रसरेचकितं[1] चकितं भवतीक्षितमस्ति मितं स्तिमितम् ।
अपि हासलवस्तबकस्तव कस्तुलयेन्ननु कामधुरां मधुराम् ॥

पादयोरादिमध्यान्तयमकानि यथा—

भ्रमर ! द्रुमपुष्पाणि भ्रम रत्यै पिबन् मधु ।
का कुन्दकुसुमे प्रीतिः काकुं दत्वा विरौषि यत् ? ॥

अप्यशक्यं तया[2] दत्तं दुःखं शक्यन्तरात्मनि ।
बाष्पो वाहीकनारीणां वेगवाही कपोलयोः ॥

सपदि कृतपदस्त्वदीक्षितेन स्मितशुचिना स्मरतत्त्वदीक्षितेन ।
भवति बत जनः सचित्तदाहो न खलु मृषा कुत एव चित्तदाहो ! ॥

एकान्तरपादान्तयमकं यथा—

उद्वेजयति भूतानि यस्य राज्ञः कुशासनम् ।
सिंहासनवियुक्तस्य तस्य क्षिप्रं कुशासनम् ॥

एवमेकान्तरपादादिमध्ययमकान्यूह्यानि । समस्तपादान्तयमकं यथा—

नतोन्नतभ्रूगतिबद्धलास्यां विलोक्य तन्वीं शशिपेशलास्याम् ।
मनः ! किमुत्ताम्यसि चञ्चलास्यां कृती स्मराज्ञा यदि पुष्कला स्याम् ॥

एवं समस्तपादादिमध्ययमकानि व्याख्यातव्यानि[3] । अन्ये च सङ्करजातिभेदाः सुधियोत्प्रेक्ष्याः । अक्षरयमकं त्वेकाक्षरमनेकाक्षरञ्च । एकाक्षरं यथा—

नानाकारेण कान्ताभ्रूराराधितमनोभुवा ।
विविक्तेन विलासेन ततक्ष हृदयं नृणाम् ॥

एवं स्थानान्तरयोगेऽपि द्रष्टव्यः । सजातीयनैरन्तर्यादस्य प्रकर्षो भवति । स चाऽयं हरिप्रबोधे दृश्यते । यथा—

विविधधववना नागगर्द्धर्द्धनानाविविततगगनानाममज्जज्जनाना ।
रुरुशशललना नावबन्धुं धुनाना मम हि हिततनानाननस्वस्वनाना ॥

---

१. 'सुदृशोऽवसरेऽञ्चकितं' इति 'क' पु०, 'सुदृशो रसरेचकितं' 'ग' पु० पा० ।

२. 'त्वया' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

३. 'व्याख्यातानि' इति 'क' 'समस्तपादादिमध्यान्तयमकानि व्याख्यातव्यानि' इति च क्वचित्पाठः ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अनया च वर्णयमकमालया पदयमकमाला व्याख्याता ॥ २ ॥

(यमकके) स्थानोंको कहनेके लिए यह सूत्र है—

(किसी श्लोकके) एक चरणके अथवा अनेक चरणोंके आदि, मध्य और अन्तके भाग (यमकके) स्थान होते हैं।

(किसी श्लोकके) एक चरणके आदि, मध्य और अन्तवाले भाग अथवा अनेक चरणोंके आदि, मध्य और अन्तवाले भाग (यमकके) स्थान होते हैं। पद-यमक जैसे—

दुष्टोंके कलियुगकी (शठतादि युक्त) मनोवाञ्छित बात जिसे उचित लगती है, उसे जहरीले पेड़की कलियोंका पराग अनुचित नहीं लगता, अर्थात् वह भी उसे ग्राह्य होता है। (प्रकृत पद्यके प्रथम पाद 'कलिकामधुक्+अहितम्' तथा चतुर्थ पादके 'कलिकामधु गर्हितम्' की पुनरावृत्ति होनेसे 'पद-यमक' स्पष्ट है)।

एक पादमें स्थित आदि-यमक, मध्य-यमक और अन्त-यमक (क्रमशः) यथा— (उनमें-से आदि-यमकका उदाहरण—)

हे शत्रुओंको मारनेवाले धीर! तुम्हारी बुद्धि उत्तम है। इस(बुद्धि)को कामन्दकीय-नीतिका रात-दिन आस्वादन करना चाहिए। ('प्रकृत' पद्यके प्रथमादि चारों पादोंमें क्रमशः 'हन्त हन्तः', 'धीर धीर', 'कामं कामं' और 'रस्या रस्या' पदोंकी पुनरावृत्ति होनेसे 'एकपादस्थादि-यमक' स्पष्ट है)।

(एकपादस्थ मध्य-यमक जैसे—कलङ्करहित चन्द्रमाके समान सुन्दर, अपराधवर्जित, सर्वाङ्ग हृष्ट-पुष्ट होनेपर भी निर्धन प्रियतमका मृतके समान त्याग करनेवाली और बालूके समान स्नेह (प्रेमसे, पक्षान्तरमें तैलसे) हीन वेश्याओंमें क्या रसिकता होती है अर्थात् कुछ भी रसिकता (रसिक भाव) नहीं होती। (प्रकृत पद्यके प्रथमादि चारों पादोंके मध्यवर्ती '-परासु परासु-', '-विकलं विकलं-', '-यतमं यतमं-' और '-सिकता सिकता-' पदोंकी आवृत्ति होनेसे 'एकपादस्थ मध्य-यमक' है)।

(अन्तमें एकपादस्थ अन्त-यमक जैसे—) त्वदनुरागिणी उस सुनयनाका चकित भाव, मौन-ग्रहण, कटाक्ष-विक्षेप होता-सा प्रतीत हो रहा है और मन्दस्मित पुष्पोंके गुच्छेके समान ज्ञात होता है; अतः तेरी सुन्दर मुस्कान की बराबरी कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं कर सकता। (प्रकृत पद्यके प्रथमादि सभी पादोंके अन्तमें स्थित 'चकितं चकितं, '-स्ति मितं स्तिमितं, 'स्तवकस्तवकः', '-मधुरां मधुरां' पदोंकी आवृत्ति होनेसे 'एकपादस्थ अन्त-यमक' है)।

श्लोकके दो-दो पादोंमें स्थित क्रमशः आदि, मध्य और अन्त यमक जैसे—(उनमें द्विपादादिस्थ यमक यथा—)

हे भ्रमर! रतिके लिए मकरन्दका पान करता हुआ तू पेड़ोंके फूलोंपर भ्रमण कर (माघ-फाल्गुन) (शिशिर ऋतु में) विकसित होनेवाले 'कुन्द-पुष्प' में कौन-सी (अधिक) प्रीति है? जो तू (उस कुन्द-पुष्पके बिना) शोकभयादिजन्य विकृत ध्वनिसे विकृत होकर रो रहा (गूँज रहा) है? (प्रकृत पद्यके प्रथम और द्वितीय

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पादके आदिमें स्थित 'भ्रमर ! भ्रम र-' की तथा तृतीय और चतुर्थ पादोंके आदिमें स्थित 'का कुन्द, काकुं द-' की आवृत्ति होनेसे 'द्विपादादिस्थ यमक' है।)

(द्विपादस्थ मध्य-यमक यथा—) उसने शकों ('शक' जातिवालों) की स्त्रियों की अन्तरात्मामें अशक्य (सहन-शक्तिके बाहर अर्थात् असह्य) दुःख दिया, और वाहीक(देश)स्थ नारियोंके दोनों गालोंपर धारावाही आँसू दिया, अर्थात् उनके रोनेसे गालोंपर आँसूकी धारा बहने लगी। (प्रकृत पद्यके प्रथम-द्वितीय पादोंके मध्यमें स्थित '-शक्यं शक्यं' की तथा तृतीय-चतुर्थ पादोंके मध्यमें स्थित 'वाहीक-वाही क-' की आवृत्ति होनेसे 'द्विपादमध्यस्थ यमक' है)।

(द्विपादान्तस्थ यमक जैसे—) मुस्कानसे शुभ्र और काम-तत्त्वमें दीक्षित (दीक्षाप्राप्त अर्थात् निपुण) तेरे देखने अर्थात् कटाक्ष करनेसे मनुष्यके चित्तमें दाह हो जाता है, तब कहींसे भी (चित्तदाह) होना असत्य नहीं है। अहो ! आश्चर्य है। (प्रकृत पद्यके प्रथम-द्वितीय पादोंके अन्तमें स्थित '-त्वदीक्षितेन -त्वदीक्षितेन' की और तृतीय-चतुर्थ पादोंमें स्थित '-चित्तदाहो चित्तदाहो !' की आवृत्ति होनेसे 'द्विपादान्तस्थ यमक' है।)

एक पादको छोड़कर 'पादान्तस्थ यमक' यथा—

जिस राजाका निन्दित शासन प्रजाओंको उद्विग्न कर देता है, सिंहासनसे च्युत (हटाये गये) उस राजाको शीघ्र ही कुशका आसन अर्थात् बैठने के लिए चटाई प्राप्त होती है। (प्रकृत पद्यमें प्रथम और तृतीय पादोंका व्यवधान देकर 'कु-शासनम् कुशासनम्' पदोंकी आवृत्ति होनेसे 'एकान्तरपादान्त-यमक' है।)

इस प्रकार एकान्तरपादादिमध्य यमकोंके उदाहरण जानने चाहिए। सम्पूर्ण (चारों) पादोंके अन्तमें स्थित यमक जैसे—

हे चञ्चल मन ! ऊपर-नीचे भौंहोंको चलाने अर्थात् कटाक्ष-विक्षेप करनेसे शृङ्गार-नाट्य करती हुई, चन्द्रतुल्य सुन्दर मुखवाली कृशाङ्गीको देखकर क्यों उतावले हो रहे हो ? यदि इस (सुन्दरी) पर कामदेवकी पूर्णतः आज्ञा हो तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा अर्थात् यह भी यदि पूर्णतः कामके वशीभूत हो जायेगी तब मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। (प्रकृत पद्यमें चारों पादोंमें 'लास्यां–लास्यां–लास्यां–ला स्याम्' की आवृत्ति होनेसे 'समस्त पादान्तयमक' है।)

इस प्रकार सभी पादोंके आदि और मध्यमें स्थित यमकोंका व्याख्यान किया गया।[1] इसके अतिरिक्त सङ्कर जातिसे उत्पन्न यमकके दूसरे भेद भी विद्वानोंको

---

१. समस्त पादों में स्थित आदि-यमक यथा—

'सारसालङ्कृताकारा सारसामोदनिर्भरा। सारसालवृतप्रान्ता सा रसाढ्या सरोजिनी॥'

प्रकृत पद्यके चारों पादोंमें स्थित 'सारसा' की आवृत्ति होनेसे 'समस्तपादादि-यमक' है। समस्त पादोंके मध्यमें स्थित यमक यथा—

'स्थिरायते यतेन्द्रियो न भूयते यतेर्भवान्।
अमायते यतेऽप्यभूत् सुखाय ते यतेऽक्षयम्॥'

प्रकृत पद्यमें चारों पादोंके मध्यमें स्थित 'यते' की आवृत्ति होनेसे 'समस्तपादमध्य-यमक' है।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

समझने चाहिए ।[1] (पद-यमकोंके भेदोंका वर्णन कर अक्षर-यमकोंके भेद कहते हैं—) परन्तु 'अक्षरयमक' के दो भेद होते हैं—(क) 'एकाक्षर-यमक' और (ख) 'अनेकाक्षर-यमक' । (क) 'एकाक्षर-यमक' यथा—

कामदेवकी सेवा करनेवाले अनेक प्रकारके सुन्दर विलासके द्वारा कान्ताकी भौंहने (नवयुवक) मानवोंके हृदयको पतला (दुर्बल) कर दिया । (प्रकृत पद्यमें पादोंके आदिमें) 'ना ना, रा रा, वि वि और त त' की आवृत्ति होनेसे 'एकाक्षर-यमक' है ।

इसी प्रकार स्थानान्तरके (पादोंके मध्य या अन्तमें[2]) योग होनेपर भी 'अक्षर-यमक' जानना चाहिए । समान जातिवाले अक्षरोंकी लगातार आवृत्ति होनेसे इस एकाक्षर-यमकका प्रकर्ष होता है । ऐसा प्रकर्ष 'हरिप्रबोध'में देखा जाता है । यथा—

अनेक प्रकारके 'धव'वृक्षोंसे भरी हुई, सर्पों (या हाथियों) के अभिलाषुक (लोभी) पक्षियोंसे व्याप्त, अत्यन्त विस्तृत आकाशवाली, जहाँ बिना झुके हुए स्नान नहीं कर सकते, ऐसी विचरण करते (इधर-उधर घूमते) हुए हरिणों एवं खरहोंवाली, हम दोनों (बलराम तथा कृष्ण) के शत्रुओंका संहार करनेवाली, हमारा हित करनेवाली समुद्रतटकी भूमिका जीवन अमौखिक ध्वनिसे गूँज रहा है । (समुद्रतटीय भूमिको देखकर श्रीकृष्ण भगवान्‌की बलरामजीके प्रति यह उक्ति है । प्रकृत पद्यमें सर्वत्र 'वि वि, ध ध' आदि दो-दो अक्षरोंकी आवृत्ति होनेसे 'सजातीयनैरन्तर्य यमक' है) ।

इस वर्ण-यमकमाला (अक्षरोंके यमकसमूह) से 'पद-यमक-माला'की व्याख्या हो गयी ॥ २ ॥

यमकस्थानानि दर्शयितुं सूत्रमवतारयति—स्थानकथनार्थमिति । व्याचष्टे—पाद इति । अत्रायं विभागः—प्रथमपादो द्वितीये तृतीये चतुर्थे क्रमेण यम्यते । एवं द्वितीयस्तृतीये चतुर्थे च । तृतीयश्चतुर्थे । तथा प्रथमो द्वितीयादिषु त्रिषु युगपद् यम्यत इति सप्तधा भवति । प्रथमो द्वितीये तृतीयश्चतुर्थे, प्रथमश्चतुर्थे द्वितीयस्तृतीये इति द्वौ भेदाविति पादयमकं नवधा। पादस्य त्रेधा विभागपक्षे प्रथमादिपादादिभागो द्वितीयादिपादादिभागेषु पूर्ववत्[3] । प्रथमादिपादमध्यभागो द्वितीयादिपादमध्यभागेषु । प्रथमादिपादान्त-

---

१. यमकके सङ्कर जातिसे उत्पन्न यमक यथा—

'सनाकवनितं नितम्बरुचिरं चिरं सुनिनदैर्नदैर्वृतममुम् ।
मता फणवतोऽवतो रसपरा परास्तवसुधा सुधाधिवसति ॥' इत्यादि ।

प्रकृत पद्यमें 'नितं नितं', 'चिरं चिरं', 'नदैर्नदै', वतो वतो', 'परा, परा' और 'सुधा सुधा' की आवृत्तिसे साङ्कर्य स्पष्ट है ।

२. स्थानान्तर योगमें एकाक्षर-यमकका उदाहरण—

'सभासु राजन्नसुराहतैर्मुखैर्महीसुराणां वसुराजितैः स्तुताः ।
न भासुरा यान्ति सुरान्न ते गुणाः प्रजासु रागात्मसु राशितां गताः ॥'

प्रकृत पद्यमें 'सु' अक्षरकी आवृत्ति अनेक स्थानोंमें होनेसे यह उदाहरण भी स्पष्ट है ।

३. 'द्वितीयादिपादादिभागेषु पूर्ववत्' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

भागो द्वितीयादिपादान्तभागेषु यम्यत इति सप्तविंशतिधा, खण्डभेदकल्पनया परिगणनायां भूयसी भेदसङ्ख्येत्युपरम्यते। तत्र दिङ्मात्रं दर्शयितुं पादयमकं तावदुदाहरति—पादयमकमिति[1]। कलेः कामं दोग्धीति कलिकामधुक्, तथाविधमसज्जनस्य खलस्य वचो यस्यार्हितं पूजितं भवति, तस्य पुंसः, विषतरोः कलिकामधु कोरकमकरन्दो गर्हितं न स्यात्; तदप्युपादेयं स्यादित्यर्थः। अथैकस्य पादस्यादिमध्यान्तेषु यमकं क्रमेणोदाहरति—एकपादस्येति। हन्तेति। अरातीनां हन्तः, धीर! प्राज्ञ! 'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः' इत्यमरः। तव धीरर्चिता। हन्तेति हर्षे। अतः कामन्दकसम्बन्धिनी नीतिः, कामन्दकप्रणीता दण्डनीतिरित्यर्थः। अस्यास्तव धियः, काममत्यर्थं रस्याऽऽस्वादनीया। नन्वत्र पदयमके द्वयोरपि पदत्वाभावे कथं पदयमकमिति न चोदनीयम्, यमकनिबन्धनयोर्द्वयोरेकस्य पदत्वे सति तदन्यस्य संहिताकाले तदाकारानुकारितया पदावभासजनकत्वाद् भवत्येव पदयमकमिति। वसुपरास्विति। अविकलं सम्पूर्णमित्यर्थः। विकलङ्कशशिप्रभं, यत उपरतो मन्तुरपराधौ यस्य तथाविधं निरागसमित्यर्थः। 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः। अनीश्वरसैश्वर्यरहितं प्रियतमं परासुं मृतमिवोज्झितासु त्यक्तवतीसु वसुपरासु वेश्यासु सिकतास्विव, रसिकता रस आसामस्तीति रसिकाः। 'अत इनिठनौ' (पा० ५।२।११५) इति ठन् प्रत्ययः। तासां भावो रसिकता, का? न काचित् तासु रसिकतेत्यर्थः। अत्र प्रियतममित्यक्षरयमकत्वेन पदावृत्त्यसम्भवान्नेदमुदाहरणम्। सुदृश इति। रसेन रागविशेषेण, रेचकितं भ्रमितं, चकितं भयसम्भ्रान्तम्, 'चकितं भयसम्भ्रमः' इत्यमरः। मितं स्तोकं, स्तिमितं निभृतं, सुदृश ईक्षणं भवति त्वय्यस्ति, अपि किञ्च, हासस्य लवो लेशः, 'लवलेशकणाणवः' इत्यमरः। स्तबक इव हासलवो हासलवस्तवकः। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः' (पा० २।१।५६) इति समासः। बवयोरभेदः सोऽपि त्वय्यस्तात्यनुषज्ज्यते। अतः कः पुमान्, तव मधुरां मनोज्ञां, कामस्य धूः कामधुरा ताम्। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' (पा० ५।४।७४) इत्यकारः समासान्तः। ननु तुलयेत्, न कोऽपि तुलयेत्, तव कामधुरां परिच्छेत्तुं न शक्नुयादित्यर्थः। अथ पादयोरादिमध्यान्तभागेषु यमकं क्रमेणोदाहरति–पादयोरिति[2]। हे भ्रमर मधु पिबन्, रत्यै सुखाय, द्रुमपुष्पाण्युद्दिश्य भ्रम, सञ्चर, कुन्दकुसुमे का प्रीतिः? काकुं ध्वनिविकारं 'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः।' इत्यमरः। दत्त्वा किं विरौषि? रु शब्द इति धातुः। अप्यशक्यमिति—अशक्यम् असह्यं, दुःखं शकीनां शकाख्यजनपदस्त्रीणामन्तरात्मनि तया दत्तम्। तयेति कर्तृपदम्। तदर्थस्तु प्रकरणानुसारेण द्रष्टव्यः। अपि किञ्च, वाहीकनारीणां कपोलयोर्वेगवाही वेगेन वहति प्रवहतीति वेगवाही बाष्पो, दत्त इत्यनुषज्ज्यते। सपदीति। स्मितशुचिना कामतत्त्वदीक्षितेन त्वदीक्षितेन सपदि कृतपदो जनस्तदैव सचित्तदाहो भवति। न कुतश्चित् कुतोऽपि न मृषा खलु, अहो! एकान्तरितपादान्तयमकमाह—एकान्तरेति। यस्य राज्ञः, कुशासनं कुत्सितं शासनं, भूतानि प्राणिन, उद्वेजयति। सिंहासनवियुक्तस्य तस्य कुशासनं कुत्सितं शासनं, भूतानि प्राणिन, उद्वे-

---

१. एतदग्रे 'असदिति' प्रतीकोपादानं 'ख' पु० सम्यक् प्रतिभाति।

२. एतदग्रे 'भामरेति' इति प्रतीकग्रहणं 'ख' पु० युक्तो भाति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

जयति । सिंहासनवियुक्तस्य तस्य कुशासनं कुशमयमासनं भवति । एवमिति । एकान्तरितपादादियमकं यथा—

करोऽति ताम्रो रामाणां तन्त्रीताडनविभ्रमम् ।
करोति सेर्ष्यं कान्ते च श्रवणोत्पलताडनम् ॥

एकान्तरितपादमध्ययमकं यथा—

यान्ति यस्यान्तिके सर्वेऽप्यन्तकान्तमुपाधयः ।
तं शान्तचित्तवृत्तान्तं गौरीकान्तमुपास्महे ॥ इति ॥

चतुर्ष्वपि पादेषु अत्र यमकमुदाहरति—नतोन्नतेति । हे चञ्चल मनः, नते उन्नते च ये भ्रुवौ तयोर्गतिभिर्वलनभङ्गीभिर्बद्धं लास्यं शृङ्गारनटनं यया ताम् । शशीव पेशलं मनोज्ञमास्यं यस्यास्तां तन्वीं विलोक्य किमुत्ताम्यसि ? अस्यां तन्व्यां, स्मराज्ञा यदि पुष्कला भवेत्तर्हि कृती स्यामिति सम्बन्धः । एवमिति समस्तपादादियमकं यथा—

सारसाऽलङ्कृताकारा सारसामोदनिर्भरा ।
सारसालवृतप्रान्ता सा रसाढ्या सरोजिनी ॥

समस्तपादमध्ययमकं यथा—

स्थिरायते यतेन्द्रियो न भूयते[1] यतेर्भवान् ।
अमायते यतेऽप्यभूत् सुखाय ते यतेऽक्षयम् ॥

अन्ये चेति—

सनाकवनितं नितम्बरुचिरं चिरं सुनिनदैर्नदैर्वृतममुम् ।
मता फणवतोऽवतो रसपरा परास्तवसुधा सुधाऽधिवसति ॥ इत्यादि ।

अक्षरयमकम् अध्यक्षयितुं तद्विभागमाह—अक्षरयमकमिति । तत्राद्यमुदाहरति—नानेति । नानाकारेण विविक्तेन शुद्धेनाराधितमनोभुवा विलासेन कान्ताभ्रूः, नृणां हृदयं ततक्ष । 'अडादीनां व्यवस्थार्थं पृथक्त्वेन प्रकल्पनम् । 'धातूपसर्गयोः शास्त्रे धातुरेव हि तादृशः ॥' इति वचनाद्विशब्दस्य धातुशत्वेनाक्षरावृत्तिरेवेति न पादावृत्तिशङ्कावकाशः । एवमिति[2] । स्थानान्तरयोगे यथा—

सभासु राजन्नसुराहतैर्मुखैर्महीसुराणां वसुराजितैः स्तुताः ।
न भासुरा यान्ति सुरान्न ते गुणाः प्रजासु रागात्मसु राशितां गताः ॥ इति ॥

'अकलङ्कशशाङ्काङ्कामिन्दुमौलेर्मतिर्मम ॥' इत्यादि ।

इत्थमक्षरयमकमुदाहृत्य तदेव नैरन्तर्येणावृत्तमुदाहर्तुमुपश्लोकयति सजातीयेति—विविधेति । अत्र पारावारपरिसरभुवमभिलक्ष्य हलधरं हरिराह—विविधानि बहुविधानि, धवानामर्जुनानां, वनानि । 'धवो वृक्षे नरे पत्यावर्जुने च द्रुमान्तरे' इति वैजयन्ती । यस्यां सा विविधधववना[3] । नागाः कुञ्जराः सर्पा वा, तान् गृध्यति अभिलषन्तीति

१. 'हीयते' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'धातूपसर्गयोः…… । एवमिति' इति पाठः 'ख' पु० वर्द्धितः ।
३. 'यस्यां सा विविधवना' इत्यंशः पूर्वपठित 'अर्जुनानां वनानि' एतस्मादग्रे पठितः ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नागगर्द्धाः । तथाविधा ऋद्धाः समृद्धाः, ये नानाविधा वयः पक्षिणस्तैर्विततं व्याप्तं गगनं यस्याः सा नागगर्द्धर्द्धनानाविविततगगना । न विद्यते नामो नमनं यस्मिन् कर्मणि तत्तथा मज्जन्तो जना यस्यां सा, अनाममज्जज्जना । अनिति प्राणतीत्यना, स्फुरन्तीति यावत् । अथवा न विद्यन्ते नरो यस्यां सा अना । समासान्तविधेरनित्यत्वात् कबभावः । रुरूणां शशानां च ललनं विलसनं यस्यां सा रुरुशशललना । नौ आवयोः, अबन्धुं शत्रुं, धुनाना, हि यस्मात् कारणात्; मम हितं तनोतीति हिततना न विद्यते आननं यस्याऽसौ अनाननः, स्व आत्मीयः स्वन एवानः प्राणनं यस्याः सा अनाननस्वस्वनाना । एवंविधा समुद्रभूमिरिति वाक्यार्थः । पदयमकमालेति । 'स्वभुवे स्वभुवे भयोभयोर्भवतां भवतां भसिते भसिते' । इत्यादि द्रष्टव्यम् ॥ २ ॥

भङ्गादुत्कर्षः ॥ ३ ॥

उत्कृष्टं खलु यमकं भङ्गाद्भवति ॥ ३ ॥

(यमकसे सम्बद्ध उत्कर्षका कारण इस सूत्रमें कहते हैं—) भङ्ग (पदोंके विच्छेद खण्डशः करने) से यमकका उत्कर्ष होता है ।

उत्तम यमक पदोंके भङ्ग (विच्छेद) करनेसे होता है ॥ ३ ॥

अथ यमकगोचरमेव किञ्चिद्वैचित्र्यमासूत्रयितुमाह—भङ्गादुत्कर्ष इति । व्याचष्टे—उत्कृष्टमिति । भङ्गो नाम वर्णविच्छेदः ॥ ३ ॥

शृङ्खला परिवर्तकश्चूर्णमिति भङ्गमार्गः ॥ ४ ॥

एते खलु शृङ्खलादयो यमकभङ्गानां प्रकारा भवन्ति ॥ ४ ॥

(अब यमकके उत्कर्षमें कारण भङ्गका भेद कहते हैं—) शृङ्खला, परिवर्तक और चूर्ण; भङ्गके ये तीन भेद होते हैं ।

ये शृङ्खला आदि (परिवर्तक तथा चूर्ण) यमकके भङ्गोंके भेद हैं ॥ ४ ॥

भङ्गभेदान् भणितुमाभाषते—शृङ्खलेति । वृत्तिः स्पष्टार्था ॥ ४ ॥

तान् क्रमेण व्याचष्टे—

वर्णविच्छेदचलनं शृङ्खला ॥ ५ ॥

वर्णानां विच्छेदो वर्णविच्छेदः, तस्य चलनं यत्, सा शृङ्खला । यथा—'कलिकामधु'शब्दे 'काम'शब्दविच्छेदे 'मधु'शब्दविच्छेदे च'[1] तस्य चलनम्; 'लि-म-'वर्णयोर्विच्छेदात् ॥ ५ ॥

उक्त शृङ्खलादि भेदोंके लक्षण क्रमसे कहते हैं—

वर्णों (अक्षरों) के विच्छेदों (खण्डों) का चलना (आगे बढ़ते जाना) 'शृङ्खला' है ।

---

१. 'कलिकामधुशब्दे विच्छेदः, धुशब्दे च तस्य चलनम् ।' इति 'क' पु०, 'कलिकामधुशब्दे कामशब्दविच्छेदे च तस्य चलनम् ।' इति 'ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वर्णोंका विच्छेद (खण्डित होना) वर्णविच्छेद है। उसका जो चलना अर्थात् आगे बढ़ते जाना, वह 'शृङ्खला' है। जैसे 'कलिकामधुर्गर्हितम्' पदके 'कलिकामधु' शब्दमें 'काम' शब्दके विच्छेद (खण्डित) करनेपर और 'मधु' शब्दके विच्छेद करनेपर क्रमसे 'कलि' शब्दवाले 'लि' वर्णस्थित विच्छेद का 'काम' शब्दवाले 'का' वर्णका चलन (आगे बढ़ना) होता है। इसमें 'कलि + कामधुक्' इस प्रकार विच्छेद (खण्डित) करनेपर 'लि' वर्णपर वर्णविच्छेद होता है और 'कलिका + मधु' इस प्रकार विच्छेद (खण्डित) करनेपर उक्त वर्णविच्छेद 'लि' वर्णपर न होकर 'का' वर्ण पर होता है; इस प्रकार 'लि' तथा 'म'—इन दोनों वर्णोंके विच्छेद (खण्डित) करनेसे वर्णविच्छेदकी शृंखला (परम्परा) हो जाती है। इस पक्षमें 'च' शब्द 'समुच्चय'वाचक है। यहाँ 'काम' शब्दके विच्छेद करनेपर 'लि' वर्णका विच्छेद होनेसे 'कलिका' विच्छेदका चलन होता है। तथा 'मधु' शब्दके विच्छेद करनेपर 'म' वर्णका विच्छेद होनेसे 'काम' विच्छेदका चलन होता है। इस प्रकार 'शृङ्खला' रूप वर्णविच्छेदकी प्रतीति होनेसे इसको 'भङ्गमार्ग शृङ्खला' कहते हैं ॥ ५ ॥

शृङ्खलादीन् सङ्कथयितुं सूत्रमवतारयति—तानिति। विग्रहं विवृण्वन् व्याचष्टे—वर्णानामिति। लक्ष्यलक्षणयोरानुकूल्यमुन्मीलयति—यथेति। कलिकेति। अत्र चस्त्वर्थे। पदद्वयात्मके कलिकामधुशब्दे, कामशब्दस्य तु विच्छेदे पृथक्कारे तस्य कलिकामधुशब्दस्य चलनं भवति। कुत इत्यत आह—लि-म-वर्णयोरिति। यद्वा—'कलिकामधुशब्दे कामशब्दविच्छेदे मधुशब्दविच्छेदे च तस्य चलनम्' इति पाठान्तरम्। अत्र च समुच्चये। अत्र कामशब्दस्य विच्छेदे पृथक्कारे कलिकाविच्छेदस्य चलनं भवति; लिवर्णस्य विच्छेदात्। मधुशब्दस्य विच्छेदे पृथक्कारे कामविच्छेदस्य चलनं भवति, मवर्णस्य विच्छेदादित्यर्थः। एवं शृङ्खलारूपवर्णविच्छेदप्रतीतेरयं भङ्गमार्गः शृङ्खलेति व्यपदिश्यते ॥ ५ ॥

सङ्गविनिवृत्तौ स्वरूपापत्तिः परिवर्तकः ॥ ६ ॥

अन्यवर्णसंसर्गः सङ्गः। तद्विनिवृत्तौ स्वरूपस्यान्यवर्णतिरस्कृतस्यापत्तिः[2] प्राप्तिः परिवर्तकः। यथा—'कलिकामधु गर्हितम्' इत्यत्राऽर्हितमिति पदं गकारस्य व्यञ्जनस्य सङ्गाद् गर्हितमित्यन्यस्य रूपमापन्नम्। तत्र व्यञ्जनसङ्गे विनिवृत्ते स्वरूपमापद्यते—अर्हितमिति। अन्यवर्णसङ्क्रमेण भिन्नरूपस्य पदस्य ताद्रूप्यविधिरयमिति तात्पर्यार्थः। एतेनेतरावपि व्याख्यातौ ॥ ६ ॥

(पूर्व सूत्रमें 'शृङ्खला' नामके भङ्गमार्गका वर्णन करनेके बाद अब क्रमप्राप्त द्वितीय 'परिवर्तक' नामके भङ्गमार्गका वर्णन करते हैं—) वर्णान्तर (अन्य वर्ण) अर्थात् व्यञ्जनका साथ छूट जानेपर विकृत रूपसे प्रकृत स्वरूपको प्राप्त होना 'परिवर्तक' नामका द्वितीय भङ्गमार्ग होता है।

१. '···रूपेण वर्ण···' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'स्यान्यरूपतिरस्कृतस्य' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'सङ्ग' का अर्थ दूसरे अर्थात् व्यञ्जन वर्णका संसर्ग है। उसके विनिवृत्त (खण्डित) होनेपर दूसरे वर्णके संसर्गके कारण तिरस्कृत-से मालूम पड़नेवाले वर्णको अपना स्वरूप प्राप्त करनेवाले भङ्गको 'परिवर्तक' नामका यमक कहते हैं। यथा—'कलिकामधुर्गर्हितम्' में 'अर्हितम्' पद 'ग' व्यञ्जनके सङ्गसे अपने अर्हित अर्थके प्रतिपादक स्वरूपको त्यागकर 'निन्दित' अर्थका प्रतिपादक 'गर्हितम्' ऐसा दूसरा रूप प्राप्त कर लेता है, वहाँ 'ग'कार रूप व्यञ्जनका सङ्ग हट जानेपर 'अर्हितम्' ऐसे अपने स्वरूपको प्राप्त करता है। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि दूसरे वर्णके संसर्गसे दूसरे रूपवाले पदका दूसरे वर्णका विच्छेद होनेपर पुनः अपना मूल स्वरूप पा लेनेका नियम है। इससे अनेक वर्णवाले पदोंके मेल होनेपर स्वरूप प्राप्त करना और भिन्न-भिन्न व्यञ्जनोंके पिण्डीकरण होनेपर स्वरूप प्राप्त करना—इन दो भेदोंकी व्याख्या हो गयी अर्थात् इसके ये दो भेद सिद्ध हो गये ॥ ६ ॥

परिवर्तकं कीर्तयितुमाह—सङ्गेति। तद्विनिवृत्तौ अन्यवर्णसङ्गस्य विनिवृत्तौ। अन्यवर्णो व्यञ्जनं, तेन तिरस्कृतस्य तिरोहितस्य स्वरूपस्यापत्तिः। अर्थान्तरभ्रमं निवारयति—प्राप्तिरिति। लक्ष्ये लक्षणं योजयति—यथेति। स्पष्टमन्यत्। नन्वन्यवर्णसंयोगे हि यमकत्वं सङ्गच्छते, कथं तन्निवृत्तिरुपयुज्यत ? इत्याशङ्क्य तात्पर्यमाविष्करोति—अन्यवर्णसङ्क्रमेणेति। एतेनेति। नानाविच्छेदशालिपदमेलने स्वरूपलाभः, भिन्नयोर्हलोः पिण्डीकरणे च स्वरूपलाभ इति द्वौ भेदौ द्रष्टव्यौ ॥ ६ ॥

पिण्डाक्षरभेदे स्वरूपलोपश्चूर्णम् ॥ ७ ॥

पिण्डाक्षरस्य भेदे सति पदस्य स्वरूपलोपश्चूर्णम्। यथा—

योऽचलकुलमवति चलं दूरसमुन्मुक्तशुक्तिमीनां कान्तः।
साग्नि बिभर्ति च सलिलं दूरसमुन्मुक्तशुक्तिमीनाङ्कान्तः॥

अत्र शुक्तिपदे क्तीति पिण्डाक्षरं, तस्य भेदे शुक्तिपदं लुप्यते, ककारतिकारयोरन्यत्र सङ्क्रमात्। दूरसमुन्मुक्तशुक्, अचलकुलं, तिमीनां कान्तः समुद्रः। अत्र श्लोकाः—

अखण्डवर्णविन्यासचलनं शृङ्खलाऽमला।
अनेन खलु भङ्गेन यमकानां विचित्रता॥
यदन्यसङ्गमुत्सृज्य नेपथ्यमिव नर्तकः।
शब्दस्वरूपमारोहेत् स ज्ञेयः परिवर्तकः॥
पिण्डाक्षरस्य भेदेन पूर्वापरपदाश्रयात्।
वर्णयोः पदलोपो यः स भङ्गश्चूर्णसंज्ञकः॥
अप्राप्तचूर्णभङ्गानि यथास्थानस्थितान्यपि।
अलकानीव नात्यर्थं यमकानि चकासति॥
विभक्तिपरिणामेन यत्र भङ्गः क्वचिद्भवेत्।
न तदिच्छन्ति यमकं यमकोत्कर्षकोविदाः॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

आरूढं भूयसा यत्तु पदं यमकभूमिकाम् ।
दुष्येच्चेन्न[१] पुनस्तस्य युक्तानुप्रासकल्पना ॥
विभक्तीनां विभक्तत्वं सङ्ख्यायाः कारकस्य च ।
आवृत्तिः सुप्तिङन्तानां मिथश्च यमकाद्भुतम् ॥ ७ ॥

(अब क्रमप्राप्त 'चूर्ण' नामक यमक-भङ्गका लक्षण कहते हैं—) पिण्डाक्षर अर्थात् संयुक्त वर्णके भेद (पृथक्) होनेपर स्वरूप (अपने वास्तविक रूप) का लोप हो जाना 'चूर्ण' नामका यमक-भङ्ग मार्ग होता है ।

पिण्डाक्षर (संयुक्त वर्ण) के भेद (पृथक्) होनेपर पदके स्वरूपका अर्थात् अपने मूल रूपका लोप हो जाना 'चूर्ण' नामका यमक-भङ्ग होता है । यथा—

'दूरसमुन्मुक्तशुक्' अर्थात् शोकको दूर फेंका हुआ (सभी प्रकारसे शोकरहित), मछलियोंका (आश्रय होनेसे) प्रिय, दूरतक फेंके (बिखेरे) गये सीपों (मुक्ता-शुक्तियों) और मछलियोंसे चिह्नित (व्याप्त) तटवाला जो समुद्र (इन्द्रके द्वारा पंख काटे जानेके भयसे भागकर शरणमें गये हुए पर्वत (मैनाक) की रक्षा करता है, वह वडवानलके सहित खारे जलको भी धारण करता है ।

('योऽचल····ङ्कान्त' इस श्लोकके 'शुक्ति' पदमें 'क्ती' यह पिण्डाक्षर अर्थात् संयुक्ताक्षर है । इसमें 'क्'कार और 'ति'—इन अक्षरोंका विच्छेद (खण्ड) होकर अन्यत्र ('दूरसमुन्मुक्तशुक्' और 'तिमीनां' में) संक्रमण होनेसे (मिल जानेसे) 'शुक्ति' पद लुप्त हो जाता है । अर्थात् प्रकृत श्लोकके द्वितीय तथा चतुर्थ चरण एक-से होनेपर भी (क) 'दूरे विदूरे समुन्मुक्ता सम्यक् परिक्षिप्ता शुक् शोको येन सः' तथा 'तिमीनां मीनानां कान्तः प्रियः' ऐसा एवं (ख) 'दुष्टो रसः स्वादो यस्य तत् दूरसम् + उन्मुक्ता उद्गतमुक्ताः शुक्तय इति उन्मुक्तशुक्तयः' तथा 'मीनानां मत्स्यानामङ्कं चिह्नमन्तेऽन्तभागे (तटप्रान्ते) यस्य सः दूरसम् + उन्मुक्तशुक्तिमीनाङ्कान्तः' ऐसा अर्थ हो जाता है । इसका अन्वय ऐसा है—'दूरसमुन्मुक्तशुक्' (दूरतक अर्थात् सर्वथैव शोकको छोड़ा हुआ, 'अचलकुमाम्' (मैनाक आदि पर्वतोंके समूहको) और 'तिमीनां कान्तः' (मछलियोंका प्यारा)—ऐसा समुद्र । इस प्रकारके प्रतिपादनके समर्थक) ये श्लोक हैं ।

अखण्डित वर्ण विन्यासका चलन होना 'विशुद्ध शृङ्खला' (यमकके भङ्गमार्गका प्रथम भेद) है । इस भङ्गके द्वारा यमकोंमें विचित्रता आती है ।

नर्तक (नाटकमें अभिनय करनेवाला अभिनेता) दूसरेके साथको छोड़कर अर्थात् अभिनयके समय पात्रानुकूल वस्त्रादिको छोड़कर अपना मूल स्वरूप ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार जो अक्षर दूसरे वर्णका साथ छोड़कर अपने मूल स्वरूपको ग्रहण कर लेता है, उसको 'परिवर्तक' नामक द्वितीय यमक-भङ्ग कहते हैं ।

---

१. 'न युज्यते पुन···' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पिण्डाक्षर (संयुक्त वर्ण) का विच्छेद होनेसे पहलेवाला अक्षर पूर्ववाले पदमें तथा दूसरा अक्षर आनेवाले पदमें विलीन होनेसे संयुक्ताक्षरका लुप्त होना 'चूर्ण' नामक तृतीय यमक-भङ्ग है।

जिस प्रकार उचित स्थानमें रहने पर भी केश चूर्ण-भङ्ग अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी विशिष्ट रचनाके बिना सुन्दर नहीं होते हैं, उसी प्रकार उचित स्थानमें स्थित यमक चूर्ण-भङ्गके बिना अधिक सुन्दर नहीं होता है। अतएव यमक अलङ्कारकी उत्कृष्टताके लिए काव्य-रचनामें 'चूर्ण'-भङ्ग होना आवश्यक है।

जिस किसी पद्यमें विभक्तिके विपरिणाम (परिवर्तन) होनेसे 'भङ्ग' होता है, उसको यमककी उत्कृष्टताके ज्ञाता 'यमक' नहीं मानते हैं।

अत्यधिक यमक-भूमिकाको प्राप्त भी जो पद दूषित हो, उसे 'अनुप्रास' मानना भी उचित नहीं है।

जब (प्रथमा आदि) विभक्तियों, (एकवचन आदि) संख्याओं, (कर्ता आदि) कारकोंका भेद, परस्परमें सुवन्त एवं तिङन्त पदोंकी आवृत्ति हो; तो उसे 'यमकाद्भुत' अर्थात् 'अद्भुत यमक' कहते हैं। (क्रमशः उदाहरण—'विश्वप्रमात्रा भवता जगन्ति व्याप्तानि मात्राऽपि न मुञ्चति त्वाम्।' प्रकृत उदाहरण में 'प्रमात्रा' तृतीया विभक्ति तथा 'मात्रा' प्रथमा विभक्तिका भेद है, अतः यह विभक्ति-भेदका उदाहरण है। 'एताः सन्नाभयो बाला यासां सन्नाभयः प्रियः।' इस उदाहरणके प्रथम 'सन्नाभयः' पदमें बहुवचन तथा द्वितीय 'सन्नाभयः' में एकवचनका भेद है, अतः यह संख्याभेदका उदाहरण है। इसी प्रकार कारकभेद, सुबन्त एवं तिङन्त पदोंकी आवृत्तिका उदाहरण समझना चाहिए।। ७ ।।

चूर्णकं वर्णयितुमाह—पिण्डाक्षरस्येति। पिण्डाक्षरस्य संयुक्ताक्षरस्य। उदाहरति—योऽचलकुलमिति। दूरे समुन्मुक्ता शुक् शोको येन। तिमीनां मत्स्यानां कान्तः प्रियः। उन्मुक्ता उद्गतमुक्ताः शुक्तय उन्मुक्तशुक्तयो मीनाश्चाऽङ्का यस्य स तादृशो यः समुद्रः। चलं भयचञ्चलं दूरसमुन्मुक्तशुगचलकुलमवति; दूरसं दुष्टरसं साग्नि सलिलं बिभर्ति च। लक्ष्ये लक्षणानुगममभिलक्षयति—अत्रेति। पिण्डाक्षरं दर्शयति—शुक्तिपदे क्तीति। तस्य पिण्डाक्षरस्य वर्णयोः शुगित्यत्र ककारस्य तिमीत्यत्र तिकारस्य च भेदे शुक्तिपदस्वरूपं लुप्यते। तत्र हेतुमाह—ककारेति, ककारतिकारयोरन्यत्र शुक्तिपदे तिमिपदे च सङ्क्रमादित्यर्थः। सङ्क्रमणमेव दर्शयति—दूरसमुन्मुक्तशुगिति, तिमीनामिति च। विशेषणद्वयस्य यथासङ्ख्यं विशेष्यद्वयं दर्शयति—अचलकुलमिति, कान्तः समुद्र इति च।

प्रतिपादितेऽर्थे परसंवादं प्रकटयति—अत्र श्लोका इति। पद्यत्रयं स्पष्टार्थम्। भङ्गादुत्कर्ष इत्युपक्रम्य भङ्गमार्गेषु प्रकर्षं प्रतिपाद्यान्यत्रापकर्षमवगमयितुमाह—अप्राप्तेति। अप्राप्तचूर्णभङ्गानीति विशेषणमलकेष्वपि योजनीयम्। विभक्तीति विभक्तीनां परिणामो विपरिणामोऽन्यथाभाव इति यावत्। उदाहरणं तु 'शिवमात्मनि सत्त्वस्थान् पश्यतः पश्यतः शिवौ' इत्यादि द्रष्टव्यम्। आरूढमिति। यत्पदं भूयसा भूम्ना, यमकभूमिकां यमकवदवभासमानत्वमारूढं, तद् दुष्येद् दुष्टं भवेत्। ननु न चेत् तद् यमकं तर्ह्यनुप्रासो-

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ऽस्त्विति शङ्कां शकलीकरोति—न पुनरिति । यथा दण्डिनोक्तम्—'कालकाल गलकाल कालमुख कालकाल कालकालघनकालकालपनकाल काल । कालकालसितकालका ललनिकालकालकालकाऽऽलगतु कालकालकलिकालकाल' ॥ इति । विभक्तीनामिति । प्रथमादीनां विभक्तीनां विभक्तत्वं विविधत्वम् । एकवचनादिलक्षणायाः सङ्ख्यायाः कर्तृकर्मादेः कारकस्य[1] सुबन्तानां तिङन्तानाञ्च पदानामावृत्तिर्यत्र तद्यमकाद्भुतमतिशयितं यमकमित्यर्थः । क्रमेणोदाहरणानि—'विश्वप्रमात्रा भवता जगन्ति व्याप्तानि मात्राऽपि न मुञ्चति त्वाम् ।' इति । 'एताः सन्नाभयो बाला यासां सन्नाभयः प्रियः' । इति । 'यतस्ततः प्राप्तगुणः प्रभावे यतस्ततश्चेतसि भासतेऽयम् ।' इति । 'सरति स रतिकान्तस्ते ललामो ललामः' । इत्यादीनि । अत्र विभक्तिविपरिणाममात्रे यमकत्वहानिः । प्रकृत्यर्थस्यापि भेदे यमकाद्भुतमिति विवेकः ॥ ७ ॥

शेषः सरूपोऽनुप्रासः ॥ ८ ॥

पदमेकार्थमनेकार्थं च स्थानानियतं तद्विधमक्षरं च शेषः । सरूपोऽन्येन प्रयुक्तेन तुल्यरूपोऽनुप्रासः । ननु[2] 'शेषोऽनुप्रास' इत्येतावदेव सूत्रं कस्मान्न कृतम् ? आवृत्तिशेषोऽनुप्रास इत्येव हि व्याख्यास्यते । सत्यम्; सिद्ध्यत्येवावृत्तिशेषे, किन्त्वव्याप्तिप्रसङ्गः । विशेषार्थं च सरूपग्रहणम् । कार्त्स्न्येनैवावृत्तिः, कार्त्स्न्यैकदेशाभ्यां तु सारूप्यमिति ॥ ८ ॥

(यमकालङ्कारका लक्षण कहकर अब अनुप्रासालङ्कारका लक्षण कहते हैं—) शेष सरूप (समानरूपत्व) अनुप्रास होता है ।

एक अर्थवाले पद, स्थानानियत अर्थात् पूर्वोक्त स्थानसे रहित अनेकार्थक पद, और वैसे ही स्थानानियत अक्षर 'शेष' है । अन्य प्रयुक्त पदके समान रूप पद 'अनुप्रास' अलङ्कार है । प्रश्न उठता है कि ग्रन्थकारने 'शेषोऽनुप्रासः' इतना ही सूत्र क्यों नहीं कहा ? उसकी व्याख्या ''यमकसे भिन्न दूसरे प्रकारकी आवृत्ति 'अनुप्रास' है'' की जायेगी ? इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं—आवृत्तिशेष अर्थात् यमक-भिन्न दूसरे प्रकारकी आवृत्ति 'अनुप्रास' है यह कहना ठीक है, किन्तु ऐसा लक्षण होनेसे अव्याप्ति दोष हो सकता है । उस दोषके निवारणके लिए लक्षणसूत्रमें 'स्वरूप' शब्दका भी समावेश किया गया है, क्योंकि यमकालङ्कारमें स्वरों और व्यञ्जनोंके समुदायकी आवृत्ति सम्पूर्णतया होती है और अनुप्रासालङ्कारमें स्वरों और व्यञ्जनोंके समुदायका सम्पूर्णतया या एकदेशीय भी होना सम्भव है ॥ ८ ॥

इत्थं यमकं लक्षयित्वाऽनुप्रासं लक्षयितुमाह—शेष इति । शेषशब्दार्थमाह—पदमिति । स्थानायितं प्रागुक्तस्थानरहितमित्यर्थः । एकार्थं पदं स्थानानियतमनेकार्थञ्च, तद्विधं तथाविधमस्थाननियतमक्षरं शेषः । सरूपपदार्थमाह—सरूप इति । प्रयुक्तेन

---

१. एतदग्रे 'विभक्तत्वं' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

२. 'ननु च शेषो…' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पदान्तरेण[1] तुल्यरूपः शेषोऽनुप्रासो भवति। अत्र सूत्रे सरूपपदवैयर्थ्यमाशङ्कते—नन्विति। शेषोऽनुप्रास इत्येव कृते सूत्रे, आवृत्तपदानुषङ्गादस्थाननियमं पदमक्षरं[2] वा वृत्तमनुप्रासो भवतीति सूत्रार्थे सम्पन्ने सारूप्यमर्थात् सम्पत्स्यते, किं सरूपग्रहणेनेति शङ्कार्थः। अर्धाङ्गीकारेण परिहरति—सत्यमिति। अङ्गीकृतमंशमाह—सिद्धयत्येवेति। सारूप्यमिति शेषः। तथाप्यावृत्तेरविशेषत्वेन सामान्येन तद्व्याप्तं[3] कात्स्न्येनावृत्तत्वं तन्मात्रप्रसङ्गः स्याद्, विशेषस्तु न सिद्धयेदिति शेषः। तमेव विशेषं दर्शयितुमाह—विशेषार्थं चेति। यद्यपि सामान्येन कात्स्न्येनावृत्तिर्भवति, तथापि कात्स्न्यैकदेशाभ्यां सारूप्यमत्र वक्तव्यमिति सरूपग्रहणं कृतमित्यर्थः॥ ८॥

अनुल्बणो वर्णाऽनुप्रासः श्रेयान्॥ ९॥

यो वर्णानामनुप्रासः, स खल्वनुल्बणो लीनः[4] श्रेयान्। यथा—

क्वचिन्मसृणमांसलं क्वचिदतीव तारास्पदं
प्रसन्नसुभगं मुहुः स्वरतरङ्गलीलाङ्कितम्।
इदं हि तव वल्लकीरणितनिर्गमैर्गुम्फितं
मनो मदयतीव मे किमपि साधु सङ्गीतकम्॥

उल्बणस्तु न श्रेयान्। यथा—'वल्लीबद्धोर्ध्वजूटोद्भटमटति रटत्कोटिकोदण्डदण्डः'॥ ९॥

उल्बण और अनुल्बण—इन दो प्रकारके अनुप्रासोंमें-से अनुल्बण अनुप्रासकी उत्तमताका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—) अनुत्कट (अक्लिष्टतयोच्चारणीय) वर्णोंका अनुप्रास अत्युत्तम होता है।

वर्णोंका अनुप्रास वर्णानुप्रास है, अनुल्बण अर्थात् सरलतासे उच्चारणीय अत्युत्तम होता है। यथा—

कहीं चिकना और मांसल, कहीं अत्यन्त उग्र, कहीं स्पष्ट और सुन्दर, स्वरोंके तरङ्गके विलाससे युक्त, वीणाकी मधुर ध्वनिके तुल्य तुम्हारा यह मनोहर संगीत मानो मेरे मनको मतवाला बना रहा है। (प्रकृत उदाहरणके वर्णोंके सरलतासे उच्चारण योग्य होनेसे यह अनुल्बण अनुप्रास' है।)

उल्बण (क्लिष्ट) वर्णयुक्त अनुप्रास अधिक उत्तम नहीं होता है। जैसे—

लताओंसे जटा-समूहको ऊपरकी ओर बाँधकर भयानक रूप धारण किया हुआ वह धनुषकी डोरीके अघातसे टङ्कार करते हुए धनुषको लिये हुए घूम रहा

---

१. 'इति। अन्येनाक्षरेण प्रयुक्तेन पदान्तरेण वा' इति 'ख' पु० पा०।
२. '……मक्षरं चावृत्तमनुप्रासो' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'यद्व्याप्तं' इति 'ख' पु० पा०।
४. 'ल्बणोऽपीनः' इति 'ग' पु०, '…ल्बणोऽपीनः' इति पा० 'अपीनः मसृणः' इत्यर्थः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

है। (इस उदाहरणमें उत्कट वर्ण-समुदायके होनेसे यह अनुप्रास उत्तम कोटिका नहीं है)। ९॥

अनुप्रासो द्विविधः—उल्बणोऽनुल्बणश्च। तत्रोल्बणादनुल्बण उत्कृष्ट इत्युपपादयितुमाह—अनुल्बण इति। व्याचष्टे—वर्णानामिति। अनुल्बणपदव्याख्यानं, लीन इति, मसृण इत्यर्थः। उदाहरणं तु स्पष्टार्थम्। यथा वा—

अपसारय धनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि! मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला॥ इति।

[१]उल्बणमुदाहरति—यथेति—वल्लीबद्धेति॥ ९॥

पादानुप्रासः पादयमकवत्॥ १०॥

ये पादयमकस्य भेदास्ते पादानुप्रासस्येत्यर्थः। तेषामुदाहरणानि यथा—

कविराजमविज्ञाय कुतः काव्यक्रियाऽऽदरः?।
कविराजं च विज्ञाय कुतः काव्यक्रियादरः?॥
आखण्डयन्ति मुहुरामलकीफलानि।
बालानि बालकपिलोचनपिङ्गलानि॥
वस्त्रायन्ते नदीनां सितकुसुमधराः शक्रसङ्काश[२]! काशाः
काशाभा भान्ति तासां नवपुलिनगताः श्रीनदीहंस! हंसाः।
हंसाभोऽम्भोदमुक्तः स्फुरदमलरुचिर्मेदिनी चन्द्र! चन्द्र-
श्चन्द्राङ्कः शारदस्ते जयकृदुपगतो[३] विद्विषां काल! कालः॥
कुवलयदलश्यामा मेघा विहाय दिवं गताः
कुवलयदलश्यामो निद्रां विमुञ्चति केशवः।
कुवलयदलश्यामा श्यामालताऽद्य विजृम्भते
कुवलयदलश्यामं चन्द्रो नभः प्रतिगाहते[४]॥

एवमन्येऽपि द्रष्टव्याः[५]॥ १०॥

इति श्रीपण्डितवरवामनविरचितायां काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तावालङ्कारिके चतुर्थेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः।

इति शब्दाऽलङ्कारविचारः।

---

१. 'अनुल्बणं प्रसिद्धमिति मत्वा उल्बणमुदाहरति' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'श्रीशसङ्काश' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'जयकृदुपनतो' इति 'क, ग' पु० पा०।
४. 'प्रविगाहते' इति 'क-ख' पु० पा०।
५. 'भेदा द्रष्टव्याः' इति 'क-ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पादानुप्रास 'पादयमक' के समान होता है ।

पादयमकके जो भेद हैं, वे (भेद) पादानुप्रासके भी होते हैं । यही इसका अर्थ है । उनका क्रमसे उदाहरण, जैसे—

कविराजों (उत्तम कवियों) को जाने बिना अर्थात् श्रेष्ठ कवियोंकी सेवा किये बिना काव्य-क्रिया (काव्य-रचना) में आदर (या भय) कहाँसे हो सकता है ? तथा श्रेष्ठ कवियोंको जाननेपर अर्थात् उनकी सेवा करनेपर काव्य-रचनामें भय कहाँसे हो सकता है ? अर्थात् श्रेष्ठ कवियोंकी सेवा करनेपर ही काव्य-रचनामें मन लग सकता है और भूल-चूक होनेका भय भी नहीं होता । (प्रकृत उदाहरणमें द्वितीय और चतुर्थ पादोंकी आवृत्ति ज्यों-की-त्यों है और 'आदर' तथा 'दर' (या 'दर-दर') शब्दोंकी आवृत्ति होनेसे अनुप्राप्त है ।)

वच्चे वानरोंकी आँखके समान पिङ्गल वर्ण (लालिमासे युक्त पीले रंग) वाले, आँवलेके छोटे फलोंको (तोते) कुतर रहे हैं । (प्रकृत पद्यार्धमें 'ला' और 'नि' वर्णोंका अनुप्रास है ।)

हे शक्रसङ्काश (इन्द्रोपम) ! श्वेत पुष्प धारण किये हुए काश नदियोंके वस्त्रके समान मालूम पड़ते हैं । हे श्रीनदीहंस (लक्ष्मीरूपिणी नदीके हंस) ! नदियोंके नये तटोंपर घूमते हुए हंस काशके समान मालूम पड़ते हैं, हे मेदिनीचन्द्र (पृथ्वीके चन्द्रमा) ! (वर्षान्त होनेसे) बादलोंसे रहित चमकीली स्वच्छ कान्तिवाला चन्द्रमा हंसके समान मालूम पड़ता है और हे शत्रुओंके काल (संहारक) राजन् ! तुम्हारी विजय करनेवाला एवं चन्द्रयुक्त यह शरत्काल आ गया है । (प्रकृत उदाहरणके चारों पादोंके अन्तमें क्रमशः 'काश-काश', 'हंस-हंस', 'चन्द्र-चन्द्र' और 'काल-काल' का अनुप्रास सुस्पष्ट है ।)

कुवलय (नीलकमल) पुष्पकी पंखुड़ियोंके समान श्याम वर्णवाले मेघ आकाशको छोड़कर चले (विलीन हो) गये, कुवलय-पुष्पकी पंखुड़ियोंके समान नीले वर्णवाले विष्णु भगवान् जा रहे हैं, कुवलय-पुष्पकी पंखुड़ियोंके समान श्याम वर्णवाली श्यामा लता आज विकसित हो रही है और कुवलय-पुष्पकी पंखुड़ियोंके समान श्याम वर्णवाले आकाशमें चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है । (प्रकृत श्लोकके चारों पादोंके आरम्भमें 'कुवलयदलश्याम' पदकी आवृत्ति होनेसे यहाँ समस्त पादादि यमकालङ्कार है ।)

इसी प्रकार दूसरोंको भी जानना चाहिए ॥ १० ॥

पादानुप्रासः पादयमकवदिति । अत्रातिदेशप्राप्तमर्थमावेदयति—ये पादयमकस्येति । कविराजमिति । एकत्रादरः, अन्यत्र दरः । 'दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः । उभयत्र दर[1] इति वा व्याख्येयम् । आखण्डयन्तीति । अत्र 'ला-नी'त्यक्षरानुप्रासः । वस्त्रायन्त इति । हे शक्रसङ्काश ! सितकुसुमधराः काशाः नदीनां वस्त्रायन्ते, दुकूलवदाचरन्तीत्यर्थः । हे श्रीनदीहंस ! श्रीराज्यलक्ष्मीरेव नदी तत्र हंस ! तासां नदीनां

१. 'आदर' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नवपुलिनगताः काशाभा हंसा भान्ति। हे मेदिनीचन्द्र! चन्द्रः हंसाभैरम्भोदैर्मुक्तः, अत एव स्फुरदमलरुचिर्भवति। हे विद्विषां काल! चन्द्राङ्कः शारदः कालः, ते जयकृदुपगत इति। अत्र समस्तपादान्तपादानुप्रासः। पादान्तपदानामुपरि पादादिषु पुनर्ग्रहणान्मुक्तपदग्रहाख्यमन्यदपि द्रष्टव्यम्। कुवलयदलेति। अत्र सर्वपादादिपदानुप्रासः। एवमन्येऽपीति—

सितकरकररुचिरविभा विभाकराकार धरणिधर कीर्तिः।
पौरुषकमला कमला साऽपि तवैवास्ति नान्यस्य॥

इत्यादयः प्रत्येतव्याः॥ १०॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनावालङ्कारिके चतुर्थेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वितीयोऽध्यायः

सम्प्रत्यर्थालङ्काराणां प्रस्तावः। तन्मूलं चोपमेति सैव विचार्यते—

उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः[1] साम्यमुपमा ॥ १ ॥

उपमीयते सादृश्यमानीयते येनोत्कृष्टगुणेनान्यत्[2] तदुपमानम्। यदुपमीयते[3] न्यूनगुणं तदुपमेयम्। उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यं यदसावुपमेति। ननूपमानमित्युपमेयमिति च सम्बन्धिशब्दावेतौ, तयोरेकतरोपादानेनैवान्यतरसिद्धिरिति। यथा—'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (पा० २।१।५६) इत्यत्रोपमितग्रहणमेव कृतं, नोपमानग्रहणमिति। तद्वदत्रोभयग्रहणं न कर्तव्यम्? सत्यम्, तत् कृतं लोकप्रसिद्धिपरिग्रहार्थम्। यदेवोपमेयमुपमानञ्च लोकप्रसिद्धं, तदेव परिगृह्यते, नेतरत्। न हि यथा 'मुखं कमलमिव' इति, तथा 'कुमुदमिव' इत्यपि भवति[4] ॥ १ ॥

(यमकादि शब्दालङ्कारोंकी चर्चा करनेके वाद 'खलेकपोत'न्यायसे सभी अर्थालङ्कारोंका वर्णन प्राप्त होनेपर उनकी प्रकृति होनेसे पहले उपमालङ्कारका आरम्भ करते हैं—) अब अर्थालङ्कारोंका अवसर है। उन अर्थालङ्कारोंका मूल उपमालङ्कार है; अतः उसीका विचार किया जाता है।

गुणके लेशमात्रसे उपमानकी उपमेयके साथ समता (सादृश्य) होना 'उपमा' अलङ्कार है।

जिस अधिक गुणवाले पदार्थके साथ कम गुणवाला दूसरा पदार्थ उपमित होता अर्थात् समानताको प्राप्त करता है, वह 'उपमान' (अर्थात् 'उपमा') है। (उससे) कम गुणवाला जो पदार्थ उपमित होता (साम्य प्राप्त करता) है, वह उपमेय है (जैसे—'चन्द्रमाके समान मुख' इसमें अधिक गुणवाला चन्द्रमा 'उपमा' तथा कम गुणवाला मुख 'उपमेय' है)। उपमान (अधिक गुणवाले पदार्थ; जैसे—चन्द्रमा) से उपमेय (कम गुणवाले पदार्थ; जैसे—मुख) की गुणलेशसे जो समानता होती है, वह 'उपमा' अलङ्कार है। उपमान और उपमेय—ये दोनों परस्पर सम्बन्धवाले शब्द हैं, अतः उन दोनोंमें-से किसी एकका ग्रहण होनेपर दूसरेका स्वतः ग्रहण हो जाता है; जैसे—'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (पा० २।१।५६) इस सूत्रमें

---

१. 'गुणशालिनः' इति पा० क्वचित्।

२. 'अन्यस्य यत्तदु…' इति 'क' पु० पा०।

३. एतदग्रे 'सादृश्यमानीयते यत्' इत्यधिकः 'क' पु० पा०।

४. 'भवति' एतदग्रे 'अथवा लौकिक्यां च कल्पितायां उपमाया ग्रहणं मा विजानीहि एतदर्थमुभयग्रहणम्' इत्यधिकः पा० 'ग' टिप्पण्याम्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(पाणिनिने) 'उपमित' शब्दका ही ग्रहण किया है, 'उपमान' शब्दका ग्रहण नहीं किया; उसी प्रकार यहाँ भी (उपमान और उपमेय) दोनोंका ग्रहण नहीं करना चाहिए। इस शङ्काका समाधान करते हुए कहते हैं कि यह ठीक है, किन्तु लोकप्रसिद्धिके ग्रहणके लिए दोनों (उपमान और उपमेय) का ग्रहण किया है। (इससे) जो उपमेय और उपमान लोकमें प्रसिद्ध है, उसीका ग्रहण होता है, दूसरे अर्थात् लोकमें अप्रसिद्धका ग्रहण नहीं होता। फलतः जिस प्रकार 'मुख कमलके समान है' यह कहा जाता है, उसी प्रकार 'मुख कुमुदके समान है' ऐसा प्रयोग नहीं किया जाता है (क्योंकि 'मुख कमलके समान है' यहाँ पर जैसे कमल मुखके उपमान रूपमें लोकप्रसिद्ध है वैसे 'कुमुदके समान है' लोकप्रसिद्ध नहीं है) ॥ १ ॥

उत्खण्डिततमस्तोममुपेयमुपरि श्रुतेः ।
उदर्चिरुपसामिन्दोरुक्तिज्योतिरुपास्महे ॥

शब्दालङ्कारेषु चर्चितेषु, खलेकपोतन्यायादखिलानामार्थाऽलङ्काराणामशेषेण प्राप्तौ, प्रकृतित्वात् तेषां प्रथममुपमां प्रस्तौति—सम्प्रतीति। व्याख्यातुं सूत्रमुपादत्ते—उपमानेनेति। उपमानोपमेयपदव्युत्पत्तिं प्रदर्शयति—उपमीयत इति। उत्कृष्टगुणेन येन चन्द्रादिना सादृश्यमानीयतेऽन्यन्मुखादिकं, तदुपमानम्। यत्तु न्यूनगुणमुत्कृष्टगुणेनान्येनोपमीयते, तदुपमेयम्, उपमानेन सादृश्यं प्रापयितुमर्हमित्यर्थः। गुणलेशत इति। गुणा उपमानोपमेययोरुत्कृष्टधर्माः, तेषां लेशत एकदेशतः, क्वचिदपि सर्वाकारसादृश्यासम्भवादिति भावः। ननु सम्बन्धिशब्दयोरेकतरग्रहणेऽन्यतरस्यानुक्तसिद्धत्वमिति शङ्कते—नन्विति। अमुमर्थमभियुक्तोक्तिसंवादेन समर्थयते—यथेति। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः' (पा० २।१।५६) इति पाणिनीयसूत्रे यथोपमितपदग्रहणेनैव व्याघ्रादीनामुपमानत्वमवगम्यते, तद्वदत्राप्युपमानग्रहणं न कर्तव्यमिति भावः[1]। परिहरति—तत्कृतमिति। यदुभयग्रहणं[2] कृतम्। किमर्थम्? लोकप्रसिद्धस्योपमानस्य परिग्रहार्थम्। न ह्यत्र व्युत्पत्तिबलादागतमुपमानं विवक्षितं, किन्तु लोकप्रसिद्धमेवेत्यवगमयितुमुभयग्रहणं कृतमित्यर्थः। तत्प्रसिद्ध्यप्रसिद्धी दर्शयति—यथेति। यथा मुखं पद्ममिवेत्यत्र पद्मं मुखोपमानत्वेन प्रसिद्धं, न तथा कुमुदमिवेत्यपि[3] ॥ १ ॥

गुणबाहुल्यतश्च कल्पिता ॥ २ ॥

गुणानां बाहुल्यं गुणबाहुल्यं, तत उपमानोपमेययोः साम्यात् कल्पितोपमा; कविभिः कल्पितत्वात् कल्पिता। पूर्वा तु लौकिकी। ननु कल्पितायाः[4] लोकप्रसिद्ध्यभावात् कथमुपमानोपमेयनियमः? गुणबाहुल्यस्योत्कर्षापकर्षकल्पनाभ्याम्। तद्यथा—

१. 'कर्तव्यमिति शङ्कितुरभिप्रायः' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'तदुभयग्रहणं' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'भवति प्रसिद्धमिति भावः' इत्यधिकः पा० 'ख' पु०।
४. 'ननु कल्पितायां' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उद्गर्भहूणतरुणीरमणोपमर्दभुग्नोन्नतिस्तननिवेशनिभं हिमांशोः ।
बिम्बं कठोरबिसकाण्डकडारगौरैर्विष्णोः पदं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति ॥
'सद्यो मुण्डितमत्तहूणचिबुकप्रस्पर्द्धि नारङ्गकम् ।'
'अभिनवकुशसूचिस्पर्धि कर्णे शिरीषम् ॥' इति[१] ।
इदानीं प्लक्षाणां जरठदलविश्लेषचतुर-
स्तिभीनामाबद्धस्फुरितशुकचञ्चूपुटनिभम् ।
ततः स्त्रीणां हन्त क्षममधरकान्ति तुलयितुं
समन्तान्निर्याति स्फुटसुभगरागं किसलयम् ॥ २ ॥

('लौकिकी और कल्पिता' ये दो भेद उपमाके हैं, उनमें-से पहले लौकिकी उपमाका भेद कहकर अब 'कल्पिता'का लक्षण कहते हैं—) गुणकी अधिकतासे 'कल्पिता' उपमा होती है ।

गुणोंका बाहुल्य अर्थात् अधिक होना 'गुणबाहुल्य' है, उससे उपमान और उपमेय— दोनोंमें समानता होनेसे 'कल्पिता' उपमा होती है । अधिक गुणोंके कारण कवियोंद्वारा कल्पित उपमानसे उपमित होनेसे यह 'कल्पिता' कही गयी है । गुणोंके लेशमात्रसे उपमान और उपमेयमें समानतावाली 'लौकिकी' उपमा पहलेवाली है । कल्पित उपमाके लोकमें प्रसिद्ध नहीं होनेसे उपमान और उपमेयका नियम किस प्रकार होगा ? ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि गुणोंकी अधिकतासे उत्कर्ष (अधिकता) और अपकर्ष (न्यूनता) के कारण उपमान तथा उपमेयका नियम हो जायेगा । जैसे—

स्पष्ट गर्भवाली 'हूण' देशकी तरुणीके पतिद्वारा किये गये गाढ़ आलिङ्गनसे दबे हुए स्तनमण्डलके समान चन्द्र-बिम्ब कड़े मृणाल-दण्डके तुल्य कुछ पीलापन लिये हुए सूर्योदय-कालीन किरणोंसे आकाशको प्रकाशित कर रहा है (प्रकृत श्लोकमें गुणोंकी अधिकताके कारण उक्त रूप हूणतरुणीस्तन 'उपमान' तथा चन्द्र-बिम्ब 'उपमेय' होनेसे लोकप्रसिद्धचभाव होनेपर भी कविकल्पित होनेसे 'कल्पिता' उपमा है) ।

मतवाले 'हूण' देशवासी मतवाले (नवयुवक) की तत्काल मुण्डित दाढ़ीके समान नारङ्गीका फल है (प्रकृत उदाहरणमें उक्त रूप मत्त हूणकी दाढ़ी उपमान और नारङ्गी उपमेय है । यह लोकमें अप्रसिद्ध होनेपर भी गुणबाहुल्यके कारण कवि-कल्पित होनेसे 'कल्पिता' उपमा है) ।

नयी कुश-सूचीके साथ स्पर्द्धा करनेवाला अर्थात् कुशके नये अङ्कुरके समान पतले नोकवाला शिरीषका फूल कानमें है (प्रकृत उदाहरणमें उक्त रूप नवीन कुश-सूचि उपमान और शिरीष उपमेय है । यह भी लोकप्रसिद्ध नहीं होनेपर भी गुण-बाहुल्यके कारण कविकल्पित होनेसे 'कल्पिता' उपमाका उदाहरण है) ।

पुराने पत्तोंके झड़ जानेसे मनोहर नये-नये अङ्कुरोंवाले बरगदके अधखुले शुक-चञ्चु (तोतेकी चोंच) के सदृश रमणीय लाल-लाल नवपल्लव सब ओर निकल

---

१. 'इति' इति 'ग' पु० नास्ति ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

रहे हैं, उन नवपल्लवोंसे स्त्रियोंके अधरकी शोभाकी समानता (तुलना) करना उत्तम है (प्रकृत श्लोकमें तादृश अर्ध-स्फुटित नवकिसलय उपमान और स्त्रीकी अधरकान्ति उपमेय, अथवा उक्तरूप अर्द्धविकसित नवकिसलय उपमान तथा उक्तरूप शुकचञ्चु उपमेय है। लोक-प्रसिद्धिके अभावमें भी यह कविकल्पित होनेसे 'कल्पिता' उपमाका उदाहरण है) ॥ २ ॥

लौकिकी, कल्पिता चेत्युपमा द्विविधाः। [1]कल्पितां प्रकटयितुमाह—गुणबाहुल्यत इति। उपमायाः कल्पितत्वव्यपदेशे कारणमाह—कविभिरिति। या पुनरुपमा गुणलेशतः साम्यलक्षणा, सा लौकिकी प्रागुक्तैवेत्याह—पूर्वा तु लौकिकीति। प्रसिद्ध्यभावात् कल्पितायामिदमुपमानमिदमुपमेयमिति व्यवस्था न घटत इति शङ्कते—नन्विति। इह खलूपमानोपमेययोर्मुखचन्द्रयोर्गुणोत्कर्षापकर्षौ व्यवस्थापकौ। तत्तत्कल्पनया कल्पितायामुपमानोपमेयनियमो घटते, अतो न लोकविरोध इति परिहरति—गुणबाहुल्यस्येति। उदाहरति—तद्यथेति। उद्गर्भा व्यक्तगर्भा या हूणाख्यजनपदतरुणी, तस्या रमणेन भर्त्रा, उपमर्दो गाढालिङ्गनं, तेन भुग्नः, स चाऽसावुन्नतः स्तनश्च भुग्नोन्नतस्तनस्तस्य निवेशः सन्निवेशो, मण्डलाकार इति यावत्; तन्निभं हिमांशोर्बिम्बम्। कठोरबिसकाण्डा इव कडारगौराः, कपिशावदातास्तैरग्रकरैः, प्रथममग्रे, विष्णोः पदमाकाशं व्यनक्ति। विषयव्याप्त्यर्थमुदाहरणान्तराण्याह—सद्य इति। मुण्डितेन[2] मत्तस्य हूणजनपदपुरुषस्य चिबुकेन प्रस्पर्द्धितुं शीलमस्याऽस्तीति तत्सन्निभं भवति नारङ्गकमिति। इदानीमिति। जरठदलानां जीर्णपर्णानां, विश्लेषेण चतुरामनोज्ञाः, स्तिभयोऽङ्कुरा येषाम्। 'स्तिभिश्च स्तिभिगः शुङ्गोऽप्यङ्कुरोऽङ्कुर एव च' इति हलायुधः। तेषां प्लक्षाणां किसलयम्, आबद्धो घटितः, स्फुरित ईषद्विवृत्तः, शुकस्य यश्चञ्चूपुटस्तत्सन्निभं भवति। ततोऽनन्तरम्, स्फुटसुभगरागं व्यक्तमनोज्ञारुण्यं, स्त्रीणामधरकान्ति तुलयितुं क्षमं योग्यं सन्निर्यांति ॥ २ ॥

तद् द्वैविध्यं, पदवाक्यार्थवृत्तिभेदात् ॥ ३ ॥

तस्या उपमाया द्वैविध्यम्, पदवाक्यार्थवृत्तिभेदात्। एका पदार्थवृत्तिः, अन्या वाक्यार्थवृत्तिरिति। पदार्थवृत्तिर्यथा—

हरित[3]तनुषु बभ्रुत्वग्विमुक्तासु यासां
कनककणसधर्मा मान्मथो रोमभेदः।

वाक्यार्थवृत्तिर्यथा—

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥ ३ ॥

---

१. एतत्पूर्वं 'तत्र' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

२. 'मुण्डितेन वापितेन' इति 'ख' पु० पा० सम्यग्भाति।

३. 'हरति' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(उपमाके दो भेद कहते हैं—) पदार्थवृत्ति और वाक्यार्थवृत्तिके भेदसे उपमाके दो भेद होते हैं।

उस(उपमा)के दो भेद हैं—पदार्थमें रहनेवाली उपमा और वाक्यार्थमें रहनेवाली उपमा। प्रथम उपमा पदके अर्थमें रहती है तथा दूसरी उपमा वाक्यके अर्थमें रहती है। उनमें-से पदार्थमें रहनेवाली उपमा जैसे—

जिन स्त्रियोंके, मटमैली छाल (या चमड़े) से रहित हरे शरीरोंपर कनकके कणोंके समान कामजन्य रोमाञ्च हो गया है।

वाक्यार्थमें रहनेवाली दूसरी उपमाका उदाहरण, जैसे—

कन्धेपर लम्बे हारको धारण किया हुआ और हरिचन्दनको अङ्गराग बनाया हुआ पाण्डय देशका यह राजा (प्रातःकालीन) बालातप अर्थात् धूपसे लाल शिखरवाले एवं बहते हुए झरनोंसे युक्त पर्वतोंके राजा (हिमालय) के समान शोभित हो रहा है ॥३॥

उपमाविभागमुदीरयितुमाह—तद्द्वैविध्यमिति। व्याचष्टे—तस्या इति। पदार्थवृत्तिमुपमां प्रतिपादयति—पदार्थेति। हरिततनुष्विति। कनककणसधर्मेत्यत्र पदार्थवृत्तिरुपमा। वाक्यार्थवृत्तिमुपमामुदाहरति—पाण्डचोऽयमिति ॥ ३ ॥

सा पूर्णा लुप्ता च ॥ ४ ॥

सा उपमा पूर्णा लुप्ता च भवति ॥ ४ ॥

(उस उपमाके पुनः दो भेद कहते हैं—) वह उपमा दो प्रकारकी होती है—एक पूर्णा और दूसरी लुप्ता।

वह उपमा दो प्रकारकी होती है—प्रथमा पूर्णा उपमा और द्वितीया लुप्ता उपमा। (सर्वप्रथम इसी अध्यायके प्रथम और द्वितीय सूत्रोंमें उपमाके 'लौकिकी और कल्पिता' दो भेद बतलाकर फिर दूसरे प्रकारसे उसी उपमाके 'पदार्थवृत्ति और वाक्यार्थवृत्ति' दो भेद तथा इस चतुर्थ सूत्रमें पुनः उस उपमाके 'पूर्णा और लुप्ता'—ये दो भेद किये गये हैं।) ॥ ४ ॥

पुनर्भेदं प्रादुर्भावयितुमाह—सा पूर्णा लुप्ता चेति ॥ ४ ॥

गुणद्योतकोपमानोपमेयशब्दानां सामग्र्ये पूर्णा ॥ ५ ॥

गुणादिशब्दानां सामग्र्ये साकल्ये पूर्णा। यथा—

'कमलमिव मुखं मनोज्ञमेतत्' इति ॥ ५ ॥

(अब क्रमप्राप्त प्रथम 'पूर्णा' उपमाका लक्षण कहते हैं—) गुणों अर्थात् उपमान (कमल आदि) एवं उपमेय (मुख आदि) के साधारण धर्मों (जैसे—मनोज्ञता आदि) के द्योतक (प्रतिपादक—'इव, निभ, स्पर्धी आदि) शब्द, उपमान (कमल आदि) और उपमेय (मुख आदि) इन चारोंकी परिपूर्णता रहनेपर 'पूर्णा' उपमा होती है।

गुण आदि ('आदि' से द्योतक, उपमान और उपमेयका ग्रहण है) शब्दोंके परिपूर्ण रहनेपर 'पूर्णा' उपमा होती है। जैसे—'कमलमिव मुखं मनोज्ञमेतत्' अर्थात्

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यह मुख कमलके समान मनोज्ञ (सुन्दर) है। (इस उदाहरणमें 'कमल' उपमा, इव द्योतक, मुख उपमेय और मनोज्ञ गुण (उपमान कमल और उपमेय मुखके साधारण धर्म) के पूर्ण रूपमें होनेसे यह 'पूर्णा' उपमाका उदाहरण है) ॥ ५ ॥

पूर्णां वर्णयितुमाह—गुणद्योतकेति। व्याचष्टे—गुणादीति। उपमानोपमेयसमानधर्मसादृश्यप्रतिपादकानामन्यूनत्वेन प्रयोगे पूर्णा। कमलमिवेति। अत्र कमलमुपमानम्, मुखमुपमेयम्, इवशब्दः सादृश्यद्योतकः, मनोज्ञशब्दः समानधर्मवचनः, एतेषामन्यूनतया प्रयोगादियमुपमा पूर्णा ॥ ५ ॥

लोपे लुप्ता ॥ ६ ॥

गुणादिशब्दानां वैकल्ये लोपे लुप्ता। गुणशब्दलोपे यथा—'शशीव राजा' इति। द्योतकशब्दलोपे यथा—'दूर्वाश्यामेयम्' इति। उभयलोपे यथा—'शशिमुखी'ति। उपमानोपमेयलोपस्तूपमाप्रपञ्चे द्रष्टव्यः ॥ ६ ॥

(अब क्रमप्राप्त द्वितीय 'लुप्ता' उपमाका लक्षण कहते हैं—लोप (गुण, द्योतक, उपमान और उपमेय शब्दोंमें-से किसी एक या अनेकोंके अभाव) होनेपर 'लुप्ता' उपमा होती है।

गुण (उपमान और उपमेयके साधारण धर्म—मनोज्ञत्व आदि), द्योतक (इव, निभ, सन्निभ आदि), उपमान (कमल आदि) और उपमेय (मुख आदि)—इन चारोंमें-से किसी एक के न रहनेपर 'लुप्ता' उपमा होती है। गुण (उपमान और उपमेयके साधारण धर्म) के लोपका उदाहरण—'शशीके समान राजा' है (इस उदाहरणमें उपमान 'शशी' शब्द, द्योतक 'इव' शब्द और उपमेय 'राज' शब्द है, किन्तु उपमान और उपमेयके गुण अर्थात् साधारण धर्म मनोज्ञ, प्रिय आदि शब्दका अभाव होनेसे यह 'गुण'के लोप होनेपर 'लुप्ता' उपमा है)। 'द्योतक' शब्दके लोप (अभाव) होनेपर 'लुप्ता' उपमा जैसे—'दूर्वाश्यामेयम्' अर्थात् यह स्त्री दूबके समान है (इस उदाहरणमें उपमान (दूर्वा), उपमेय (इयम्) तथा गुण (श्यामा) शब्दोंके रहनेपर भी 'द्योतक' (इव, निभ आदि शब्दोंके लुप्त होनेसे यह भी उदाहरण 'लुप्ता' उपमाका है)। उभय (दोनों अर्थात् गुणवाचक तथा द्योतक) शब्दोंका लोप (अभाव) रहनेपर 'लुप्ता' उपमा जैसे—'शशिमुखी' अर्थात् चन्द्रतुल्य मुखवाली स्त्री (इस उदाहरणमें 'गुण' (उपमान और उपमेयके साधारण धर्म आह्लादकत्वादि) और द्योतक (इव, सदृश आदि) शब्दोंका लोप होनेसे 'लुप्ता' उपमाका यह उदाहरण है)। उपमान और उपमा दोनोंके लोप होनेपर 'लुप्ता' उपमाका उदाहरण 'उपमा' अलङ्कारके विचारके अवसरपर (४।३।३) देखना चाहिए ॥ ६ ॥

लुप्तां लक्षयति—लोप इति। गुणादिशब्दानामिति। उपमानोपमेयगुणसादृश्यप्रतिपादकानां मध्ये, एकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा लोपे लुप्ता। 'शशीव राजे'त्यत्र साधारणधर्मस्याप्रयोगादेकस्य लोपः। श्यामाशब्देनैव धर्मधर्मिणोरुक्तत्वात्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'दूर्वामरकतश्यामं दुष्टराक्षसहारि यत् ।
अचलं लोचनाग्रान्मे मा चलत्वनिशं महः ॥'

इत्युदाहरणान्तरमपि द्रष्टव्यम् । 'शशिमुखी'त्यत्र सादृश्यधर्मवचनयोर्लोपः । उपमानस्योपमेयस्य वा लोपः समासोक्त्यादावुदाहरिष्यत इत्याह—उपमानेति । समासोक्त्यादावुपमेयस्याक्षेपादुपमानस्य लोप इति द्रष्टव्यम् ॥ ६ ॥

स्तुतिनिन्दातत्त्वाख्यानेषु ॥ ७ ॥

स्तुतौ निन्दायां तत्त्वाख्याने चाऽस्याः प्रयोगः । स्तुतिनिन्दयोर्यथा—
'स्निग्धं भवत्यमृतकल्पमहो कलत्रं, हालाहलं विषमिवापगुणं तदेव' ।
तत्त्वाख्याने यथा—

तां रोहिणीं विजानीहि ज्योतिषामत्र मण्डले ।
यस्तन्वि ! तारकान्यासः शकटाकारमाश्रितः ॥ ७ ॥

(अब उपमामात्रके विषयको कहते हैं—) प्रशंसा, निन्दा और वास्तविकताके कहनेमें उपमालङ्कार होता है ।

प्रशंसा, निन्दा और वास्तविकताके कहनेमें 'उपमा' अलङ्कारका प्रयोग होता है । प्रशंसा और निन्दा (इन दोनों) के कहनेमें उपमाका प्रयोग जैसे—स्नेहयुक्त स्त्री अमृतके समान तथा गुण (स्नेह आदि) से हीन वही स्त्री हलाहल विषके समान होती है (प्रकृत उदाहरण में स्नेहयुक्त स्त्रीकी प्रशंसा करते समय 'अमृत'से और गुणहीन उसी स्त्रीकी निन्दा करते समय हलाहल विषसे उपमा दी गयी है) ।

वास्तविकताके कहनेमें 'उपमा' अलङ्कारका प्रयोग जैसे—

हे तन्वि ! इस नक्षत्र-समूहमें रोहिणी उसे जानो, जो तारों (नक्षत्रों) की स्थितिमें गाड़ीके आकारवाली है (प्रकृत उदाहरणमें 'रोहिणी' ताराका परिचय देनेमें उसकी स्थितिको गाड़ीकी आकृतिसे उपमा देकर वास्तविकताको कहा गया है) ॥ ७ ॥

उपमामात्रस्य विषयं दर्शयितुमाह—स्तुतीति । 'स्निग्ध'मित्यादौ स्तुतिः । 'हालाहलमि'त्यादौ निन्दा । 'तां रोहिणीमि'त्यत्र तत्त्वाख्यानम् ॥ ७ ॥

हीनत्वाधिकत्वलिङ्गवचनभेदासादृश्याऽसम्भवास्तद्दोषाः ॥ ८ ॥

तस्या उपमाया दोषा भवन्ति—हीनत्वमधिकत्वं लिङ्गभेदो वचनभेदोऽसादृश्यमसम्भव इति ॥ ८ ॥

(अब 'उपमा' अलङ्कारके दोष कहते हैं—) हीनता, अधिकता, लिङ्गभेद, वचनभेद, असमानता और असम्भव—ये छह उस(उपमा)के दोष हैं ।

उस उपमाके (ये छह) दोष हैं—हीनता, अधिकता, वचन-भेद, लिङ्ग-भेद, असमानता और असम्भव ॥ ८ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उपमादोषानुद्घाटयितुमाह--हीनत्वेति । समासार्थं विविच्य दर्शयति--तस्या इति ॥ ८ ॥

तान् क्रमेण व्याख्यातुमाह—

जातिप्रमाणधर्मन्यूनतोपमानस्य हीनत्वम् ॥ ९ ॥

जात्या प्रमाणेन धर्मेण चोपमानस्य न्यूनता या तद्धीनत्वमिति । जातिन्यूनत्वरूपं हीनत्वं यथा—

'चण्डालैरिव युष्माभिः साहसं परमं कृतम्' ।

प्रमाणन्यूनत्वरूपं हीनत्वं यथा—

'वह्निस्फुलिङ्ग इव भानुरयं चकास्ति' ।

उपमेयादुपमानस्य धर्मतो न्यूनत्वं यत्, तद्धर्मन्यूनत्वम् । तद्रूपं हीनत्वं यथा—

स मुनिर्लाञ्छितो मौञ्ज्या कृष्णाजिनपटं वहन् ।
व्यराजन्नीलजीमूतभागाश्लिष्ट इवांशुमान् ॥

अत्र मौञ्जीप्रतिवस्तु तडिन्नास्त्युपमान इति हीनत्वम् । न च कृष्णाजिनपटमात्रस्योपमेयत्वं युक्तम्, मौञ्ज्या व्यर्थत्वप्रसङ्गात् । ननु नीलजीमूतग्रहणेनैव तडित्प्रतिपाद्यते ? तन्न; व्यभिचारात् ॥ ९ ॥

(पूर्वसूत्रोक्त 'हीनत्व' का प्रतिपादन करते हैं—) उन हीनत्व आदिको क्रमशः कहते हैं—

उपमानकी जातिसे, प्रमाणसे और धर्मसे हीनता (कमी) होना 'उपमा'का 'हीनत्व' दोष है ।

जातिसे, प्रमाणसे और धर्मसे उपमान (चन्द्र आदि) की जो न्यूनता (कमी) है, वह (उपमाका) 'हीनत्व' दोष है । जातिसे न्यूनतारूप 'हीनत्व' जैसे—

चाण्डालोंके समान तुमलोगोंने बड़ा साहस किया (इस उदाहरणमें चाण्डालोंके साथ उपमा देनेसे जातिसे हीनत्व है) ।

प्रमाणसे न्यूनत्वरूप 'हीनत्व' जैसे—

आगकी चिनगारीके समान यह सूर्य चमकता है (इस उदाहरणमें सूर्यकी उपमा अत्यन्त तुच्छ आगकी चिनगारीके साथ देनेसे प्रमाणसे न्यूनत्वरूप 'हीनत्व' है) ।

उपमेयकी अपेक्षा उपमानकी जो धर्मसे न्यूनता (कमी) है, वह 'धर्मन्यूनत्व' रूप 'हीनत्व' दोष है । तद्रूप (धर्मरूप) 'हीनत्व' जैसे—

मूँजकी मेखला (करधनी) से युक्त और काले मृगके चमड़ारूप वस्त्र पहने हुए वह मुनि नीले मेघसे ढँके हुए सूर्यके समान शोभित हुए ।

यहाँ मौञ्जी (मूँजकी मेखला) के समान प्रतिवस्तु बिजली उपमान सूर्यरूपमें नहीं होनेसे धर्मरूप 'हीनत्व' दोष है । केवल कृष्णमृगके चर्मयुक्त मुनिका उपमेयत्व

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा माननेसे 'मौंजी (मूँजकी मेखला) से युक्त' मुनिका यह विशेषण व्यर्थ हो जायेगा। नीले मेघ (नील जीमूत) के ग्रहणमात्रसे विजलीका ज्ञान भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा माननेपर विजलीसे रहित भी मेघके रहनेके कारण अव्याप्ति दोष हो जायेगा ॥ ९ ॥

तत्र प्रथमोद्दिष्टं हीनत्वं प्रथयितुमाह—जातीति। व्याचष्टे—जात्येति। जातिर्ब्राह्मणत्वादिः। प्रमाणं परिमाणम्। धर्मः समानगुणः। एतेषामन्यतमेन न्यूनत्वमुपमानस्य हीनत्वम्। तत्राद्यमुदाहरति—जातिन्यूनत्वरूपमिति। चाण्डालैरित्यत्र साहसकारित्वं साधर्म्यम्। जातिन्यूनत्वं स्फुटम्। वह्निस्फुलिङ्ग इत्यत्र परिमाणन्यूनत्वमतिरोहितमेव। स मुनिरिति। नीलजीमूतेन कृष्णमेघेन, भागे एकत्र प्रदेशे, आश्लिष्टः। धर्मतो न्यूनत्वमुपमानस्य दर्शयति—अत्रेति। मौञ्ज्याः समानं वस्तु प्रतिवस्तु तडित्, साऽत्र नास्ति, उपमानविशेषणतयाऽनुपादानादित्यर्थः। ननु उपमाने यावद् दृष्टं, तावदेव साधर्म्यमुपमेये विवक्षितम्, मौञ्जीलाञ्छनं तु स्वरूपकथनार्थमिति शङ्कां शकलयति—न चेति। नीलजीमूतस्य तडित्साहचर्यात् तद्ग्रहणेनैव तडित्संवित्तिरप्युपलभ्यते, ततो न काचिन्न्यूनतेति शङ्कते—नन्विति। तडितमन्तरेणापि नीलजीमूतस्य सद्भावान्नैवमिति परिहरति—तन्न, व्यभिचारादिति ॥ ९ ॥

अव्यभिचारे तु भवन्ती प्रतिपत्तिः केन वार्यते ? तदाह—

धर्मयोरेकनिर्देशेऽन्यस्य संवित्, साहचर्यात् ॥ १० ॥

धर्मयोरेकस्यापि धर्मस्य निर्देशेऽन्यस्य[1] संवित् प्रतिपत्तिर्भवति। कुतः ? साहचर्यात्। सहचरितत्वेन प्रसिद्धयोरवश्यमेकस्य निर्देशेऽन्यस्य प्रतिपत्तिर्भवति। तद्यथा—

> निर्वृष्टेऽपि बहिर्घने न विरमन्त्यन्तर्जरद्वेश्मनो
> लूतातन्तुततिच्छिदो मधुपृषत्पिङ्गाः पयोबिन्दवः।
> चूडाबर्बरके निपत्य कणिकाभावेन जाताः शिशो-
> रङ्गास्फालनभग्ननिद्रगृहिणीचित्तव्यथादायिनः ॥

अत्र मधुपृषतां वृत्तत्वपिङ्गत्वे सहचरिते। तत्र पिङ्गशब्देन पिङ्गत्वे प्रतिपन्ने वृत्तत्वप्रतीतिर्भवति। एतेन—

'कनकफलकचतुरस्रं श्रोणिबिम्बम्' इति व्याख्यातम्। [2]कनकफलकस्य गौरत्वचतुरस्रत्वयोः साहचर्याच्चतुरस्रत्वश्रुत्यैव गौरत्वप्रतिपत्तिरिति। ननु च यदि धर्मन्यूनत्वमुपमानस्य दोषः, कथमयं प्रयोगः ?

> सूर्यांशुसम्मीलितलोचनेषु दीनेषु पद्मानिलनिर्मदेषु।
> साध्व्यः स्वगेहेष्विव भर्तृहीनाः केका विनेशुः शिखिनां मुखेषु ॥

---

१. '…ऽन्यधर्मस्य' इति 'क-ख' पु० पा०।
२. 'अत्र कनक…' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अत्र बहुत्वमुपमेयधर्माणामुपमानात् । न, विशिष्टानामेव मुखानामुपमेयत्वात् । तादृशेष्वेव केकाविनाशस्य सम्भवात् ॥ १० ॥

व्यभिचार अर्थात् दोषके अभावमें (सहचरित दो धर्मोंके) होने वाले बोधको कौन रोक सकता है ? इसीका प्रतिपादन इस सूत्रमें करते हैं ।

दो धर्मोंमें-से किसी एकके निर्देश करनेपर साहचर्यसे दूसरे (शब्द द्वारा नहीं कहे गये धर्म) का बोध हो जाता है ।

दो धर्मोंमे-से (किसी) एक धर्मका निर्देश होनेपर (शब्दतः अकथित) दूसरे धर्मका बोध हो जाता है । कैसे ? साहचर्य (दोनोंके साथ रहने) से । सहचरित (सर्वदा एक साथ रहने) से प्रसिद्ध किन्हीं दो धर्मोंमें-से किसी एकके कहे जानेपर नहीं कहे गये दूसरे धर्मका बोध अवश्यमेव होता है । जैसे—

(झोपड़ी के) वाहर बादलके एकदम (पूर्णतः) बरस जानेपर अर्थात् वर्षाके सर्वथा रुक जानेपर भी जर्जर झोपड़ीके भीतर मकड़ियोंके जालोंको छिन्न-भिन्न करनेवाली एवं शहदकी बूँदोंके समान पिङ्गल वर्णवाली पानीकी बूँद (झोपड़ीमें माताके साथ सोये हुए) बच्चेके वालोंपर छोटे कणोंके रूपमें गिरकर बच्चेके शरीर हिलानेसे जगी हुई गृहिणीके चित्तको व्यथित कर दिया ।

यहाँ शहदकी बूँदोंका गोलाकार तथा पिङ्गल वर्ण (लालिमासे युक्त पीला) होना सहचरित (नित्यसम्बद्ध) है । इस कारण प्रकृत उदाहरणमें 'पिङ्ग' शब्दके द्वारा पीलापनका ग्रहण हो जाने पर उसके नित्य साथ रहनेवाले गोलापनका बोध स्वतः होता है । (अतः) इस उदाहरणसे—

सुवर्णके तख्तेके समान चौरस (नायिकाका) नितम्ब है ।

इसकी व्याख्या हो गयी । (क्योंकि) सुवर्णके तख्ते (पटरे) में गोरापन और चौरस—इनका साहचर्य (नित्य सम्बन्ध) होनेसे केवल 'चौरस' (चतुरस्रत्व) के कहनेसे ही स्पष्ट नहीं कहे गये गौरत्व (गोरेपन) का बोध स्वतः हो जाता है । (अब यह शङ्का होती है कि यदि धर्मकी न्यूनता (कमी) होना उपमानका दोष है तो यह प्रयोग किस प्रकार हुआ ?

सूर्यकी (तेज) किरणोंसे आँख बन्द किये हुए, पद्मको स्पर्श करती हुई हवासे मदहीन और दीन, मोरोंके मुखोंमें केका (मोरोंकी बोली) घरोंमें छिपी हुई सदाचारिणी विधवाओंके समान गायब (नष्ट) हो गयी ।

प्रकृत प्रयोगमें उपमानकी अपेक्षा उपमेय मुखोंमें ही आँखोंका निमीलन, दैन्य और निर्मदत्व रूप अधिक विशेषणोंके होनेसे विरोध है । (इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—) नहीं, अर्थात् यह विरोध नहीं है, क्योंकि उक्त तीनों विशेषणोंसे युक्त मुख ही यहाँ उपमेय है । पतिरहित साध्वीके आश्रय घरोंमें दीनत्व प्रतीत होता है; वैसे घरोंमें साध्वी स्त्रियोंके समान दीनतायुक्त मयूर-मुखोंमें भी केकाओंका नष्ट होना कहना चाहिए । अन्यथा उसका होना संभव नहीं है । दीनता, नेत्रनिमीलनत्व और निर्मदत्वरूप उसके अनुभावसे सिद्ध होनेसे धर्महीनत्व दोष नहीं है, क्योंकि पतिहीनता

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

और निर्मदता आदि उपपादकके भेद होनेपर भी दोनों स्थलोंमें दीनतारूपी साधर्म्य ही विवक्षित है, अतः कोई विरोध नहीं है ॥ १० ॥

व्यभिचाराभावे तु सहचरितधर्मप्रतीतिरस्त्येवेति प्रदर्शयितुमनन्तरसूत्रमवतारयति—अव्यभिचारे त्विति । व्याचष्टे—धर्मयोरिति । कार्यत्वानित्यत्ववदविनाभूतयोर्धर्मयोरेकस्य ग्रहणेन अशाब्दस्याऽप्यन्यस्य प्रतिपत्तिर्भवति, तयोरव्यभिचारादिति वाक्यार्थः । उदाहरति—तद्यथेति । निर्वृष्ट इति । बहिर्घने निर्वृष्टे निर्गतं वृष्टं वर्षणं यस्मात्, तादृशे सत्यपि, जरद्वेश्मनः शिथिलगृहस्य, लूतास्तन्तुजालकराः कृमयः । 'लूता स्त्री तन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः' इत्यमरः । तत्तन्तूनां ततीश्छिन्दन्तीति तथोक्ताः, मधुपृषत्पिङ्गा मधुबिन्दुपिङ्गलाः, पयोबिन्दवो न विरमन्ति । विरतेऽपि वर्षे वेश्मबिन्दवो न विरमन्तीत्यर्थः । अत्रेति । मधुपृषतां वृत्तत्वपिङ्गत्वे सहचरितेऽविनाभूते, तत्र पिङ्गशब्देनैव पिङ्गत्वप्रतिपत्तौ, अशाब्दद्यपि वृत्तत्वप्रतीतिर्भवति । उदाहरणान्तरमाह—कनकफलकेति । उक्तं सूत्रार्थमुदाहरणे योजयति—अत्रेति । कनकफलकस्य चतुरस्रत्वश्रुत्या तत्सहचरितं गौरत्वमपि प्रतीयते, अव्यभिचारादित्यर्थः । धर्मन्यूनत्वस्योपमादोषत्वे प्रयोगविरोधमाशङ्कते—ननु चेति । प्रयोगविरोधं दर्शयति—सूर्येति । मुखेष्वित्युपमेयस्य लोचनसम्मीलनदैन्यनिर्मदत्वानां धर्माणां बाहुल्यं प्रतीयत इति विरोधः । परिहरति—नेति । भर्तृहीनजनाश्रयत्वेन गृहेष्वपि दैन्यमवगम्यते । तादृशेषु गृहेषु साध्वीनामिव दैन्यविशिष्टेषु शिखिमुखेषु केकानां विलयो वक्तव्यः, अन्यथा तदसम्भवात् । दैन्यं च नेत्रनिमीलननिर्मदत्वाभ्यां तदनुभावाभ्यामुपपादितमिति नास्ति धर्मन्यूनतेत्याह—विशिष्टानामिति ।

'घर्मागमे दुर्मदतिग्मरश्मिसन्तापसम्मीलितलोचनेषु ।
साध्व्यः स्वगेहेष्विव भर्तृहीनाः केका विलीनाः शिखिनां मुखेषु ॥'

इति विधाऽन्तरं विधातुं न प्रबन्धकर्ता न प्रगल्भते, किन्तु भर्तृहीनत्वस्य निर्मदत्वादेश्चोपपादकस्य भेदेऽप्युभयत्र दैन्यमेव साधर्म्यमिति विवक्षितमिति न कश्चिद्विरोधः ॥ १० ॥

तेनाधिकत्वं व्याख्यातम् ॥ ११ ॥

तेन हीनत्वेनाधिकत्वं व्याख्यातम् । जातिप्रमाणधर्माधिक्यमधिकत्वमिति । जात्याधिक्यरूपमधिकत्वं यथा—

'विशन्तु विष्टयः[१] शीघ्रं रुद्रा इव महौजसः' ।

प्रमाणाधिक्यरूपं यथा—

पातालमिव नाभिस्ते स्तनौ क्षितिधरोपमौ ।
वेणीदण्डः पुनरयं कालिन्दीपातसन्निभः ॥

१. 'वृष्णयः' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

धर्माधिक्यरूपं यथा—

सरश्मि चञ्चलं चक्रं दधद्देवो व्यराजत।
सवाडवाग्निः सावर्तः स्रोतसामिव नायकः ॥

सवाडवाग्निरित्यस्योपमेयेऽभावाद् धर्माधिक्यमिति[1]। अनयोर्दोषयोर्विपर्ययाख्यस्य दोषस्यान्तर्भावान्न पृथगुपादानम्। अत एवास्माकं मते षड् दोषा इति ॥ ११ ॥

इस (हीनत्वरूप दोषकी व्याख्या) से अधिकत्वरूप दोषकी व्याख्या हो गयी।

इस हीनत्व (दोषकी व्याख्या) से अधिकत्व (दोष) की व्याख्या हो गयी। अर्थात् हीनत्व दोषके समान अधिकत्व दोषके भी तीन भेद हैं। (उपमेयसे उपमानमें) जातिसे, प्रमाणसे और धर्मसे आधिक्य होना 'अधिकत्व' दोष है। जातिसे आधिक्यरूप अधिकत्व दोष है, जैसे—

महाबलवान् रुद्रके समान भृत्य शीघ्र भीतर प्रवेश करें (इस उदाहरणमें महाबलवान् रुद्ररूप उपमानमें भृत्यरूप उपमानकी अपेक्षा जातिकी अधिकता होनेसे 'जातिगत अधिकत्व' दोष है)।

प्रमाणसे आधिक्यरूप आधिकत्व दोष जैसे—

तेरी नाभि पातालके समान (गहरी), दोनों स्तन पहाड़के समान (ऊँचे) और यह केशपाश यमुनाके प्रवाहके समान (लम्बे एवं काले) हैं (इस उदाहरणमें उपमेय नाभि, स्तन और केशपाश—इन तीनोंमें पाताल, पहाड़ और यमुना-प्रवाह रूप उपमानमें प्रमाणाधिक्य होनेसे 'अधिकत्व' दोष है)।

धर्माधिक्यरूप अधिकत्वदोष जैसे—

किरणोंसहित चञ्चल (घूमते हुए सुदर्शन) चक्रको धारण करते हुए विष्णु वडवानल और भँवरोंसे युक्त नदियोंके पति (समुद्र) के समान विराजमान हुए (इस उदाहरणमें रहनेवाले सवाडवाग्नि (वडवानल-सहित) धर्मके समानका उपमेयरूप देव (विष्णु) में अभाव होनेसे धर्माधिक्यरूप 'अधिकत्व' दोष है।

उपमेयकी ही हीनता और अधिकतारूप 'विपर्यय' नामक दोषोंका अन्तर्भाव उपमानकी हीनता और उपमानकी अधिकता—इन दोनों-में ही हो जाता है, अत एव उनको अलगसे ग्रहण नहीं किया गया है। फलतः हमारे (ग्रन्थकारके) मतमें उपमाके ये ही छह दोष होते हैं ॥ ११ ॥

अधिकत्वं व्याख्यातुं सूत्रं व्याहरति—तेनेति। हीनत्वमिवाधिकत्वमपि जात्यादिभिस्त्रिविधम्। तस्य क्रमेणोदाहरणानि दर्शयति—जात्येति। विष्टयः कारवो भृत्या वा। 'विष्टिः कारौ कर्मकरे' इति वैजयन्ती। पातालमित्यादि स्पष्टम्। 'सवाडवाग्निः सावर्तं' इत्यत्राधिक्यमप्युपमाने दर्शयति—सवाडवेति। अत्र सरश्मीति चक्रविशेषणवदावर्तविशेषणानुपादानान्न्यूनत्वमपि द्रष्टव्यम्। जातिप्रमाणहीनत्वाधिकत्वे पदार्थो-

---

१. 'सवाडवाग्निरित्यस्य' एतदग्रे 'प्रतिवस्तुन' इत्यधिकः 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पमायां दोषो, धर्मन्यूनत्वाधिकत्वे तु वाक्यार्थोपमायाम् । पदार्थोपमायां न धर्मन्यूनाधिकभावः सम्भवति, समानधर्मस्यैकत्वेन वाक्यार्थोपमायामिवानेकविशेषवैशिष्ट्यासम्भवादिति द्रष्टव्यम् । विपर्ययाख्यस्येति । उपमेयधर्मस्य हीनत्वमधिकत्वं च विपर्ययः । तदात्मकस्य दोषस्य हीनत्वाधिकत्वानतिरेकात्, तत्रैवान्तर्भाव इति तन्निरूपणेनैव निरूपितप्रायत्वान्न पृथगभिधानं कृतमित्यर्थः । अस्माकमिति ॥ ११ ॥

उपमानोपमेययोर्लिङ्गव्यत्यासो लिङ्गभेदः ॥ १२ ॥

उपमानस्योपमेयस्य च लिङ्गयोर्व्यत्यासो विपर्ययो लिङ्गभेदः । यथा—

'सैन्यानि नद्य इव जग्मुरनर्गलानि' ॥ १२ ॥

(अष्टम सूत्रोक्त 'उपमाके दोषोंमें-से क्रमप्राप्त 'लिङ्गभेद' नामक दोषका लक्षण कहते हैं—) उपमान और उपमेयके लिङ्ग (पुँल्लिङ्ग आदि) का भेद (एक-सा) नहीं रहना 'लिङ्गभेद' दोष है ।

उपमान और उपमेयके लिङ्गों (पुँल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग आदि) का विपर्यास (समानताका अभाव) रहना उपमाका 'लिङ्गभेद' नामक दोष है । जैसे—

नदियोंके समान सेनाएँ निर्बाध गतिसे चलीं (इस उदाहरणमें उपमेय 'सैन्यानि' शब्दमें नपुंसकलिङ्ग और उपमान 'नद्यः' शब्दमें स्त्रीलिङ्ग रूप व्यत्यास (असमानता) होनेसे 'लिङ्गभेद' नामक दोष है । इसमें 'सेना हि नद्य इव जग्मुरनर्गलास्ताः' ऐसा परिवर्तन करनेपर 'लिङ्गभेद' दोष नहीं होगा । स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्गके विपर्यय रहनेपर 'लिङ्गभेद' दोषका उदाहरण 'गङ्गाप्रवाह इव तस्य निरर्गला वाक्' इत्यादि हैं) ॥ १२ ॥

लिङ्गभेदमुल्लिङ्गयितुमाह—उपमानोपमेययोरिति । सूत्रार्थविवरणोदाहरणे सुगमे एव । 'गङ्गाप्रवाह इव तस्य निरर्गला वाक्' इत्यादिषु स्त्रीपुंसयोरपि द्रष्टव्यः ॥ १२ ॥

इष्टः पुन्नपुंसकयोः प्रायेण ॥ १३ ॥

पुन्नपुंसकयोरुपमानोपमेययोर्लिङ्गभेदः प्रायेण बाहुल्येनेष्टः । यथा—

'चन्द्रमिव मुखं पश्यति' इति । 'इन्दुरिव मुखं भाति' एवम्प्रायं तु नेच्छन्ति ॥ १३ ॥

('पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गके विपर्यय रहनेपर भी प्रायः लिङ्गभेद दोष नहीं होता' यह कहते हैं—) पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गका विपर्यय प्रायः इष्ट है ।

उपमान और उपमेयमें पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गका भेद प्रायः अभीष्ट है । यथा—

'चन्द्रमिव मुखं पश्यति' (चन्द्रमाके समान मुखको देखता है) इस उदाहरणमें 'उपमान' चन्द्रके पुंल्लिङ्ग और 'उपमेय' मुखके नपुंसकलिङ्ग रूप विपर्यय होनेपर भी 'लिङ्गभेद' दोष नहीं माना गया है; किन्तु ('प्रायेण' ग्रहण करनेसे) इसी प्रकार 'इन्दुरिव मुखं भाति' (चन्द्रमाके समान मुख शोभित होता है) आदि उदाहरण

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कविलोग नहीं चाहते, अर्थात् इस प्रकारके उदाहरणोंमें 'लिङ्गभेद' दोष मानते ही हैं। फलितार्थ यह है कि जिस प्रयोगमें लिङ्गभेद होनेपर भी विशेषण उभयान्वयी हो सकता है, उस प्रयोगमें 'लिङ्गभेद' दोष नहीं होता, परन्तु जिस प्रयोगमें विशेषण का एकमें एकत्र अन्वय हो सकने पर भी अन्यत्र अन्वय नहीं हो सकता, वहाँ लिङ्गभेद' दोष होता ही है)॥ १३॥

उक्तयुक्त्या पुन्नपुंसकयोर्दोषत्वप्रसङ्गे लिङ्गभेदस्य क्वचिदपवादं दर्शयितुमाह-- इष्ट इति। एवम्प्रायमिति। एवम्प्रायं तु नेच्छन्तीत्यात्मनस्तत्रौदासीन्यमवगमयति। यत्र हि लिङ्गभेदेऽपि विशेषणमुभयान्वयक्षमं, तत्र न दोषः। यत्र तु विशेषणमेकत्रान्वितं सदितरत्र नान्वयक्षमं, तत्र दोष इति तात्पर्यम्॥ १३॥

लौकिक्यां समासाभिहितायामुपमाप्रपञ्चे च॥ १४॥

लौकिक्यामुपमायां समासाभिहितायामुपमायामुपमाप्रपञ्चे चेष्टो लिङ्गभेदः प्रायेणेति। लौकिक्यां यथा—'छायेव स तस्याः' पुरुष इव स्त्री' इति।

समासाभिहितायां यथा—

'भुजलता नीलोत्पलसदृशी' इति।

उपमाप्रपञ्चे यथा—

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः॥

एवमन्यदपि प्रयोगजातं द्रष्टव्यम्॥ १४॥

(लिङ्गभेद होनेपर भी उक्त दोषका अपवाद कहते हैं—) लौकिकी उपमा, समाससे अभिहित उपमा और उपमाके प्रपञ्च (अर्थात् प्रतिवस्तूपमा और अपह्नुति आदि) में 'लिङ्गभेद' दोष प्रायः अभीष्ट होता है।

लोकमें प्रसिद्ध उपमा, समाससे अभिहित (लुप्त) उपमा और उपमाप्रपञ्च (अर्थात् प्रतिवस्तूपमा और अपह्नुति आदि) में 'लिङ्गभेद' दोष प्रायः अभीष्ट होता है। लौकिकी उपमामें 'लिङ्गभेद'का अभीष्टत्व जैसे—'छायेव स तस्याः' (वह पुरुष उस स्त्रीकी छायाके समान है), 'पुरुष इव स्त्री' (पुरुषके समान स्त्री)।

समाससे अभिहित (लुप्त) उपमामें 'लिङ्गभेद' का अभीष्टत्व जैसे—'भुजलता नीलोत्पलसदृशी' (नीले कमलके समान भुजा) में नीलकमलका नपुंसकलिङ्ग समासमें लुप्त होनेसे 'लिङ्गभेद' दोष अभीष्ट है।

उपमाप्रपञ्च (प्रतिवस्तूपमा) में लिङ्गभेदका अभीष्ट होना जैसे—

राजमहलमें दुर्लभ यह शरीर यदि आश्रमवासी व्यक्ति (कण्वपुत्री शकुन्तला) का है, तव तो उद्यानलताएँ वनलताओंके गुणों (अनुपमेय सौन्दर्यादि गुणों) से अवश्यमेव तिरस्कृत हो गयीं (यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है)।

इसी प्रकार 'नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिः' (यह आकाश नहीं, किन्तु समुद्र है) इत्यादि अपह्नुति प्रयोग-समूह भी देखना चाहिए॥ १४॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

लिङ्गान्तरेऽप्यपवादं दर्शयितुमाह--लौकिक्यामिति । लोकतः प्रसिद्धोपमा लौकिकी । समासेनाऽभिहिता लुप्ता । उपमाप्रपञ्चः प्रतिवस्तुप्रभृतिः । तत्र लिङ्गभेदः प्रायेणेष्टः । उदाहरणानि दर्शयति--लौकिक्यामिति । [1]उदाहरणानि स्पष्टार्थानि । शुद्धान्तदुर्लभमित्यत्र प्रतिवस्तूपमा । एवमिति । 'नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिः' इत्याद्यपह्नुत्यादौ द्रष्टव्यम् ।। १४ ।।

तेन वचनभेदो व्याख्यातः ।। १५ ।।

तेन लिङ्गभेदेन वचनभेदो व्याख्यातः । यथा—

'पास्यामि लोचनं तस्याः पुष्पं मधुलिहो यथा' ।। १५ ।।

(अब क्रमागत अष्टम सूत्रोक्त 'वचनभेदरूप' उपमा-दोषका विवेचन करते हैं—) उस(लिङ्गभेद)से 'वचनभेद'की व्याख्या हो गयी ।

उस लिङ्गभेदसे 'वचनभेद' रूप उपमा-दोषकी व्याख्या हो गयी, अर्थात् जैसे उपमान और उपमेयमें लिङ्गभेद (लिङ्ग-व्यत्यास) होनेपर 'लिङ्गभेद' नामक उपमा-दोष होता है, वैसे ही उपमान और उपमेयमें भी 'वचनभेद' (वचन-व्यत्यास) होनेपर 'वचनभेद' नामक उपमा-दोष होता है । यथा—

मैं उसीके नेत्रका पान (चुम्बन) उस प्रकार करूँगा, जिस प्रकार भौंरे फूलका पान करते हैं । (प्रकृत उदाहरणमें उपमान 'मधुलिह्' शब्दसे बहुवचन तथा उपमेय (गुप्त कर्ता अहं) में एकवचन रूप व्यत्यास (भेद) होनेसे 'वचनभेद' नामक उपमा-दोष है, 'पास्यामि' के स्थानपर 'पास्यमः'—इस प्रकार बहुवचनका प्रयोग रहनेपर वह दोष नहीं होता) ।। १५ ।।

वचनभेदं विवेचयितुमाह--तेनेति । पास्यामीति । 'पास्याम' इति वक्तव्ये 'पास्यामी'ति प्रयुक्तत्वाद् वचनभेदः ।। १५ ।।

अप्रतीतगुणसादृश्यमसादृश्यम् ।। १६ ।।

अप्रतीतैरेव गुणैर्यत् सादृश्यं, तदप्रतीतगुणसादृश्यमसादृश्यम् । यथा—

'ग्रथ्नामि काव्यशशिनं विततार्थरश्मिम्' ।

काव्यस्य शशिना सह यत् सादृश्यं, तदप्रतीतैरेव गुणैरिति । ननु चार्थानां रश्मितुल्यत्वे सति काव्यस्य शशितुल्यत्वं भविष्यति ? मैवम्; काव्यस्य शशितुल्यत्वे सिद्धेऽर्थानां रश्मितुल्यत्वं सिद्ध्यति । न ह्यर्थानां[2] रश्मीनां च कश्चित् सादृश्यहेतुः प्रतीतो गुणोऽस्ति । तदेत्रमितरेतराश्रयदोषो दुरुत्तर इति ।। १६ ।।

(अब क्रमप्राप्त 'असादृश्य' नामक उपमा-दोषका लक्षण कहते हैं—) अप्रतीत गुणोंसे समानता करना 'असादृश्य' नामक उपमा-दोष है ।

---

१. 'भुजेति' । उदाहरणानि' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'नाप्यर्थानां' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रतीत नहीं होनेवाले गुणोंसे जो सादृश्य (समानता) करना है, वह 'अप्रतीत गुणसादृश्य है, यह 'असादृश्य' नामक उपमा-दोष है यथा—

विस्तृत अर्थरश्मियों (अर्थरूप किरणों) से काव्य-चन्द्रमाको गूँथ (रच) रहा हूँ ।

काव्यका चन्द्रमाके साथ जो सादृश्य है, वह अप्रतीत गुणोंसे ही प्रदर्शित किया गया है, अत एव यहाँ 'असादृश्य' नामक उपमादोष है । अर्थोंका किरणोंके साथ सादृश्य होनेपर काव्यका सादृश्य चन्द्रमाके साथ हो सकता है (फलतः इस उदाहरणमें उक्त दोष नहीं है); ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि काव्यका चन्द्रमाके साथ सादृश्य सिद्ध होनेपर अर्थोंका किरणोंके साथ सादृश्य सिद्ध होता है तथा अर्थोंका किरणोंके साथ सादृश्य सिद्ध होनेपर काव्यका चन्द्रमाके साथ सादृश्य सिद्ध होता है, इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष आ जाता है । अर्थों तथा किरणोंका सादृश्यहेतुक कोई प्रतीत गुण नहीं होनेके कारण अन्योन्याश्रय दोष नहीं होता, यह भी कहना ठीक नहीं है; क्योंकि काव्यसादृश्यसे निरपेक्ष ही अर्थों तथा किरणोंका सादृश्य भी सम्भव है, अत एव अन्योन्याश्रय दोषका निवारण कठिन है ॥ १६ ॥

असादृश्यं प्रकाशयितुमाह--अप्रतीतैरिति । अप्रतीतैः सहृदयसंवादिप्रतिपत्त्यविषयैरित्यर्थः । ग्रथ्नामीति । काव्यशशिनोः सादृश्यमप्रतीतगुणमित्यसादृश्यम् । नन्वर्थानां रश्मिसादृश्यप्रतीत्या काव्यशशिनोरपि सादृश्यवत्त्वं सम्भवतीति शङ्कते—नन्विति । परस्पराश्रयपराहतमिदं चोद्यमिति परिहरति--नैवमिति । अर्थानां रश्मिसादृश्ये सिद्धे शशिसादृश्यं काव्यस्य सिद्ध्यति, सिद्धे च काव्यस्य शशिसादृश्येऽर्थानां रश्मिसादृश्यमिति परस्पराश्रय इत्यर्थः । ननु काव्यसादृश्यनिरपेक्षमेवाऽर्थरश्मिसादृश्यं सम्भवति, कुतः परस्पराश्रयप्रसङ्गः ? इत्यत आह—न ह्यर्थानामिति । दुरुत्तरो दुष्परिहारः ॥१६॥

असादृश्यहता ह्युपमा, तन्निष्ठाश्च कवयः ॥ १७ ॥

असादृश्येन हता असादृश्यहता उपमा । तन्निष्ठा उपमाननिष्ठाश्च कवय इति ॥ १७ ॥

(फलतः उपमामें एकमात्र सादृश्यके ही सार होनेसे कवियोंको उपमामें असादृश्यका त्याग अवश्य करना चाहिए । इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन इस सूत्रमें करते हैं—) असादृश्यसे उपमा नष्ट हो जाती है तथा तन्निष्ठ कवि भी नष्ट (अप्रतिष्ठित–अमान्य) हो जाते हैं ।

असादृश्यसे उपमा नष्ट हो जाती है और उपमानिष्ठ (सादृश्यसे रहित उपमाका प्रयोग करनेवाले) कवि भी नष्ट अर्थात् काव्यमर्मज्ञ सहृदय लोगोंमें आदरके अयोग्य हो जाते हैं (अतः कवियोंको उपमामें असादृश्यका त्याग अवश्य करना चाहिए) ॥ १७ ॥

सादृश्यैकसाराग्रामुपमायां परां काष्ठामातिष्ठमानैः कविभिरसादृश्यमवश्यमपोहनीयमिति शिक्षयितुं सूत्रमुपक्षिपति--असादृश्येति । उपमानिष्ठा उपमापरायणा इत्यर्थः ॥ १७ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उपमानाधिक्यात् तदपोह इत्येके ॥ १८ ॥

उपमानाधिक्यात् तस्यासादृश्यस्याऽपोह इत्येके मन्यन्ते । यथा—

'कर्पूरहारहरहाससितं यशस्ते' ।

अत्र कर्पूरादिभिरुपमानैर्बहुभिः सादृश्यं सुस्थापितं[1] भवति, तेषां शुक्लगुणातिरेकात् ॥ १८ ॥

(परपक्षका खण्डन करनेके लिए पहले पूर्वपक्षका मत कहते हैं—) 'उपमानके अधिक होनेसे वह (असादृश्य दोष) नहीं रहता' ऐसा कुछ लोगोंका मत है ।

उपमानोंके अधिक होनेपर उस असादृश्य दोषका निराकरण हो जाता है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं । यथा—

कर्पूर, मोतियोंके हार और शिवजीके अट्टहासके समान उज्ज्वल तुम्हारा यश है ।

यहाँ कर्पूर आदि अनेक उपमाओंके साथ यशकी अधिक उज्ज्वलता-रूप सादृश्य उन(कर्पूर आदि)के उज्ज्वल गुणकी अधिकता होनेसे पूर्णतः स्थापित हो जाता है ॥ १८ ॥

परपक्षं प्रतिक्षेप्तुं पूर्वपक्षसूत्रमुपक्षिपति—उपमानेति । तदपोहः—तस्यासादृश्यस्यापोहः परिहारः । उदाहरति—कर्पूरेति । श्वेतिमातिशयविशिष्टतया वर्णनीये यशसि सितिमगुणाप्रतीतौ वैसादृश्यशङ्कायां सितमगुणातिशयविशिष्टैर्बहुभिरुपमानैः सादृश्यदृढीकरणे उपमेये शौक्ल्यगुणातिरेकावगमाद् वैसादृश्यमपोह्यत इत्यभिसन्धाय व्याचष्टे—अत्रेति । अत्र हेतुमाह—तेषामिति ॥ १८ ॥

नापुष्टार्थत्वात् ॥ १९ ॥

उपमानाधिक्यात् तदपोह इति यदुक्तं, तन्न; अपुष्टार्थत्वात् । एकस्मिन्नुपमाने प्रयुक्ते उपमानान्तरप्रयोगो न कश्चिदर्थविशेषं पुष्णाति, तेन 'बलसिन्धुः सिन्धुरिव क्षुभितः' इति प्रयुक्तम्[2] । ननु सिन्धुशब्दस्य द्विःप्रयोगात्पौनरुक्त्यम्, न; अर्थविशेषात् । बलं सिन्धुरिव वैपुल्याद् बलसिन्धुः सिन्धुरिव क्षुभित इति क्षोभसारूप्यात्[3] । तस्मादर्थभेदान्न पौनरुक्त्यम् । अर्थपुष्टिस्तु नास्ति । सिन्धुरिव क्षुभित इत्यनेनैव वैपुल्यं प्रतिपत्स्यते । उक्तं हि—'धर्मयोरेकनिर्देशेऽन्यस्य संवित्साहचर्यात्' (४।२।१०) ॥ १९ ॥

(उपमानोंकी अधिकता होनेपर भी अर्थमें कोई पुष्टि नहीं होनेसे उक्त कथन ठीक नहीं है, इसका प्रतिपादन करते हैं—) अधिक उपमानोंके होनेपर भी अर्थकी पुष्टि नहीं होनेसे वह कहना ठीक नहीं है ।

---

१. बहुभिः 'यशसः सादृश्यं संस्थापितं' इति 'क' पु०, 'बहुभिः यशसः सादृश्यं सुस्था…' इति 'ख-ग' पु० पा० ।

२. 'प्रत्युक्तम्' इति क्वचित्पाठः । ३. 'क्षोभसारूप्यम्' इति 'क-ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उपमानोंके अधिक (संख्याबाहुल्य) होनेपर उस(असादृश्यके कारण होनेवाले उपमा-दोष)का निराकरण हो जाता है, यह जो (४।२।१८ में) कहा है, वह ठीक नहीं है; (क्योंकि संख्यामें उपमानोंके अधिक होनेपर भी) अर्थकी पुष्टि नहीं होती। एक उपमानका प्रयोग होनेके बाद दूसरे उपमानका प्रयोग भी किसी अर्थ-विशेषको पुष्ट नहीं करता है। इसीसे 'बलसिन्धुः सिन्धुरिव क्षुभितः' अर्थात् 'सेना-समुद्र समुद्रके समान क्षुब्ध हुआ' यह प्रयोग किया गया है। प्रकृत प्रयोगमें 'सिन्धु' शब्दका प्रयोग दो बार होनेसे 'पुनरुक्ति' दोष है, अतः दोषपूर्ण इसे उदाहरणरूपमें दिखलाना उचित नहीं है; ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अर्थ-विशेषमें 'बलं सिन्धुरिव' (बल अर्थात् सेना सिन्धुके समान है) ऐसा विग्रह करनेसे बल (सेना) की विपुलता (अधिकता) का बोध है और 'सिन्धुरिव क्षुभितः' (सिन्धु (समुद्र) के समान क्षुब्ध हुआ) क्षोभात्मक कार्यका बोध है, फलतः दोनों 'सिन्धु' शब्दोंके अर्थमें भिन्नता होनेसे यह प्रयोग 'पुनरुक्ति' दोषयुक्त नहीं है। 'सिन्धु' शब्दके दो बार प्रयोगसे अर्थकी पुष्टि भी नहीं होती है। 'सिन्धुरिव क्षुभितः' यहाँ गम्यमान सिन्धुक्षोभ स्वसहचरित विपुलताका भी बोध करा देगा। कहा भी है—साथ रहनेवाले दो धर्मोंमें-से किसी एक धर्मका निर्देश होनेपर दूसरे अर्थात् अनिर्दिष्ट धर्मका बोध साहचर्यद्वारा हो जाता है। (यथा—'इह राजति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव' (यहाँ राजचन्द्र क्षीरसागरमें चन्द्रके समान शोभित होता है) यहाँ दो 'इन्दु' शब्दोंके श्रेष्ठ चन्द्रवाचक होनेके कारण अर्थभेद होनेसे अपुष्टार्थत्व नहीं है; यह जानना चाहिए) ॥ १९ ॥

बाहुल्येऽप्युपमानानामर्थप्रकर्षाधायकत्वाभावान्नायं पक्षो युज्यत इति दूषयितुं सूत्रमनुभाषते--नापुष्टार्थत्वादिति। परपक्षमनूद्य प्रतिक्षिपति--उपमानेति। अत्र हेतुमुपन्यस्यति--अपुष्टार्थत्वादिति। हेतुं विवृणोति--एकस्मिन्निति। एकेनैवोपमानेन सितिमगुणावगमे सिद्धे पुनः सहस्रमप्युपमानानि यशसि सितिम्नः परं प्रकर्षमाधातुं न पारयन्तीत्यर्थः। ननु कर्पूरादयः शब्दाः यशसि सितिमानं प्रतिपादयन्तः सहृदयचर्वणीयत्वं परिष्कारत्वं व्यापकत्वं च गुणान्तरमवगमयन्ति, अतोऽस्त्येवार्थपरिपोष इति चेन्मैवम्। कर्पूरादयः शब्दाः सितपदसमभिव्याहारेण सितिमनि शृङ्खलितशक्तयो न किमपि गुणान्तरमुदीरयितुमुत्सहन्ते। यदि कनकफलकचतुरस्रत्वं तद्गौरत्वमिव कर्पूरादिपदैः सितिमगुणोऽवगम्यमानः स्वसहचरितमपि चर्वणीयत्वं परिष्कारत्वं व्यापनशीलत्वं च गुणान्तरमवगमयेत, तदा भवत्वपुष्टार्थत्वम्। उक्तं दूषणमन्यत्राप्यतिदिशति—तेनेति। नन्वसत्यर्थभेदे सिन्धुशब्दस्य द्विरुक्तौ पौनरुक्त्यमिति वक्तव्यमिति शङ्कामनुभाषते नन्विति। दूषयति--नेति। हेतुमाह--अर्थेति, अर्थभेदादित्यर्थः। अर्थभेदमेव समर्थयते--बलं सिन्धुरिवेति। बलसिन्धुरित्यत्र वैपुल्यं प्रतिप्राद्यम्। अन्यत्र तु क्षोभसारूप्यमिति भेदः। निगमयति--तस्मादिति। अपुष्टार्थत्वं स्पष्टयति--अर्थपुष्टिस्त्विति। सिन्धुक्षोभोऽत्र गम्यमानः स्वसहचरितं वैपुल्यमप्यवगमयतीति। अत्र सूक्तं संवादयति—उक्तं हीति। 'इह राजति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।' इत्यत्र द्वयोरिन्दुशब्दयोः श्रेष्ठचन्द्रवाचकत्वेनैकार्थ्याभावान्नाऽपुष्टार्थत्वमित्यवगन्तव्यम् ॥ १९ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अनुपपत्तिरसम्भवः ॥ २० ॥

अनुपपत्तिरनुपपन्नत्वमुपमानस्यासम्भवः। यथा—

चकास्ति वदनस्यान्तः स्मितच्छायाविकासिनः[१]।
उन्निद्रस्यारविन्दस्य मध्ये मुग्धेव चन्द्रिका॥

चन्द्रिकायामुन्निद्रत्वमरविन्दस्येत्यनुपपत्तिः। नन्वर्थविरोधोऽयमस्तु। किमुपमादोषकल्पनया? न, उपमायाम् अतिशयस्येष्टत्वात्[२] ॥ २० ॥

(अब अष्टम सूत्रमें वर्णित 'असम्भव' नामक अन्तिम उपमादोषका लक्षण कहते हैं—) अनुपपत्ति (उपमानका उपपन्न न होना) 'असम्भव' नामक उपमादोष है।

उपमानकी उपपन्नता नही होना 'असम्भव' नामक उपमा-दोष है। यथा—

(नायिकाके) विकसित (खुले हुए) मुखमें मुस्कुराहटकी छाया (शोभा) खिले हुए कमलके मध्यमें मनोहर चाँदनीके समान शोभित होती है।

प्रकृत उदाहरणमें चाँदनीमें कमलका उन्निद्र (खिलना) अनुपपन्न होनेसे 'असम्भव' नामक दोष है। एवं चाँदनी और कमलका विकास परस्पर विरुद्धार्थक होनेसे इसे 'अर्थदोष' कहना चाहिए 'उपमादोष' नहीं; यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँपर उपमाका अतिशय ही अभीष्ट है ॥ २० ॥

असम्भवं व्याख्यातुमाह—अनुपपत्तिरिति। अनुपपन्नत्वमिति। उपपत्तिशून्यत्वमनुपपत्तिरित्यर्थः। उदाहरति—चकास्तीति। विकासिनो वदनस्यान्तर्मध्ये स्मितच्छाया उन्निद्रस्यारविन्दस्य मध्ये मुग्धा मनोज्ञा चन्द्रिकेव चकास्ति। अत्रासम्भवमवगमयति—चन्द्रिकायामिति। असम्भवस्यार्थदोषत्वमपाकर्तुमनुभाषते—नन्विति। उन्निद्रारविन्दतन्मध्यवर्तिचन्द्रिकार्थयोर्विरोधित्वादयमसम्भवोऽर्थदोषोऽस्तु, नोपमादोषत्वं कल्पनीयमित्यर्थः। परिहरति—नेति। विकासिनो मुखस्य स्मितविकासे वर्णनीये तदुपमानभूतयोन्निद्रारविन्दसम्बन्धिन्या चन्द्रिकया सादृश्ये सति कस्यचिदतिशयस्याभिमतत्वादित्यर्थः ॥ २० ॥

कथं तर्हि दोष इत्यत आह—

न विरुद्धोऽतिशयः ॥ २१ ॥

विरुद्धस्यातिशयस्य सङ्ग्रहो न कर्तव्य इति अस्य सूत्रस्य तात्पर्यार्थः। तानेतान् षडुपमादोषान् ज्ञात्वा कविः परित्यजेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तावालङ्कारिके, चतुर्थेऽधिकरणे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ उपमाविचारः ॥

---

१. 'चकास्ति वदने तस्याः स्मितच्छाया विकासिनि।' इति 'क' पु०, '…वदनस्यान्तः स्मितच्छाया विकासिनः।' इति 'ख' पु०, 'वदने तस्याः स्मितच्छाया विकासिनः।' इति च 'ग' पु० पा०।

२. '…स्येष्टार्थत्वात्' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यदि अतिशय ही अभीष्ट है, तो यह गुण है; इसे उपमादोष कैसे कहते हैं ? इसका उत्तर देते हैं—)

विरुद्ध अतिशय अभीष्ट नहीं है ।

विरुद्ध अतिशयका संग्रह (काव्यरचनामें प्रयोग) नहीं करना चाहिए, यह इस सूत्र (४।२।२०) का तात्पर्य है । इस कारण कविको इन छह (हीनत्व, अधिकत्व, लिङ्गभेद, वचनभेद, असादृश्य और असम्भव) उपमादोषोंको समझकर छोड़ देना चाहिए ।। २१ ।।

कथं तर्हीति । इष्टश्चेदयमतिशयस्तर्हि गुण एवायं, न तु दोष इत्यर्थः । परिहरति–नेति । अतिशयो विरुद्ध इति यतोऽतो दोष एवेत्यर्थः । निर्वृत्तमर्थं सूत्रस्य निगमयति—विरुद्धस्येति । प्रदर्शितानामेषामुपमादोषाणां परित्याग एव फलमित्यत आह—तानेतानिति ।। २१ ।।

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनावालङ्कारिकेचतुर्थेऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।। ४।२ ।।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तृतीयोऽध्यायः

सम्प्रत्युपमाप्रपञ्चो विचार्यते । कः पुनरसावित्याह—

प्रतिवस्तुप्रभृतिरुपमाप्रपञ्चः ॥ १ ॥

प्रतिवस्तु प्रभृतिर्यस्य स प्रतिवस्तुप्रभृतिः । उपमायाः प्रपञ्च उपमाप्रपञ्च इति ॥ १ ॥

(सब अलङ्कारोंके प्रकृतिभूत उपमा (अलङ्कार) का प्रतिपादन कर उस उपमाके भेद-वर्णन आरम्भ करते हैं—) इस समय उपमा (अलङ्कार) का प्रपञ्च (भेद) विचारा जाता है । वह (उपमा-प्रपञ्च) क्या है ? यह कहते हैं—)

प्रतिवस्तु प्रभृति उपमा-प्रपञ्च है ।

प्रतिवस्तु (प्रतिवस्तूपमालङ्कार) प्रभृति (आदिमें) है जिसके; वह प्रतिवस्तु-प्रभृति है । उपमाका प्रपञ्च अर्थात् भेद-विवरण उपमा-प्रपञ्च है । (इस प्रकरणमें वर्णनीय प्रतिवस्तूपमा प्रभृति अलङ्कारोंको क्रमसे कहते हैं—प्रतिवस्तूपमा, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, अपह्नुति, रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, विरोध, विभावना, अनन्वय, उपमेयोपमा, परिवृत्ति, क्रम, दीपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजोक्ति, तुल्ययोगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टिके दो भेद—उपमारूपक और उत्प्रेक्षावयव; ये अलङ्कार हैं; इनमें 'समाहित' तक शुद्धालङ्कार और संसृष्टिके दो भेद मिश्रालङ्कार हैं) ॥ १ ॥

सुधारसाभे सुषमाप्रवाहे मुक्तायमानैर्मणिभिर्विचित्रैः ।
ज्योत्स्नेव ताराभिरलङ्कृता मे सा शारदा चेतसि सन्निधत्ताम् ॥ १ ॥

मूलं वस्तु निगुम्फनोदितकनद्वाक्यानि शाखा परं
दीव्यद्वाचकसंहतिर्दलगणो राजद्गुणाः पल्लवाः ।
अर्थाः पुष्पकदम्बकं सुरुचिरा भूषाः फलं रीतयो
जीवो यस्य विभाति सोऽयमतुलो वाग्दिव्यशाखी चिरम् ॥ २ ॥

सर्वालङ्कारप्रकृतिभूतामुपमामुपपाद्य तत्प्रपञ्चं प्रपञ्चयितुमारभते—सम्प्रतीति । अनुयोगपूर्वकमनन्तरसूत्रमवतारयति—कः पुनरिति । व्याचष्टे—प्रतिवस्त्विति । प्रभृति-शब्द आद्यर्थः । प्रतिवस्तुप्रमुखाणाम् अलङ्काराणामुपमागर्भत्वादुपमाप्रपञ्च इति व्यपदेशः कृतः ।

प्रतिवस्तुप्रभृतय उद्दिश्यन्ते यथाक्रमम् ।
प्रतिवस्तु समासोक्तिरथाप्रस्तुतशंसनम् ॥
अपह्नुतौ रूपकं च श्लेषो वक्रोक्त्यलङ्कृतिः ।
उत्प्रेक्षातिशयोक्तिश्च सन्देहः सविरोधकः ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विभावनाऽनन्वयः स्यादुपमेयोपमा ततः।
परिवृत्तिः क्रमः पश्चाद्दीपकं च निदर्शना॥
अर्थान्तरस्य न्यसनं व्यतिरेकस्ततः परम्।
विशेषोक्तिरथ व्याजस्तुतिर्व्याजोक्त्यलङ्कृतिः॥
स्यात्तुल्ययोगिताक्षेपः सहोक्तिश्च समासतः।
अथ संसृष्टिभेदौ द्वावुपमा रूपकं तथा॥
उत्प्रेक्षाऽवयवश्चेति विज्ञेयोऽलङ्कृतिक्रमः॥ १॥

वाक्यार्थोपमायाः प्रतिवस्तुनो भेदं दर्शयितुमाह—

उपमेयस्योक्तौ समानवस्तुन्यासः प्रतिवस्तु ॥ २ ॥

समानं वस्तु वाक्यार्थः, तस्य न्यासः समानवस्तुन्यासः। उपमेयस्यार्थाद्वाक्यार्थस्योक्तौ सत्यामिति। अत्र द्वौ वाक्यार्थौ, एको वाक्यार्थोपमायामिति भेदः[1]। तद्यथा—

'देवीभावं गमिता परिवारपदं कथं भजत्येषा।
न खलु परिभोगयोग्यं दैवतरूपाङ्कितं रत्नम्॥' २॥

(वाक्यार्थोपमाके निरूपणसे ही वाक्यार्थ-रूप प्रतिवस्तूपमालङ्कारका निरूपण हो गया, पुनः दूसरा लक्षण क्यों कहते हैं? इसके निराकरणके लिए कहते हैं—) प्रतिवस्तूपमालङ्कारसे वाक्यार्थोपमालङ्कारका भेद दिखलानेके लिए कहते हैं—

उपमेयके उक्त रहनेपर समान वस्तुका वर्णन प्रतिवस्तु (प्रतिवस्तूपमालङ्कार) है।

समान वस्तु वाक्यार्थ है, उसका न्यास (वर्णन करना) 'समानवस्तु-न्यास' है। उपमेय अर्थात् वाक्यार्थके (पदार्थके नहीं) उक्त रहनेपर वाक्यार्थस्वरूप समानवस्तुका वर्णन करना अपेक्षित है। इस प्रतिवस्तूपमालङ्कारमें उपमान-रूप और उपमेय-रूप दो वाक्यार्थ हैं तथा वाक्यार्थोपमालङ्कारमें केवल एक ही वाक्यार्थ है, अतः प्रतिवस्तूपमा तथा वाक्यार्थोपमामें भेद है। प्रतिवस्तूपमाका उदाहरण, यथा—

देवीभावको प्राप्त हुई अर्थात् पटरानी बनी हुई साधारण-सा रानी-रूप परिवारको किस प्रकार प्राप्त कर सकती है? अर्थात् इस पटरानीकी साधारण रानियोंमें गणना नहीं हो सकती, क्योंकि देवरूपमें अङ्कित रत्न साधारण लोगोंके भोगके योग्य नहीं होता है (प्रकृत उदाहरणमें वस्तु और प्रतिवस्तु अर्थात् उपमान और उपमेयका पूर्वोत्तर वाक्योंमें प्रतिपादन करनेसे 'प्रतिवस्तूपमालङ्कार' है)॥ २॥

ननु प्रतिवस्तुनो वाक्यार्थरूपत्वेन वाक्यार्थोपमानिरूपणेनैव गतार्थत्वमिति न लक्षणान्तरापेक्षेति शङ्कां शकलयन् लक्षणभेदं दर्शयितुमाह—वाक्यार्थेति। सूत्रार्थं विवृणोति—समानं वस्त्विति। किमिदं समानं वस्तु? पदार्थरूपमुत वाक्यार्थरूपमिति

---

१. 'एको वाक्यार्थः प्रतिवस्तूपमाया इति भेदः' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विशयो माभूदित्याह—वाक्यार्थ इति। समानवस्तुन उपमानस्य वाक्यार्थत्वाभ्युपगमबलादुपमेयस्याऽपि वाक्यार्थत्वसिद्धिरित्याह—उपमेयस्येति। उपमेयस्य वाक्येन प्रतिपादने उपमानस्यापि वाक्यान्तरेण प्रतिपादनं प्रतिवस्त्विवति लक्षणार्थः। अत एव वाक्यार्थोपमायाः प्रतिवस्तुनो भेद इत्याह—अत्रेति। देवीभावमिति। अत्र पूर्वोत्तरवाक्याभ्यां वस्तुप्रतिवस्तुनोः प्रतिपादनात् प्रतिवस्त्वलङ्कारः॥ २॥

प्रतिवस्तुनः समासोक्तेर्भेदं दर्शयितुमाह—

अनुक्तौ समासोक्तिः॥ ३॥

उपमेयस्यानुक्तौ समानवस्तुन्यासः समासोक्तिः। सङ्क्षेपवचनात् समासोक्तिरित्याख्या। यथा—

'श्लाघ्या ध्वस्ताऽध्वगग्लानेः करीरस्य मरौ स्थितिः।
धिङ् मेरौ कल्पवृक्षाणामव्युत्पन्नार्थिनां[1] श्रियः'॥ ३॥

प्रतिवस्तूपमाका समासोक्तिसे भेद दिखलानेके लिए कहते हैं—

उपमेयका वर्णन नहीं रहनेपर (समास वस्तुका वर्णन करना) समासोक्ति अलङ्कार होता है।

उपमेयका वर्णन नहीं रहनेपर उपमान-रूप वस्तुका वर्णन करना 'समासोक्ति' अलङ्कार है। संक्षेपमें कहनेसे यह 'समासोक्ति' नाम सार्थक है। यथा—

पथिकोंकी थकावट दूर करनेवाले करीर (बबूरके पेड़ या पर्णविहीन क्षुप-विशेष) का मरुस्थलमें रहना प्रशंसनीय है, परन्तु याचकोंकी इच्छाको नहीं जाननेवाले सुमेरु-पर्वत-स्थित कल्पवृक्षोंको धिक्कार है (इस उदाहरणमें करीरकी प्रशंसा और कल्पवृक्षोंकी निन्दाद्वारा उन दोनोंका उपमेय परोपकारपरायणता और परोपकार-शून्यता-रूप प्रशंसा और निन्दाको संक्षिप्त कर वर्णन करनेसे 'समासोक्ति' अलङ्कार है)॥ ३॥

समासोक्तिं वक्तुमाह—प्रतिवस्तुन इति। लक्षणवाक्यार्थं विवृणोति—उपमेयस्येति। समानवस्तुन उपमानस्य, न्यासो वाक्येनोपपादनमित्यर्थः। समासोक्तिरिति संज्ञाऽन्वर्थेत्याह—सङ्क्षेपेति। उदाहरति—श्लाघ्येति। करीरो वंशो बर्बूरो वा। 'करीरोऽस्त्री दन्तिदन्तमूले चक्रकरे घटे। सल्लवयामपि बर्बूरे काचे वंशे तदङ्कुरे॥' इत्यमरशेषः। अव्युत्पन्नार्थिनाम्। अर्थिपदार्थव्युत्पत्तिरहितानाम्। अत्र करीरस्य मरुस्थितिश्लाघनेन कल्पवृक्षाणां मेरुस्थितिनिन्दनेन च तदुपमेययोः परोपकारप्रवणतद्विमुखयोः श्लाघानिन्दे समस्योक्ते इति समासोक्तिः॥ ३॥

समासोक्तेरप्रस्तुतप्रशंसाया भेदं दर्शयितुमाह—

किञ्चिदुक्तावप्रस्तुतप्रशंसा॥ ४॥

---

१. '''मनुत्पन्नार्थिनां' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उपमेयस्य किञ्चिल्लिङ्गमात्रेणोक्तौ समानवस्तुन्यासे[१] अप्रस्तुतप्रशंसा। यथा—

'लावण्यसिन्धुरपरैव हि काचनेयं[२] यत्रोत्पलानि शशिना सह सम्प्लवन्ते।
उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र यत्रापरे कदलिकाण्डमृणालदण्डाः' ॥
[३]अप्रस्तुतस्यार्थस्य प्रशंसनमप्रस्तुतप्रशंसा ॥ ४ ॥

समासोक्तिसे अप्रस्तुतप्रशंसाके भेदको दिखलानेके लिए कहते हैं—(उपमेयके) थोड़ा अर्थात् एक भागका वर्णन करनेपर 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कार होता है।

उपमेयके किञ्चित् अर्थात् एकदेशका वर्णन कर समानवस्तु (उपमान) का वर्णन करना 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कार होता है। यथा—

यह कोई (अदृष्टपूर्व) दूसरी ही सौन्दर्य नदी है, जहाँ (मुख-रूप चन्द्रमाके साथ (नेत्र-रूप) कमल तैर रहें हैं, जहाँ (नितम्ब-रूप) हाथीका गण्डस्थल उठा (उभरा) हुआ है और जहाँ दूसरे (जघन-रूप) कदलिस्तम्भ एवं (भुजा-रूप) कमलनाल हैं (नदीके तीरपर स्थित किसी सुन्दरीको देखकर नायकका यह कथन है)।

(इस उदाहरणमें सुन्दरीके मुख, नेत्र, नितम्ब, जंघा और भुजा-रूप) उपमेयों का नामोल्लेखके बिना प्रशंसा करनेसे 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलङ्कार है। यहाँपर एकदेश लावण्य पदार्थसे उपमेय मुख, नेत्रादिका वर्णन कर अप्रस्तुत कमलादिकी प्रशंसा होनेसे 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार है) ॥ ४ ॥

अप्रस्तुतप्रशंसां प्रस्तोतुमाह—किञ्चिदिति। लिङ्गमात्रेणोक्तावेकदेशेनोपादाने। लावण्येति। अत्र लावण्यपदार्थेनैकदेशेनोपमेयानां नयनादीनामुक्तावुत्पलादीनामप्रस्तुतानां प्रशंसनादप्रस्तुतप्रशंसानामालङ्कारः ॥ ४ ॥

अपह्नुतिरपि ततो भिन्नेति दर्शयितुमाह—

समेन वस्तुनाऽन्यापलापोऽपह्नुतिः ॥ ५ ॥

समेन तुल्येन वस्तुना वाक्यार्थेनाऽन्यस्य वाक्यार्थस्यापलापो निह्नवो यस्तत्त्वाध्यारोपणायासा[४]वपह्नुतिः। यथा—

न केतकीनां विलसन्ति सूचयः प्रवासिनो हन्त हसत्ययं विधिः।
तडिल्लतेयं न चकास्ति चञ्चला पुरः स्मरज्योतिरिदं विवर्तते[५] ॥

१. 'समानवस्तुन्यासः' इति 'ग' पु० पा०।

२. 'केयमत्र' इति पाठभेदः, इति 'ख' पु० टि०।

३. एतत्पूर्वं 'यत्रोत्पलानि शशिना सह' इति, 'द्विरदकुम्भतटी च यत्र' इति 'यत्रापरे च' इति चाप्रस्तुतस्य' इत्यधिकः पा० इति 'ख-ग' टि०।

४. 'यस्तस्य अध्यारोपेण असौ' इति 'क-ख' पु० पा०।

५. 'प्रवर्तते' इति 'क-ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वाक्यार्थयोस्तात्पर्यात् ताद्रूप्यमिति न रूपकम् ॥ ५ ॥

अप्रस्तुतप्रशंसासे 'अपह्नुति' अलङ्कारकी भिन्नता दिखलानेके लिए कहते हैं—

समान वस्तु अर्थात् उपमानसे अन्य अर्थात् उपमेयका अपलाप करना 'अपह्नुति' अलङ्कार है।

समान वस्तु अर्थात् वाक्यार्थ-रूप (उपमान) से अन्य अर्थात् वाक्यार्थ-रूप (उपमेय) का तत्त्वके आरोपणार्थ अपलाप अर्थात् निषेध करना 'अपह्नुति' अलङ्कार है। यथा—

यह केतकी (पुष्प) की सूइयाँ (नोक) विलसित नहीं हो रही हैं, किन्तु परदेश-स्थित युवजनोंके भाग्य हँस रहे हैं, यह चञ्चल बिजली नहीं चमकती है, किन्तु सम्मुख कामज्योति स्फुरित हो रही है (इस उदाहरणमें केतकीकी सूचियोंका विलास और विद्युल्लताका चमकना 'उपमेय' हैं, पर 'विधिहास और 'स्मर(काम)-ज्योति' के आरोपद्वारा उन (केतकी-सूचियों तथा विद्युल्लताके विलास-रूप) उपमेयका निषेध करनेसे 'अपह्नुति' अलङ्कार है)।

वाक्य एवं अर्थके तात्पर्यसे ताद्रूप्य होता है, अतएव यहाँ 'रूपक' अलङ्कार नहीं है (अपह्नुतिमें वाक्य और अर्थका आर्थिक ताद्रूप्य होता है और रूपकमें तो पद और अर्थका शाब्दिक ताद्रूप्य होता है, यह भेद है) ॥ ५ ॥

अपह्नुतिमवगमयितुमाह—अपह्नुतिरिति। ततः प्रतिवस्तुनामाऽलङ्काराद्भिन्नेत्यर्थः। समेनेति। वाक्यार्थभूतेनोपमानेनान्यस्य वाक्यार्थभूतस्योपमेयस्यापलापः। अतस्मिंस्तत्त्वाध्यारोपेणापह्नुतिरिति लक्षणार्थः। न केतकीनामिति। सूचयः कुड्मलाः। 'केतकीमुकुले सूचिः सेविन्यां पिशुने तु ना'। इति हलायुधः। केतकीसूचिविलासतडिल्लताविलासयोरुपमेययोरुपमानभूतविधिहासस्मरज्योतिर्विवर्तनाध्यारोपेण तयोरपलापादपह्नुतिः। आरोपरूपत्वाविशेषात् कथमपह्नुते रूपकाद् भेदः? इत्याशङ्क्य भेदं दर्शयति—वाक्यार्थयोरिति। अपह्नुतौ वाक्याऽर्थयोरार्थिकं ताद्रूप्यम्, रूपके तु पदार्थयोः शाब्दं ताद्रूप्यमिति भेदः ॥ ५ ॥

रूपकं तु कीदृशमित्याह—

उपमानेनोपमेयस्य गुणसाम्यात् तत्त्वारोपो रूपकम् ॥ ६ ॥

उपमानेनोपमेयस्य गुणसाम्यात्तत्त्वस्याभेदस्यारोपणमारोपो रूपकम्। उपमानोपमेययोरुभयोरपि ग्रहणं लौकिक्याः कल्पितायाश्चोपमायाः प्रकृतित्वमत्र यथा विज्ञायेतेति। यथा—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो? यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

मुखचन्द्रादीनां तूपमा । समासान्न चन्द्रादीनां[1] रूपकत्वं युक्तमिति ॥ ६ ॥

तब 'रूपक' कैसा होता है ? यह कहते हैं—

उपमानसे उपमेयकी समानता होनेसे उपमेयमें उपमानका अभेदारोपण करना 'रूपक' अलङ्कार होता है ।

उपमानसे उपमेयका गुणसाम्य (गुणकी समानता) होनेसे उपमेयमें उपमानके अभेदका आरोप करना 'रूपक' अलङ्कार होता है ।

यहाँ उपमान और उपमेय—इन दोनोंका ग्रहण इसलिए किया है कि लौकिक और कल्पित—दोनों उपमाओंका प्रकृतित्व मालूम पड़े । यथा—

(श्रीरामचन्द्रकी यह उक्ति सीताको लक्ष्य कर है—) यह (सीता) घरमें लक्ष्मी है, यह आँखोंमें अमृतकी बत्ती (अञ्जन लगानेकी सलाई) है, इसका यह स्पर्श शरीरपर गाढा चन्दनका लेप है, यह (इसकी) भुजा कण्ठमें शीतल तथा चिकना मोतीका हार है; इसका क्या प्रिय नहीं है ? यदि अत्यन्त असह्य अप्रिय है तो इसका विरह है (इस उदाहरणमें 'इयं' (यह) इस सर्वनामसे सीताका निर्देश कर उसमें लक्ष्मीत्व, अमृतवर्तित्व, इसके स्पर्शमें चन्दनरसत्व और बाहुमें मौक्तिकसरत्वका अध्यारोप किया गया है; अतः यह 'रूपक' अलङ्कार है) ।

'मुखचन्द्रः' इत्यादिमें 'मुख चन्द्रके समान है' इस प्रकार 'पुरुषव्याघ्रः' इत्यादिके समान समासद्वारा सादृश्य होनेसे 'उपमा' अलङ्कार ही है; रूपक अलङ्कार नहीं है । (इस सम्बन्धमें यह निष्कर्ष है कि जिनका 'व्याघ्रादि'गणमें पाठ है, वहाँ उपमा ही है, जिन 'इन्दु' आदिका पाठ व्याघ्रादि-गणमें नहीं हैं; वहाँ 'आकृति-गण' मानना चाहिए । ऐसा निष्कर्ष होनेपर भी मतान्तरके अनुरोधसे 'मुखचन्द्र' आदिमें कहींपर उपमा और कहींपर रूपक, दोनों हो सकते हैं । फलतः जहाँ 'ज्योत्स्नेव भाति द्युतिराननेन्दोः' (मुखेन्दुकी कान्ति चाँदनी-सी शोभित होती है) इत्यादिमें उपमाका साधक प्रमाण हो, वहाँ ('उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (पा० २।१।५६) सूत्रसे समास समझना चाहिए तथा जहाँ 'मोहमहाचलदलने भक्तिः कुलिशाग्रकोटिरेव नृणाम्' (मोहरूपी विशाल पर्वतको दलित करनेमें मनुष्योंकी भक्ति वज्रके अग्रभागका किनारा (नोंक) ही है) इत्यादिमें रूपकका साधक प्रमाण है । 'अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः' इस वचनसे 'मयूरव्यंसकादिभ्यश्च' (पा० २।१।७२) से समास समझना चाहिए) ॥ ६ ॥

रूपकं [2]रूपयितुमाह—रूपकमिति[3] । व्याचष्टे—उपमानेनेति । लौकिककल्पितोपमाप्रकृतिकत्वं रूपकस्य निरूपयितुमुपमानोपमेययोर्ग्रहणं कृतमित्याह—उपमानेति । उदाहरति—इयं गेहे लक्ष्मीरिति । अत्रेयमिति सर्वनाम्ना सीतां निर्दिश्य तत्र लक्ष्मीत्वममृतवर्तित्वमस्याः स्पर्शे चन्दनरसत्वं, बाहौ मौक्तिकसरत्वं चाध्यारोप्यत इति रूपकम् ।

---

१. 'चन्द्रादीनां' इति 'ग' पु० नास्ति ।
२. 'निरूपयितुं' इति 'ख' पु० पा० ।
३. 'रूपकं तु कीदृशमि'ति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इत्थमुपमानोपमेययोर्व्यासेन प्रयोगे रूपकमुदाहृत्य समासेन प्रयोगे तूपमैव, न रूपकमित्याह—मुखेति। मुखचन्द्रादीनां पुरुषव्याघ्रादिसादृश्यादुपमात्वमेव, न रूपकत्वं सम्भवति, तत्त्वाध्यारोपासम्भवादिति। इदमत्रानुसन्धेयम्—येषां व्याघ्रादिषु पाठोऽस्ति तेषामुपमैव, ये त्विन्दुप्रभृतयस्तत्र न पठ्यन्ते, ते च व्याघ्रादेराकृतिगणत्वात् तत्र द्रष्टव्याः। तथापि मतान्तरानुरोधेन मुखचन्द्रादिषु क्वचिदुपमा, क्वचिद्रूपकमिति द्वैरूप्यं सम्भवति। तथा च यत्र 'ज्योत्स्नेव भाति द्युतिराननेन्दोः' इत्यादावुपमायां साधकं प्रमाणमस्ति, तत्र व्याघ्रादिसमासः। यत्र 'मोहमहाचलदलने भक्तिः कुलिशाग्रकोटिरेव नृणाम्' इत्यादौ रूपके साधकं प्रमाणमस्ति, तत्र मयूरव्यंसकादिसमासः। 'अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः' इति वचनात् ॥ ६ ॥

रूपकाच्छ्लेषस्य भेदं दर्शयितुमाह—

स धर्मेषु तन्त्रप्रयोगे श्लेषः ॥ ७ ॥

उपमानेनोपमेयस्य धर्मेषु गुणक्रियाशब्दरूपेषु स तत्त्वारोपः[1]। तन्त्रप्रयोगे तन्त्रेणोच्चारणे सति श्लेषः। यथा—

आकृष्टाऽमलमण्डलाग्ररुचयः सन्नद्धवक्षःस्थलाः
सोष्माणो व्रणिता[2] विपक्षहृदयप्रोन्माथिनः कर्कशाः।
उद्वृत्ता गुरवश्च यस्य शमिनः[3] श्यामायमानानना
योधा वारवधूस्तनाश्च न ददुः[4] क्षोभं स वोऽव्याज्जिनः ॥ ७ ॥

(क्रमप्राप्त 'श्लेष'को कहते हैं—) रूपकसे 'श्लेष'का भेद दिखलानेके लिए कहते हैं—

तन्त्रसे प्रयोग होनेपर (उपमान और उपमेयके) धर्मोंमें तत्त्वारोप करनेपर 'श्लेष' अलङ्कार होता है ('अनेकोपकारि सकृदुच्चारणं तन्त्रम्' अर्थात् अनेकोपकारक एक बार उच्चारण करना 'तन्त्र' कहा जाता है)।

उपमान और उपमेयके गुण, क्रिया तथा शब्द रूप धर्मोंमें वह तत्त्वारोप तन्त्र (एक बार) का प्रयोग होने पर (एक बार उच्चारण करनेपर) 'श्लेष' अलङ्कार होता है। यथा—

(इस पद्यमें योद्धा और वेश्याओंके स्तन, दोनोंका वर्णन है। पहले योद्धाके पक्षमें यथा—) म्यानसे खींची (बाहर निकाली गयी चमकती तलवारमें रुचि रखनेवाले, (कवच) बाँधे (पहने) हुए वक्षःस्थलवाले, स्वाभिमान आदि दर्पवाले, (शस्त्राघातजन्य) घावोंवाले, शत्रुओंके हृदयको मथन (भयभीत) करनेवाले, उद्धत,

---

१. 'तत्त्वाध्यारोपः' इति क्वचित्पाठः इति 'ख' पु० टि०।
२. 'व्रणिना' इति 'ख-ग' पु० पा० सम्यक्, का० धे० अनुकूलश्च।
३. 'शशिनः' इति 'क' पु० 'वशिनः' इति 'ख-ग' पु० पा०।
४. 'दधुः' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

महान् और (चढ़ती हुई जवानीके कारण अङ्कुरित होती हुई दाढ़ी और मूँछसे) श्याम मुखवाले योद्धा, (तथा वेश्याओंके स्तनपक्षमें—स्तनोंके) मण्डल (घेरा) के अग्रभागमें रुचि रखनेवाले, विशाल छातीवाले, उष्मासे युक्त, (नखक्षतके) घावोंसे युक्त, सपत्नियोंके हृदयको उन्मथन (पीडित) करनेवाले, कठोर, ऊँचे, बड़े, स्वभावतः श्यामवर्णके मुख (चूचुक अर्थात् स्तनाग्रभाग) वाले वेश्याओंके स्तन शान्तस्वभाव जिस(जिनेन्द्र भगवान्)को क्षुब्ध, योधाके पक्षमें भयसे और वारवधू-स्तनपक्षमें कामवासनासे विचलित नहीं कर सके; वह 'जिन' तुम लोगोंकी रक्षा करे। (इस उदाहरणमें एक बार प्रयुक्त शब्द उपमान और उपमेय—दोनोंके गुणक्रियामें सम्बद्ध होनेसे 'श्लेष' अलङ्कार है) ॥ ७ ॥

श्लेषं लक्षयितुमाह—स धर्मेष्विति । सूत्रार्थं विवृणोति—उपमानेनेति । धर्माणां धर्मिसापेक्षत्वाद्धर्मिणमनुषज्ज्य दर्शयति—उपमेयस्येति । गुणसाम्यत इति शेषः । धर्मस्वरूपमाह—गुणेति । तच्छब्दपरामर्श्यं दर्शयति—तत्त्वारोप इति । अनेकोपकारकारिसकृदुच्चारणं तन्त्रम् । उपमानोपमेययोर्गुणसाम्ये तद्धर्मेषु गुणादिषु तन्त्रेण प्रयोगे सति यत्ताद्रूप्यारोपणं, स श्लेष इति लक्षणार्थः । आकृष्टेति । आकृष्टे, कोशादुद्धृते मण्डलाग्रे खड्गे रुचिः प्रीतिर्येषाम् । आकृष्टा आहूता, स्वीकृतेति यावत्, मण्डलस्य बिम्बस्य, अग्रे उपरिभागे, रुचिः कान्तिर्यैः । सन्नद्धं कवचितं, परिणद्धं च वक्षःस्थलं येषाम् । ऊष्मणा दर्पेण उष्णगुणेन च, सह वर्तन्त इति सोष्माणः, व्रणाः शस्त्रक्षतानि नखक्षतानि च, येषां सन्तीति व्रणिनः । विपक्षाणां शत्रूणां सपत्नीनां च, हृदयं वक्षश्चेतश्च, प्रकर्षेण उन्मथ्नन्तीति तथोक्ताः । कर्कशाः क्रूराः कठिनाश्च । उद्वृत्ता उद्धता उन्नताश्च, गुरवो महान्तः स्थूलाश्च, श्यामायमानानि अङ्कुरितश्मश्रुतया कचासङ्गेन वा, स्वभावेन च श्यामलायमानानि, आननानि मुखानि चूचुकानि च, येषां ते तथोक्ताः । वशिनो यस्येति सम्बन्धः । अत्र यथासम्भवं गुणक्रिया द्रष्टव्याः । यद्यपि समुच्चयोऽत्र स्फुरति, तथाऽपि साधारणविशेषमहिम्नाऽऽरोपः प्रतिपाद्यत इति श्लेषः ॥ ७ ॥

यथा च गौणस्याऽर्थस्यालङ्कारत्वं, तथा लाक्षणिकस्यापीति दर्शयितुमाह—

सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः ॥ ८ ॥

बहूनि हि निबन्धनानि लक्षणायाम्, तत्र सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिरसाविति । यथा—

'उन्मिमील कमलं सरसीनां कैरवं च निमिमील मुहूर्तात्' ।

अत्र नेत्रधर्मावुन्मीलननिमीलने सादृश्याद्विकाससङ्कोचौ लक्षयतः ।

'इह च निरन्तरनवमुकुलपुलकिता हरति माधवी हृदयम् ।
मदयति च केसराणां परिणतमधुगन्धि निःश्वसितम्' ॥

अत्र च निःश्वसितमिति परिमलनिर्गमं लक्षयति ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'संस्थानेन स्फुरतु सुभगः स्वार्चिषा[1] चुम्बतु[2] द्याम् ।'
'आलस्यमालिङ्गति गात्रमस्याः ।'
'परिम्लानच्छायामनुवदति दृष्टिः कमलिनीम् ।'
'प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलाऽऽमोदमैत्रीकषायः ।'
'ऊरुद्वन्द्वं तरुणकदलीकाण्डसब्रह्मचारि ।'

इत्येवमादिषु लक्षणार्थो निरूप्यत इति लक्षणायां झटित्यर्थप्रतिपत्ति-क्षमत्वं रहस्यमाचक्षत इति ।

असादृश्यनिवन्धना तु लक्षणा न वक्रोक्तिः । यथा—

'जरठकमलकन्दच्छेदगौरैर्मयूखैः' ।

अत्र च्छेदः सामीप्याद् द्रव्यं लक्षयति, तस्यैव गौरत्वोपपत्तेः ॥ ८ ॥

जिस प्रकार गौण अर्थ ('मुखचन्द्र' आदिमें गुणके योगसे प्राप्त मुखमें चन्द्रत्व रूप गौण अर्थ) में रूपक आदि अलङ्कार होते हैं, उसी प्रकार लक्षणसे प्राप्त लाक्षणिक अर्थमें भी 'वक्रोक्ति' अलङ्कार होता है, यह दिखलानेके लिए कहते हैं—

सादृश्य होनेसे लक्षणा भी 'वक्रोक्ति' अलङ्कार है ।

लक्षणामें बहुत-से कारण हैं (यथा—'अभिधेयेन सम्वन्धात् सादृश्यात् समवायतः । वैपरीत्यात् क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता ।' ये पाँच भेद लक्षणाके हैं । अर्थात् 'द्विरेफ' के अभिधेय भ्रमरमें 'अभिधेय' से, 'सिंहो माणवकः, गङ्गायां घोषः, वृहस्पतिरयं मूर्खः, महति समरे शत्रुघ्नस्त्वम्' ये शेष चार लक्षणाके उदाहरण हैं) । इसके अनुसार 'सादृश्य'से जो लक्षणा है, वह 'वक्रोक्ति' अलङ्कार है । यथा—

तालावके कमल थोड़ी देरमें खिल गये और कैरव बन्द हो गये ।

यहाँ खिलना और बन्द होना, ये दो नेत्रधर्म सादृश्यसे लक्षणाद्वारा कमलके विकास और कैरव (कुमुदिनी) के बन्द होनेको लक्षित करते हैं ।

यहाँपर सघन नयी कलियोंसे शोभित माधवी लता हृदयको हर (आकृष्ट कर) रही है तथा परिपद्य केसरोंके मधुतुल्य गन्धवाला निःश्वास मतवाला कर रहा है ।

इस उदाहरणमें 'निःश्वसित' शब्द 'सादृश्य'लक्षणासे सौरभ (खुशबू) के निकलनेको लक्षित करता है ।

(तुम अपनी) देहसे सुन्दर मालूम पड़ो और अपने सौन्दर्यसे आकाशका चुम्बन करो (इस उदाहरणमें 'चुम्बतु' (चुम्बन करो) शब्द 'सादृश्य'मूलक लक्षणा-द्वारा 'आकाशको' स्पर्श करना लक्षित करता है) ।

आलस्य इस (स्त्री) के शरीरका आंलिङ्गन कर रहा है (यहाँ 'आलिङ्गति' (आलिङ्गन कर रहा है) शब्द 'सादृश्य'लक्षणासे स्त्रीके शरीरमें आलस्यके फैलने को लक्षित करता है) ।

---

१. 'स्वर्चिषा' इति 'क, ग' पु० पा० । २. 'चुम्बितुं' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(स्त्रीकी सकुचायी) दृष्टि मुर्झायी हुई कमलिनीकी नकल कर रही है (यहाँ 'अनुवदति' (अनुवाद अर्थात् नकल करना) शब्द 'सादृश्य'मूला लक्षणाद्वारा 'कमलिनी-सादृश्य' लक्षित होता है) ।

प्रभात समयमें खिले हुए कमलकी सुगन्धिके साथ मित्रताके कारण कषाय (हवा बहती है) (यहाँपर 'मैत्री' शब्दसे कमलकी सुगन्धिका वायुमें सम्मिलित होना लक्षित होता है) ।

(इस नायिकाकी) दोनो जङ्घाएँ तरुण (परिपुष्ट) केलेके स्तम्बके सहपाठिनी (साथ पढ़नेवाली) हैं (यहाँपर 'सब्रह्मचारि' (सहपाठिनी) शब्दसे 'सादृश्य'-लक्षणाद्वारा कदलीकाण्डकी समानता लक्षित होती है) ।

इत्यादि उदाहरणोंमें लक्षणाका अर्थ निरूपित किया जाता है, अतः लक्षणा होने-पर शीघ्र ही अर्थज्ञानकी क्षमता हो जाती है, इसे ही (लक्षणाके विद्वान् लोग लक्षणा-का) रहस्य कहते हैं ।

सादृश्याभावनिमित्तक लक्षणा 'वक्रोक्ति' अलङ्कार नहीं होती । यथा—

पुराने (सूखे) कमल-नालके टुकड़ोंके समान गौर वर्ण किरणोंसे ।

इस उदाहरणमें 'छेद' शब्द सामीप्य-सम्बन्ध से पदार्थको लक्षित होता है, क्योंकि गौर वर्ण पदार्थ (द्रव्य) में हो सकता है ॥ ८ ॥

वक्रोक्ति वक्तुं सङ्गतिमुल्लिङ्गयति—यथा चेति । यथा मुखचन्द्रादौ गुणयोगादागतस्य गौणार्थस्य रूपकाद्यलङ्कारता, तथा लक्षणातः प्रतिपन्नस्य लाक्षणिकार्थस्य वक्रोक्त्यलङ्कारता भवतीति लक्षणार्थः । बहूनीति । 'अभिधेयेन सम्बन्धात् सादृश्यात् समवायतः । वैपरीत्यात् क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता ॥' इति लक्षणाया निमित्तानि द्रष्टव्यानि । द्विरेफशब्दस्याभिधेयो भ्रमरशब्द इति तेन स्वाभिधेय सम्बन्धार्थो लक्ष्यते[1] । 'सिंहो माणवकः, गङ्गायां घोषः, बृहस्पतिरयं मूर्खो, महति समरे शत्रुघ्नस्त्वम्' इति यथाक्रममुदाहरणानि द्रष्टव्यानि । उन्मिमीलेति । कमलं विचकास कैरवं सञ्चुकोचेति ऋजुवृत्त्या वक्तव्ये तत्सादृश्यादुन्मिमीलनिमिमीलेति नेत्रक्रियाध्यावसायवक्रिम्णोक्तिरिति वक्रोक्तिः । लक्ष्यलक्षणयोर्मैत्रीमासूत्रयति—अत्र नेत्रेति । अतस्मिंस्तत्त्वाध्यारोपो रूपकम् । विषयनिगरणेन साध्यवसानलक्षणायां वक्रोक्तिरिति विवेकः । उदाहरणान्तराण्युपदर्शयति—इह चेति । वक्रोक्तिं दर्शयति—अत्र चेति । मुकुलपुलकितेत्यत्र पुलकितत्वं माधव्या मुकुलैरावृतत्वं लक्षयतीति[2] द्रष्टव्यम् । चुम्बतु द्यामिति–चुम्बनं द्युसम्बन्धम्[3], गात्रमालिङ्गतीति–आलिङ्गनमालस्य वैशिष्टचं गात्रस्य, अनुवदतीत्यत्रानुवादः कमलिनीसादृश्यं, मैत्री चामोदसङ्क्रान्ति, सब्रह्मचारीति कदलीकाण्डसमानतां च लक्षयतीत्येवमादिषु प्रयोगेषु लक्षणार्थो निरूप्यते । [4]यत्र सादृश्यलक्षणा सहृदयहृदयेष्ववविलम्बेन लक्ष्यार्थ-

१. 'स्वाभिधेयसम्बन्धाद् भृङ्गरूपार्थो लक्ष्यते' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'लक्षयतीत्यपि' इति 'ख' पु० पा० ।
३. 'द्योसम्बन्धम्' इति 'ख' पु० पा० ।
४. एतस्मात्पूर्वं 'लक्षणायामिति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रतिपत्तिमुद्भावयितुं प्रगल्भते, तत्र वक्रोक्तिरलङ्कार इति रहस्यमिति लक्षणाविद आचक्षत इत्यर्थः। सादृश्यपदव्यावर्त्यं कीर्तयति—असादृश्येति। सम्बन्धान्तरनिबन्धना तु लक्षणा वक्रोक्तिर्न भवतीत्यर्थः। तदेव दर्शयति—यथा जरठेति। सामीप्यमत्र धर्मधर्मिभावसम्बन्धः॥ ८॥

रूपकवक्रोक्तिभ्यामुत्प्रेक्षाया भेदं दर्शयितुमाह—

अतद्रूपस्यान्यथाध्यवसानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा ॥ ९ ॥

अतद्रूपस्यातत्स्वभावस्य, अन्यथा अतत्स्वभावतयाऽध्यवसानमध्यवसायः। न पुनरध्यारोपो लक्षणा वा। अतिशयार्थमिति भ्रान्तिज्ञाननिवृत्त्यर्थम्। सादृश्यादियमुत्प्रेक्षेति। एनां चेवादिशब्दा द्योतयन्ति। यथा—

'स वः पायादिन्दुर्नवबिसलताकोटिकुटिलः
स्मरारेर्यो मूर्ध्नि ज्वलनकपिशे भाति निहितः।
स्रवन्मन्दाकिन्याः प्रतिदिवससिक्तेन पयसा
कपालेनोन्मुक्तः स्फटिकधवलेनाङ्कुर इव'॥ ९॥

'रूपक तथा वक्रोक्ति' अलङ्कारोंसे 'उत्प्रेक्षा'का भेद दिखलानेके लिए कहते हैं—

वस्तुके वैसा नहीं होनेपर (प्रतिभाद्वारा—इन्द्रियादिके दोषसे नहीं) उस वस्तुके अतिशय दिखलानेके लिए वास्तविकतासे भिन्न सम्भावना करना 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

अतद्रूप अर्थात् जिसका जैसा स्वभाव नहीं है, उसका। अन्यथा अर्थात् उसके स्वभावसे भिन्नताद्वारा। अध्यवसान अर्थात् अध्यवसाय। रूपकके समान अध्यारोप, या वक्रोक्तिके समान लक्षणा 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार नहीं कहा जाता है। इन्द्रियादिविकारजन्य भ्रान्ति ज्ञानके निवारणार्थ लक्षणमें 'अतिशयार्थ' पद लिया गया है। यह 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार सादृश्यके कारण है। इसे 'इव' आदि शब्द बतलाते हैं (जैसा दण्डीने कहा है—'मन्ये शङ्के ध्रुवम् प्रायो नूनमित्येवमादिभिः। उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः।' अर्थात् 'मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम्, इत्यादि शब्दोंसे 'उत्प्रेक्षा' व्यक्त की जाती है और 'इव' शब्द भी वैसा—उत्प्रेक्षाको व्यक्त करनेवाला—ही है)। जैसे—

वह चन्द्रमा तुमलोगोंकी रक्षा करे, जो नये कमल-नालके अग्रभागके समान टेढ़ा, कामदेवके शत्रु (शङ्करजी) के तृतीय नेत्रस्थ अग्निसे पीले-से मस्तकमें स्थित, बहती हुई गङ्गाके जलसे प्रतिदिन सींचे जानेसे स्फटिक मणिके समान श्वेतवर्ण कपालसे निकले अङ्कुरके तुल्य शोभित होता है। (इस उदाहरणमें 'नवबिसलताकोटिकुटिलः' (नये कमल-नालके समान टेढ़ा) विशेषणके कारण चन्द्रवाचक 'इन्दु' शब्द 'चन्द्रकला'का बोध कराता है। चन्द्रमा, प्रवाहित होती हुई गङ्गाके जलसे सिक्त कपालसे निकले हुए अङ्कुर जैसा है, इस प्रकार उत्प्रेक्षा करनेसे 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है॥ ९॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

स्वरूपान्यथाभावकल्पनास्वभावत्वाविशेषेण रूपकवक्रोक्तिभ्यामुत्प्रेक्षाया अभेद-शङ्कायां लक्षणतो भेदं दर्शयितुमनन्तरसूत्रमवतारयति—रूपकेति। सूत्रार्थमाविष्क-रोति—अतद्रूपस्येति। अतद्रूपप्राकरणिकं वस्तु, तदात्मना प्राकरणिकवस्तुरूपत्वेनाति-शयमाधातुमध्यवसीयते प्रतिभामात्रेण कविना सम्भाव्यते, न पुनरिन्द्रियदोषेण, तथाविधं सम्भावनापरपर्यायमध्यवसानमुत्प्रेक्षेति लक्षणार्थः। न पुनरिति। अतत्स्वभावस्य वस्तु-नस्तत्तद्गुणयोगात्तद्भावकल्पनमध्यारोपः, यत्र रूपकादिस्वरूपलाभः। यत्तु सादृश्ये सत्येकेन वस्तुना वस्त्वन्तरस्य प्रतिपादनमध्यवसायरूपं, सा सादृश्यमूला लक्षणा। यत्र वक्रोक्तिव्यपदेशः। यत्पुनरतद्रूपे वस्तुन्यतिशयमाधातुं तद्रूपतयाध्यवसानं, सोऽयमध्यव-सायः सम्भावनालक्षण उत्प्रेक्षेति विवेकः। अतो न रूपकं, नापि वक्रोक्तिरिति ततो भेदो दर्शितः। अतिशयार्थमिति। भ्रान्तिर्विपर्ययज्ञानम्। अन्यथाऽध्यवसायत्वाविशे-षेऽपि बुद्धिपूर्वकत्वादुत्प्रेक्षायास्तद्विलक्षणाया भ्रान्तेर्व्यावृत्तिरित्यतिशयः। उत्प्रेक्षोदाहर-णेषु केषुचिदिवशब्दश्रवणात् कस्यचिदुपमाशङ्का जायते, तामाशङ्क्य परिहरति—सादृश्यादियमुत्प्रेक्षेति। प्रयुक्तोऽपि क्वचिदिवशब्दः सादृश्यनिबन्धनत्वसूचनद्वारेणोत्प्रेक्षा-मपि द्योतयतीत्यर्थः। तदुक्तं दण्डिना—'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः। उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः'॥ इति। स वः पायादिति। अत्र 'नवबिस-लताकोटिकुटिल' इति विशेषणसामर्थ्यादिन्दुपदेनेन्दुकलावगम्यते। इन्दुर्मन्दाकिनीसलिल-सेकेन कपालादुद्भिन्नोऽङ्कुर इवेत्युत्प्रेक्षित[1] इत्युत्प्रेक्षालङ्कारः॥ ९॥

उत्प्रेक्षैवातिशयोक्तिरिति केचित्, तन्निरासार्थमाह—

सम्भाव्यधर्मतदुत्कर्षकल्पनाऽतिशयोक्तिः॥ १०॥

सम्भाव्यस्य धर्मस्य तदुत्कर्षस्य च कल्पनाऽतिशयोक्तिः। यथा—

'उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्[3]।
तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः'॥

यथा वा—

'मलयजरसविलिप्ततरतनुर्नवहारलताविभूषिताः
सिततरदन्तपत्रकृतवक्त्ररुचो रुचिराऽमलांऽशुकाः।
शशभृति विततिधाम्नि धवलयति धरामविभाव्यतां गताः
प्रियवसतिं प्रयान्ति सुखमेव निरस्तभियोऽभिसारिकाः'॥ १०॥

(कुछ लोग उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कारोंमें अभेद मानते हैं, उनके मतका

१. '···दुत्प्रेक्ष्यते' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'सम्भाव्यधर्मस्य तदु···' इति 'क-ख' पु० पा०।
३. 'शिशुपालवधमहाकाव्यानुरोधात् 'क-ख-ग' पु० पाठानुरोधाच्चात्रत्यः 'पृथक् पतेतामा-काश······पयसः प्रवाहौ।' प्राक्तनपाठः परिवर्तितः।
४. '······विलिप्ततनवो नव···' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

खण्डन करनेके लिए लक्षणमें भेद दिखलाते हैं—) 'उत्प्रेक्षा' ही 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं, उसके निराकरणके लिए कहते हैं—

सम्भाव्य धर्म तथा उसके उत्कर्ष (अतिशय) की कल्पना 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है।

सम्भाव्य (सम्भव होनेवाले) धर्म और उसके उत्कर्षकी कल्पना करना 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार है। यथा—

यदि (नीले) आकाशमें आकाश-गङ्गाके जलकी दो धाराएँ अलग-अलग गिरें, तो उस(नीलाकाशस्थ आकाश-गङ्गाकी दोनों धाराओं)से मोतीका हार पहनी हुई तमालके समान नील वर्ण इस(कृष्ण भगवान्)की छातीकी उपमा दी जा सकती है।

अथवा दूसरा उदाहरण जैसे—

चन्दनके रससे सम्पूर्ण शरीरमें लेप लगायी हुई, नये मुक्ताहारसे विभूषित हाथीके अत्यन्त शुभ्र दाँतसे बने कर्णफूल (आभूषण-विशेष) से मुखको शोभित की हुई, मनोहर निर्मल वस्त्र पहनी हुई अभिसारिकाएँ किरणोंको विस्तृत किये चन्द्रमाकी श्वेत चाँदनीसे पृथ्वीको श्वेत वर्ण करनेपर (चाँदनी और वस्त्रादिके शुभ अर्थात् एक रंग होनेसे) नहीं पहचानी गयीं, अतएव निडर होकर सुखपूर्वक ही प्रेमीके घर जा रही है। (प्रकृत उदाहरणमें चन्दनके लेप तथा मुक्ताहार आदिकी इतने उत्कर्ष (आधिक्य) की कल्पना की गयी है, जितनेसे चाँदनीमें आँखोंको उनको पहचाननेकी क्षमता नहीं है) ॥ १० ॥

सम्भावनारूपकत्वाविशेषा[१]दुत्प्रेक्षातिशयोक्त्योरभेदं केचिन्मन्यन्ते, तन्मतं निरसितुं लक्षणभेदं दर्शयतीत्याह—उत्प्रेक्षैवेति। सम्भाव्यस्येति। सम्भाव्यस्योत्प्रेक्ष्यस्य धर्मस्य यद्यर्थानुबन्धेन कल्पना तदुत्कर्षस्य तस्य सम्भाव्यधर्मस्य य उत्कर्षस्तस्य कल्पना चातिशयोक्तिः। उदाहरति—उभाविति। यदि तथाविधं व्योम सम्भाव्येत, तदेवामुक्त[२]मुक्ताफलस्य वक्षस उपमानं भवेत्, न पुरन्यत् किञ्चिदित्यतिशययोक्तेरतिशयोक्तिः। एवं सम्भाव्यधर्मकल्पनामुदाहृत्य तदुत्कर्षकल्पनामुदाहरति—मलयजेति। मलयजरसनवहारलतादीनां तावान्[३] धावल्यस्योत्कर्षोऽतिशयः कल्प्यते, यावता चन्द्रिकायां तद्विवेचनाक्षमत्वं चक्षुषोरिति ॥ १० ॥

यथा भ्रान्तिज्ञानस्वरूपोत्प्रेक्षा, तथा संशयज्ञानस्वरूपः सन्देहोऽपीति दर्शयितुमाह—

उपमानोपमेयसंशयः सन्देहः ॥ ११ ॥

उपमानोपमेययोरतिशयार्थं यः क्रियते संशयः, स सन्देहः। यथा—

---

१. '⋯रूपत्वाविशेषा⋯' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'तदैवामुक्त⋯' इति 'ख' पु० पा०।

३. 'तावान्' इत्यंशः 'ख' पु० पा० अनुरोधादौचित्याच्च वर्धितः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इदं कर्णोत्पलं चक्षुरिदं वेति विलासिनि ! ।
न निश्चिनोति हृदयं किन्तु दोलायते मनः[1] ॥ ११ ॥

जिस प्रकार 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार भ्रान्तिज्ञानस्वरूप है, उसी प्रकार 'सन्देह' अलङ्कार भी संशयज्ञानस्वरूप है, यह दिखलानेके लिए कहते हैं—

उपमा और उपमेयका संशय 'सन्देह' अलङ्कार है।

उपमेयमें अतिशय अर्थात् चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए संशय (शंका) होता है, विशेषके नहीं देखनेके कारण नहीं; वह 'सन्देह' अलङ्कार है। यथा—

हे विलासिनि ! यह कर्णोत्पल (कानोंमें लटकता हुआ कमल) है या कानों का स्पर्श करती हुई यह विशाल आँखें हैं ? (मेरा) हृदय यह निश्चय नहीं कर पा रहा है, किन्तु मन दोलायमान हो रहा है अर्थात् दुविधामें पड़ा हुआ है ॥ ११ ॥

यथा लौकिकभ्रमसजातीयामुत्प्रेक्षामतिशयार्थकल्पनात्ववैधर्म्येण लौकिकभ्रान्तितः पृथक्कृत्य प्रदर्शितवाँस्तथा संशयमपि लौकिकसजातीयं तथाविधेन वैधर्म्येण ततः पृथक्कृत्य दर्शयतीत्याह[2]—यथेति। सन्देहस्य कोटिद्वयावलम्बितत्वादिहापि तदाह—उपमानोपमेययोरिति। अतिशयार्थमिति। उपमेयेऽतिशयमाधातुं सन्देहः सम्पाद्यते, न तु विशेषादर्शनादित्यर्थः[3]। व्यक्तमुदाहरणम् ॥ ११ ॥

सन्देहवद्विरोधोऽपि प्राप्तावसर इत्याह—

विरुद्धाभासत्वं विरोधः ॥ १२ ॥

अर्थस्य विरुद्धस्येवाभासत्वं विरुद्धाभासत्वं विरोधः। यथा—

पीतं पानमिदं त्वयाद्य दयिते ! मत्तं ममेदं मनः
पत्राली तव कुङ्कुमेन रचिता रक्ता वयं मानिनि ! ।
त्वं तुङ्गस्तनभारमन्थरगतिर्गात्रेषु मे वेपथु-
स्त्वन्मध्ये तनुता ममाधृतिरहो ! मारस्य चित्रा[4] गतिः ॥

यथा वा—

सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम् ।
साऽऽक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं
दोषैरन्यजनाश्रितैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥ १२ ॥

(कल्पना रूपमें कोई विशेष नहीं होनेसे जिस प्रकार सन्देहालङ्कारको अवसर प्राप्त था, उसी प्रकार परस्पर विरोधी दो वस्तुओंमें अवलम्बित सन्देहालङ्कारके बाद

१. 'मनः' इत्यत्र 'पुनः' इति 'क' पु० पा० ।
२. 'दर्शयितुमाह—' इति 'ख' पु० पा० ।
३. एतदनन्तरं 'इदमिति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।
४. 'प्रेम्णो विचित्रा' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विरोधालङ्कारको भी अवसर प्राप्त होनेसे अब विरोधालङ्कार का लक्षण कहते हैं—) सन्देहके समान विरोध (अलङ्कार) को भी अवसर प्राप्त है, अतः उसका लक्षण कहते हैं—

(वास्तविक विरोध न रहने पर भी) विरुद्धके समान मालूम पड़ना 'विरोध' (अलङ्कार) है।

वस्तुतः विरुद्ध न होनेपर भी अर्थका विरुद्ध मालूम पड़ना 'विरुद्धाभासत्व' है तथा वही 'विरोध' अलङ्कार है। जैसे—

हे प्रिये ! आज तूने यह मदिरापान किया और मेरा मन मत्त हो रहा है। हे मानिनि ! तेरे (शरीरपर) कुङ्कुमसे पत्र-रचना की गयी है और हम अनुरक्त हो रहे हैं, ऊँचे स्तनोंके बोझसे तेरी चाल धीमी हो गयी है और मेरे शरीरमें कंपन हो रहा है, तेरी कमर पतली है और मुझे अधैर्य हो रहा है, अहो ! कामकी गति विचित्र होती है।

अथवा दूसरा उदाहरण जैसे—

वह बाला है, परन्तु हम प्रगल्भताहीन हैं; वह स्त्री है, परन्तु कायर हम हैं, ऊँचे दो स्तनोंको वह धारण कर रही है, परन्तु हम खिन्न हो रहे हैं; बोझिल जङ्घाओंसे वह आक्रान्त है, परन्तु चलनेमें हम असमर्थ हैं; दूसरे व्यक्ति अर्थात् नायिकाके आश्रित दोषोंसे हम अशक्त हैं, यह आश्चर्य है (इन दोनों उदाहरणोंमें विरोधका आभास स्पष्ट है, अतएव विरोधालङ्कार है) ॥ १२ ॥

कल्पनारूपत्वाविशेषादतिशयोक्तेरनन्तरं यथा सन्देहालङ्कारः प्राप्तावसरस्तथा विरुद्धकोटिद्वयावलम्बिनस्सन्देहस्याऽनन्तरं विरोधालङ्कारः प्राप्तावसर इति तल्लक्षणं दर्शयतीत्याह—सन्देहवदिति। व्याचष्टे—अर्थस्येति। विरुद्धवदवभासत इति विरुद्धाभासस्तस्य भावस्तत्त्वम्। प्रकारान्तरेण परिहारे सत्येव विरुद्धस्यार्थस्यावभासनं विरोधालङ्कारः। उदाहरति—यथेति। पानशब्दोऽत्र कर्मसाधनः पेयद्रव्यमाह—पानादीनां मदादीनां च वैयधिकरण्याद्विरोधः। मदादीनामर्थान्तरत्वस्वीकारेण विरोधपरिहारः[१]। सा बालेत्यादावपि विरुद्धाभासत्वं द्रष्टव्यम् ॥ १२ ॥

विरोधाद्विभावनाया भेदं दर्शयितुमाह—

क्रियाप्रतिषेधे प्रसिद्धतत्फलव्यक्तिर्विभावना ॥ १३ ॥

क्रियायाः प्रतिषेधे तस्या एव क्रियायाः फलस्य प्रसिद्धस्य व्यक्तिर्विभावना। यथा—

अप्यसज्जनसाङ्गत्ये न वसत्येव वैकृतम् ॥
अक्षालितविशुद्धेषु हृदयेषु मनीषिणाम् ॥ १३ ॥

विरोध (अलङ्कार) से 'विभावना' (अलङ्कार) का भेद दिखलानेके लिए कहते हैं—

१. एतदग्रे 'सेति' इत्यधिकः 'ख, पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कारण रूप क्रियाका निषेध होनेपर उसी क्रियाके कार्य रूप प्रसिद्ध फलको व्यक्त करना 'विभावना' (अलङ्कार) होता है ।

कारण रूप क्रियाके निषेध होनेपर उसी क्रियाके कार्य रूप प्रसिद्ध फलका उत्पन्न होना 'विभावना' अलङ्कार है । यथा—

दुर्जनोंकी सङ्गति होनेपर भी मनीषियोंके बिना धोये ही निर्मल हृदयोंमें विकार नहीं ठहरता है । (इस उदाहरणमें 'बिना धोये ही निर्मल' में कारण रूप प्रक्षालन (धोना) क्रियाके निषेध करनेपर भी तत्फलभूत कार्य रूप निर्मलताका प्रकाशन करनेसे 'विभावना' अलङ्कार है ॥ १३ ॥

विभावनां विवरीतुमवतारिकामारचयति—विरोधादिति । लक्षणवाक्यार्थं विवृणोति—क्रियाया इति । क्रियायाः कारणरूपायाः प्रतिषेधे प्रसिद्धस्य तस्याः क्रियायाः फलस्य कार्यभूतस्य व्यक्तिः प्रकाशनं यत्, सा विभावनेति वाक्यार्थः । विरोधविशेषो विभावनेति भेदः । अप्यसज्जनेति । विकृतमेव वैकृतम् । प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् । अक्षालितविशुद्धेष्वित्यत्र कारणरूपक्षालनक्रियाप्रतिषेधेऽपि तत्फलभूताया विशुद्धेः प्रकाशनात् विभावना ॥ १३ ॥

विरुद्धप्रसङ्गेनानन्वयं दर्शयितुमाह—

एकस्योपमेयोपमानत्वेऽनन्वयः ॥ १४ ॥

एकस्यैवार्थस्योपमेयत्वमुपमानत्वं चानन्वयः । यथा—

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥

अन्यासादृश्य[1]मेतेन प्रतिपादितम् ॥ १४ ॥

'विरुद्ध'के प्रसङ्गसे 'अनन्वय'को दिखलानेके लिए कहते हैं—

एक ही पदार्थके उपमेय और उपमान, दोनोंका होना 'अनन्वय' अलङ्कार होता है ।

किसी एकके ही उपमेयत्व और उपमानत्व—दोनों ही होना 'अनन्वय' अलङ्कार होता है । यथा—

आकाश आकाशके समान, समुद्र समुद्रके समान और राम तथा रावणका युद्ध राम और रावणके युद्धके समान है । (इस उदाहरणमें आकाश, समुद्र तथा राम और रावणके युद्ध—तीनों उपमेयत्व और उपमानत्व की कल्पनासे अतिशयत्व का प्रतिपादन किया गया है, अतः 'अनन्वय' अलङ्कार है ।

इसका निष्कर्ष यह हुआ कि किसी दूसरेसे समानताका अभाव होनेपर 'विभावना' अलङ्कार होता है ॥ १४ ॥

---

१. 'अनन्यसादृश्य...' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अनन्वयं वक्तुमाह—विरोधेति । एकस्यैवार्थस्यैकस्मिन्नेव वाक्ये उपमानान्तरव्युदासेनातिशयमाधातुमुपमानत्वं चोपमेयत्वं चोपकल्प्यते । तत्र व्यधिकरणयोर्धर्मयोरुपमानत्वोपमेयत्वयोरेकत्रान्वयासम्भवादनन्वयालङ्कारः[१] । रामरावणयोरिति—स्पष्टम् । एकस्यैवोपमानोपमेयत्वकल्पनायां फलितमाह—अन्येति, उपमानान्तरेणासादृश्यं सादृश्याभावः ॥ १४ ॥

क्रमेणोपमेयोपमा ॥ १५ ॥

एकस्यैवार्थस्योपमेयत्वमुपमानत्वं च क्रमेणोपमेयोपमा । यथा—

खमिव जलं जलमिव खं हंस इव शशी शशीव हंसोऽयम् ।
कुमुदाकारास्ताराकाराणि कुमुदानि ॥ १५ ॥

एक ही पदार्थमें उपमेयत्व तथा उपमानत्वका क्रमशः वर्णन करना 'उपमेयोपमा' अलङ्कार होता है ।

एक ही पदार्थका उपमेयत्व और उपमानत्व क्रमसे कहनेपर 'उपमेयोपमा' अलङ्कार होता है । यथा—

आकाशके समान जल है और जलके समान आकाश है; हंसके समान चन्द्रमा है और चन्द्रमाके समान यह हंस है; कुमुद (कैरवपुष्प) के समान तारे हैं और तारोंके समान कुमुद (पुष्प) है । (इस उदाहरणमें आकाश और जलके, हंस और चन्द्रमाके तथा तारे और कुमुदोंके उपमानोपमेयका वर्णन होनेसे 'उपमेयोपमालङ्कार' है ॥ १५ ॥

उपमेयोपमानुपपादयितुमुपरितनं सूत्रमुपादत्ते—क्रमेणेति । एकस्यैवेत्यनुवर्तते । यत्र क्रमेण वाक्यद्वय एकस्यैव वस्तुन उपमानत्वमुपमेयत्वं च निबध्यते, तत्रोपमेयोपमा । खमिवेति । उदाहरणं स्पष्टम् ॥ १५ ॥

इयमेव परिवृत्तिरित्येके, तन्निरासार्थमाह—

समविसदृशाभ्यां परिवर्तनं परिवृत्तिः ॥ १६ ॥

समेन विसदृशेन वाऽर्थेनार्थस्य परिवर्तनं परिवृत्तिः । यथा—

आदाय कर्णकिसलयमियमस्मै चरणमरुणमर्पयति ।
उभयोस्सदृशविनिमयादन्योन्यमवञ्चितं मन्ये ॥

यथा वा—

विहाय सा हारमहार्यनिश्चया विलोलदृष्टिः प्रविलुप्तचन्दना ।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥ १६ ॥

दोनों (उपमेयोपमा तथा परिवृत्ति) अलङ्कारोंमें समानताके सन्देहको निवृत्त करनेके लिए लक्षण कहते हैं—) यही (उपमेयोपमा ही) 'परिवृत्ति' अलङ्कार है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं, उनके निराकरणके लिए (परिवृत्तिका लक्षण) कहते हैं—

१. एतदग्रे 'गगनमिति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

समान या असमान पदार्थों से परिवर्तन (अदल-बदल) करना 'परिवृत्ति' अलङ्कार है।

समान अथवा असमान पदार्थोंसे परिवर्तन (विनिमय अर्थात् कुछ लेकर उसके बदलेमें दूसरी वस्तु देना) होना 'परिवृत्ति' अलङ्कार है। (समान वस्तुसे परिवर्तन) यथा—

(यह नायिका) कर्ण-किसलय अर्थात् कानमें पहनने योग्य लाल रंगका नवपल्लव लेकर उसके लिए (महावरसे) लाल पैर देती अर्थात् नायकके कन्धेपर रखती है, इस प्रकार दोनोंके समान विनिमय (लाल किसलय लेकर लाल चरणको अर्पण करने) से परस्परमें एकसे दूसरेको ठगा गया नहीं मानता हूँ। (यहाँ समान वस्तुओंका विनिमय होनेसे 'परिवृत्ति' अलङ्कार है। इस उदाहरणमें रतिकालीन 'प्रसारित' नामक 'करण' (आसन-विशेष) कुछ लोग मानते हैं)।

अथवा (असमान वस्तुओंका परिवर्तन) जैसे—

(तपस्या करनेके लिए) दृढ निश्चयवाली, चपलनयनी चन्दन-लेपका त्याग की हुई उस (पार्वती) ने मुक्ताहारको छोड़कर प्रातःकालीन बालसूर्यके समान अरुण तथा स्तनोंके उन्नत होनेके कारण छिन्न सन्धिवाले वल्कलको धारण किया। (इस उदाहरणमें शुभ्र मुक्ताहारके स्थानमें असमान अरुण वल्कलका परिवर्तन होनेसे 'परिवृत्ति' अलङ्कार है।) ॥ १६ ॥

साम्यशङ्कायामुपमेयोपमातः परिवृत्तिं व्यावर्तयितुं लक्षणं दर्शयतीत्याह—इयमेवेति। व्याचष्टे—समेनेति। समेन समानेन, विसदृशेनाऽसदृशेन वाऽर्थेन अर्थस्य यत्परिवर्तनं विनिमयः, सा परिवृत्तिः। उदाहरति—यथेति। अत्र प्रसारिताख्यं करणं सूचितमिति केचिदाचक्षते। 'नायकस्यांस एको द्वितीयः प्रसारित इति प्रसारितकम्' इति वात्स्यायनसूत्रम्। तद्विवृतं रतिरहस्ये—'प्रियस्य वक्षोऽसतलं शिरोधरा[1] नयेत सव्यं चरणं नितम्बिनी। प्रसारयेद्वा परमायतं पुनर्विपर्ययः स्यादिति हि प्रसारितम्॥' इति। अत्र चरणकिसलययोः सादृश्यात् समपरिवृत्तिः। विहायेत्यादौ हारवल्कलयोर्वैसादृश्याद्विसदृशपरिवृत्तिः॥ १६ ॥

उपमेयोपमायाः क्रमो भिन्न इति दर्शयितुमाह—

उपमेयोपमानानां क्रमसम्बन्धः क्रमः ॥ १७ ॥

उपमेयानामुपमानानां चोद्देशिनामनुद्देशिनां च क्रमसम्बन्धः[2] क्रमः। यथा—

तस्याः [3]प्रबन्धलीलाभिरालापस्मितदृष्टिभिः।
जीयन्ते वल्लकीकुन्दकुसुमेन्दीवरस्रजः॥ १७ ॥

---

१. 'शिरोऽथवा' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'क्रमेण सम्बन्धः' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।
३. 'प्रवृद्ध……' इति 'क' पु० 'प्रवुद्ध…' इति च क्वचित् पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उपमेयोपमा अलङ्कारसे 'क्रम' अलङ्कार भिन्न है, यह कहते हैं—

उपमेयों और उपमानोंका क्रमसे सम्बन्ध होना 'क्रम' अलङ्कार है।

उद्देशी उपमेयोंका और अनुद्देशी उपमानोंका एक-सा क्रम-सम्बन्ध रहना अर्थात् पहले एक साथ कथित उपमेयोंका जो क्रम है, बादमें एक साथ ही कथित उपमानोंका उसी क्रमसे सम्बन्ध रहना 'क्रम' अलङ्कार है (इसे ही 'यथासंख्य' अलङ्कार भी कहते है)। यथा—

उस (नायिका) के आलाप, स्मित और दृष्टि रूप निरन्तर की गयी लीलाओं (विलासों) से वीणा, कुन्दका फूल और नीलकमलोंकी माला जीती गयीं। (यहाँ वल्लकी, कुन्दकुसुम और इन्दीवरस्रक् का क्रमसे नायिकाके आलाप, स्मित और दृष्टि से परा जीते जानेका सम्बन्ध दिखलानेसे 'क्रम' अलङ्कार है)॥ १७॥

क्रमालङ्कारं कथयितुमाह—उपमेयेति। वृत्तिः स्पष्टार्था[1]। प्रबन्धेनाविच्छेदेन लीला यासां ताभिः प्रबन्धलीलाभिः॥ १७॥

क्रमसम्बन्धप्रसङ्गेन दीपकं दर्शयितुमाह—

उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रिया दीपकम्॥ १८॥

उपमानवाक्येषूपमेयवाक्येषु चैका क्रिया अनुषङ्गतः सम्बध्यमाना दीपकम्॥ १८॥

'क्रम' अलङ्कारके सम्बन्धके प्रसङ्गसे 'दीपक' अलङ्कार को दिखलानेके लिए कहते हैं—

उपमान-वाक्योंमें और उपमेय-वाक्योंमें एक क्रियाका सम्बन्ध होना 'दीपक' अलङ्कार है।

उपमानवाक्योंमें तथा उपमेयवाक्योंमें प्रसङ्गवश एक ही क्रियाका सम्बन्ध होना 'दीपक' अलङ्कार होता है॥ १८॥

क्रमदीपकयोः सौहार्दमुन्मुद्रयन् सूत्रमवतारयति—क्रमेति। व्याचष्टे—उपमानेति। एकस्यैव प्रधानसम्बन्धितया सकृदुपात्तस्य पदस्य वाक्यान्तरेषु प्रसङ्गात् सम्बन्धोऽनुषङ्गः॥ १८॥

तत्त्रैविध्यम्[2], आदिमध्यान्तवाक्यवृत्तिभेदात्॥ १९॥

तत् त्रिविधं भवति। आदिमध्यान्तेषु वाक्येषु वृत्तेर्भेदात्। यथा—

भूष्यन्ते प्रमदवनानि बालपुष्पैः कामिन्यो मधुमदमांसलैर्विलासैः।
ब्रह्माणः श्रुतिगदितैः क्रियाकलापै राजानो विरलितवैरिभिः प्रतापैः॥

---

१. एतदग्रे 'तस्या इति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।
२. 'तत् त्रिविधम्' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

बाष्पः पथिककान्तानां जलं जलमुचां मुहुः ।
विगलत्यधुना दण्डयात्रोद्योगो महीभुजाम् ।।
गुरुशुश्रूषया विद्या[1] मधुगोष्ठ्या मनोभवः ।
उदयेन शशाङ्कस्य पयोधिरभिवर्धते[2] ।। १९ ।।

वह (दीपक अलङ्कार) तीन प्रकारका होता है—आदि वाक्य, मध्य वाक्य और अन्तिम वाक्योंमें क्रियाके स्थित होनेसे ।

वह (दीपक अलङ्कार) आदिवाले, मध्यवाले और अन्तवाले वाक्योंमें एक ही क्रियाके स्थित (सम्बद्ध) होनेसे । (आदि वाले वाक्यमें स्थित दीपक) जैसे—

प्रमदोद्यान नये पुष्पोंसे, कामिनियाँ मद्यके नशासे, समृद्ध विलासोंसे, ब्राह्मण वेद-वाक्योंसे और राजालोग शत्रुओंको नष्ट करनेवाले प्रतापोंसे भूषित होते हैं (इस उदाहरणमें श्लोकके आदिमें 'भूष्यन्ते' क्रियाका प्रयोग होनेसे प्रथम दीपक अलङ्कार है) ।

(मध्यवाले वाक्यमें प्रयुक्त क्रिया होनेपर द्वितीय 'दीपक' जैसे—) राजाओंके युद्ध का उद्योग (तैयारी) करनेपर पथिकों (मार्गमें जाते (भयसे भागते) हुए शत्रुओं) की स्त्रियोंके आँसू और बादलोंके पानीकी बूँदे बार-बार गिरती हैं (इस उदाहरणमें श्लोकके मध्यमें 'विगलति' क्रिया प्रयुक्त होनेसे 'दीपक' का द्वितीय भेद है) ।

गुरुकी सेवासे विद्या, मदिरा पीनेकी बैठकों (गोष्ठियों) से काम और चन्द्रमाके उदय होनेसे समुद्र बढ़ते हैं । (इस उदाहरणमें श्लोकके अन्तमें 'अभिवर्धते' क्रियाका प्रयोग होनेसे यहाँ 'दीपक' अलङ्कारका अन्तिम भेद है) ।। १९ ।।

तद्भेदमाह—तत् त्रैविध्यमिति[3] । भूष्यन्त इत्यत्रादिदीपकम् । ब्रह्माण इति—ब्राह्मणाः । वाष्प इत्यत्र मध्यदीपकम् । गलनं बाष्पजलयोः स्यन्दः, दण्डयात्रोद्योगे नाशः । गुरुशुश्रूषयेत्यत्रान्तदीपकम् । एवमेव कारकदीपकमप्यूहनीयम् ।। १९ ।।

दीपकवन्निदर्शनमपि सङ्क्षिप्तमित्याह—

क्रिययैव स्वतदर्थान्वयख्यापनं निदर्शनम् ।। २० ।।

क्रिययैव शुद्धया स्वस्यात्मनस्तदर्थस्य चान्वयस्य सम्बन्धस्य ख्यापनं संलुलितहेतुदृष्टान्तविभागदर्शनान्निदर्शनम्[4] । यथा—

अत्युच्चपदाध्यासः पतनायेत्यर्थशालिनां शंसत् ।
आपाण्डु पतति पत्रं तरोरिदं बन्धनग्रन्थेः ।।

पततीति क्रिया, तस्याः स्वं पतनम् । तदर्थेऽत्युच्चपदाध्यासः पतनायेति[5] शंसनम्, तस्य ख्यापनमर्थशालिनां शंसदिति ।। २० ।।

---

१. 'बुद्धिः' इति 'क, ग' पु० पा० । २. 'पयोराशिर्विवर्धते' इति 'ख-ग' पु० पा० ।
३. 'तत्त्रिविधम्' इति 'ख' पु० पा० । ४. 'संवलितहेतुदृष्टान्तविभागं' इति 'क' पु० पा० ।
५. '……ध्यासः', तयोरन्वयोऽत्युच्चपदाध्यासः पतनायेति……' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'दीपक' अलङ्कारके समान 'निदर्शन' अलङ्कार भी संक्षिप्त होता है, यह कह रहे हैं—

केवल क्रियासे ही अपना और अपने प्रयोजनके सम्बन्धको बतलाना 'निदर्शन' अलङ्कार है।

शुद्ध (सहायकहीन) क्रियासे अपना और अपने प्रयोजनके सम्बन्धका प्रतिपादन (कथन), कारण तथा दृष्टान्तको मिला हुआ दिखलायी पड़नेसे होता है, इसीसे इसको 'निदर्शन' अलङ्कार कहते हैं। जैसे—

अत्यधिक ऊँचे स्थान पर स्थित होना पतन (गिरने) के लिए होता है, अर्थात् अधिक ऊँचे पदपर पहुँचे हुए व्यक्तिका पतन होता है, धनवान् लोगोंको यह कहता हुआ पेड़का पका हुआ पीला पत्ता अपने बन्धनकी ग्रन्थिसे गिर रहा है।

इस उदाहरणमें 'पतति' यह क्रिया है, उसका स्व (स्वरूप) गिरना है। उसका आशय 'अत्यधिक ऊँचे पदको पाना गिरनेके लिए होता है' यह ज्ञान कराना और यह ज्ञान अर्थात् इसकी स्थापना 'अर्थशालिनां शंसत्' (धनिकोंको कहता हुआ) इससे होता है, अतः यहाँ 'निदर्शन' अलङ्कार है ॥ २० ॥

निदर्शनं दर्शयितुमाह——दीपकवदिति। शुद्धयाऽनन्यसहायया क्रिययैवावृत्तिरहितयेत्यर्थः। स्वस्य तदर्थस्य सा क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तदर्थं स्वप्रयोजनकमर्थान्तरमित्यर्थः, तयोः स्वतदर्थयोरन्वयस्य सम्बन्धस्य, ख्यापनं निदर्शनम्। निदर्शनपदार्थं निर्वक्ति——संलुलितेति। संलुलितः अविवेचितो, हेतुदृष्टान्तयोर्विभागस्तस्य दर्शनाद्विवेचनान्निगूढहेतुदृष्टान्तदर्शनरूपत्वान्निदर्शनमित्यर्थः। उदाहरति——अत्युच्चेति। अर्थशालिनामर्थोल्लेखशालिनां धनशालिनां वा। लक्ष्यलक्षणयोरानुकूल्यमुन्मीलयति——पततीति क्रियेति ॥ २० ॥

इदं च नार्थान्तरन्यासः। स ह्यन्यथाभूतः[1]स्तमाह—

उक्तसिद्ध्यै वस्तुनोऽर्थान्तरस्यैव न्यसनमर्थान्तरन्यासः ॥ २१ ॥

उक्तसिद्ध्यै उक्तस्यार्थस्य सिद्ध्यर्थं[2] वस्तुनो वाक्यार्थान्तरस्यैव न्यसनमर्थान्तरन्यासः। वस्तुग्रहणादर्थस्य[3] हेतोर्न्यसनन्नार्थान्तरन्यासः। यथा—'इह नातिदूरगोचरमस्ति सरः, कमलसौगन्ध्यात्' इति।

अर्थान्तरस्यैवेति वचनम्, यत्र हेतुर्व्याप्तिगूढत्वात्कथञ्चित्प्रतीयते, तत्र यथा स्यात्। 'यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यमि'त्येवम्प्रायेषु मा भूदिति। उदाहरणम्—

प्रियेण सङ्ग्रथ्य विपक्षसन्निधावुपाहितां वक्षसि पीवरस्तनी[4]।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां, वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥२१॥

---

१. 'स तु यथाभूतः' इति 'ग' पु० पा०।
२. 'सिद्ध्यर्थे' इति 'ख-ग' पु० पा०।
३. '……ग्रहणात् पदार्थस्य' इति 'ग' पु० पा०।
४. 'पीवरस्तने' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यह ('निदर्शन' अलङ्कार) 'अर्थान्तरन्यास' नहीं है, क्योंकि वह ('अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार) दूसरे प्रकारका होता है, उसे ('अर्थान्तरन्यास' अलङ्कारको) कहते हैं—

पूर्वकथित अर्थकी सिद्धिके लिए अर्थान्तर अर्थात् दूसरी वस्तुका प्रस्तुत करना 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है।

उक्त अर्थात् पहले कहे गये अर्थकी सिद्धिके लिए दूसरी वस्तुका न्यास (उपस्थापन) 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार होता है। वस्तुके ग्रहणसे अर्थके कारणका न्यास 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार नहीं है। जैसे—'इह····गन्धयात्' अर्थात् कमलकी खुशबूके कारण यहाँसे सरोवर अधिक दूर नहीं मालूम होता है। इसमें 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार नहीं है)। लक्षणमें 'अर्थान्तरस्यैव' अर्थात् 'दूसरे अर्थका ही' यह कथन होनेसे जहाँ व्याप्तिके मूढ होनेसे ही हेतु कथञ्चित् प्रतीत हो, वहाँ जिस प्रकार यह 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार हो, 'जो-जो कृत्रिम (किसीके द्वारा निर्मित) है, वह-वह अनित्य है' इत्यादि प्रसिद्ध व्याप्तिवाले स्थानोंमें वह अलङ्कार न हो। उदाहरण जैसे—

उन्नत स्तनोंवाली किसी नायिकाने प्रियतमके द्वारा गूँथकर सौतके समीप (सामने) वक्षःस्थलपर पहनायी गयी (स्नान करनेके कारण) मलिन हुई मालाको नहीं उतारा, (ठीक ही कहा गया है कि—) गुण प्रेममें रहता है, पदार्थमें नहीं। (इस उदाहरणमें विशेष रूप उपमेयका समर्थन सामान्य रूप उपमानसे करनेके कारण 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है)॥ २१॥

अर्थान्तरन्यासं समर्थयितुं सूत्रसङ्गतिं सूचयति––इदं चेति। उक्तस्य वाक्यार्थस्य सिद्धयै, वाक्यार्थान्तरस्यान्यस्य वाक्यार्थस्यैव। वस्तुग्रहणप्रयोजनं प्रस्तौति––वस्त्विति। प्रत्युदाहरणं प्रदर्शयति––यथेति। अत्र कमलसौगन्ध्यादिति हेतोः पदार्थरूपत्वात् तस्य न्यसनं नार्थान्तरन्यासः। अवधारणप्रयोजनमभिधत्ते—अर्थान्तरस्यैवेति वचनमिति। यत्र वस्तुनो[1] हेतुरूपमेवार्थान्तरं तद्व्याप्तिस्तु यत्र गौरवेण प्रतीयते, तत्रालङ्कारता यथा स्यात्, प्रसिद्धव्याप्तिस्थले तु[2] माभूदित्येवमर्थमेवकारकरणमित्यर्थः। उदाहर्तुमाह—उदाहरणमिति। प्रियेणेति। अत्र विशेषरूपमुपमेयं सामान्येनोपमानेन समर्थ्यते॥ २१॥

अर्थान्तरन्यासस्य हेतुरूपत्वात्, हेतोश्चान्वयव्यतिरेकात्मकत्वान्न पृथग्[3] व्यतिरेक इति केचित्। तन्निरासार्थमाह—

उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं व्यतिरेकः॥ २२॥

उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं गुणाधिक्यं यद् अर्थादुपमानात् स व्यतिरेकः। यथा—

---

१. 'वस्तुतो' इति 'ख' पु० पा०। २. 'तु सा' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'न ततः पृथक्' इति कुत्रचित् पाठः, इति 'ख' पु० टिप्पणी।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

सत्यं हरिणशावाक्ष्याः प्रसन्नसुभगं मुखम् ।
समानं शशिनः किन्तु स कलङ्कविडम्बितः ॥

कश्चित्तु गम्यमानगुणो व्यतिरेकः । यथा—

कुवलयवनं प्रत्याख्यातं नवं मधु निन्दितं
हसितममृतं भग्नं स्वादोः पदं रससम्पदः ।
विषमुपहितं चिन्ताव्याजान्मनस्यपि कामिनां
चतुरललितैर्लीलातन्त्रैस्तवार्धविलोकितैः ॥ २२ ॥

कुछ लोगोंका कहना है कि 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कारके हेतुरूप होनेसे तथा हेतुके अन्वयव्यतिरेकात्मक होनेसे 'व्यतिरेक' अलङ्कार पृथक् नहीं है, उनके कथनका निराकरण करनेके लिए कहते हैं—

(उपमानसे) उपमेयके गुणका अधिक होना 'व्यतिरेक' अलङ्कार है ।

उपमानसे उपमेयका गुणातिरेकत्व अर्थात् अधिक गुण होना 'व्यतिरेक' अलङ्कार है। (निष्कर्ष यह है कि—यह 'गुण' का अर्थ धर्म है, वह वाच्य (अर्थसे ज्ञातव्य) और गम्य (प्रतीयमान) भेदसे दो प्रकारका है। ये दोनों (वाच्य और गम्य) धर्म जब उपमानमें रहेंगे, तव उसके हीनत्वका कारण उपमेयमें और उसके उत्कर्षका कारण होनेसे दो प्रकारका है। उपमानमें वह धर्म (गुण) रहनेपर उसके हीनत्वके हेतु गुणसे उपमेयके गुणका अधिक होना अर्थतः सिद्ध है। इस स्थितमें आर्थ अर्थात् अर्थसे सिद्ध (वाच्य) गुणातिरेक होगा। वह उपमानगत रहनेपर उसके उत्कर्षके हेतु उससे उपमानकी अपेक्षा उपमेयका गुणाधिक्य होगा और यह गुणातिरेक शाब्दिक होगा। उनमें उपमानगत वाच्यगुणसे होनेवाले व्यतिरेकका) उदाहरण यह है—

बालमृगनयनी (नायिका) का सुन्दर मुख चन्द्रमाके समान है, यह सत्य है, किन्तु वह (चन्द्रमा) कलङ्कयुक्त है। (इस उदाहरणमें 'कलविडम्बित' पदके वाच्य उपमानके अपकर्ष (हीनत्व) का कारण कलङ्कित्व गुणसे उपमेय (मुख) का अर्थात् सिद्ध कलङ्कहीनता रूप गुणाधिक्य है, अत एव 'यहाँ 'व्यतिरेक' अलङ्कार है।)

कोई गम्यमान गुण व्यतिरेक मानता है। (इसको पहले ही स्पष्ट किया गया है) जैसे—

तेरे चतुर एवं मनोहर लीलाओंसे और आधे बन्द किये हुए नेत्रों द्वारा देखने (कटाक्ष करने) से नीलकमलोंका वन खण्डित हो गया, नवीन मधु निन्दित हो गया, अमृत उपहसित हो गया, रसीले स्वादका पद भग्न हो गया, चिन्ताके दलसे कामियोंके मनमें विष रख दिया। (इस उदाहरणमें कुवलयवन, मधु, अमृत आदिमें क्रमशः प्रत्याख्यान, निन्दा, भग्न आदि से गम्यमान निष्कर्ष हेतुसे चतुरलीलातन्त्रत्वाभाव रूप गुणसे अर्धविलोकित में शाब्द (शब्दबोध) भी चतुरलीलातन्त्रत्व रूप गुणातिरेकित्व (गुणाधिक्य) प्रकृष्टत्व द्वारा प्रतिष्ठापित होता है, अत एव गुणसे प्रयुक्त व्यतिरेक

१. 'चतुरमधुरैर्लीला···' इति 'क, ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

है। फलतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कारमें विपक्षकी व्यावृत्ति रूप व्यतिरेक है और यहाँ गुणका आधिक्य है, अतः अर्थान्तरन्यासमे यह व्यतिरेक अलङ्कार पृथक् है) ॥ २२ ॥

अर्थान्तरन्यासव्यतिरेकयोर्भेदं दर्शयितुमभेदशङ्कामुन्मीलयति—अर्थान्तरेति । व्याचष्टे—उपमेयस्येति । गुणशब्दोऽत्र धर्ममात्रवचनः । स च वाच्यो, गम्यश्चेति द्विविधः । उभयोऽप्युपमानगतस्तदपकर्षहेतुरुपमेयगतस्तदुत्कर्षहेतुश्चेति द्विविधो भवति। यदोपमानगतस्तेन तदपकर्षहेतुना गुणेनोपमेयस्य गुणातिरेकित्वमर्थाद्भवति, तदा गुणातिरेकित्वमार्थम्; यदा पुनरुपमेयगतस्तदा तेन तदुत्कर्षहेतुनाऽर्थादुपमानादुपमेयस्य गुणातिरेकित्वं भवति, तदा शाब्दमतिरेकित्वम् । तत्रोपमानगतवाच्यगुणप्रयुक्तं व्यतिरेकमुदाहरति—सत्यमिति । अत्र कलङ्कविडम्बितपदवाच्येनोपमानस्यापकर्षहेतुना कलङ्कित्वगुणेनोपमेयस्यार्थादकलङ्कित्वलक्षणं गुणातिरेकित्वमिति व्यतिरेकः । उपमानगतगम्यमानगुणप्रयुक्तं व्यतिरेकमुदाहरति कुवलयवनमिति । कुवलयवनमध्वादिषु प्रत्याख्याननिन्दनादिभिरवगम्यमानेन निकर्षहेतुना चतुरललितलीलातन्त्रत्वराहित्यलक्षणेन गुणेनार्धविलोकितेषु चतुरललितलीलातन्त्रत्वरूपं गुणातिरेकित्वं शाब्दमपि प्रकृष्टतया प्रतिष्ठापितं भवतीति गम्यमानगुणप्रयुक्तो व्यतिरेकः । अर्थान्तरन्यासे व्यतिरेको विपक्षव्यावृत्तिः, अत्र गुणाधिक्यमिति भेदः ॥ २२ ॥

व्यतिरेकाद्विशेषोक्तेर्भेदं दर्शयितुमाह—

एकगुणहानिकल्पनायां साम्यदार्ढ्यं विशेषोक्तिः ॥ २३ ॥

एकस्य गुणस्य हानेः कल्पनायां शेषैर्गुणैस्साम्यं यत्तस्य दार्ढ्यं विशेषोक्तिः । रूपकं चेदं प्रायेणेति । यथा—

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ।
द्यूतं हि नाम पुरुषस्याऽसिंहासनं राज्यम् ॥
'निद्रेयमकमला[१] लक्ष्मीः ।' 'हस्ती हि जङ्गमं दुर्गम्' इति ।

अत्रापि जङ्गमशब्दस्य स्थावरत्वनिवृत्तिप्रतिपादन[२]त्वादेकगुणहानिकल्पनैव । एतेन—

वेश्या हि नाम मूर्तिमत्येव निकृतिः ।
व्यसनं हि नाम सोच्छ्वासं मरणम् ।
द्विजो भूमिबृहस्पतिः ।

इत्येवमादिष्वेकगुणहानिकल्पना व्याख्याता ॥ २३ ॥

'व्यतिरेक'से 'विशेषोक्ति' अलङ्कारका भेद दिखलानेके लिए कहते हैं—

एक गुणकी हानि (कमी) की कल्पना करनेपर समानताकी दृढता होना 'विशेषोक्ति' अलङ्कार है।

---

१. 'इयं ह्यकमला' इति 'ख-ग' पु० पा० ।
२. '…प्रतिपादनपरत्वा…' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

एक गुणकी हानि (न्यूनत्व) की कल्पना करनेपर बाकी गुणोंसे समानताका दृढ़ होना 'विशेषोक्ति' अलङ्कार है। यह प्रायः 'रूपक' अलङ्कार ही है। यथा—

जिस हिमालय पर्वतपर ओषधियाँ रातमें विना तेलके ही रतिकालीन दीप हो जाती हैं।

द्यूत तो मनुष्यका सिंहासनहीन राज्य है।

यह नींद कमलहीन लक्ष्मी है। (उक्त तीनों उदाहरणोंमें तेलहीन दीप, सिंहासन-हीन राज्य और कमलहीन लक्ष्मीकी समानतासे विशेषोक्ति अलंकार है)।

हाथी चलता हुआ किला है।

इस उदाहरणमें भी 'स्थावरत्वके निवर्तक' 'जङ्गम' शब्दसे एक गुणकी हानिकी कल्पना है। इससे—

वेश्य मूर्तिमती तिरस्कार है।

व्यसन (कष्ट) श्वासयुक्त मरण है।

ब्राह्मण पृथ्वीका वृहस्पति है।

इत्यादि स्थानोंमें क्रमशः 'मूर्तिमती' पदसे 'अमूर्तत्व' की, 'सोच्छ्वास' पदसे अनुच्छ्वासकी और 'भूमिवृहस्पति' पदसे अभौमत्व रूप एक-एक गुणोंकी निवृत्ति होकर शेष गुणोंसे समानताके दृढ होनेसे विशेपोक्ति' अलङ्कार है ॥ २३ ॥

विशेषोक्तिं विवेक्तुमाह—व्यतिरेकादिति। एकस्येति। अर्थादुपमेयगतस्य हानि-र्लोपः। वर्जनीयतया[1] रूपकमपि सम्भवतीत्याह—रूपकमिति।[2] अतैलपूरा इति। असिंहासनमिति। अकमलेति, अत्रैकगुणहानिकल्पना सिद्धयति। ननु जङ्गममित्येक-गुणहानिकल्पनाया अप्रतीतेः कथं विशेषोक्तिरिति ? तत्राह—अत्रापि जङ्गमशब्द-स्येति[3]। समर्थितामेकगुणहानिकल्पनामन्यत्रातिदिशति—एतेनेति। 'कुसृतिर्निकृति-श्शाठचम्' इत्यमरः। मूर्तिमत्येवेत्यत्रामूर्तत्वनिवृत्तिः, सोच्छ्वासमित्यत्रानुच्छ्वासता-निवृत्तिः, भूमिबृहस्पतिरित्यत्राभौमत्वनिवृत्तिश्च प्रतिपाद्यत इत्येकगुणहानिकल्पनाऽव-गन्तव्या ॥ २३ ॥

व्यतिरेकविशेषोक्तिभ्यां व्याजस्तुतिं भिन्नां दर्शयितुमाह—

सम्भाव्यविशिष्टकर्माकरणान्निन्दास्तोत्रार्था व्याजस्तुतिः ॥ २४ ॥

अत्यन्तगुणाधिको विशिष्टस्तस्य च कर्म विशिष्टकर्म, तस्य सम्भाव्यस्य कर्तुं शक्यस्याकरणान्निन्दाविशिष्टसाम्यसम्पादनेन स्तोत्रार्था व्याजस्तुतिः। यथा—

बबन्ध सेतुं[4] गिरिचक्रवालैर्बिभेद सप्तैकशरेण तालान्।
एवंविधं कर्म ततान रामस्त्वया कृतं तन्न मुधैव गर्वः ॥ २४ ॥

---

१. 'अवर्जनीयतया' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'रूपकमिति। भवन्तीत्यादि' इति 'ख' पु० पा०।
३. 'ननु जङ्गम·········जङ्गमशब्दस्येति' इति 'ख' पु० पाठः सम्यगिति वर्धितः।
४. 'सिन्धुं' इति 'क-ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'व्यतिरेक और विशेषोक्ति' अलङ्कारोंसे 'व्याजस्तुति' अलङ्कार भिन्न है, यह दिखलानेके लिए कहते हैं—

सम्भावनाके योग्य (उपमान रामादिरूप) विशिष्टके कार्यको नहीं करनेसे स्तुति-पर्यवसायिनी अर्थात् प्रशंसारूपमें बदलनेवाली निन्दा 'व्याजस्तुति' अलङ्कार है।

गुणोंमें अत्यन्त अधिक (उपमान 'राम' आदि) विशिष्ट है, उसका कर्म विशिष्ट-कर्म है, सम्भावनाके योग्य कर्म नहीं करनेके कारण निन्दासे युक्त स्तुति (प्रशंसा) करना 'व्याजस्तुति' अलङ्कार है। (इसमें 'निन्दा' के द्वारा उपमेयकी उपमानसे व्याजपूर्वक स्तुति करनेसे 'व्याजस्तुति' कही जाती है)। यथा—

रामने पर्वतोंके समूहोंसे समुद्रको बाँधा अर्थात् समुद्रमें पुल बनाया, एक बाणसे सात ताड़के वृक्षोंको गिराया, रामने ऐसा काम किया, परन्तु तूने नहीं किया, अतः तुम्हारा अभिमान व्यर्थ है। (इस उदाहरणमें समुद्रबन्धन और सप्ततालभेदन रूप सम्भाव्य कर्म राम द्वारा किये जाने पर तेरे द्वारा नहीं करनेसे प्रतीत होनेवाली निन्दा द्वारा उपमान रामसे उपमेय राजादि वर्ण्य व्यक्तिकी समानताका सम्पादन होनेसे 'व्याजस्तुति' अलङ्कार है। यहाँपर निन्दाके व्याज (छल) से स्तुति है। नवीन विश्वनाथने स्तुति द्वारा निन्दाके प्रतीयमान होनेपर भी 'व्याजस्तुति' अलङ्कार होना माना है। जैसा कि साहित्यदर्पण में कहा गया है—'....उक्ता व्याजस्तुतिः पुनः। निन्दास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां गम्यत्वे स्तुतिनिन्दयोः ॥' अर्थात् वाच्य निन्दा और स्तुतिसे क्रमशः स्तुति और निन्दाके गम्यमान होनेपर 'व्याजस्तुति' अलङ्कार होता है) ॥२४॥

व्याजस्तुतिं व्याख्यातुं प्रसङ्गं परिकल्पयति—व्यतिरेकेति। व्याचष्टे—अत्यन्तेति। विशिष्टो रामादिरुपमानभूतस्तस्य कर्म सेतुबन्धनादि, तस्य कर्तुं शक्यस्य कर्मणोऽकरणाद्वर्णनीयस्य निन्दा रामादिसाम्यापादानात् स्तुतिपर्यवसायिनी व्याजस्तुतिः। बबन्धेति। त्वं राम एवासीति तात्पर्यम्। निन्दाव्याजेन स्तुतिरूपत्वाद् व्यतिरेकविशेषोक्तिभ्यां भेदः ॥ २४ ॥

व्याजस्तुतेर्व्याजोक्तिं भिन्नां दर्शयितुमाह—

व्याजस्य सत्यसारूप्यं व्याजोक्तिः ॥ २५ ॥

व्याजस्य च्छद्मनः सत्येन सारूप्यं व्याजोक्तिः, यां मायोक्तिरित्याहुः। यथा—

शरच्चन्द्रांऽशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि !।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ॥ २५ ॥

'व्याजस्तुति' अलङ्कारसे 'व्याजोक्ति' अलङ्कार भिन्न है, यह दिखलानेके लिए कहते हैं—

व्याज अर्थात् छलके द्वारा कथित विषयका सच्चाईके साथ समानता प्रदर्शित करना 'व्याजोक्ति' अलङ्कार है।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

व्याज अर्थात् छलका सत्यके साथ समानता बतलाना 'व्याजोक्ति' अलङ्कार है। (कुछ अलङ्कारविद्) इसे 'मायोक्ति' कहते हैं। उदाहरण यथा—

हे भामिनि ! शरद् ऋतुकी चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत और हवासे उड़कर आये हुए काश-पुष्पके कणोंने (आँखमें पड़कर) मुखको अश्रुयुक्त कर डाला। (इस उदाहरणमें सात्त्विक भावसे किये गये अश्रुपातको असत्य काशपुष्पके कणसे करनेके वर्णनसे 'व्याजोक्ति' अलङ्कार है) ॥ २५ ॥

व्याजोक्तिं व्याकर्तुमाह—व्याजस्तुतेरिति । व्याचष्टे—व्याजस्येति । असत्यस्येत्यर्थः । सत्येन यथार्थेन । सारूप्यं सत्यत्वकल्पनया समुन्मिषितं सादृश्यम् । असत्ये[1] सत्यत्ववचनं व्याजोक्तिरिति लक्षणार्थः, व्याजोक्तिमिमां मतान्तरे संज्ञान्तरेण व्यवहरन्ति, न तु स्वरूपभेद इत्याह—यामिति । उदाहरति—यथेति[2] । चन्द्रांऽशुगौरेणेत्यनेन चन्द्रिकायां काशपुष्पलवस्याविवेचनीयता सूचिता । वाताविद्धेनेत्यनेनाऽप्रसक्तिशङ्का निराकृता । अत्र सत्येन सात्त्विकभावेन कृतोऽश्रुपातः पुष्पलवेन कृत इत्यसत्यस्य सत्यतोक्तिः । अत एव व्याजस्तुतितो भेदः ॥ २५ ॥

व्याजस्तुतेः पृथक् तुल्ययोगितेत्याह—

विशिष्टेन साम्यार्थमेककालक्रियायोगस्तुल्ययोगिता ॥ २६ ॥

विशिष्टेन न्यूनस्य साम्यार्थमेककालायां क्रियायां योगस्तुल्ययोगिता । यथा—

जलनिधिरशनामिमां धरित्रीं वहति भुजङ्गविभुर्भवद्भुजश्च ॥ २६ ॥

'व्याजस्तुति' से 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार पृथक् है, यह कहते हैं—

विशिष्ट अर्थात् अधिक गुणवाले उपमानके साथ समानता (कम गुणवाले उपमेय के साथ सादृश्य) दिखलानेके लिए एक समयमें होनेवालीसे उपमान और उपमेयका योग प्रदर्शित करना 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार है।

विशिष्ट अर्थात् गुणोंमें अधिक (उपमान) के साथ न्यून अर्थात् कम गुणवाली (उपमेयकी) समानताको एक साथ होनेवाली क्रियाओंसे प्रदर्शित करना 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार है। यथा—

समुद्र है रसना (करधनी) जिसकी, ऐसी इस पृथ्वीको सर्पराज (शेषनाग) और आपका बाहु, दोनों धारण करते हैं। (इस उदाहरणमें एककालिक धारणा क्रियाका शेषनाग और आपके बाहु द्वारा होनेसे इन दोनों (शेषनाग और बाहु) की समानता प्रदर्शित करनेके कारण 'तुल्योगिता' अलङ्कार है ॥ २६ ॥

तुल्ययोगितां वक्तुमाह—व्याजस्तुतेः पृथगिति । विशिष्टेन गुणाधिकेनोपमानेनेति यावत् । अर्थादत्र न्यूनस्येत्यनेनोपमेयस्येत्यवगम्यते । एकः कालो यस्याः सा एककाला तस्यां क्रियायां, साम्यार्थं यो योगः, सा तुल्ययोगिता । उदाहरति—जलनिधीति ॥२६॥

१. 'असत्यस्य' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'यथेति' इत्यत्र 'शरदिति' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उपमानाक्षेपश्चाक्षेपः ॥ २७ ॥

उपमानस्य आक्षेपः[1] प्रतिषेध उपमानाक्षेपः। तुल्यकार्यार्थस्य नैरर्थक्यविवक्षायाम्[2]। यथा—

तस्याश्चेन्मुखमस्ति सौम्यसुभगं किं पार्वणेनेन्दुना
सौन्दर्यस्य पदं दृशौ च यदि चेत्[3] किं नाम नीलोत्पलैः।
किं वा कोमलकान्तिभिः किसलयैः सत्येव तत्राधरे[4]
हा धातुः पुनरुक्तवस्तुरचनारम्भेष्वपूर्वो ग्रहः॥

उपमानस्याक्षेपतः[5] प्रतिपत्तिरित्यपि सूत्रार्थः। यथा—

ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद्दधानार्द्रनखक्षताभम्।
प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं तापं रवेरभ्यधिकं चकार॥

अत्र शरद्वेश्येव, इन्दुं नायकमिव, रवेः प्रतिनायकस्येत्युपमानानि गम्यन्त इति॥ २७॥

(आक्षेप अलङ्कारका लक्षण कहते हैं—) उपमानका निषेध करना 'आक्षेप' अलङ्कार है।

उपमानका आक्षेप अर्थात् प्रतिषेध करना 'आक्षेप' अलङ्कार है। समान कामवाले अर्थकी व्यर्थता प्रतिपादित करनेमें यह अलंकार है। यथा—

यदि उस(मेरी प्रेयसी)का मुख है, तो पूर्णिमाके चन्द्रमासे क्या काम है? यदि सुन्दरताके आश्रय दोनों नेत्र हैं, तो नीलकमलोंसे क्या लाभ है? अथवा उसके अधरके रहते कोमल कान्तिवाले नवपल्लवोंसे क्या प्रयोजन है? खेद है कि पुनरुक्त वस्तुओंको रचनेमें ही ब्रह्माका विचित्र आग्रह है। (इस उदाहरणमें नायिकाके मुख, दोनों नेत्र और अधरके रहनेपर पूर्णिमा चन्द्र, नीलकमल और नवपल्लवोंकी रचना की व्यर्थता बतलानेसे 'आक्षेप' अलङ्कार है।)

आक्षेपसे उपमानका प्रतीत होना भी इस सूत्रका अर्थ है। (इसका उदाहरण) जैसे—

पाण्डुवर्ण बादलों (पक्षान्तरमें—स्तनों) पर ताजे नखक्षतके सदृश इन्द्रधनुषको धारण की हुई, कलङ्कयुक्त (पक्षान्तरमें—परनायिकाके सम्भोग रूप कलङ्कसे युक्त) चन्द्रमाको प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ (पक्षान्तरमें—प्रतिनायकको खुश) करती हुई शरद् ऋतु (पक्षान्तरमें—नायिका) ने सूर्य (पक्षान्तरमें—प्रतिनायक) के सन्ताप (पक्षान्तरमें—कोप) को अधिक बढ़ा दिया। (इस उदाहरणमें शरद् ऋतु वेश्याके, चन्द्रमा नायकके और सूर्य प्रतिनायकके समान, इन उपमानोकी प्रतीति आक्षेप द्वारा होनेसे 'आक्षेप' अलङ्कार है)॥ २७॥

---

१. 'आक्षेपः' इति 'क-ख-ग' पु० पा०। २. '…विवक्षायामाक्षेपः' इति 'ख-ग' पु० पा०।
३. 'दृशौ च यदि ते' इति पाठः क्वचित्। ४. 'बिम्बाधरे' इति 'ग' पु० पा०।
५. 'उपमानस्याक्षेपः आक्षेपतः प्रति…' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

आक्षेपं लक्षयितुं सूत्रमुपक्षिपति—उपमानेति। उपमानस्य तादृगुपमेये सति नैरर्थक्यविवक्षायां प्रतिषेध आक्षेप इति वाक्यार्थः। तस्याश्चेन्मुखमित्युदाहरणम्। चकारेण समुच्चितार्थमाह—उपमानस्याक्षेपत[1] इति। आक्षेपोऽत्राकर्षणम्। ऐन्द्रं धनुरित्युदाहरणम्। अत्राक्षेपलभ्यं प्रकटयति—अत्र शरदिति ॥ २७ ॥

तुल्ययोगितायाः सहोक्तेर्भेदमाह—

वस्तुद्वयक्रिययोस्तुल्यकालयोरेकपदाभिधानं सहोक्तिः ॥ २८ ॥

वस्तुद्वयस्य क्रिययोस्तुल्यकालयोरेकेन पदेनाभिधानं सहाऽर्थशब्दसामर्थ्यात् सहोक्तिः। यथा—

'अस्तं भास्वान् प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि।'

अत्रार्थयोर्न्यूनत्वविशिष्टत्वे न स्त इति नेयं तुल्ययोगितेति ॥ २८ ॥

'तुल्ययोगिता' अलङ्कारसे 'सहोक्ति' अलङ्कारके भेद कहते हैं—

दो वस्तुओंकी एककालीन दो क्रियाओंका प्रतिपादन एक ही पदसे करनेपर 'सहोक्ति' अलङ्कार होता है।

दो वस्तुओंकी एक समयमें होनेवाली दो क्रियाओंका सहार्थक एक ही पदसे प्रतिपादन करनेपर सहार्थक शब्दके सामर्थ्यसे होनेके कारण 'सहोक्ति' अलङ्कार कहा जाता है। यथा—

शत्रुओंके साथ यह सूर्य अस्त हो गया (अस्ताचलको चला गया, शत्रुपक्षमें–छिप गया), अतः सेनाओंको समेट (वापस बुला) लो (इस उदाहरणमें शत्रुओं एवं सूर्यको एक साथ छिपने और अस्त होने रूप दो क्रियाओंका वर्णन 'सह' शब्दद्वारा होनेसे 'सहोक्ति' अलङ्कार है)।

यहाँपर अर्थोंकी कमी या अधिकता नहीं होनेसे 'तुल्ययोगिता' अलङ्कार नहीं है ॥ २८ ॥

सहोक्तिं वक्तुमाह—तुल्ययोगिताया इति। वस्तुद्वयसम्बन्धिन्योः क्रिययोः सहार्थानां सहशब्दपर्यायाणां ग्रहणसामर्थ्यादेकेन पदेनाभिधानं सहोक्तिः[2]। स्पष्टमुदाहरणम्। उभयोरलङ्कारयोर्भेदं दर्शयति—अत्रेति ॥ २८ ॥

समाहितमेकमवशिष्यते। तल्लक्षणार्थमाह—

यत्सादृश्यं तत्सम्पत्तिः समाहितम् ॥ २९ ॥

यस्य वस्तुनः सादृश्यं गृह्यते, तस्य वस्तुनः सम्पत्तिः समाहितम्। यथा—

---

१. '…स्याक्षेपः' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'सहोक्तिः। अस्तमिति–' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तन्वी मेघजलार्द्रपल्लवतया[1] धौताधरेवाश्रुभिः
शून्येवाभरणैः स्वकालविरहाद्विश्रान्तपुष्पोद्गमा ।
चिन्तामोहमिवास्थिता[2] मधुलिहां शब्दैर्विना लक्ष्यते
चण्डी मामवधूय पादपतितं जातानुतापेव सा ॥

अत्र पुरूरवसो लतायामुर्वश्याः सादृश्यं गृह्णतः सैव लतोर्वशी सम्पन्नेति ॥ २९ ॥

(शुद्ध अलङ्कारोंके भेदोंमें-से) एक 'समाहित' अलङ्कार बचा है, उसके लक्षणको कहते हैं—

जिस वस्तुकी समानता उपमेयमें प्रदर्शित करना है, उस(वस्तु)के स्वरूपको पा लेना 'समाहित अलङ्कार है ।

जिस वस्तुकी समानताको उपमेय वस्तुमें ग्रहण किया जाता है, उस वस्तुके रूपको उपमेयद्वारा पा लेना 'समाहित' अलङ्कार है । यथा—

(विक्रमोर्वशीय नाटकसे उद्धृत इस उदाहरणमें क्रुद्ध प्रेयसी उर्वशीके विषयमें पुरूरवाकी यह उक्ति है—) अत्यन्त क्रुद्ध यह (उर्वशी) पैरोंपर गिरे हुए मुझे अनादृत कर पछताती हुई, आँसुओंसे आर्द्र अधरतुल्य वर्षाके पानीसे आर्द्र पल्लवोंको धारण की हुई, ऋतुकाल (पुष्प निकलनेका समय) के न होनेसे पुष्पोद्गमहीन आभूषणोंको नहीं पहनी हुई और भौरोंके गूंजनके अभावमें चिन्तामें डूबकर मौत धारण की हुई लता-सी दिखलाई देती है ।

इस उदाहरणमें उपमेय उर्वशीकी समानताको लतामें देखनेवाले पुरूरवाके लिए उर्वशी ही लता हो गयी है, अतः 'समाहित' अलङ्कार है ॥ २९ ॥

समाहितं समीरयितुमाह—समाहितमिति । शुद्धेष्वलङ्कारभेदेषु समाहितमेकं लक्षयितुमवशिष्यत इत्यर्थः । यस्येति । तस्य सम्पत्तिस्तदाकारतापरिणतिः, ताद्रूप्यसम्पत्तिरिति यावत् । अत्रोदाहरणं विक्रमोर्वशीये दर्शयितुमाह—तन्वीति । लतायामुर्वशीसादृश्यं पश्यतः पुरूरवस इयमुक्तिः—अत्रेति । लतामवलोक्य तत्राश्रुधौताधरत्वाभरणशून्यत्वचिन्तामौनाऽऽश्रितत्वाध्यवसायेन सा तादृश्युर्वशीवेत्युत्प्रेक्षमाणस्य पुरूरवसः सैव लतोर्वशी सम्पन्नेति लताया उर्वशीत्वसम्पत्तेः सम्भवात् समाहितम् । शमनन्तरक्षणभावित्वेऽपि तत्सम्पत्तेस्तस्य तादात्मिकत्वाभिमानं सूचयितुं भूतप्रत्ययः ॥ २९ ॥

एते चालङ्काराः शुद्धा मिश्राश्च प्रयोक्तव्या इति विशिष्टानामलङ्काराणां मिश्रत्वं संसृष्टिरित्याह—

---

१. '···पल्लवतया' इति 'क-ख-ग' पु० पाठानुरोधात् लतायां वल्कलस्यार्द्रत्ववर्णनापेक्षयाधरे पल्लवस्यैव साम्यौचित्याच्चायं पाठः 'वल्कल' इत्यस्य स्थाने परिवर्तितः ।

२. 'चिन्तामौन···' इति 'ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अलङ्कारस्यालङ्कारयोनित्वं[1] संसृष्टिः ॥ ३० ॥

अलङ्कारस्यालङ्कारयोनित्वं[2] यदसौ संसृष्टिरिति। संसृष्टिः संसर्गः सम्बन्ध इति ॥ ३० ॥

शुद्ध (पूर्वोक्त प्रतिवस्तूपमा आदि) तथा मिश्र (आगे वक्ष्यमाण), इन अलङ्कारोंका प्रयोग करना चाहिए, अत एव विशिष्ट अलङ्कारोंका मिश्रण 'संसृष्टि' अलङ्कार है, यह कहते हैं—

अलङ्कारका अलङ्कारयोनि अर्थात् कार्यकारणभाव सम्वन्ध होना 'संसृष्टि' है।

किसी एक अलङ्कारका अन्य अलङ्कारके साथ जो अलङ्कार-योनित्व अर्थात् कार्यकारणभाव सम्वन्ध हो, वह सम्बन्ध 'संसृष्टि' है। संसृष्टिका अर्थ संसर्ग अर्थात् सम्वन्ध है ॥ ३० ॥

शुद्धालङ्कारनिरूपणोपसंहारव्याजेन मिश्रालङ्कारनिरूपणाय प्रसङ्गं प्रस्फोरयति—एते चेति। शुद्धाः पूर्वलक्षिताः। मिश्राः संसृष्टिभेदाः। शुद्धा इव मिश्रा अप्यलङ्काराः प्रयोगयोग्याः, शोभातिशयहेतुत्वादिति भावः। इतिशब्दो हेतौ। विशिष्टानामलङ्कार-[3]विशेषाणाम्। संसृष्टेर्लक्षणमाह—अलङ्कारस्येति। कार्यकारणभावापन्नयोरलङ्कारयोः सम्बन्धः संसृष्टिरित्यर्थः ॥ ३० ॥

तद्भेदावुपमारूपकोत्प्रेक्षावयवौ ॥ ३१ ॥

तस्याः संसृष्टेर्भेदावुपमारूपकं चोत्प्रेक्षावयवश्चेति ॥ ३१ ॥

अब संसृष्टिके भेदको दिखलानेके लिए सूत्र कहते हैं—उस(संसृष्टि)के दो भेद होते हैं—'उपमारूपक' और 'उत्प्रेक्षाऽवयव'।

उस 'संसृष्टि' के 'उपमारूपक' और 'उत्प्रेक्षाऽवयव'—ये दो भेद होते हैं ॥ ३१ ॥

संसृष्टिविभागं दर्शयितुं सूत्रमवतारयति—तद्भेदाविति। अलङ्कारयोनित्वमित्यत्र यथाक्रमं बहुव्रीहितत्पुरुषाश्रयणेन द्वौ भेदौ भवतः—उपमारूपकमुत्प्रेक्षावयवश्चेति ॥३१॥

उपमाजन्यं रूपकमुपमारूपकम् ॥ ३२ ॥

स्पष्टम्[4]। यथा—

निरवधि च निराश्रयं च यस्य स्थितमनिवर्तितकौतुकप्रपञ्चम्।
प्रथम इह[5] भवान् स कूर्ममूर्तिर्जयति चतुर्दशलोकवल्लिकन्दः ॥

एवं रजनिपुरन्ध्रिलोध्रतिलकः,[6] इत्येवमादयस्तद्भेदा द्रष्टव्याः ॥ ३२ ॥

१-२. 'योगित्वं' इति 'क' पु० पा०।
३. '……लङ्काराणामलङ्कारविशेषाणाम्……' इति 'ख' पु० पा०।
४. 'स्पष्टम्' इति 'क-ख-ग' पु० नास्ति।
५. 'इव' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।
६. '…तिलकः शशी' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

(उन दोनोंमें-से प्रथम 'उत्प्रेक्षारूपक'के लक्षणके लिए सूत्र कहते हैं—) उपमाजन्य रूपक 'उपमारूपक' अलङ्कार है।

अर्थ स्पष्ट है। उदाहरण जैसे—

जिन (की पीठ) पर अवधिहीन (असीम), आश्रयरहित तथा शाश्वतिक कौतुक-प्रपञ्चसे भरा हुआ विश्व स्थित है, चौदह भुवनरूप लताका कन्द (मूलस्वरूप) कच्छप मूर्तिवाले आप इस संसारमें प्रथम (अनुपम) हैं।

इस प्रकार 'रजनिपुरन्ध्रितिलकः शशी' अर्थात् रात्रि-रूपिणी स्त्रीके तिलक रूप चन्द्रमा' इत्यादि 'उपमारूपक' अलङ्कारके भेदोंको देखना चाहिए ॥ ३२ ॥

तत्राद्यमुपक्षेप्तुं सूत्रमुपक्षिपति—उपमाजन्यमिति। सूत्रमिदं निगदव्याख्यानमित्यभिसन्धाय उदाहरणं दर्शयति—यथेति। नन्वत्र कूर्ममूर्तेः कन्दत्वारोपाल्लोकानां वल्लित्वारोपणं वक्तुं युक्तम्। तथा च रूपकजन्यं[1] रूपकमिति वक्तव्यम्। यन्मतान्तरे परम्परितरूपकमित्युच्यते, तत् कथमिदमुपमाजन्यं रूपकमिति चेत्? सत्यम्। लोको वल्लिरिव लोकवल्लिः। व्याघ्रादेराकृतिगणत्वादुपमितसमासः। लोकवल्ल्याः कन्द इति कूर्ममूर्तौ कन्दत्वारोपणमिह ग्रन्थकृतो विवक्षितमिति न दोषः। इत्थमेव, 'रजनिपुरन्ध्री'त्यादावपि द्रष्टव्यम् ॥ ३२ ॥

उत्प्रेक्षाहेतुरुत्प्रेक्षावयवः ॥ ३३ ॥

उत्प्रेक्षाया हेतुरुत्प्रेक्षावयवः[2]। अवयवशब्दो ह्यारम्भकं लक्षयति। यथा—

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥

एभिर्निदर्शनैः स्वीयैः परकीयैश्च पुष्कलैः।
शब्दवैचित्र्यगर्भेयमुपमैव प्रपञ्चिता ॥
अलङ्कारैकदेशा ये मताः सौभाग्यभागिनः।
तेऽप्यलङ्कारदेशीया योजनीयाः कवीश्वरैः ॥ ३३ ॥

इति श्रीकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तावालङ्कारिके चतुर्थेऽधिकरणे तृतीयोऽध्यायः। समाप्तं चेदमालङ्कारिकं चतुर्थमधिकरणम्।

(अब 'उत्प्रेक्षाऽवयव' का लक्षण कहते हैं—) उत्प्रेक्षा का हेतु रूप रूपक अलङ्कार 'उत्प्रेक्षाऽवयव' अलङ्कार होता है।

अतः उत्प्रेक्षाका हेतु (कारण) रूप (रूपक आदि कोई अन्य अलङ्कार) 'उत्प्रेक्षाऽवयव' अलङ्कार होता है। उत्प्रेक्षाका अवयव 'उत्प्रेक्षाऽवयव' है। अवयव शब्द 'आरम्भ' (हेतु) को लक्षित करता है। यथा—

१. '······जन्यमिह' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'हेतुरलङ्कारः उत्प्रेक्षावयवः' इति क-ख-ग पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

चन्द्रमा अङ्गुलियोंके समान किरणोंसे (नायिकाके) केश-समूह रूप अन्धकारको समेट (हटा) कर वन्द किये गये कमल रूप आँखवाले रात्रि (पक्षान्तरमें—नायिका) के मुखको मानो चूम (छू) रहा है (इस उदाहरणमें उत्प्रेक्षासे अनुप्राणित श्लेषका उत्प्रेक्षोपपादकतामें हेतु होनेसे 'उत्प्रेक्षाऽवयव' अलङ्कार है)।

स्वकीय तथा परकीय, इन बहुत-से निदर्शनों (उदाहरणों) से, शब्दोंकी विचित्रतासे भरी हुई इस उपमाका ही प्रपञ्च हुआ है।

अलङ्कारोंके एकदेश जो (अलङ्कार) सुन्दर माने गये हैं, अलङ्कारोंके एकदेशीय उन अलङ्कारोंका प्रयोग भी श्रेष्ठ कवियोंको करना चाहिए ॥ ३३ ॥

उत्प्रेक्षावयवं लक्षयितुमाह—उत्प्रेक्षाहेतुरिति । अवयव शब्द इति । अवयव आरम्भको हेतुरित्यर्थः । अङ्गुलीभिरिति । अत्रोपमारूपकानुप्राणितस्य श्लेषस्य उत्प्रेक्षोपपादकत्वादुत्प्रेक्षावयवत्वम् । अमीषामलङ्काराणामुपमाप्रपञ्चरूपत्वमुपपादितमुपसंहरति—एभिरिति । निदर्शनैरुदाहरणैः । अलङ्काराणामविकललक्षण[1]लक्षितानां शोभातिशयजनकत्वं कैमुतिकन्यायेन सिद्धमिति सूचयितुं तदेकदेशानामपि शोभातिशयहेतुत्वमस्तीत्याह—अलङ्कारेति ॥ ३३ ॥

इति कृतरचनायामिन्दुवंशोद्वहेन त्रिपुरहरधरित्रीमण्डलाखण्डलेन ।
ललितवचसि काव्यालङ्क्रियाकामधेनावधिकरणमयासीत् पूर्तिमेतच्चतुर्थम् ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां वामनालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनावालङ्कारिके चतुर्थेऽधिकरणे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

---

१. 'अलङ्काराणामप्येकलक्षण...' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्रायोगिकं नाम पञ्चममधिकरणम्

प्रथमोऽध्यायः

सम्प्रति काव्यसमयं शब्दशुद्धिं च दर्शयितुं प्रायोगिकाख्यमधिकरणमारभ्यते। तत्र काव्यसमयस्तावदुच्यते।

नैकं पदं द्विः प्रयोज्यं प्रायेण ॥ १ ॥

एकं पदं न द्विः प्रयोज्यं प्रायेण बाहुल्येन। यथा—'पयोद पयोद' इति। किञ्चिदिवादिपदं[1] द्विरपि प्रयोक्तव्यमिति। यथा—'सन्तः सन्तः, खलाः खलाः'[2] ॥ १ ॥

(काव्यके प्रयोजन, अधिकारी, आत्मा, अङ्ग, भेद, दोष, गुण और अलङ्कारोंको कहकर) अब प्रयोगके नियम और शब्दशुद्धिका अवसर आनेसे प्रयोगके नियामक होनेसे 'प्रायोगिक' नामक (पञ्चम) अधिकरण आरम्भ किया जाता है (इस अधिकरणके प्रथमाध्यायमें काव्य-रचनामें परम्परागत प्रयोगोंकी मर्यादाका और द्वितीयाध्यायमें शब्दोंकी शुद्धि-अशुद्धिका विवेचन किया गया है)—

(काव्यमें) एक पदका दो बार प्रयोग प्रायः नहीं करना चाहिए।

(काव्य-रचनामें) एक पदका दो बार प्रयोग प्रायः नहीं करना चाहिए। (इससे काव्यमें नीरसता आनेसे सुन्दरता नहीं रहती) यथा—

पयोद पयोद।

सूत्रमें 'प्रायेण'के ग्रहणसे कभी-कभी दो बार 'च' आदि एक शब्दका प्रयोग करना चाहिए। यथा—

'सन्तः सन्तः, खलाः खलाः' अर्थात् सज्जन सज्जन ही है और दुष्ट दुष्ट ही हैं (यहाँ दो सज्जनोंकी सज्जनता और दुष्टोंकी दुष्टताका वैशिष्टच बतलानेके कारण दो बार शब्दका प्रयोग निर्दोष है। इसी प्रकार 'ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः' अर्थात् वे इन्द्रादि देव समुद्रके पास गये और आदिपूरुष (ब्रह्मा) जाग गये' यहाँपर 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य' (भिन्न-भिन्न अर्थोंमें संक्रमित) होनेसे 'च' शब्दका दो बार प्रयोग दोषाधायक नहीं है) ॥ १ ॥

किरन्ती कौतुकस्मेरैः कटाक्षैः करुणाऽमृतम्।
समये सन्निधत्तां मे संल्लपन्ती सरस्वती ॥ १ ॥

---

१. 'किञ्चिद्धि चादिपदं' इति 'ग' पु० पा०।

२. 'यथा—सन्तः सन्तः, खलाः खलाः' इति 'ग' पु० नास्ति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

निर्हेतुके नियतिनिस्पृहमुज्जिहाने कान्तानिभे कविवरप्रतिभाविवर्ते ।
प्रत्यर्थिशून्यपरनिर्वृतिके प्रपञ्चे सारस्वतेऽस्तु समयः सुधियाऽनुपाल्यः ॥ २ ॥

प्रायोगिकं पञ्चममधिकरणमारभ्यते । अधिकरणान्तरारम्भौचित्यमासूत्रयति—सम्प्रतीति । सम्प्रतिशब्देन काव्यस्य प्रयोजनाधिकार्यात्माङ्गभेददोषगुणालङ्कारेषु दर्शितेषु प्रयोगनियमशब्दशुद्धचोः प्राप्तावसरत्वं प्रत्याय्यते । प्रयोगविषये नियामकत्वेन भवतीति प्रायोगिकम् । तयोः प्रथमं प्रयोगमर्यादा पर्यालोच्यते इत्याह—तत्रेति । समयः सङ्केतः, [1]प्रयोगवर्ज्यावर्ज्यनियम इति यावत् । न द्विः प्रयोज्यमिति । प्रतीतिवैरस्यादशक्तिसूचकत्वाच्चेत्यभिप्रायः । प्रायग्रहणस्य प्रयोजनमाह—किञ्चिदिति । यथा—('ते च प्रापुरुदन्वतं बुबुधे चादिपुरुषः' । इति ।) आदिग्रहणात् पदानुप्रासपदयमकेषु[2] द्विःप्रयोगो न दोषायेति द्रष्टव्यम् ॥ १ ॥

नित्यं[3] संहितैकपदवत् पादेष्वर्धान्तवर्जम् ॥ २ ॥

नित्यं[4] संहिता पादेष्वेकपदवदेकस्मिन्निव पदे । तत्र हि नित्या संहितेत्याम्नायः । यथा—'संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोरि'ति । अर्धान्तवर्जमर्धान्तं वर्जयित्वा ॥ २ ॥

छन्दोंमें आधे पद्यके अन्तिम भागको छोड़कर एक पदके समान ही पादों (चरणों) में सन्धि नित्य करना चाहिए ।

जिस प्रकार एक पदमें सन्धि अवश्य होती है, उसी प्रकार पद्योंके चरणोंमें भी सन्धि नित्य करना चाहिए। एक पद (रमेशः, देवेन्द्रः'....) में सन्धिके नित्य होनेका शास्त्रीय नियम भी है। यथा—

'संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः । नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥'—एक पदमें, धातु और उपसर्गमें तथा समासमें नित्य सन्धि होतीं है, किन्तु वाक्यमें वक्ताकी इच्छा पर सन्धि अपेक्षित है (सि० कौ० 'शेषे विभाषाऽकखादा....' पा० ८।४।१८ सू० द्र०) ।

इस सन्धिको अर्धान्त (आधेके अन्तिम अर्थात् पहले पादके अन्तिम तथा दूसरे पादके आदि भाग, दूसरे पादके अन्तिम और तृतीय पादके आदि भाग तथा तृतीय पादके अन्तिम और चतुर्थ चरणके आदि भागको) छोड़कर नित्य सन्धि करना चाहिए ॥ २ ॥

नित्यमिति[5] । एकस्मिन् पदे संहिता प्रकृष्टसन्निकर्षो यथा नित्या तथा पादेष्वपि संहिता नित्या भवति । आम्नायः प्रमाणम् । प्रमाणवचनं [6]दर्शयति—संहितेति । अविशेषेण सर्वत्र प्राप्तौ संहितां क्वचित् पर्युदस्यति—अर्धान्तवर्जमिति ॥ २ ॥

---

१. 'प्रयोगे वर्ज्या......' इति 'ख' पु० पा० । २. '...प्रासपादयमकेषु' इति 'ख' पु० पा० ।
३–४. 'नित्या' इति 'ख-ग' पु० पा० । ५. 'नित्येति' इति 'ख' पु० पा० ।
६. 'आम्नायः प्रमाणवचनम् । तं दर्शयति' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

न पादान्तलघोर्गुरुत्वं च सर्वत्र ॥ ३ ॥

पादान्तलघोर्गुरुत्वं प्रयोक्तव्यम् । न सर्वत्र, न सर्वस्मिन् वृत्त इति । यथा—

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः ।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥

एवम्प्रायेष्वेव वृत्तेष्विति । न पुनः—'वरूथिनीनां रजसि प्रसर्पति समस्तमासीद्विनिमीलितं जगद्' इत्यादिषु । चकारोऽर्धान्तिवर्जमित्यस्याऽनुकर्षणार्थः ॥ ३ ॥

(यद्यपि—'सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः । वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मातृको ल्वृजुः ॥' (वृ० रत्ना० १।९) अर्थात् अनुस्वारसहित वर्ण, जिसके अन्तमें विसर्ग हो वह वर्ण, दीर्घ वर्ण, जिसके आगे संयुक्ताक्षर हो वह वर्ण, गुरु तथा पादके अन्तवाला वर्ण विकल्पसे गुरु होता है, उसका स्वरूप वक्र (ऽ) और इससे भिन्न एक मात्रावाला वर्ण लघु होता है, इसका स्वरूप सीधा (।) होता है। इस उक्तिके अनुसार पादान्त वर्णको विकल्पसे गुरु माना गया है, तथापि वह नियम सार्वत्रिक नहीं है, यह कह रहे हैं—) पादान्त लघु वर्ण सर्वत्र गुरु नहीं होता है।

पादान्त (छन्दके चरणोंके अन्तवाले) लघु वर्णको गुरुत्व रूपमें प्रयोग करना चाहिए, किन्तु सभी छन्दोंमें नहीं । यथा—

पहले मेरे घरकी देहलियोंपर दी गयी बलि (यज्ञशेष अन्न) हंस और सारस-समूहोंसे लुप्त (उनके खा जानेसे अदृश्य) हो जाती थी, पहले दी गयी बलिवाले यवोंके अङ्कुरोंवाली उन्हीं (गृहकी देहलियों) में कीड़ोंके खाये गये बीजोंकी अञ्जलियाँ अर्थात् बहुत-से बीजोंकी राशि गिरती हैं। ('वसन्ततिलका' छन्दवाले इस उदाहरणके तृतीय चरण 'पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु' में अन्तिम 'सु' वर्ण लघु है, उसे 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' (तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु—वृ० रत्ना०) के अनुसार गुरु होना चाहिए, इसे लघु होनेपर भी इस सूत्र (५।१।३) के नियमानुसार 'गुरु' माननेसे ऐसे छन्दोंमें दोष नहीं है)।

इसी प्रकार 'इन्द्रवज्रा' आदि छन्दोंमें भी समझना चाहिए। किन्तु पादान्त लघु वर्णका प्रयोग सर्वत्र 'गुरुत्व' में नहीं होता है। यथा—

सेनाओंकी धूलके फैलते रहनेपर समूचा संसार अन्धकारपूर्ण हो गया इत्यादिमें ('वरूथिनीनां''''जगत्' वंशस्थ वृत्तवाले इस उदाहरणके पादके अन्तिम वर्णको 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' (वृ० रत्ना०) अर्थात् वंशस्थके प्रत्येक पादोंमें 'जगण, तगण जगण और रगण' होते हैं, इस नियमके अनुसार 'प्रसर्पति' को गुरु होना चाहिए, किन्तु गुरु न होनेसे यहाँ वृत्तका दोष ग्रन्थकारके सिद्धान्तसे है, क्योंकि 'वृत्तरत्नाकरके पादके अन्तिम वर्णको विकल्पसे गुरु होनेका सिद्धान्त 'व्यवस्थित विभाषा' है)।

इस सूत्रमें 'च'कारका ग्रहण पूर्वसूत्र(५।१।२)स्थ 'अर्द्धान्तवर्जम्' पदकी अनुवृत्तिके लिए है ॥ ३ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यद्यपि, वा पादान्त (वृत्तरत्ना० १।९) इति पादान्तवर्णस्य लघोर्गुरुत्वं विकल्पेन विहितं, तदपि न सर्वत्र भवतीति प्रतिपादयितुमाह—न पादान्तेति। प्रथमं तावल्लघो-र्गुरुत्वं दर्शयति—यथेति। एवम्प्रायेष्विति।

श्रीतिप्पभूपालक मध्यलोकदेवेन्द्र वज्राङ्गदचन्द्रिकाभिः।
त्वद्बाहुराभाति हसन्निवायं प्रौढौ प्रदाने मणिपारिजातौ॥

इत्यादिषु इन्द्रवज्रादिषु उपजातिभेदेष्वपि द्रष्टव्यम्। प्रतिषेधविषयं प्रदर्शयति—न पुनरिति। तेन, 'वा पादान्त' (वृत्तरत्नाकर १।९) इत्यस्य व्यवस्थितविभाषा वेदितव्या॥ ३॥

न गद्ये समाप्तप्रायं वृत्तमन्यत्रोद्गतादिभ्यः संवादात्॥ ४॥

गद्ये समाप्तप्रायं वृत्तं न विधेयम्; शोभाभ्रंशात्। अन्यत्रोद्गतादिभ्यो विषमवृत्तेभ्यः। संवादाद् गद्येनेति॥ ४॥

गद्यमें समाप्तप्राय (समाप्त-सा प्रतीयमान अर्थात् अपूर्ण) वृत्त (छन्द) का प्रयोग नहीं करना चाहिए, किन्तु साम्य होनेसे 'उद्गता' आदि छन्दोंको छोड़कर अर्थात् गद्यके साम्य होनेसे समाप्तप्राय 'उद्गता' आदि छन्दोंका प्रयोग गद्यमें दोष नहीं है।

(वृत्तगन्धि' आदि) गद्यकी शोभा बिगड़ जानेके कारण गद्यमें समाप्तप्राय (समाप्त-सा प्रतीत होनेपर भी असमाप्त) छन्दका प्रयोग नहीं करना चाहिए; किन्तु गद्यके साथ संवाद होनेके कारण 'उद्गता' आदि विषम वृत्तोंका प्रयोग करना वर्जित नहीं है। (गद्यके चार भेदोंमें-से 'वृत्तगन्धि' गद्यका लक्षण साहित्यदर्पण में तथा 'उद्गता' आदि छन्दोंका लक्षण वृत्तरत्नाकर में देखना चाहिए)॥ ४॥

न गद्य इति। गद्ये वृत्तगन्धिनि समाप्तप्रायं परिपूर्णकल्पं वृत्तं न विधेयम्। तत्र हेतुमाह—शोभेति। गद्यपरिपाटीविसंवादेन शोभाभ्रंशो जायत इत्यर्थः। अन्यत्रेति। उद्गतादिषु विषमवृत्तेषु गद्यसंवादिषु किञ्चिद् वृत्तं समाप्तप्रायमपि गद्ये प्रयोक्तव्यम्। तत्र हेतुः—संवादादिति, विसंवादाभावादित्यर्थः॥ ४॥

न पादादौ खल्वादयः॥ ५॥

पादादौ खल्वादयः शब्दा न प्रयोज्याः। आदिशब्दः प्रकारार्थः। येषामादौ प्रयोगो न श्लिष्यति, ते गृह्यन्ते। न पुनर्बतहन्तप्रभृतयः॥ ५॥

पादके आदिमें 'खलु' आदि (इव, इत्यादि) का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

पादके आदिमें 'खलु' आदि ('आदि' शब्दसे 'इव' आदि) का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि सुननेमें नीरसता आती है। सूत्रोक्त 'आदि' शब्द प्रकारार्थक होनेसे जिनका प्रयोगमें करना क्लिष्ट (सुन्दर) नहीं लगता, उन शब्दोंका ग्रहण है (यथा—'खलूक्त्वा खलु वाचिकम्' (वचन कहना व्यर्थ है), 'इव सीतागृहच्छद्म-च्छन्नो लङ्कापतिः पुरा।' (पहले रावण सीताके घर रूप कपटमें छिपनेके समान

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

था), 'कामिनियोंका किलकिञ्चित् ही कामीलोगोंके मोहको पैदा करता है' आदि उदाहरणोंमें क्रमशः 'खलु, इव और किल' शब्दोंका प्रयोग उचित नहीं है)। परन्तु 'हन्त-बत' आदिका प्रयोग करना वर्जित नहीं है (यथा—'हन्त जातमजातारेः प्रथमेन त्वयाऽरिणा।' यहाँपर पादके आदिमें 'हन्त' शब्दका प्रयोग दूषित नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य स्थलोंमें जानना चाहिए) ॥ ५ ॥

न पादादाविति। पादादौ खल्वादिप्रयोगो न श्लिष्यति, श्रुतिविरसत्वादिति भावः। यथा—'खलूक्त्वा खलु वाचिकम्। इव सीतागृहच्छद्मच्छन्नो लङ्कापतिः पुरा। किल सृजति कामिनीनां किलकिञ्चितमेव कामिजनमोहम्।' इत्यादि ॥ ५ ॥

नाऽर्धे किञ्चिदसमाप्तप्रायं[1] न वाक्यम् ॥ ६ ॥

वृत्तस्यार्धे किञ्चिदसमाप्तप्रायं[2] न प्रयोक्तव्यम्। यथा—

जयन्ति ताण्डवे शम्भोर्भङ्गुराऽङ्गुलिकोटयः।
कराः कृष्णस्य च भुजाश्चक्रांशुकपिशत्विषः ॥ ६ ॥

श्लोकके आधे भागमें असमाप्तप्राय वाक्यका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वृत्त (श्लोक) के आधे भागमें कुछ असम्पूर्ण अर्थात् एक पदसे अवशिष्ट वाक्यका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यथा—

ताण्डव नृत्तके समय टेढी अङ्गुलियोंके अग्र भागवाले, शिवजीके हाथ और सुदर्शन चक्रकी किरणोंसे कपिश (कुछ पीले) वर्णवाले, कृष्णजीकी भुजाएँ विजयी हों। (इस श्लोकके आधे भागके बाद 'कराः' (शङ्करजीके हाथों) के प्रयोगसे पूर्वार्द्धका वाक्य अपूर्ण रह जाता है, अतः इस 'कराः' शब्दका प्रयोग श्लोकके पूर्वार्द्धमें नहीं, बीचमें ही सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है) ॥ ६ ॥

नार्ध इति। किञ्चित्समाप्तमेकपदावशेषं वाक्यमेकपदार्थविशेषवाक्यार्थप्रतिपादकमित्यर्थः। तादृशमर्थमुदाहरति—जयन्तीति ॥ ६ ॥

न कर्मधारयो बहुव्रीहिप्रतिपत्तिकरः ॥ ७ ॥

बहुव्रीहिप्रतिपत्तिं करोति यः कर्मधारयः, स न प्रयोक्तव्यः। यथा—'अध्यासितश्चासौ तरुश्चाध्यासिततरुः' इति ॥ ७ ॥

बहुव्रीहि समासकी प्रतीति करानेवाले कर्मधारय समासका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जो पद बहुव्रीहि समासकी प्रतीति कराता हो, ऐसे कर्मधारय समासवाले पदका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यथा—

'अध्यासिततरुः' शब्दके पूर्ववाले 'अध्यासित' शब्दके 'निष्ठा' अर्थात् 'क्त' 'प्रत्ययान्त होनेसे 'अध्यासितस्तरुर्येन सः अध्यासिततरुः' ऐसे बहुव्रीहि समासकी प्रतीति

१–२. 'किञ्चित्समाप्तं' इति 'ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

होनेसे 'अध्यासितश्चासौ तरुश्च' इस विग्रहमें कर्मधारय समासवाले पदका प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥

न कर्मधारय इति । वृत्तिः स्पष्टार्था । तादृशमुदाहरणं दर्शयति—अध्यासितेति । निष्ठापूर्वपदत्वेन बहुव्रीहिप्रतिपत्तेरेव पुरःस्फूर्तिकत्वादिति भावः ॥ ७ ॥

तेन विपर्ययो व्याख्यातः ॥ ८ ॥

बहुव्रीहिरपि कर्मधारयप्रतिपत्तिकरो न प्रयोक्तव्यः । यथा—'वीराः पुरुषा यस्य स वीरपुरुषः' । 'कलो रवो यस्य स कलरवः' इति ॥ ८ ॥

इससे विपरीतकी व्याख्या हो गयी अर्थात् अन्य समासकी प्रतीति करानेवाले शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिए, ऐसा फलितार्थ उक्त (५।१।७) सूत्रका होने-से कर्मधारय समासकी प्रतीति करानेवाले बहुव्रीहि समासयुक्त शब्दके प्रयोगका भी निषेध हो गया ।

कर्मधारय समासकी प्रतीति करानेवाले बहुव्रीहि समासयुक्त शब्दका भी प्रयोग नहीं करना चाहिए । यथा—

'वीरश्चासौ पुरुषः वीरपुरुषः' ऐसे विग्रहसे कर्मधारयकी प्रतीति करानेवाले 'वीराः पुरुषा यस्य स वीरपुरुषः' इस प्रकारके बहुव्रीहि समासयुक्त पदका तथा 'कलश्चासौ रवः कलरवः' इस प्रकारके विग्रह करनेसे कर्मधारयकी प्रतीति करानेवाले 'कलो रवो यस्य सः कलरवः' इस प्रकार बहुव्रीहि समासयुक्त पदका प्रयोग भी नहीं करना चाहिए ॥ ८ ॥

तेनेति । समासान्तरप्रतिपत्तिकृतः समासस्य प्रयोगो न कार्य इति न्यायो यः फलितः पूर्वसूत्रे, तेनेत्यर्थः । विपर्ययशब्दार्थं विवृणोति—बहुव्रीहिरपीति । वीराः पुरुषा यस्येति । राजा चासौ पुरुष इति[1] । राजा पुरुषो यस्येति वा राजपुरुष इति कर्मधारयो बहुव्रीहिर्वा ईदृशो न कर्त्तव्य इति तात्पर्यम् ॥ ८ ॥

सम्भाव्यनिषेधनिवर्तने द्वौ प्रतिषेधौ ॥ ९ ॥

सम्भाव्यस्य निषेधस्य निवर्तने द्वौ प्रतिषेधौ प्रयोक्तव्यौ । यथा—

समरमूर्धनि येन तरस्विना न न जितो विजयी त्रिदशेश्वरः ।
स खलु तापसबाणपरम्पराकवलितक्षतजः क्षितिमाश्रितः ॥ ९ ॥

सम्भावनाके योग्यके निषेधकी निवृत्तिके लिए दो प्रतिषेधों (प्रतिषेधवाचक शब्दों) का प्रयोग करना चाहिए ।

सम्भाव्यके निषेधकी निवृत्तिके लिए दो प्रतिषेधवाचक (न आदि) शब्दका प्रयोग करना चाहिए । यथा—

१. 'राजा चासौ पुरुष इति' इति पाठः 'ख' पु० अनुरोधादौचित्याच्च सन्निवेशितः ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

बलवान् जिस (रावण)ने युद्धके अग्रभागमें देवराज (इन्द्र) को नहीं जीता, ऐसा नहीं अर्थात् अवश्यमेव जीत लिया, तपस्वी (राम) के बाण-समूहसे पान किये गये रक्तवाला वह (रावण मरकर) पृथ्वीपर पड़ा है (इस उदाहरणमें 'न न जितः' इस प्रकार दो बार 'न न' का प्रयोग करनेसे उसकी जीते जानेकी सम्पुष्टि की गयी है) ॥ ९ ॥

सम्भाव्यस्येति । सम्प्रतिपत्तियोग्यस्य प्राप्तिपूर्वकत्वात् प्रतिषेधस्येति भावः । समरेति । न जित इति न, जित एवेत्यर्थः ॥ ९ ॥

विशेषणमात्रप्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तौ ॥ १० ॥

विशेष्यस्य प्रतिपत्तौ जातायां विशेषणमात्रस्यैव प्रयोगः । यथा—

'निधानगर्भामिव सागराऽम्बराम्'.।

अत्र हि पृथिव्या विशेषणमात्रमेव प्रयुक्तम् । एतेन—

'क्रुद्धस्य तस्याऽथ पुरामरातेर्ललाटपट्टादुदगादुदर्चिः ।'

'गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः' ।

इत्यादयो व्याख्याताः[१] ॥ १० ॥

विशेष्यकी प्रतिपत्ति (बोध) हो जानेपर केवल विशेषणका ही प्रयोग करना चाहिए ।

विशिष्ट विशेषणके द्वारा विशेष्यका ज्ञान हो जानेपर केवल विशेषणका प्रयोग करना चाहिए (विशेष्यका नहीं) । यथा—

'निधानगर्भामिव सागराम्बराम्' 'निधान' भीतरमें है जिसके, समुद्र ही वस्त्र है जिसका—इन दोनों 'निधानगर्भाम्' और 'सागराम्वराम्' विशेषणोंसे केवल विशेष्य पृथ्वीका ही बोध होता है (दूसरे किसीका नहीं) ।

अतः वहाँ पृथ्वीके उक्त दोनों विशेषणोंका ही प्रयोग किया गया है (विशेष्य पृथ्वीका प्रयोग नहीं) । इस व्याख्यानसे—

'क्रुद्धस्य''''दुदर्चिः' (क्रुद्ध त्रिपुरारि (शङ्करजी) के ललाटसे ऊपर उठती हुई किरणोंवाली (आग) निकल पड़ी) (इस उदाहरणमें विशिष्ट 'उदर्चिः' विशेषण-द्वारा विशेष्य अग्निकी प्रतीति हो जानेके कारण 'अग्नि'का प्रयोग नहीं किया गया है) ।

'गिरेस्तडित्वा''''दच्युतः' (तभीतक उन्नत (सुमेरु) पर्वतसे बिजलीयुक्त (मेघ) के समान ऊँचे सिंहासनसे कृष्ण शीघ्र उठ गये ।) इस उदाहरणमें भी अनन्य-साधारण 'तडित्वान्' विशेषणके द्वारा ही विशेष्य मेघका बोध हो जानेपर पुनः 'विशेष्य मेघका' प्रयोग नहीं किया गया है) ।

इत्यादि उदाहरणोंकी व्याख्या हो गयी ॥ १० ॥

---

१. 'इत्यादयः प्रयोगा व्याख्याताः' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विशेषणेति । यत्रानन्यसाधारणविशेषणमहिम्ना विशेष्यस्य प्रयोगमन्तरेण प्रतिपत्तिर्भवति, तत्र विशेषणमात्रप्रयोगः क्रियते. । तदुदाहृत्य दर्शयति—निधानेति । अत्र सागराम्बरत्वं भुव एव, ऊर्ध्वार्चिर्योगश्चाग्नेरेव, तडित्सम्बन्धश्च मेघस्यैवेत्यनन्यसाधारणत्वम्[1] । यत्र तु विशेषणमहिम्ना प्रतिपन्नं विशेष्यं साधारणविशेषणविशिष्टमभिधित्सितं, तत्र विशेष्यस्यापि गतार्थस्य प्रयोगे न दोष इत्यपि द्रष्टव्यम् ॥ १० ॥

सर्वनाम्नाऽनुसन्धिर्वृत्तिच्छन्नस्य ॥ ११ ॥

सर्वनाम्नानुसन्धिरनुसन्धानं प्रत्यवमर्शः[2] । वृत्तिच्छन्नस्य वृत्तौ समासे छन्नस्य गुणीभूतस्य । यथा—

'तवापि नीलोत्पलपत्र[3]चक्षुषो मुखस्य तद्रेणुसमानगन्धिनः ।' इति ॥ ११ ॥

वृत्ति अर्थात् समासमें गुणीभूत पदका सर्वनामसे अनुसन्धान (ज्ञान) होता है ।

समासमें गुणीभूत पदका अनुसन्धान (प्रत्यवमर्श, विचार-बोध) सर्वनामवाले पदसे होता है । यथा—

'तवापि····गन्धिनः ।' (तेरे, नीलकमल-पत्रके समान नेत्रवाले मुखका उस(नीलकमल)की परागके समान गन्धसे···। यहाँपर सार्वनामिक 'तत्' पदसे 'नीलोत्पल'का परामर्श (बोध) होता है, क्योंकि 'नीलोत्पल' पद 'नीलोत्पलपत्रचक्षुषः' इस पदका भाग है । बहुव्रीहि समासमें प्रयोग किया गया 'नीलोत्पल' पद गुणीभूत होनेसे अप्रधान है) ॥ ११ ॥

सर्वनाम्नेति । अत्र भाष्यकारवचनं प्रमाणम् । 'अथ शब्दानुशासनम् । केषां ? शब्दानाम्' इति, तद्रेण्विति[4] ॥ ११ ॥

सम्बन्धसम्बन्धेऽपि षष्ठी क्वचित् ॥ १२ ॥

सम्बन्धेन सम्बन्धः सम्बन्धसम्बन्धस्तस्मिन् षष्ठी प्रयोज्या क्वचित्, न सर्वत्रेति । यथा—'कमलस्य कन्दः' इति । कमलेन सम्बद्धा कमलिनी तस्याः कन्द इति सम्बन्धसम्बन्धः । तेन कदलीकाण्डादयो व्याख्याताः ॥ १२ ॥

सम्बन्धसे सम्बन्ध होनेपर कहीं षष्ठी विभक्तिका प्रयोग करना चाहिए ।

सम्बन्धके साथ सम्बन्ध 'सम्बन्ध-सम्बन्ध' है, उसमें कहीं षष्ठी विभक्तिका प्रयोग करना चाहिए, किन्तु सर्वत्र नहीं । यथा—

'कमलस्य कन्दः' (कमलका कन्द अर्थात् जड़) ।

---

१. ····वेत्येतेषामनन्यसाधारणत्वम्' इति 'ख' पु० पा० ।

२. एतदग्रे 'कार्यः' इत्यधिकः 'ग' पु० पा० ।

३. 'पत्र' इत्यत्र 'पद्म' इति 'क' पु० पा० ।

४. 'तद्रेण्विति ।' इत्यत्र 'तवापीति—तद्रेण्वित्यत्र तच्छब्दः समासे उपसर्जनीभूतं नीलोत्पलं परामृशति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इस उदाहरणमें कमलसे सम्बद्ध (सम्बन्ध रखनेवाली) कमलिनी हुई, उस(कमलिनी)का कन्द—यह सम्बन्ध-सम्बन्ध है। (वस्तुतः कमलका सीधा सम्बन्ध कमलिनीसे ही होता है, कन्द (जड़) से नहीं, अतः वैसा विग्रहकर उसका सम्बन्ध परम्परासे मानकर षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त हुई है)। इससे 'कदलीकाण्ड' आदिकी व्याख्या हो गयी ॥ १२ ॥

सम्बन्धेति। सम्बन्धपारम्पर्येऽपि षष्ठी भवतीत्यर्थः। कदली हि समुदायस्तस्या गर्भस्तत्र काण्डमिति सम्बन्धसम्बन्ध इति ॥ १२ ॥

अतिप्रयुक्तं देशभाषापदम् ॥ १३ ॥

अतीव कविभिः प्रयुक्तं देशभाषापदं प्रयोज्यम्। यथा—

'योषिदित्यभिललाष न हालाम्'।

इत्यत्र हालेति देशभाषापदम्। अनतिप्रयुक्तं तु न प्रयोज्यम्। यथा—

कङ्केलीकाननालीरविरलविलसत्पल्लवा नर्तयन्तः'।

इत्यत्र कङ्केलीपदम् ॥ १३ ॥

(कवियोंद्वारा) अत्यन्त (बार-बार) प्रयुक्त देश-भाषावाले पदका प्रयोग करना चाहिए।

कवियोंद्वारा, अत्यधिक प्रयुक्त देश-भाषाका प्रयोग (संस्कृत काव्यमें) करना चाहिए। जैसे—

'योषिदित्यभिललाष न हालाम्' (स्त्रीने मदिराको नहीं चाहा)।

इस उदाहरणमें प्रयुक्त 'हाला' शब्द संस्कृतका नहीं, अपितु देश्य है (किन्तु कवियोंने इसका प्रयोग अनेक स्थलोंमें किया है, अतः उक्त उदाहरणमें 'हाला'का प्रयोग दूषित नहीं है)।

जिस देश-भाषा पद का प्रयोग कवियोंने अधिक नहीं किया है, उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यथा—

'कङ्केली·······नर्तयन्तः' (अशोकके वनोंको नचाते (कम्पित करते) सतत विलसित पल्लवों वाले)।

इस उदाहरण में 'कङ्केली' पद अर्थात् अशोक अर्थ वाले 'कङ्केली' पद का प्रयोग कवियों के द्वारा अनेकशः नहीं होनेसे इस उदाहरणमें किया गया प्रयोग उचित नहीं है ॥ १३ ॥

अतिप्रयुक्तमिति। अतीव प्रयुक्तं प्रायशः प्रयुक्तम्। देशव्यवस्थिता भाषा देशभाषा, तत्र सिद्धं पदं देशभाषापदम्, देश्यं पदमित्यर्थः। अतिना व्यावर्त्यं कीर्तयति—अनतीति[1]। कङ्केलिरशोकः ॥ १३ ॥

---

१. एतदग्रे 'कङ्केलीति' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

लिङ्गाऽध्याहारौ ॥ १४ ॥

लिङ्गं चाऽध्याहारश्च लिङ्गाध्याहारावतिप्रयुक्तौ प्रयोज्याविति । यथा—

'वत्से ! मा बहु निःश्वसीः कुरु सुरागण्डूषमेकं शनैः' ।

इत्यादिषु गण्डूषशब्दः पुंसि भूयसा प्रयुक्तो, न स्त्रियाम्, आम्नातोऽपि स्त्रीत्वे ।

अध्याहारो यथा—

मा भवन्तमनलः पवनो वा वारणो मदकलः परशुर्वा ।
वाहिनीजलभरः कुलिशं वा स्वस्ति तेऽस्तु लतया सह वृक्ष ! ॥

अत्र हि धाक्षीदित्या[1]दीनामध्याहारोऽन्वयप्रयुक्तः ॥ १४ ॥

(कवियोंद्वारा अधिक प्रयुक्त) लिङ्ग और अध्याहार वाले पद का प्रयोग करना चाहिए ।

लिङ्ग और अध्याहार लिङ्गाध्याहार हुआ, (कवियोंद्वारा) अधिक प्रयुक्त उन्हें (लिङ्ग और अध्याहृत पदका) प्रयोग करना चाहिए । यथा—

हे वत्से ! अधिक निःश्वास मत लो, एक कुल्ला (घूंट) मदिरा ले लो ।

इत्यादि में स्त्रीलिङ्ग भी 'गण्डूष' शब्द का प्रयोग कवियोंके द्वारा पुंल्लिङ्गमें ही अधिक करने से पुँल्लिङ्गमें ही 'गण्डूष' शब्द प्रयुक्त है । अध्याहारका उदाहरण जैसे—

'मा भवन्त·······सह वृक्ष' (हे वृक्ष ! तुमको आग, हवा, उन्मत्त हाथी, परशु (कुल्हाड़ी), नदीकी बाढ़ अथवा वन (क्रमशः) नहीं जलावे, गिरावे, तोड़े, काटे, समूल उखाड़े या छिन्न-भिन्न करे; लताके साथ तुम्हारा कल्याण हो) ।

इस उदाहरणमें 'अधाक्षीत्' आदिका अध्याहार कर्तृवाचक अनल (आग) आदि शब्दोंका अध्याहार अन्वयसे ही होनेके कारण हो जाता है ॥ १४ ॥

लिङ्गाध्याहाराविति । अतिप्रयुक्तमित्यनुवर्तते । न स्त्रियामिति । 'शुण्डाग्रभागे गण्डूषा द्वयोस्तुमुखपूरणे' इति स्त्रीत्वेऽप्याम्नातः स्त्रियां न प्रयुज्यते । मा भवन्तमिति । [2]अधाक्षीदित्यत्रादिपदेन 'भाङ्क्षीत्, छैत्सीत्, भैत्सीत्', इत्येषामध्याहारो न दुष्यति, अतिप्रयुक्तत्वेन बुद्ध्यारूढत्वादित्यर्थः ॥ १४ ॥

लक्षणाशब्दाश्च ॥ १५ ॥

---

१. 'हि धाक्षीदित्या···' इति 'ख-ग' पु० पा० एव सम्यग्विभाति, न तु 'ह्यधाक्षीदित्या···' इति; 'न माङ्योगे' (पा० ६।४।७४) इति सूत्रेण 'माङ्योगेऽडागमप्रतिषेधादिति' का० धे० अग्रे भाङ्क्षीत्, छैत्सीत्, भैत्सीत्' इति पाठानुरोधाच्चेत्यलम् ।

२. 'अधाक्षीत्' इत्यत्र 'धाक्षीदि'त्येव पाठः 'भाङ्क्षीत्, छैत्सीत्, भैत्सीत्' इत्यग्रिमपाठानुरोधात्सम्यक् ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

लक्षणाशब्दाश्चातिप्रयुक्ताः प्रयोज्याः । यथा—द्विरेफरोदरशब्दौ[1] भ्रमर-चक्रवाकार्थौं लक्षणापरौ ।

अनतिप्रयुक्ताश्च न प्रयोज्याः । यथा—'द्विकः काक' इति ।। १५ ।।

(कवियोंद्वारा बार-बार प्रयुक्त) लक्षणा शब्दोंका भी प्रयोग करना चाहिए ।

(कवियोंद्वारा) बार-बार प्रयोग किये गये लक्षणा शब्दोंका प्रयोग करना चाहिए । जैसे—लक्षणा द्वारा 'द्विरेफ' शब्द 'भ्रमर' के तथा 'रोदर' शब्द 'चकवा' के अर्थमें कवियोंद्वारा अनेकत्र प्रयुक्त होनेसे प्रयोज्य है । अनेक बार नहीं प्रयुक्त 'लक्षणा शब्दोंका प्रयोग नहीं करना चाहिए । यथा—'द्विक' (दो ककार वाला) शब्द 'काक' (कौवे) के अर्थमें प्रयोज्य नहीं है । (तात्पर्य यह है कि 'द्वौ रेफौ यस्य सः द्विरेफः' (दो रेफ अर्थात् 'र' वर्ण जिसके है, वह 'द्विरेफ' है) तथा 'र' ('र' वर्ण उदरे (मध्ये) यस्य स रोदरः 'र' अक्षर जिस शब्दके बीचमें है, वह रोदर है) । इस प्रकार विग्रहसे 'द्विरेफ' और 'रोदर' शब्द मुख्य लक्षणावृत्तिसे क्रमशः भौंरें और चकवा अर्थमें प्रयुक्त है, उस तरह द्विक 'शब्द दो 'क' अक्षरवाले 'काक'के अर्थमें प्रयुक्त नहीं होते हैं) ।। १५ ।।

लक्षणाशब्दाश्चेति । द्वौ रेफौ यस्येति द्विरेफः । र उदरे यस्येति रोदरः । द्विरेफ-रोदरशब्दौ मुख्यया वृत्त्या भृङ्गरथाङ्गनामवाचकयोर्भ्रमरचक्रवाकयोर्वर्तेते[2] । तेन तदर्थयो रेफसम्बन्धाभावादतो वाच्यवाचकयोरभेदोपचारेण तदर्थयोर्वर्तेते इति लक्षणाशब्दौ । 'चक्रवाको रोदरश्च कोकश्चकाभिधाह्वयः ।' इति वैजयन्ती । यथा द्विरेफशब्दो भ्रमरे रोदरशब्दश्चक्रवाके, न तथा द्विक इति काके, अनतिप्रयुक्तत्वादिति । यदाहुः—'निरूढा लक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवत् । क्रियन्ते साम्प्रतं काश्चित् काश्चिन्नैव त्वशक्तितः ।' इति ।। १५ ।।

न तद्बाहुल्यमेकत्र ।। १६ ।।

तेषां लक्षणाशब्दानां बाहुल्यमेकस्मिन् वाक्ये न प्रयोज्यम् । शक्यते ह्येकस्यावाचकस्य वाचकवद्भावः कर्तुं, न बहूनामिति ।। १६ ।।

अनेक लक्षणा शब्दोंका प्रयोग एक वाक्यमें नहीं करना चाहिए ।

अनेक लक्षणा शब्दोंका एक वाक्यमें प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि एक लक्षणा शब्दका वाच्य-वाचक भाव किया जा सकता है, बहुतोंका नहीं । ऐसे लक्षणा का बाहुल्य होनेसे क्लिष्टत्व दोष हो जायेगा ।। १६ ।।

न बहूनामिति । लक्षणापदबाहुल्ये क्लिष्टतादोषप्रसङ्गादिति भावः ।। १६ ।।

स्तनादीनां द्वित्वाविष्टा जातिः प्रायेण ।। १७ ।।

---

१. 'द्विरेफरथचरणशब्दौ' ।

२. '...भ्रमरचक्रवाकशब्दयोर्वर्तेते' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

स्तनादीनां द्वित्वाविष्टा द्वित्वाध्यासिता जातिः प्रायेण बाहुल्येनेति। यथा—'स्तनयोस्तरुणीजनस्य' इति। प्रायेणेति वचनात् क्वचिन्न भवति। यथा—'स्त्रीणां चक्षुः' इति।

अथ कथं द्वित्वाऽऽविष्टत्वं जातेः ? तद्धि द्रव्ये, न जातौ; अतद्रूपत्वात् तस्याः[1]। न दोषः, तदतद्रूपत्वाज्जातेः। कथं तदतद्रूपत्वं जातेः ? तद्धि जैमिनीया[2] जानन्ति, वयं तु लक्ष्यसिद्धौ सिद्धपरमतानुवादिनः। न चैवमतिप्रसङ्गः ? लक्ष्यानुसारित्वान्न्यायस्येति। एवमन्यापि व्यवस्थोह्या ॥ १७ ॥

इति श्रीकाव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ प्रायोगिके पञ्चमेऽधिकरणे
प्रथमोऽध्यायः काव्यसमयः ॥ ५-१ ॥

स्तन आदि ('आदि शब्दसे—नेत्र, कान, हाथ····का ग्रहण है) शब्दोंके प्रयोग प्रायशः द्वित्व अर्थात् द्विवचनसे युक्त होता है।

स्तन आदि ('आदि'से नेत्र, कान, भुजा, हाथ, जघन····का ग्रहण होता है।) शब्दोंका प्रयोग प्रायः द्विवचनमें ही होता है। यथा—

'स्तनयोस्तरुणी जनस्य' (तरुणियोंके स्तनोंका) इसमें 'स्तन' शब्दका प्रयोग द्विवचनमें हुआ है।

'प्रायेण'के कहनेसे इन शब्दोंका प्रयोग कहीं (किसी-किसी वाक्यमें) द्विवचनयुक्त नहीं भी होता है। यथा—

'स्त्रीणां चक्षुः' (स्त्रियों की आँख) इसमें (एकवचन में) 'चक्षु' प्रयुक्त है।

प्रश्न उठता है कि जातिका द्वित्वाविष्टत्व कैसे हो सकता है, क्योंकि द्वित्वाविष्टत्व (संख्या) तो पदार्थमें है, जातिमें नहीं ? अत एव जाति, द्रव्य (पदार्थ) से सर्वथा भिन्न है। उत्तर है कि जातिके तद्रूप होनेसे वह दोष नहीं है। पुनः शङ्का होती है कि जाति तद्रूप किस प्रकार है ? उत्तर है कि यह तो जातिका अपलाप करने वाले जैमिनीय (पाठान्तरमें जैन-जिनमतानुगामी) जानते हैं। (जिस प्रकार पाणिनि-व्याकरणमें कहींपर जातिका और कहींपर व्यक्तिका—दोनों पक्ष लेकर दूसरेके मतका अनुसरण कर प्रयोगका निर्वाह किया गया है उसी प्रकार) हम लोग तो लक्ष्यसिद्धिमें दूसरोंके मतका अनुवाद मात्र करने वाले हैं। 'जिस किसीके मत का अवलम्बन कर जिस किसी का समर्थन करनेसे अतिव्याप्ति दोष आ जाता है और इस प्रकार न्यायका लक्ष्यानुसारी होने का नियम भग्न हो जाता है, यह शङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि प्रसिद्ध लक्ष्यके अनुसार न्याय का अन्वेषण किया जाता है, न कि न्यायके होनेसे उस न्यायके अनुसार लक्ष्यका अन्वेषण। इसी प्रकारसे दूसरे प्रयोगोंकी मर्यादाके विषयमें भी समझना चाहिए ॥ १७ ॥

---

१. 'तस्याः' इत्यत्र 'जातेः' इति 'क-ख' पु० पा०।

२. 'तद्रूपत्वाज्जातेः। कथं तद्रूपत्वं जातेः ? तद्धि जैनाः' इति 'ख' पु० पा०, '····जैमिनीयाः' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तरुणीजनस्येति। जनशब्दः समूहवचनः। ननु न जातेर्द्वित्वाऽऽविष्टत्वमुपपद्यते, सङ्ख्याया द्रव्यधर्मत्वेन जातिधर्मत्वाभावादिति शङ्कते--अथ कथमिति। जातेर्द्रव्याभिन्नत्वान्नायं दोष इति परिहरति—न दोष इति। जातिव्यक्त्योरभेद एव कुत? इति शङ्कते—कथं तदतद्रूपत्वमिति[1]। जात्यपलापवादिनो जैमिनीयाः[2] प्रष्टव्या इत्याह—जैमिनीया[3] इति। अपसिद्धान्तशङ्कामवधीरयति, वयं त्विति। न वयं जातिमपलप्यान्यापोहवादं समर्थयामहे, किन्तु सिद्धं परमतमनूद्य प्रयोगं प्रतिष्ठापयामः। एवं तर्हि यस्य कस्यचिन्मतमवलम्ब्य यत्किञ्चिदपि समर्थयितुं शक्यत इत्यतिप्रसङ्गमाशङ्क्य परिहरति—न चैवमिति। यथा पाणिनीये क्वचिज्जातिः, क्वचिद् व्यक्तिरिति पक्षद्वयमवलम्ब्य लक्ष्यनिर्वाहः क्रियते। तद्वदत्रापि परमतमनुसृत्य प्रयोगनिर्वाहः कृतः[4]। प्रसिद्धे लक्ष्ये सति तदनुसारी न्यायोऽन्विष्यते। न तु न्यायोऽस्तीति लक्ष्यमन्वेषणीयम्, लक्ष्यानुसारित्वान्न्यायस्येति। एवमन्या व्यवस्था प्रयोगमर्यादा स्वयं बुद्धिमद्भिरूहनीया ॥ १७ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ प्रायोगिके पञ्चमेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

काव्यसमयः समाप्तः।

---

१. 'तद्रूपत्वं' इति 'ख' पु० पा०।
२–३. 'जैना' इति 'ख' पु० पा०।
४. 'तद्वदत्रापि…कृतः।' इत्यंशः 'ख' पु० अनुरोधादौचित्याच्च सन्निवेशिता।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वितीयोऽध्यायः

साम्प्रतं शब्दशुद्धिरुच्यते—

रुद्रावित्येकशेषोऽन्वेष्यः ॥ १ ॥

रुद्रावित्यत्र प्रयोगे एकशेषोऽन्वेष्योऽन्वेषणीयः । रुद्रश्च रुद्राणी चेति 'पुमान् स्त्रिया' (पा० १।२।६७) इत्येकशेषः । स च न प्राप्नोति । तत्र हि 'तल्ल-क्षणश्चेदेव विशेष' इत्यनुवर्तते इति तत्रैवकारकरणात् स्त्रीपुंसकृत [1]एव विशेषो भवतीति व्यवस्थितम् । अत्र तु 'पुंयोगादाख्यायाम्' (पा० ४।१।४८) इति विशेषान्तरमप्यस्तीति । एतेनेन्द्रौ भवौ शर्वावित्यादयः प्रयोगाः प्रत्युक्ताः ॥ १ ॥

(गत प्रथम अध्यायमें काव्य-समय कहकर) अब इस अध्यायमें शब्दोंकी शुद्धि कहीं जाती है ।

'रुद्रौ' पदमें एकशेष ढूँढ़ना चाहिए ।

'रुद्रौ' इस प्रयोगमें एकशेष ढूंढ़ना चाहिए । 'रुद्रश्च रुद्राणी च' इस विग्रहमें 'पुमान् स्त्रिया' (पा० १।२।६७) सूत्रसे एकशेष प्राप्त नहीं है, क्योंकि इस सूत्रमें 'वृद्धो यूना........' (पा० १।२।६५) सूत्रसे 'तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' की अनुवृत्ति होती है । उसका 'यदि स्त्रीलिङ्ग-पुँल्लिङ्गके निमित्तक विशेष होने पर ही स्त्रीलिङ्ग के साथ कहे गये पुँल्लिङ्ग पद शेष रहता है, जैसे—'ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ' में । परन्तु 'तल्लक्षणश्चेदेव.....' में 'एव' शब्द होनेसे 'स्त्री-पुंस'-निमित्तक विशेषके होने पर ही एकशेषकी प्राप्ति सम्भव है, प्रकृतमें तो 'पुंयोगादाख्यायाम्' (पा० ४।१। ४८) से अन्य विशेष भी आ जाता है, अतः 'रुद्रौ' पदमें एकशेष सम्भव नहीं है । इस व्याख्यासे 'इन्द्रौ, भवौ, शब्दोंमें भी एकशेषकी खोज करनी चाहिए अर्थात् ये प्रयोग व्याकरणसे शुद्ध नहीं हैं ॥ १ ॥

छिन्ते मोहं चित्प्रकर्षं प्रयुङ्क्ते सूते सूक्तिं सूयते या पुमर्थान् ।
प्रीतिं कीर्तिं प्राप्तुकामेन सैषा शाब्दी शुद्धिः शारदेवाऽस्तु सेव्या ॥ १ ॥

अथेदानीमध्यायान्तरं व्याचिख्यासुस्तत्प्रयोजनं प्रस्तौति—साम्प्रतमिति । तत्र ताव-देकशेषविषयं किञ्चिद् बोधयितुं[2] सूत्रमनुभाषते—रुद्राविति । 'पुमान् स्त्रिया' (पा० १।२।६) इत्येकशेषो विधीयते । तत्र 'वृद्धो यूना' (पा० १।२।६५) इति सूत्रात् 'तल्लक्षणश्चेदेव विशेष' इत्यनुवर्तते । तदिति स्त्रीपुंसयोर्निर्देशः । लक्षणशब्दो निमित्त-

१. 'एव यदि विशेष' इति 'ख' पु० पा० ।
२. 'शोधयितुं' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पर्यायः। चेच्छब्दो यद्यर्थे। एवकारोऽवधारणे। विशेषो वैरूप्यम्। स्त्रिया सह वचने पुमान् शिष्यते। स्त्रीपुंसलक्षण एव चेद्विशेषो भवति, स्त्रीपुंसकृतमेव यदि वैरूप्यं भवतीत्यर्थः। ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च ब्राह्मणाविति। तद्वदेव रुद्रश्च रुद्राणी च रुद्रावित्येकशेषः प्राप्नोतीति यः कश्चिदभिमन्यते, तत्प्रतिषेधाय प्रयोगाऽदर्शनं प्रत्याययति—अन्वेषणीय इति। न्यायतः प्राप्तौ प्रयोगोऽप्युन्नीयतामिति, तत्राह—स च न प्राप्नोतीति। अप्राप्तिमेव दर्शयितुमाह—तत्र हीति। अस्त्वेवं व्यवस्था, प्रकृते कोऽनुरोध[1] ? इति तत्राह—अत्र त्विति। रुद्राणीत्यत्र 'पुंयोगादाख्यायाम्' (पा० ४।१।४८) इत्यनुवर्तमाने, इन्द्रवरुणे(पा० ४।१।४९)त्यादिना ङीष् विधीयते। पुंस आख्याभूतं यत्प्रातिपदिकं पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते, तस्माद् ङीष् प्रत्ययो भवतीति। अतस्तल्लक्षणविशेषव्यतिरेकेण विशेषान्तरस्यापि विद्यमानत्वान्नात्रैकशेषप्राप्तिरिति। एतत्समानयोगक्षेमाणि प्रयोगान्तराणि प्रत्याख्येयानीत्याह—एतेनेति ॥ १ ॥

मिलिक्लबिक्षपिप्रभृतीनां धातुत्वं, धातुगणस्याऽसमाप्तेः[2] ॥ २ ॥

'मिलति, विक्लबति, क्षपयतीत्यादयः प्रयोगाः। तत्र मिलिक्लबिक्षपिप्रभृतीनां कथं धातुत्वम् ? गणपाठाद् गणपठितानामेव धातुसंज्ञाविधानात्। तत्राह—धातुगणस्याऽसमाप्तेः[3]। 'वर्धते धातुगण' इति हि शब्दविद आचक्षते। तेनैषां गणपाठोऽनुमतः, शिष्टप्रयोगादिति ॥ २ ॥

'मिलि, क्लवि, क्षपि' आदिको भी धातु संज्ञा होती है, क्योंकि 'धातुगण' समाप्त नहीं हुआ है।

'मिलति, विक्लवति, क्षपयति', इत्यादि प्रयोग मिलते हैं, किन्तु 'भूवादयो धातवः' (पा० १।३।१) सूत्रसे धातुगणमें पठित धातुओंकी ही धातु संज्ञा होनेसे 'मिलि, क्लवि, क्षपि' आदिका धातुगणमें पाठ नहीं होनेके कारण इनकी धातु संज्ञा कैसे हुई ? इसका समाधान यह है कि वैयाकरणोंका 'धातुगण बढ़ता रहता है' ('वर्धते हि धातुगणः') सिद्धान्त होनेसे धातुगणकी समाप्ति नहीं हुई है, अतएव इन (मिलि, क्लवि, क्षवि) की भी 'शिष्टप्रयोग' के कारण धातुसंज्ञा होती है ॥ २ ॥

मिलिक्लबीति। 'भूवादयो धातवः' (पा० १।३।१) इति गणपठितानामेव धातुसंज्ञाविधानाद्धातुगणे मिलिप्रभृतीनामपाठात् कथं धातुत्वमित्याशङ्कापूर्वकं धातुत्वं समर्थयते—मिलति विक्लबति क्षपयतीति। धातुगणस्यापरिसमाप्तौ प्राचीनाचार्यवचनं प्रमाणयति—'वर्धते धातुगण' इति। प्रभृतिग्रहणाद्वीज्याऽऽन्दोलादयः ॥ २ ॥

वलेरात्मनेपदमनित्यं, ज्ञापकात् ॥ ३ ॥

वलेरनुदात्तेत्त्वादात्मनेपदं यत्, तदनित्यं दृश्यते–'लज्जालोलं वलन्ती' इत्यादिप्रयोगेषु। तत् कथमित्याह—ज्ञापकात् ॥ ३ ॥

---

१. 'विरोधः' इति 'ख' पु० पा०।
२–३. '···स्यापरिसमाप्तेः' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'वलि' धातुका आत्मनेपद अनित्य है, ज्ञापकसे।

'वल' धातुसे 'शतृ' प्रत्ययके बाद स्त्रीलिङ्गमें 'ङीप्' प्रत्यय करनेसे सिद्ध 'लज्जालोलं वलन्ती' इत्यादि प्रयोग मिलते हैं, परन्तु 'वल' धातुके अनुदात्तेत् होनेसे 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (पा० १।३।१२) सूत्रसे आत्मनेपदका विधान नित्य होनेसे परस्मैपदमें विधेय 'शतृ' प्रत्यय कैसे हुआ? इस शङ्काका समाधान यह है कि आत्मनेपदका विधान अनित्य होनेसे 'वलन्ती' पद भी शास्त्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

वलेरात्मनेपदमिति। 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (पा० १।३।१२) इति वलेर्धातोरनुदात्तेत्त्वान्नित्यमात्मनेपदप्राप्तौ शिष्टप्रयोगेषु परस्मैपददर्शनात् तत्सिद्धये क्वचिदनुदात्तेत्वनिबन्धनस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वं ज्ञापकेन समर्थयितुमाह—वलेरनुदात्तेत्त्वादिति ॥ ३ ॥

किं पुनस्तज्ज्ञापकमत आह—

[१]चक्षिङो द्व्यनुबन्ध[२]करणम् ॥ ४ ॥

चक्षिङ इकारेणैवानुदात्तेन सिद्धमात्मनेपदं, किमर्थं ङित्करणम्? यत् क्रियते,[३] अनुदात्तनिमित्तस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वज्ञापनार्थम्। एतेन, वेदभर्त्सितर्जिप्रभृतयो व्याख्याताः—आवेदयति, भर्त्सयति, तर्जयतीत्यादीनां प्रयोगाणां दर्शनात्। अन्यत्राप्यनुदात्तनिबन्धनस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वं ज्ञापकेन द्रष्टव्यमिति ॥ ४ ॥

वह (आत्मनेपदके अनित्यत्व विधायक) ज्ञापक कौन-सा है? यह कहते हैं।

'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' इस धातुमें इकार और ङकार, इन दो अनुबन्धोंका होना ही अनुदात्तेत्त्वनिमित्तक आत्मनेपदके अनित्य होनेमें ज्ञापक है।

'चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि' धातुमें 'ङ्' के इत् नहीं होनेपर भी 'चक्षि'के इकारकी इत्संज्ञा होनेसे ही 'आत्मनेपद सिद्ध था, पुनः इत्संज्ञक ङ्कारका पाठ क्यों किया? चूंकि 'ङ'कारका धातुमें पाठ किया गया है, अतः वही 'ङ'कारका पाठ व्यर्थ होकर 'अनुदात्तनिमित्तक आत्मनेपदके अनित्य होनेमें ज्ञापक है। इससे 'वेदि, भर्त्सि, तर्जि' आदि धातुओंमें अनुदात्त इकारकी इत्संज्ञासे विहित आत्मनेपदके अनित्य होनेसे उन धातुओंके परस्मैपदमें 'आवेदयति, भर्त्संयति, तर्जयति' आदि प्रयोग भी देखे जाते हैं। ('चक्षि' ऐसा 'ङ्' काररहित पाठ करनेपर 'गोः पादान्ते' (पा० ७।१।५७) सूत्रसे 'अन्त'ग्रहणकी अनुवृत्ति होनपर 'इदितो नुम् धातोः' (पा० ७।१।५८) सूत्रसे 'नुम्'का आगम हो जायेगा, अत एव 'ङ्'कारसे रहित 'चक्षि'का पाठ नहीं किया गया है, यह सन्देह भी 'चक्षि'के स्थान पर 'चक्ष' ऐसा पाठ करनेसे अकारकी इत्संज्ञा होकर 'अनुदात्तेत्' प्रयुक्त आत्मनेपद और इदित् नहीं होनेके कारण नुमागमका

१. सूत्रमिदं 'ग' पु० वृत्तावेव पठितम्।
२. 'चक्षिङोऽनुबन्ध…' इति 'क' पु० पा० वृत्तौ।
३. 'तत् क्रियते' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

अभाव भी हो जाता, फिर भी धातुमें दो अनुबन्धका ग्रहण करना उक्त ज्ञापकमें प्रमाण है)। अन्यत्र भी अनुदात्तनिमित्तक आत्मनेपदकी अनित्यतामें ज्ञापक होना द्रष्टव्य है ॥ ४ ॥

अनुदात्तेत्त्वनिबन्धनस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वे चक्षिङो ङित्करणं ज्ञापकमित्याह—चक्षिङो द्वयनुबन्धकरणमिति । इकारेणैवेति । नन्वेवं 'गोः पादान्त' इत्यतोऽन्तग्रहणानुवृत्तेरन्तेदित्त्वे सति 'इदितो नुम् धातोः' (पा० ७।१।५७) इति नुम् स्यात्, तर्हि चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि इत्यकारान्तः पठ्येतेति भावः । उक्तमात्मनेपदस्यानित्यत्वं वेदिभर्त्सिप्रभृतिष्वपि द्रष्टव्यमित्याह—एतेनेति । 'आगर्वादात्मनेपदिन' इत्यात्मनेपदित्वेनानुदात्तेत्वं वक्ष्यत[1] इति भावः । अन्यथानुदात्तेत्त्वनिबन्धनस्यात्मनेपदस्यानित्यताज्ञापने किमायातम् ? न चैवमतिप्रसङ्गः । शिष्टप्रयोग[2]विषयत्वाज्ज्ञापकस्य ॥ ४ ॥

क्षीयत इति कर्मकर्तरि ॥ ५ ॥

क्षीयते इति प्रयोगो दृश्यते, स कर्मकर्तरि द्रष्टव्यः । क्षीयतेरनात्मनेपदित्वात् ॥ ५ ॥

'क्षीयते' यह प्रयोग कर्मकर्तामें होता है ।

'क्षीयते' ऐसा प्रयोग देखा जाता है, किन्तु 'स्वादि'गणमें पठित 'क्षि' धातुके परस्मैपदमें पाठ होनेसे 'उक्त ('क्षीयते') प्रयोग कर्मकर्तामें जानना चाहिए (कर्तामें नहीं) ॥ ५ ॥

क्षीयत इति । क्षिणोतेः सौवादिकस्य श्नुप्रत्ययान्तत्वेन प्रसिद्धावपि 'क्षीयत' इति कर्तरि प्रयोगो[3] दृश्यते, तस्योपपत्तिमाह—स कर्मकर्तरि द्रष्टव्य इति । क्षिणोतेः कर्मस्थभावकत्वात् कर्मवद्भावः ॥ ५ ॥

खिद्यत[4] इति च ॥ ६ ॥

खिद्यत[5] इति च प्रयोगो दृश्यते, सोऽपि कर्मकर्तर्येव द्रष्टव्यः, न कर्तरि । अदैवादिकत्वात् खिदेः[6] ॥ ६ ॥

'खिद्यते' यह प्रयोग भी कर्मकर्तामें होता है ।

'खिद्यते' यह प्रयोग भी देखा जाता है, उसे कर्मकर्तामें ही देखना (जानना) चाहिए, कर्तामें नहीं (क्योंकि 'खिद्' धातु दिवादिमें पठित नहीं होनेसे 'श्यन्' प्रत्ययान्त कर्तृवाच्य 'खिद्यते' प्रयोग नहीं हो सकता, अतः कर्मकर्तामें ही 'खिद्यते' प्रयोग है) ॥ ६ ॥

---

१. 'लक्ष्यते' इति 'ख' पु० पा० ।

२. 'शिष्टप्रयोगमात्र···' इति 'ख' पु० पा० ।

३. 'शिष्टप्रयोगो' इति 'ख' पु० पा० ।

४-५-६. 'खिद्यत, खिद्यत, खिदेः' इत्यत्र क्रमशः 'स्विद्यत, स्विद्यत, स्विदेः' इति 'क' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

खिद्यत इति चेति। चकारेण कर्मकर्तरीति समुच्चिनोति—सोऽपि इति[1] खिदोऽकर्मत्वादन्तर्भावितण्यर्थत्वे प्रयोज्यकर्मस्थभावकत्वात् कर्मवद्भावः। खिदेरनुदात्तेतः श्यनि कृते खिद्यत इति रूपं सिद्ध्यतीति शङ्कां परिहरति—अदैवादिकत्वादिति ॥ ६ ॥

मार्गेरात्मनेपदमलक्ष्म ॥ ७ ॥

चुरादौ 'मार्ग अन्वेषणे' इति पठ्यते। 'आ धृषाद्वा' इति विकल्पितणिच्कस्तस्माद्यदात्मनेपदं दृश्यते—'मार्गन्तां देहभारमि'ति, तदलक्ष्म अलक्षणम्, परस्मैपदित्वान्मार्गेः। तथा च शिष्टप्रयोगः—

'करकिसलयं धूत्वा धूत्वा विमार्गति वाससी' ॥ ७ ॥

'मृग' धातुका आत्मनेपदमें ('मार्गन्तां देहभारम्') प्रयोग असिद्ध है।

'चुरादि'गणमें 'मार्ग अन्वेषणे' धातु पढ़ा गया है। गणपाठस्थ 'आधृषाद्वा' सूत्रसे चौरादिक 'णिच्' प्रत्यय उक्त धातुसे विकल्पसे विहित है। और 'मार्गन्तां देहभारम्' प्रयोगमें आत्मनेपद देखा जाता है, वह 'मृग अन्वेषणे' धातुका परस्मैपदमें पाठ होनेसे अशुद्ध है। जैसा कि शिष्टप्रयोग (परस्मैपदमें ही) है—

'करकिसलयं धुत्वा धुत्वा विमार्गति वाससी' में परस्मैपदमें ही 'मृग' धातुका शिष्टप्रयोग है ॥ ७ ॥

मार्गेरिति। चौरादिकस्य मार्गेः, 'आधृषाद्वा' (ग० सू०) इति णिचो वैकल्पिकत्वेन तदभावे सति परस्मैपदित्वान्मार्गतीति शिष्टप्रयोगदर्शनाच्च परस्मैपदे प्रयोक्तव्ये, यत्तु प्रयोगे कुत्रचिदात्मनेपदं दृश्यते, मार्गन्तामिति। तल्लक्षणहीनमित्याह—चुरादाविति। द्वयोरपि प्रयोगयोर्दर्शने कथमत्र व्यवस्थेति तत्राह—शिष्टप्रयोग इति ॥ ७ ॥

लोलमानादयश्चानशि ॥ ८ ॥

'लोलमानो वेल्लमान' इत्यादयश्चानशि द्रष्टव्याः। शानचस्त्वभावः। परस्मैपदित्वाद्धातूनामिति ॥ ८ ॥

'लोलमान' इत्यादि प्रयोग 'चानश्' प्रत्ययमें होते हैं।

'लोलमानः, वेल्लमानः' ('लोलमाननवमौक्तिकहारं वेल्लमानचिकुरस्थलमाल्यम्। स्विन्नवक्त्रमविकस्वरनेत्रं कौशलं विजयते कलकण्ठ्याः ॥' मधुर कण्ठवाली इस नायिकाका, हिलते हुए नये मुक्ताहारवाला, हिलते हुए केशोंमें शिथिल मालावाला, श्रमसे स्वेदयुक्त मुखवाला और आधी बन्द हुई आँखोंवाला कौशल (चतुर विलास) सुन्दर लगता है।) इत्यादि प्रयोग 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' (पा० ३।२।१२४) सूत्रसे आत्मनेपदमें विहित 'शानच्' प्रत्यय 'लोल, वेल्ल' धातुओंसे नहीं हो सकता, अतः 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' (पा० ३।२।१२९) इस सूत्रद्वारा

---

१. अत्रत्यप्राक्तन 'खिन्ने खिन्न' इति पाठोऽनुपयुक्ततया परिवर्तितः।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

उन परस्मैपदी धातुओंसे 'चानश्' प्रत्यय कर 'लोलमानः, वेल्लमानः' प्रयोग सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

लोलमानादय इति। 'लोलमाननवमौक्तिकहारं वेल्लमानचिकुरश्लथमाल्यम्। स्विन्न-वक्त्रमविकस्वरनेत्रं कौशलं विजयते कलकण्ठ्याः।' इत्यादिषु लोलमानादयः प्रयोगा दृश्यन्ते। परस्मैपदित्वादेतेषां शानजन्तत्वं विरुद्धम्। आत्मनेपदित्वाच्छानच् इत्याशङ्कायां प्रकारान्तरेण साधुत्वं समर्थयते—लोलमानो वेल्लमान इति। 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' (पा० ३।२।१२९) इति ताच्छील्यादिष्वर्थेषु धात्वधिकारे चानशो विधानादेते प्रयोगाश्चानशि द्रष्टव्याः, न तु शानचि, अतो न विरोधः ॥ ८ ॥

लभेर्गत्यर्थत्वाण्णिच्यणौ कर्तुः कर्मत्वाकर्मत्वे ॥ ९ ॥

अस्त्ययं लभिर्यः प्राप्त्युपसर्जनां गतिमाह—अस्ति च गत्युपसर्जनां प्राप्ति-माहेति। अत्र पूर्वस्मिन् पक्षे गत्यर्थत्वाल्लभेर्णिच्यणौ यः कर्ता, तस्य गत्यादि-(पा० १।४।५२)सूत्रेण कर्मसंज्ञा। यथा—

'दीर्घिकासु कुमुदानि विकासं लम्भयन्ति शिशिराः शशिभासः।'

द्वितीयपक्षे गत्यर्थाभावाल्लभेर्णिच्यणौ[1] कर्तुर्न कर्मसंज्ञा। यथा—

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाथ लम्भयन्।
द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः ॥ ९ ॥

गत्यर्थक 'लभ' धातुके णिच् प्रत्ययान्त होनेपर अण्यन्तावस्थाके कर्ताका कर्मत्व और अकर्मत्व होता है अर्थात् कर्ता एक पक्षमें सकर्म और अन्य पक्षमें अकर्म हो जाता है।

(यद्यपि 'डुलभष् प्राप्तौ' धातुका अर्थ 'प्राप्ति' ही है, तथापि 'प्राप्ति'के गति-पूर्वकत्व होनेसे प्राप्ति और गतिके कार्य-कारणमें अभेदोपचार होनेसे 'लभ' धातुका अर्थ प्राप्त्युपसर्जन गति भी मानकर पहले दो पक्षों को उपस्थित करते हैं)।

यह जो लभ् धातु है, वह प्राप्ति, उपसर्जन तथा गति अर्थवाचक है। इसके गति, उपसर्जन तथा उपसर्जन अर्थोंकी प्राप्तिके सम्बन्धमें कहा जा रहा है। यहाँ प्रथम पक्ष में लभ् धातुके गति अर्थवाला होनेके कारण णिजन्त लभ् धातुका अण्-प्रत्ययान्त जो कर्ता है, उसकी 'गतिवुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ' इस सूत्रसे कर्मसंज्ञा हो जाती है।

यथा—'दीर्घिकासु''''शशिभासः'—यहाँ अण्यन्त क्रिया का कर्त्ता 'कुमुदानि' है, 'शिशिराः शशिभासः' शीतल चन्द्रमाकी किरणें कुमुदिनियोंको विकसित करवाती हैं। इस 'लम्भयन्ति' रूप णिजन्त क्रियाका प्रयोजक कर्त्ता चन्द्रकिरणें हैं। अतः अण्यन्त कर्त्ता 'कुमुदानि'का कर्मत्व विधान स्वीकृत है।

प्राप्ति अर्थमूलक दूसरे पक्षमें गति अर्थ रहित लभ् धातुके प्रयोगमें अण्यन्त कर्त्ता की कर्म संज्ञा नहीं होती है। इसका उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

---

१. द्वितीयपक्षे गत्यर्थाल्लभे'''' इति 'क' पु० 'द्वितीये तु पक्षे गत्यर्थाभावाल्लभे'''' इति 'ख' पु० द्वितीयपक्षे तु गत्यर्थत्वाभावाल्लभे''''''' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इसके बाद श्रीकृष्णजी फैलती हुई अपनी दन्तपंक्तिके बहानेसे चन्द्रमाकी किरणों द्वारा स्वभावसे गौर वर्ण वाले अतएव शुभ मुनि नारदजीके शरीरको चूनेसे लिपे हुए राजमहलके समान अत्यन्त शुभ्र करते हुए मन्दमुस्कान युक्त वचन बोले।

इस उदाहरणमें लभ् धातुकी गत्यर्थकता न होनेके कारण ही उक्त 'गतिबुद्धि' आदि सूत्र से अण्यन्त 'सितिम्ना' रूप कर्त्ताकी कर्मसंज्ञा नहीं हुई। अतएव 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्रसे 'सितिम्ना लम्भयन्' प्रयोगकी सिद्धि हुई है॥ ९॥

लभेरिति। यद्यपि 'डुलभष् प्राप्तौ' इति प्राप्तिरेव लभेरर्थः, तथापि प्राप्तेर्गतिपूर्वकत्वात् प्राप्तिगत्योः कार्यकारणयोरभेदोपचारेण प्राप्त्युपसर्जनगत्यर्थत्वमपि लभेरङ्गीकृत्य प्रथमं तावत् पक्षद्वयं प्रस्तौति—अस्त्ययमिति। यः प्राप्त्युपसर्जनां गतिमाह, सोऽयं लभिरस्ति। यश्च गत्युपसर्जनां प्राप्तिमाहाऽयमपि लभिरस्ति योजना। विवक्षावशाद् लभिरयं कदाचित् प्राधान्येन गतिमाह, कदाचित् प्राप्तिमित्यर्थः। तत्र प्रथमे पक्षे निर्विदामणिकर्तुर्णिचि कर्मत्वमित्याह—अत्र पूर्वस्मिन्निति। द्वितीये तु गत्यर्थत्वाभावान्नास्त्यणि कर्त्तुः कर्मसंज्ञेत्याह—द्वितीयपक्ष[1] इति। ततश्च सितिम्नेत्यत्र 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (पा० २।३।१८) इति प्रयोज्ये कर्तरि तृतीया॥ ९॥

ते-मे-शब्दौ निपातेषु॥ १०॥

त्वया मयेत्यस्मिन्नर्थे ते-मे-शब्दौ निपातेषु द्रष्टव्यौ। यथा—

'श्रुतं ते वचनं तस्य', 'वेदानधीत इति नाधिगतं पुरा मे'॥ १०॥

('त्वया' अर्थमें) 'ते' शब्द और ('मया' अर्थमें) 'मे' शब्दको 'निपात' (द्वारा सिद्ध) जानना चाहिए।

'त्वया' तथा 'मया' अर्थमें क्रमशः 'ते' और 'मे' शब्दोंको निपात (निपातसे सिद्ध) जानना चाहिए (षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्तियोंमें स्थित युष्मद् और अस्मद् शब्दोंके एक वचनके स्थानमें 'ते-मयावेकवचनस्य' (पा० ८।१।२२) सूत्रसे विधीयमान 'ते' और 'मे' आदेश षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीयासे भिन्न विभक्तिमें अप्राप्त होनेसे 'तृतीया' विभक्तिके 'त्वया' और 'मया' अर्थमें प्रयुक्त 'ते' और 'मे' शब्दोंको निपातसिद्ध जानना चाहिए)। यथा—

'श्रुतं ते वचनं तस्य' (तूने उसका वचन सुना) और 'वेदानधीत इति नाधिगतं पुरा मे' (वेदोंको पढ़ता है, यह मैंने नहीं जाना'—इन उदाहरणोंमें 'त्वया' और 'मया' अर्थमें निपातित क्रमशः 'ते' और 'मे' शब्दोंका प्रयोग है)॥ १०॥

ते मे इत्यादि। अत्र 'ते मयावेकवचनस्य' (पा० ८।१।२२) इति, युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोस्ते मयावाऽऽदिष्टौ इति विभक्त्यन्तरस्थयोस्तयोरादेशाप्राप्तौ निपातेषु पाठात् तत्रापि प्रयोगसिद्धिरित्याह—ते मे शब्दाविति॥ १०॥

तिरस्कृत इति परिभूतेऽन्तर्ध्युपचारात्॥ ११॥

---

१. 'द्वितीये त्विति। सितमिति' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'तिरस्कृत' इति शब्दः परिभूते दृश्यते । 'राज्ञा तिरस्कृतः' इति, स च न प्राप्नोति । तिरःशब्दस्य हि 'तिरोऽन्तर्धौ' (पा० १।४।७१) इत्यन्तर्धौ गतिसंज्ञा । तस्यां च सत्यां 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' (पा० ८।३।४२) इति सकारः । तत् कथं तिरस्कृत इति परिभूते ? आह—अन्तर्ध्युपचारादिति । परिभूतो ह्यन्तर्हितवद्भवति । मुख्यस्तु प्रयोगो यथा—

'लावण्यप्रसरतिरस्कृताङ्गलेखाम्' ।। ११ ।।

'तिरस्कृतः' यह प्रयोग 'अन्तर्धान' के सदृश 'अपमानित' को मानकर होता है ।

'राज्ञा तिरस्कृतः' (राजाके द्वारा अपमानित अर्थात् अनादृत हुआ) यहाँ 'अपमानित' अर्थमें 'तिरस्कृत' शब्दका प्रयोग देखा जाता है । उक्त अर्थमें उसकी प्राप्ति नहीं है, क्योंकि 'तिरस्' शब्दको 'अन्तर्धान' अर्थमें 'तिरोऽन्तर्धौ' (पा० १।४।७१) सूत्रसे 'गति' संज्ञा होनेपर 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' (पा० ८।३।४२) सूत्रसे वैकल्पिक सकारादेश होनेपर 'तिरस्कृतः, तिरःकृतः' ये दो रूप होते हैं, परन्तु यहाँ अन्तर्धान अर्थ न होकर परिभूत (अपमानित) अर्थ होनेसे 'तिरस्कृतः' प्रयोग कैसे हुआ ? इसका समाधान परिभूत अर्थमें अन्तर्धान होनेका उपचार (सादृश्य) होनेसे यह प्रयोग हुआ है, क्योंकि परिभूत (अपमानित व्यक्ति) अन्तर्हितके सदृश ही होता है । मुख्य प्रयोग जैसे—

'लावण्यप्रसरतिरस्कृताङ्गलेखाम्' (सौन्दर्यसे तिरस्कृत छिपी हुई अङ्गलेखा (प्रेरणा) वालों) में मुख्य प्रयोग हुआ है ।। ११ ।।

तिरस्कृत इति । तिरस्कृतशब्दस्य परिभूतार्थे प्रयोगं दर्शयँस्तस्यानुपपत्तिमुद्घाटयति—तिरस्कृतशब्द इत्यादिना । समाधत्ते—अन्तर्ध्युपचारादिति । मुख्यपूर्वकत्वाद् गौणस्य मुख्यं दर्शयति—मुख्यस्त्विति ।। ११ ।।

नैकशब्दः, सुप्सुपेति समासात् ।। १२ ।।

'अरण्यानीस्थानं फलनमितनैकद्रुममिदम् ।'

इत्यादिषु नैकशब्दो दृश्यते, स च न सिद्ध्यति । नञ्समासे हि 'नलोपो नञः' (पा० ६।३।७३) इति नलोपे, 'तस्मान्नुडचि' (पा० ६।३।७४) इति नुडागमे सत्यनेकमिति रूपं स्यात् । निरनुबन्धस्य[1] नशब्दस्य समासे लक्षणं नास्ति । तत् कथं नैकशब्द इत्याह—सुप्सुपेति समासात् ।। १२ ।।

'नैक' शब्द 'सुप्सुपा' समाससे सिद्ध है ।

'अरण्यानी.......ममिदम्' (फलोंके बोझसे झुके हुए अनेक पेड़ोंवाली विशाल जङ्गलकी यह भूमि है) ।

इत्यादि उदाहरणोंमें 'नैक' शब्दका प्रयोग दिखलायी देता है, किन्तु वह प्रयोग नञ् समास करनेपर 'नलोपो नञः' (पा० ६।३।७३) सूत्रसे 'न'कारका लोप होनेके

१. 'निरनुबन्धकस्य' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वाद 'तस्मान्नुडचि'–(पा० ६।३।७४) सूत्रसे 'नुट्' का आगम करनेपर 'अनेक' ऐसा रूप सिद्ध होता है। अनुवन्ध (इत्संज्ञक) से रहित 'न' शब्दके साथ समास करनेमें कोई सूत्र नहीं है तब 'नैक' शब्दका प्रयोग 'अरण्यानी····मिदम्' में कैसे हुआ ? इसका समाधान कहते हैं—'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' (पा० २।१।२) सूत्रसे 'सुप्' पदकी अनुवृत्ति कर 'सह सुपा' (पा० २।१।४) सूत्रमें 'सुप्' का योगविभाग कर 'सुप्सुपा' (सुवन्तका सुवन्तके साथ समास होता है) से समास करनेपर 'नैक' शब्दका प्रयोग हुआ है। १२ ॥

नञ्समासे हीति। 'नलोपो नञः' (पा० ६।३।७३) इति नकारलोपे सति, 'तस्मान्नुडचि' (पा० ६।३।७४) इति नुडागमे च कृते, अनेकमिति रूपं स्यान्न तु नैकमिति। ननु न सिद्धयति चेन्माऽस्तु नञ्समासः, प्रकारान्तरेण किं न स्यादित्यत आह—निरनुबन्धस्येति। सुप्सुपेति। 'सुबामन्त्रिते पराङ्गवत्स्वरे' (पा० २।१।२) इत्यतः सुबित्यनुवृत्तौ, 'सह सुपा' (पा० २।१।४) इति योगविभागात् सुवन्तं पदं सुबन्तेन सह समस्यत इति समासे नैकशब्दः सिद्धो भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

मधुपिपासुप्रभृतीनां समासो गमिगाम्यादिषु पाठात् ॥ १३ ॥

'मधुपिपासुमधुव्रतसेवितं मुकुलजालमजृम्भत वीरुधाम् ।'

इत्यादिषु 'मधुपिपासु'प्रभृतीनां समासो गमिगाम्यादिषु पिपासुप्रभृतीनां पाठात्। 'श्रितादिषु गमिगाम्यादीनाम्'[1] इति द्वितीयासमासलक्षणं दर्शयति ॥१३॥

'गमि-गाम्यादिमें पाठ होनेसे 'मधुपिपासु' आदि शब्दोंमें समास होता है।

'मधुपिपासुमधुव्रतसेवितं मुकुलजालमजृम्भत वीरुधाम्' (मधु अर्थात् पुष्पपरागके प्यासे भौंरोंसे सेवित, पेड़ोंकी कलियाँ निकलने लगीं)।

इत्यादिमें 'मधुपिपासु' शब्दका प्रयोग मिलता है, किन्तु 'द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः' (पा० २।१।१४) सूत्रमें 'श्रित' आदिका ग्रहण होनेसे द्वितीयातत्पुरुष समास और 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' (पा० २।३।६९) सूत्रमें 'ड' प्रत्ययान्तके योगमें षष्ठी विभक्तिका निषेध होनेसे कृदन्तके साथ 'षष्ठी' (२।२।८) सूत्रसे षष्ठीतत्पुरुष समासकी भी प्राप्ति नहीं होनेसे यहाँ मधुपिपासु आदि में कैसे समास हुआ ? इसका समाधान यह है कि उक्त 'श्रितादि' में 'गम्यादीनामुपसंख्यानम्' (वा०) इस वार्तिकके गमि-गामि आदिमें 'पिपासु' शब्दका पाठ होनेसे 'मधुपिपासुः' इस विग्रहमें 'द्वितीयातत्पुरुष' समास होता है ॥ १३ ॥

मधुपिपासुप्रभृतीनामिति। श्रितादिष्वग्रहणान्नात्र द्वितीयासमासः सम्भवति। नाऽपि कृदन्तेन सह षष्ठीसमासः। न लोके(पा० १।३।६९)त्यादिसूत्रे उप्रत्ययान्तेन योगे षष्ठीनिषेधात्, कथमत्र[2] समास ? इति चिन्तायां समासस्य गतिमाह—गमिगाम्यादिष्विति ॥ १३ ॥

१. '······गम्यादीनामुपसंख्यानम्' इत्यपि क्वाचित्कः पा०।

२. 'तत् कथमत्र' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

त्रिवलीशब्दः सिद्धः संज्ञा चेत् ॥ १४ ॥

'त्रिवली'शब्दः[1] सिद्धो यदि संज्ञा। 'दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्' (पा० २।१।५०) इति संज्ञायामेव समासविधानात् ॥ १४ ॥

यदि 'त्रिवली' शब्द संज्ञा हो तो सिद्ध है।

यदि संज्ञा हो तो 'त्रिवली' शब्द 'दिक्संख्ये संज्ञायाम्' (पा० २।१।५०) सूत्रसे समास होनेपर सिद्ध होगा। (तात्पर्य यह है कि—'कोणस्त्रिवल्येव कुचावलाबूस्तस्यास्तु दण्डं खलु रोमराजिः। हारोऽपि तन्त्रीरिति मन्मथस्य सङ्गीतविद्यासरलस्य वीणा ॥' (उस नायिकाकी त्रिवली वीणा बजानेका धनुषाकार कोष, दोनों स्तन वीणाकी तुम्बी, रोमसमूह वीणाका दण्ड और मुक्ताहार तार हैं, अतः सङ्गीतविद्यामें निपुण कामदेवकी वह वीणा है) इसमें 'त्रिवली' शब्द प्रयुक्त हुआ है, यहाँ इस त्रिवली शब्दको यदि असंज्ञा मानते हैं तो यह 'पञ्चकपालः' प्रयोगके समान तद्धितार्थ विषय नहीं है, न तो 'पञ्चगवधन' पदके समान उत्तरपद 'पर' में है और न तो 'पञ्चकपालम्' पदके समान समाहारद्वन्द्व ही है, क्योंकि समाहारद्वन्द्व स्वीकार करनेपर 'स नपुंसकम्' (पा० २।४।१७) सूत्रसे 'नपुंसकलिङ्ग' हो जायेगा, इन कारणोंसे 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (पा० २।१।५१) सूत्रसे समास नहीं हो सकता, इससे इसको संज्ञा मानकर 'त्रयोऽवयवा यस्याः सा त्र्यवयवा, त्र्यवयवा चासौ वली च' इस विग्रहमें 'समास' होनेसे 'त्रिवली' शब्द सिद्ध माना गया है) ॥ १४ ॥

त्रिवलीशब्द इति।

> **कोणस्त्रिवल्येव कुचावलाबूस्तस्यास्तु दण्डन्तनुरोमराजिः।**
> **हारोऽपि तन्त्रीरिति मन्मथस्य सङ्गीतविद्यासरलस्य वीणा ॥**

किमियं[2] संज्ञा? असंज्ञा वा? असंज्ञापक्षे त्रिवलीशब्दस्य 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (पा० २।१।५१) इति समासो वक्तव्यः। तत्तु न सङ्घटते। तथाहि न तावत् 'पञ्चकपाल' इत्यादिवत् तद्धितार्थो विषयोऽस्ति। नाऽपि 'पञ्चगवधन' इत्यादिवदुत्तरपदं परम्। न चापि पञ्चपात्रमित्यादिवत् समाहारः। समाहारे हि तस्यैकत्वादेकवद्भावे सति, 'स नपुंसकम्' (पा० २।४।१७) इति नपुंसकत्वं स्यात्। तदत्रासंज्ञा पक्षो नेष्ट इत्यभिसन्धाय संज्ञापक्षमाश्रित्य समासमाह—त्रिवलीशब्दः सिद्धो यदि संज्ञेति। यदि त्रिवलीशब्दः संज्ञा भवति, तदा त्र्यवयवा वली त्रिवलीति विग्रहे, 'दिक्सङ्ख्ये संज्ञाया-मि'(पा० २।१।५०)ति समासः सिद्ध्यति ॥ १४ ॥

बिम्बाधर इति वृत्तौ मध्यमपदलोपिन्याम् ॥ १५ ॥

'बिम्बाधरः पीयते' इति प्रयोगो दृश्यते, स च न युक्तः 'अधरबिम्ब' इति भवितव्यम्। 'उपमितं व्याघ्रादिभिः'-(पा० २।१।५६) इति समासे सति।

---

१. 'त्रिवलीत्ययं' इति 'क, ग' पु०, 'त्रिवलीशब्दः' इति सूत्रे 'त्रिवलीत्ययं' इति वृत्तौ च पवर्गमध्य 'त्रिवली' शब्दः 'ख' पु०।

२. 'किमयं' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

तत् कथं बिम्बाधर ? इत्याह—वृत्तौ मध्यमपदलोपिन्यां शाकपार्थिवादित्वात् समासे, मध्यमपदलोपिनि समासे[1] सति बिम्बाकारोऽधरो 'बिम्बाधर' इति। तेन 'बिम्बोष्ठ'शब्दोऽपि व्याख्यातः। अत्रापि पूर्ववद् वृत्तिः। शिष्टप्रयोगेषु चैष विधिः, तेन नाऽतिप्रसङ्गः ॥ १५ ॥

'बिम्बाधरः' यह पद मध्यमपदलोपी समासमें सिद्ध है।

'बिम्बाधरः पीयते' ऐसा प्रयोग दिखलायी पड़ता है, किन्तु 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (पा० २।१।५६) सूत्रसे समास करनेपर 'अधरबिम्बः' प्रयोग होता है तो 'बिम्बाधरः' प्रयोग कैसे हुआ ? ऐसी शङ्का होनेपर समाधान कहते हैं— 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' इस वार्तिकसे 'बिम्बाकारोऽधरः' इस विग्रहमें मध्यमपदलोपी समास करनेसे सिद्ध होता है। इससे 'बिम्बाकार ओष्ठः' इस विग्रहमें 'बिम्बौष्ठः' शब्द भी मध्यमपदलोपी समास करनेपर सिद्ध होता है। ऐसा माननेपर ('व्याघ्राकारः पुरुषः' इस विग्रहमें 'व्याघ्रपुरुषः' आदि प्रयोगके भी सिद्ध होनेसे) अतिव्याप्ति दोष भी, शिष्ट प्रयोगोंमें उक्त नियमके प्रवृत्त होनेसे नहीं होगा ॥ १५ ॥

बिम्बाधर इति। अत्र समासवृत्तिं संवेदयितुमभियुक्तप्रयोगं तावद् दर्शयति— 'बिम्बाधरः पीयत' इति। प्रामाणिकप्रयोगदर्शनादयमसाधुरिति वक्तुमयुक्तमित्याशङ्क्याह—स च न युक्त इति। लक्षणानुगुणं प्रयोगं दर्शयन्नस्या अयुक्तत्वं दर्शयति— अधरबिम्ब इति। समाधत्ते—वृत्तौ मध्यमपदलोपिन्यामिति। उक्तामुपपत्तिमन्यत्राप्यनुगमयति—तेनेति। ननु तर्हि व्याघ्राकारः पुरुषो 'व्याघ्रपुरुष' इत्यपि स्यादित्यतिप्रसङ्गं परिहरति—शिष्टप्रयोगेषु चैष विधिरिति ॥ १५ ॥

आमूललोलादिषु वृत्तिर्विस्पष्टपटुवत् ॥ १६ ॥

'आमूललोलमामूलसरसमि'[2]त्यादिषु वृत्तिर्विस्पष्टपटुवन्मयूरव्यंसकादित्वात्[3] ॥ १६ ॥

'आमूललोलम्' आदि प्रयोगोंमें 'विस्पष्टपटु' शब्दके समान समास होता है।

'आमूललोलम्, आमूलसरसम्' इत्यादि प्रयोगोमें 'विस्पष्टपटु' शब्दके समान 'मयूरव्यंसकादयश्च' (पा० २।१।७२) सूत्रसे 'अविहित लक्षण तत्पुरुष समास होता है। ('आमूलं लोलम्, आमूलं सरसम्' विग्रह करनेपर तत्पुरुष या अन्य समासकी प्राप्ति नहीं होनेसे 'आमूललोलम्, आमूलसरसम्' प्रयोगोंकी सिद्धि कैसे हुई ? इस शङ्काका समाधान उक्त प्रकारसे किया गया है) ॥ १६ ॥

आमूललोलादिष्विति। आमूलं लोलमिति विग्रहः। अत्र तत्पुरुषाधिकारे लक्षणाऽदर्शनात् समासान्तरस्य चाप्रसक्तेः कथमामूललोलादिप्रयोगः सिद्ध्यतीति चिन्तायाम्,

१. 'समासे' इत्यंशः पाठान्तरमिति 'ख' पु० टि०।
२. '......मामूलसरलम्' इति 'क, ग' पु० पा०।
३. एतदग्रे 'लोलमिव लोलम्, आमूलं तल्लोलञ्चेति' इत्यधिकः 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्य' इति वचनाद् विस्पष्टपटुशब्दवत् समाससिद्धिरित्याह—'आमूललोलमामूलसरसमि'ति ॥ १६ ॥

न धान्यषष्ठादिषु षष्ठीसमासप्रतिषेधः, पूरणेनान्यतद्धितान्तत्वात्[1] ॥ १७ ॥

धान्यषष्ठम्, 'तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि' इत्यादिषु न षष्ठीसमासप्रतिषेधः, पूरणेन पूरणप्रत्ययान्तेनान्यतद्धितान्तत्वात्[2]। षष्ठो भागः षष्ठ इति। 'पूरणाद्भागे तीयादन्' (पा० ५।३।४८), 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' (पा० ५।३।५०) इत्यन्विधानात् स प्राप्तः[3] ॥ १७ ॥

'धान्यषष्ठम्' इत्यादि प्रयोगोंमें पूरणार्थकसे भिन्न तद्धितान्त प्रत्यय होनेके कारण षष्ठी समासका प्रतिषेध नहीं होता है।

'धान्यषष्ठम्' तथा 'तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि'के 'उञ्छषष्ठम्' प्रयोगोंमें 'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' (पा० २।२।११) सूत्रसे षष्ठी समासका निषेध इस कारण नहीं होता, क्योंकि उक्त प्रयोगोंमें 'पूरणाद्भागे तीयादन्' (पा० ५।३।४८) सूत्रकी अनुवृत्ति कर 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' (पा० ४।३।५०) सूत्रद्वारा 'षष्ठ' शब्दसे 'ञ' विहित प्रत्यय पूरणार्थक तद्धितसे भिन्न है। अतः 'षष्ठो भागः षष्ठः' ऐसा विग्रह 'ञ' प्रत्यय करके पुनः षष्ठी समास किया जाता है ॥ १७ ॥

न धान्यषष्ठादिष्विति। धान्यानां षष्ठमुञ्छानां षष्ठमित्यत्र 'पूरणगुणसुहितार्थ—' (पा० २।२।११) इति सूत्रेण पूरणप्रत्ययान्तेन समासनिषेधः क्रियते, स च न भवतीत्याह—धान्यषष्ठमिति। तत्र हेतुमाह—तद्धितेति। षष्ठशब्दस्य तद्धितान्तत्वादित्यर्थः। कः पुनरत्र पूरणप्रत्ययव्यतिरेकेण तद्धित ? इत्याकाङ्क्षायां तद्धितं दर्शयति—षष्ठो भाग इति। 'पूरणाद्भागे तीयादन्' (पा० ५।३।४८) इत्यनुवृत्तौ, 'षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च' (पा० ५।३।५०) इत्यन् विधानादन्यतद्धितान्तत्वमित्यर्थः ॥ १७ ॥

पत्रपीतिमादिषु गुणवचनेन ॥ १८ ॥

'पत्रपीतिमा, पक्ष्मालीपिङ्गलिमा'[4] इत्यादिषु षष्ठीसमासप्रतिषेधो गुणवचनेन प्राप्तो बालिश्यात्तु न कृतः ॥ १८ ॥

'पत्रपीतिमा' इत्यादि प्रयोगोंमें 'पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन' (पा० २।२।११) सूत्रसे षष्ठी समासका प्रतिषेध होता है (अतः यह प्रयोग दूषित है)।

---

१. 'पूरणेन तद्धितान्तत्वात्' इति 'ग' पु० पा०।
२. '······प्रत्ययान्तेन तद्धि······' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'स प्राप्तः' इति 'ग' पु० नास्ति।
४. 'पक्ष्मालीपिङ्गलिम्नः' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'पत्रपीतिमा, पक्ष्मालीपिङ्गलिमा' इत्यादि प्रयोगोंमें 'पूरणगुण…' (पा० २।२।११) सूत्रसे षष्ठी समासका निषेध प्राप्त है, किन्तु अज्ञानवश नहीं किया गया है। अतः यह प्रयोग दोषयुक्त है। (कुछ विद्वानोंका मत है कि—'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' (पा० ३।३।१३१) सूत्रमें 'सामीप्य' के निर्देशसे ही 'चातुर्वर्ण्यम्' आदि प्रयोगोंमें 'ष्यञ्' प्रत्यय सिद्ध हो जानेसे 'चतुर्वर्णादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा०) प्रपञ्चार्थ है, 'पूरणगुण….' (३।३।१३१) सूत्रसे षष्ठी समासका प्राप्त निषेध भी षष्ठी समासका अनित्यत्व ज्ञापनसे नहीं होगा, इस प्रकार 'पत्रपीतिमाः पक्ष्मनीलिमा' आदि प्रयोग भी षष्ठी समासके प्रतिषेधके अनित्यत्वसे शुद्ध हैं। 'गुण सम्बन्धभावसे गुणीको आक्षिप्त करता है, अतः गुणके साथ गुणीका षष्ठी समास नहीं हो सकता। इस सिद्धान्तवाले विद्वानोंके मतमें 'उत्तरपदार्थप्राधान्ये' इस ज्ञापकसे षष्ठी समासके प्रतिषेधके अनित्य होनेसे उक्त 'पत्रपीतिमा' आदि प्रयोगोंमें षष्ठी समासके निषेधकी प्रवृत्ति नहीं होती, फलतः वे प्रयोग दूषित नहीं हैं) ॥ १८ ॥

पत्रपीतिमादिष्विति। अत्र 'पूरणगुणे'(पा० २।२।११)त्यादिसूत्रेण गुणवाचिना षष्ठीसमासप्रतिषेधः प्राप्तः, स तु मौढ्यान्न कृतः; अतः पत्रपीतिमादयो न युक्ता इत्याह—पत्रपीतिमा, पक्ष्मालीपिङ्गलिमेति। 'वर्त्तमानसामीप्ये' (पा० ३।३।१३१) इति ज्ञापकात् पत्रपीतिमादयः सिद्ध्यन्तीति केचित्। येषान्तु मतं 'गुणः सम्बन्धत्वाद् गुणिनमाक्षिपति', तेन गुणेन गुणिनः षष्ठीसमासनिषेधः। न च वर्तमानः सामीप्ये गुणी, भूतभविष्यतोरेव तद्गुणित्वादिति, तेषां मते 'उत्तरपदार्थप्राधान्ये' इति ज्ञापकादनित्यः षष्ठीसमासप्रतिषेध इति केचित्[1] ॥ १८ ॥

अवर्ज्यो न व्यधिकरणो[2] जन्माद्युत्तरपदः ॥ १९ ॥

अवर्ज्यो न वर्जनीयो व्यधिकरणो बहुव्रीहिः। जन्माद्युत्तरपदं यस्य स जन्माद्युत्तरपदः। यथा—

'सच्छास्त्रजन्मा हि विवेकलाभः', 'कान्तवृत्तयः[3] प्राणाः'[4] इति ॥ १९ ॥

('बहुव्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्तव्यम्' (वा०) इस वचनसे 'सच्छास्त्राज्जन्म यस्य स सच्छास्त्रजन्मा' आदि प्रयोगोंमें व्यधिकरण होनेसे बहुव्रीहिकी प्राप्ति नहीं है, इसके लिए कहीं-कहीं व्यधिकरण बहुव्रीहिका भी विधान होता है, यह कहते हैं—) 'जन्म' आदि शब्द जिसके उत्तर (आगे) में है, ऐसा व्यधिकरण बहुव्रीहि वर्जित नहीं है।

---

१. 'केचिदाचक्षते' इति 'ख' पु० पा०।

२. 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो……' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

३. 'शास्त्रार्थजन्मा हि विवेकलाभः, कण्ठवृत्तयः' इति 'क' पु० पा०।

४. 'स दिति। सच्छास्त्राज्जन्म यस्य स सच्छास्त्रजन्मा। 'कान्ते प्रिये वृत्तिर्येषां ते कान्तवृत्तयः इति व्यधिकरणत्वम्। यत्र' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'जन्म' आदि शब्द जिसके उत्तरमें है, ऐसा व्यधिकरण (भिन्न-भिन्न विभक्तियों वाला) बहुव्रीहि समास वर्जनीय नहीं है। यथा—

'सच्छास्त्रजन्मा हि विवेकलाभः' (विवेकका लाभ उत्तम शास्त्रसे उत्पन्न होता है। यहाँ 'सच्छास्त्राज्जन्म यस्य स सच्छास्त्रजन्मा' ऐसे विग्रहमें व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हो गया) तथा 'कान्तवृत्तयः प्राणाः' (प्रियमें वृत्ति रखनेवाले प्राण हैं। यहाँ भी 'कान्ते (प्रिये) वृत्तिर्येषान्ते 'कान्तवृत्तयः' इस विग्रहमें व्यधिकरणबहुव्रीहि समास हो गया) है। (किन्तु जहाँ शिष्टप्रयोग आदि प्रमाण है, वहीं व्यधिकरणबहुव्रीहि अवर्जनीय (ग्राह्य) है, सर्वत्र नहीं)॥ १९॥

अवर्ज्य इति। 'बहुव्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्तव्यमि'ति वचनाद् व्यधिकरणस्य बहुव्रीहेरसिद्धौ क्वचिद्विषये तत्प्रसिद्धिमाह—अवर्ज्य इति। सच्छास्त्राज्जन्म यस्य स सच्छास्त्रजन्मा, कान्ते प्रिये वृत्तिर्येषां ते कान्तवृत्तय इति व्यधिकरणत्वम्। यत्र गमकत्वं, तत्रेदं वेदितव्यम्॥ १९॥

हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्॥ २०॥

'हस्ताग्रम्, अग्रहस्तः, पुष्पाग्रम्, अग्रपुष्पम्' इत्यादयः प्रयोगाः कथम्? आहिताग्न्यादिष्वपाठात्। पाठे वा तदनियमः स्यात्। आह[1]—गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्। तत्र भेदाद्, हस्ताग्रादयः। अभेदादग्रहस्तादयः॥ २०॥

'हस्ताग्रम्, अग्रहस्तः' आदि प्रयोग गुण और गुणी अर्थात् अवयव और अवयवीमें भेद और अभेद मानकर सिद्ध होते हैं।

'हस्ताग्रम्, अग्रहस्तः' तथा 'पुष्पाग्रम्, अग्रपुष्पम्' इत्यादि प्रयोग कैसे सिद्ध हुए? क्योंकि 'आहिताग्नि' गणमें इनका पाठ नहीं है। यदि 'आकृतिगण' मानकर प्रयोग-सिद्ध किये जायें तो नियमभङ्ग हो जायेगा। साथ ही आहिताग्निगणमें पाठ माननेपर भी बहुव्रीहि समासके प्रकरणमें 'हस्ताग्रम्, अग्रहस्तः' आदि तत्पुरुष समासका विधान उचित नहीं होगा? इस शङ्काका निवारण करते हुए कहते हैं—ये प्रयोग गुण और गुणी अर्थात् अवयव और अवयवीमें भेद तथा अभेद मानकर सिद्ध होंगे। भेदकी विवक्षा होनेपर 'हस्तस्य अग्रे हस्ताग्रम्' इस विग्रहमें षष्ठीतत्पुरुष समास और अभेदोपचारमें भी प्रवृत्ति-निवृत्तिके भेदसे 'अग्रश्चासौ हस्तश्चेति अग्रहस्तः' ऐसे विग्रहमें विशेष्य-विशेषण समास करनेसे ये प्रयोग सिद्ध होंगे। इसी प्रकार 'पुष्पाग्रम्, अग्रपुष्पम्' प्रयोगोंकी सिद्धि समझनी चाहिए॥ २०॥

हस्ताग्रेति। अत्र गुणशब्देन परार्थत्वसादृश्यादवयवो लक्ष्यते। तथा च गुणगुणिनाविहावयवावयविनौ, तयोर्भेदविवक्षायां हस्ताग्रादयः; तदा षष्ठीसमासः। अभेदविवक्षायां त्वग्रहस्तादयः, तदाऽभेदोपचारेऽपि प्रवृत्तिनिवृत्तिभेदाद्विशेषणसमासः॥ २०॥

---

१. 'अत आह–' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

पूर्वनिपातेऽपभ्रंशो रक्ष्यः[1] ॥ २१ ॥

'काष्ठतृणं, तृणकाष्ठमि'ति यदृच्छया पूर्वनिपातं कुर्वन्ति, तत्रापभ्रंशो रक्ष्यः[2] परिहरणीयः। अनित्यत्वज्ञापनं तु न सर्वविषयमिति ॥ २१ ॥

पूर्वनिपातके विधानमें अपभ्रंशका परिहार करना चाहिए।

'काष्ठतृणम्, तृणकाष्ठम्' इस प्रकार पूर्वनिपातका प्रयोग इच्छानुसार अनियमित करते हैं। वहाँ 'लघ्वक्षरं पूर्वम्' (वा०) वार्तिकसे 'तृणकाष्ठम्' प्रयोग करना चाहिए, परन्तु कुछ लोग स्वेच्छानुसार 'काष्ठतृणम्' ऐसे अपभ्रंशका प्रयोग करते हैं, उसका परिहार करना चाहिए, अर्थात् इस प्रकार अशुद्ध प्रयोग नहीं करना चाहिए। 'कुमारशीर्षयोर्णिनिः' (पा० ३।२।५१) सूत्रके निर्देशसे पूर्वनिपातके व्यत्यासद्वारा 'काष्ठतृणम्' प्रयोग भी सिद्ध हो सकता है, यह कथन भी अनित्यत्व ज्ञापकताके असार्वत्रिक होनेसे ठीक नहीं है, क्योंकि 'प्राप्तस्य चाबाधा' (प्राप्तकी वाधा नहीं होती) इस वचनसे ज्ञापकके अनित्यताका विषय शिष्टप्रयुक्त छन्दमें ही होता है, सर्वत्र नहीं ॥ २१ ॥

पूर्वनिपात इति। 'लघ्वक्षरं पूर्वं निपतति' (वा०) इति वार्तिककारवचनेन द्वन्द्वे पूर्वनिपातविधानात्तृणकाष्ठमिति वक्तव्ये 'काष्ठतृणमि'ति क्वचित् केनचित् प्रयुक्तम्, तत्र पूर्वनिपातेऽपभ्रंशः शास्त्रमर्यादातिक्रमः, स रक्ष्यः[3] परिहरणीयः। तथा न प्रयोक्तव्यमिति तात्पर्यम्। 'कुमारशीर्षयोः—' (पा० ३।२।५१) इति ज्ञापकात् पूर्वनिपातव्यत्यासो भविष्यतीति तत्राऽऽह—अनित्यत्वज्ञापनं त्विति। न सर्वेति। 'प्राप्तस्य चाबाधा' इति वचनाच्छिष्टप्रयुक्तद्वन्द्वविषयमेवेति भावः ॥ २१ ॥

निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः, परिगणनस्य प्रायिकत्वात् ॥ २२ ॥

'अनभिहिते' (पा० २।३।१) इत्यत्र सूत्रे 'तिङ्कृत्तद्धितसमासैः' (पा० २।३।२, सू० वृ०) इति परिगणनं कृतम्। तस्य प्रायिकत्वान्निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिर्भवति। यथा—

'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्'।
'पण्डितं मूर्खं इति मन्यते' इति ॥ २२ ॥

निपातसे भी अभिहित (उक्त) कर्ममें कर्मविभक्ति, परिगणनके प्रायिक (असार्वत्रिक) होनेसे नहीं होती है।

'अनभिहिते' (पा० २।३।१) इस सूत्रमें 'तिङ्कृत्तद्धितसमासैः' (२।३।२) सूत्रकी वृत्तिसे जो परिगणन किया गया है, उसके प्रायिक (असार्वत्रिक) होनेके

१-२-३. 'रक्ष्य' इति पा० 'क-ख-ग' पु० अनुरोधात् 'परिहरणीयः' इति का० धे० अनुरोधाच्च सम्यक् प्रतीतेः परिवर्तितः।

१५ का०

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कारण निपातसे भी अभिहित (उक्त) कर्ममें कर्मविभक्ति अर्थात् 'कर्मणि द्वितीया' (पा० २।३।२) सूत्रसे द्वितीया विभक्ति नहीं होती। (भगवान् वार्तिककारने प्रायिकाभिप्रायसे ही वहाँ 'तिङ्कृत्तद्धितसमासैः' वचनद्वारा परिगणन किया है)। यथा—

'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।' (विषवृक्षको भी बढ़ाकर स्वयं काटना अनुचित है) यहाँपर संवर्धन और छेदन क्रियाओंके सकर्मक होनेसे कर्माकाङ्क्षामें द्वितीया विभक्ति नहीं होती है (क्योंकि विधेयकी अयोग्यताके वाचक 'असाम्प्रतम्' पदसे कर्म अभिहित (उक्त) है। 'असाम्प्रतम्' पदके तद्धितप्रत्ययान्त होनेके कारण उसीसे कर्मके अभिहित होनेसे कर्मविभक्ति नहीं होगी, अतः यह उदाहरण अनुपयुक्त है, यह शंका नहीं करनी चाहिए। 'युक्ते काले च साम्प्रतम्' इस कोष-वचनसे 'असाम्प्रतम्' पद अतद्धितान्त ही है। अथवा तद्धितान्त माननेपर भी उसके अन्यार्थक होनेसे उससे अभिहित नहीं होगा, शब्दशक्तिके स्वभावसे यह अभिहित होगा, ऐसा समझना चाहिए)।

(दूसरा उदाहरण जैसे—'पण्डितं मूर्खं इति मन्यते।' (पण्डितको मूर्ख ऐसा मानता है) यहाँपर भी 'मूर्ख' शब्दके 'इति' निपातसे अभिहित होनेके कारण द्वितीया विभक्ति नहीं होती है)॥ २२॥

निपातेनाऽपीति। 'ब्राह्मणं देवदत्त इति मन्यते' इत्या'दावनभिहित' (पा० २।३।१) इत्यधिकारात् 'तिङ्कृत्तद्धितसमासैर'-(पा० २।३।२ सू० वृ०)नभिहिते कारके कर्मणि द्वितीयया भवितव्यमित्याशङ्कायामाह—निपातेनाऽपीति। तत्र हेतुमाह—परिगणनस्येति। भगवता वार्तिककारेण प्रायिकाभिप्रायेण 'तिङ्कृत्तद्धितसमासैः' (पा० २।३।२ सू० वृ०) इति परिगणनं कृतम्। ततश्चैवंविधाः प्रयोगाः सिद्धा इति दर्शयति—विषवृक्ष इति। अत्र संवर्धनच्छेदनक्रिययोः सकर्मकत्वेन कर्माकाङ्क्षायां न कर्मविभक्तिर्भवति, विधेयायुक्तत्वाभिधायिना 'असाम्प्रतमि'ति निपातेनाभिहितत्वात्। नन्वसाम्प्रतपदस्य तद्धितान्तत्वात् तेनैवाभिहिते न भवत्येव कर्मविभक्तिरतो नेदमुदाहरणमिति न चोदनीयम्। 'युक्ते काले च साम्प्रतम्' इत्यभिधानादतद्धितान्त एवायं निपातः। तद्धितान्तत्वे वा तस्यानन्यार्थत्वान्न तेनाभिधानमिति भावः। शब्दशक्तिस्वाभाव्यादस्याभिधायकत्वमिति द्रष्टव्यम्। मूर्ख इत्यसमुदायस्य[1] कर्मत्वेऽपि, 'अर्थवत्समुदायानां समासग्रहणं नियमार्थमि'ति वाक्यान्न विभक्त्युत्पत्तिः॥ २२॥

शक्यमिति रूपं विलिङ्गवचनस्यापि कर्माभिधायां[2] सामान्योपक्रमात्॥ २३॥

शकेः 'शकिसहोश्च' (पा० ३।१।९९) इति कर्मणि यति सति[3] शक्यमिति

१. 'मूर्ख इति। अत्र समुदायस्य' इति 'ख' पु० पा०।
२. 'रूपं कर्माभिधायां लिङ्गवचनस्यापि' इति 'ख-ग' पु० पा०।
३. 'कृते' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

रूपं भवति, लिङ्गवचनस्यापि कर्माभिधायां कर्मवचने सामान्योपक्रमाद्[1], विशेषानपेक्षायामिति। यथा—

शक्यमोषधिपतेर्नवोदयाः कर्णपूररचनाकृते तव।
अप्रगल्भयवसूचिकोमलाश्छेत्तुमग्रनखसम्पुटैः कराः॥

अत्र भाष्यकृद्वचनं लिङ्गम्। यथा—

'शक्यं च श्वमांसादिभिरपि क्षुत् प्रतिहन्तुम्' इति।[2]

न चैकान्तिकः सामान्योपक्रमः। तेन—

'शक्या भङ्क्तुं झटिति बिसिनीकन्दवच्चन्द्रपादाः।

इत्यपि भवति॥ २३॥

लिङ्ग और वचनके कर्माभिहित होनेपर भी सामान्य उपक्रमसे 'शक्यम्' रूप हो सकता है।

'शक्' धातुसे 'शकिसहोश्च' (पा० ३।१।९९) सूत्रसे 'यत्' प्रत्यय करनेपर 'शक्यम्' रूप होता है। लिङ्ग और वचनके कर्माभिधानमें विशेषकी अपेक्षा नहीं होनेपर सामान्य उपक्रमसे अर्थात् 'सामान्ये नपुंसकम्' और 'एकवचनमुत्सर्गतः करिष्यते' इन शिष्ट वचनोंसे नपुंसकलिङ्ग और एकवचन होते हैं। यथा—

'शक्यमोषधि····कराः।' तेरे कर्णपूरकी रचनाके लिए नये यवाङ्कुरके समान कोमल, चन्द्रमाकी निकलती हुई किरणें नखाग्र-समूहसे छिन्न करने (काटने) के लिए शक्य हैं। (इस उदाहरणमें 'ओषधिपतेः नवोदयाः कराः' का 'छेत्तुं शक्यम्' का प्रयोग 'नपुंसकलिङ्गके एकवचनमें सामान्योपक्रमके विशेषकी अविवक्षामें हुआ है।)

यहाँ भाष्यकारका वचन प्रमाण है; यथा—'शक्यं श्वमांसादिभिरपि क्षुत् प्रतिहन्तुम्'। कुत्ते आदिके मांससे भी भूख मिटायी जा सकती है। (इसमें भाष्यकारने स्त्रीलिङ्ग 'क्षुत्' शब्दके साथ नपुंसकलिङ्ग और एकवचन 'शक्यम्' का प्रयोग किया है)।

सामान्योपक्रम एकान्तिक नहीं है, अर्थात् भाष्यकारके उक्त वचनसे प्रमाणित नपुंसकलिङ्ग और एकवचनका प्रयोग सर्वत्र नहीं होता, अत एव—

'शक्या भङ्क्तुं····चन्द्रपादाः।' बिसिनीके कन्दके समान चन्द्रकिरण शीघ्र काटे जा सकते हैं। (इस उदाहरणमें 'चन्द्रापादाके अनुसार ही 'भङ्क्तुं शक्याः' प्रयोग पुंल्लिङ्गके बहुवचनमें हुआ है, सामान्योपक्रमसे 'भङ्क्तुं शक्यम्' इस प्रकार नपुंसकलिङ्ग और एकवचनमें प्रयोग नहीं हुआ है)।

---

१. अत्रत्यः 'विलिङ्गवचनस्यापि विरुद्धलिङ्गवचनस्यापि' इति पाठः 'क' पुस्तके उपलभ्यमानोऽपि का० धे० व्याख्यानुरोधात् 'ख-ग' पु० तथैव पाठाच्च परिवर्त्य 'लिङ्गवचनस्यापि सामान्योपक्रमात्' इत्येवं परिवर्तितः।

२. 'अत्र भाष्यकृद्वचनं···प्रतिहन्तुम्। इति' इत्यंशः पुस्तकविशेषे नास्ति। इति 'ख' पु० टिप्पणी।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यह भी होता है ॥ २३ ॥

'शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः', इत्यादयः प्रयोगा दृश्यन्ते । शकेः कृत्यप्रत्यये शक्यमिति रूपम् । 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' (पा० ३।४।७०) इति कर्मार्थे विहितस्य तस्य कर्माभिधायां विशेष्यवल्लिङ्गवचनाभ्यां भवितव्यमिति प्राप्ते प्राह—शक्यमिति रूपं भवतीति[1] । कर्माभिधायामपि शक्यमिति रूपं सिद्धम् । तत्र हेतुमाह—लिङ्गवचनस्यापीति । लिङ्गं च वचनं च लिङ्गवचनम्, तस्य सामान्योपक्रमाल्लिङ्ग-सामान्यं नपुंसकं, वचनसामान्यमेकत्वम्, तयोरुपक्रमाद्विशेषनैरपेक्ष्येण लिङ्गवचन-सामान्यस्य विवक्षणादित्यर्थः । उदाहृत्य दर्शयति—यथेति । ऐकान्तिको नियतः ॥२३॥

हानिवदाधिक्यमप्यङ्गानां विकारः ॥ २४ ॥

'येनाङ्गविकार' (पा० २।३।२०) इत्यत्र सूत्रे यथाऽङ्गानां हानिस्तथा-धिक्यमपि विकारः । यथा—'अक्ष्णा काण' इति भवति, तथा 'मुखेन त्रिलोचन' इत्यपि भवति ॥ २४ ॥

हानि (कमी) के समान अधिक होना भी अङ्गोंका विकार है ॥

'येनाङ्गविकारः' (पा० २।३।२०) सूत्रमें जैसे अङ्गोंके कम होना विकार माना गया, वैसे ही अङ्गोंके अधिक होना भी विकार माना जाता है । (अत एव) जिस प्रकार 'अक्ष्णा काणः' (आँखसे काना है) में 'अक्षि' शब्दसे तृतीया विभक्ति होती है, उसी प्रकार 'मुखेन (पूर्णेन्दुनिभः) त्रिलोचनः' (मुखसे (पूर्णचन्द्रके समान) तीन आँखोवाला अर्थात् शिव है) यहाँपर 'मुख' शब्दसे तृतीया विभक्ति हुई है । अन्यथा अङ्गके आधिक्यमें तृतीया विभक्तिका विधान प्राप्त नहीं होने से 'माघ' कविका उक्त प्रयोग दूषित माना जाता ॥ २४ ॥

हानिवदिति । 'मुखेन त्रिलोचन' इत्यत्र तृतीयाप्राप्तावनुशासनस्यादर्शनात् कथमत्र तृतीयेति चिन्तायामाह—येनाङ्गविकार इति । हानिर्न्यूनता । यथाङ्गानां न्यूनता विकारस्तथाधिक्यमपि विकार एव । अतो 'येनाङ्गविकार' (पा० २।३।२०) इति तृतीया ॥ २४ ॥

न क्रमिकीटानामित्येकवद्भावप्रसङ्गात् ॥ २५ ॥

'आयुषः क्रमिकीटानामलङ्करणमल्पता' इत्यत्र क्रमिकीटानामिति प्रयोगो न युक्तः, 'क्षुद्रजन्तवः' (पा० २।४।८) इत्येकवद्भावप्रसङ्गात् । न च मध्यम-पदलोपी समासो युक्तः, तस्याऽसर्वविषयत्वात् ॥ २५ ॥

'क्रमिकीटानाम्' में बहुवचनका प्रयोग एकवद्भावकी प्राप्ति होनेसे ठीक नहीं है ।

'आयुषः क्रमिकीटा····मल्पता' कीड़ों-मकोड़ोकी आयुका कम होना अलङ्कार (उत्तम) है ।

१. 'भवतीति' 'ख' पु० नास्ति ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इस उदाहरणमें प्रयुक्त 'कृमिकीटानाम्' बहुवचनान्त प्रयोग 'क्षुद्रजन्तवः' (पा० २।४।८) सूत्रसे एकवद्भाव प्राप्त होनेसे ठीक नहीं है। (मुखसहिता नासिका मुखनासिका' के समान यहाँ भी) मध्यपदलोपी समास भी असार्वत्रिक होनेसे नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

न कृमीति[1] । क्षुद्रजन्तुवाचिनां द्वन्द्वसमास एकवद्भावविधानाद् बहुवचनान्तप्रयोगो न साधुरित्याह—आयुष इति । ननु मुखसहिता नासिका मुखनासिकेतिवन्मध्यमपदलोपिसमासः स्यादित्यपि न वक्तुं युक्तम्, तस्याऽसार्वत्रिकत्वादिति समर्थयते—न चेति ॥ २५ ॥

न खरोष्ट्रावुष्ट्रखरमिति पाठात् ॥ २६ ॥

खरोष्ट्रौ वाहनं येषाम् इत्यत्र 'खरोष्ट्रौ' इति प्रयोगो न युक्तः, गवाश्वप्रभृतिषु 'उष्ट्रखरमि'ति पाठात् ॥ २६ ॥

'खरोष्ट्रौ' यह प्रयोग 'गवाश्वादि'गणमें 'उष्ट्रखरम्' ऐसा पाठ होनेसे अशुद्ध है।

'खरोष्ट्रौ वाहनं येषाम्' इस प्रकारके विग्रहमें 'खरोष्ट्रौ' यह पुँल्लिङ्ग द्विवचनान्त प्रयोग उचित नहीं है, क्योंकि 'गवाश्वप्रभृतीनि च' (पा० २।४।११) सूत्रके गवाश्वादिगणमें निपातसे 'उष्ट्रखरम्' ऐसा पाठ है ॥ २६ ॥

न खरोष्ट्राविति । गवाश्वादिगणे उष्ट्रखरमिति निपातितत्वात्, खरोष्ट्राविति व्यत्यासेन प्रयोगोऽनुपपन्न इत्याह—खरोष्ट्रौ वाहनमिति ॥ २६ ॥

आसेत्यसतेः ॥ २७ ॥

'लावण्यमुत्पाद्य इवास यत्नः'।

इत्यत्रासेत्यसतेर्धातोः, 'अस गतिदीप्त्यादानेषु' इत्यस्य प्रयोगः, नाऽस्तेः, भूभावविधानात् ॥ २७ ॥

'आस' यह प्रयोग भ्वादिगणपठित स्वरितेत् 'अस गतिदीप्त्यादानेषु' धातुका है।

'लावण्यमुत्पाद्य इवास यत्नः ।'

इस श्लोकमें 'आस' यह प्रयोग 'भ्वादि' गणमें पठित स्वरितेत् (उभयपदी) 'अस गतिदीप्त्यादानेषु' धातुके लिट् लकारका है, 'अदादि' गणमें पठित 'अस् भुवि' धातुका नहीं, क्योंकि इस धातुके लिट् लकारमें 'अस्तेर्भूः' (पा० २।४।५२) सूत्रसे 'भू' आदेश होकर 'बभूव' रूप सिद्ध होता है, 'आस' नहीं ॥ २७ ॥

आसेति । 'अस्तेर्भूः' (पा० २।४।५२) इत्यार्धधातुके भूभावविधानात् कथमासेति प्रयोग इति प्राप्ते, असतेर्धातोर्लिटि रूपमासेति, न पुनरस्तेरित्याह—लावण्य इति ॥२७॥

युद्ध्येदिति युधः क्यचि ॥ २८ ॥

'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्ध्येद्'।

---

१. 'न कृमीति स्पष्टम् ।' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

इति प्रयोगः। स चायुक्तः, युधेरात्मनेपदित्वात्। तत् कथं युद्ध्येदित्याह—युधः क्यचि। युधमात्मन इच्छेद् युद्धचेदिति ॥ २८ ॥

'युद्धचेत्' यह प्रयोग 'युध्' शब्दसे नामधातुमें 'क्यच्' प्रत्यय करनेपर होता है।

'यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्धचेत्' (जो स्वामीके दिये भोजनादि जीविकाके लिए युद्ध नहीं करे)।

यह 'युद्धचेत्' प्रयोग है, वह प्रयोग 'युध् सम्प्रहारे' धातुके आत्मनेपदी होनेके कारण शुद्ध परस्मैपदमें प्रयुक्त होनेसे उचित नहीं है। तब 'युद्धचेत्' यह प्रयोग कैसे हुआ? (इसके शिष्टप्रयोग समाधानार्थ कहते हैं—) 'युधमात्मन इच्छति' इस विग्रहमें युध्' शब्दसे नामधातुमें 'सुप आत्मनः क्यच्' (पा० ३।१।८) सूत्रसे लिङ् लकारके प्रथमपुरुषके एकवचनमें 'युद्धचेत्' प्रयोग सिद्ध है ॥ २८ ॥

युद्धचेदिति[1]। युधेरात्मनेपदिनः परस्मैपदं दृश्यते। तस्य शिष्टप्रयोगस्य साधुत्वं दर्शयितुमाह–य इति। युध्शब्दात् 'सुप आत्मनः क्यच्' (पा० ३।१।८) इति क्यच्-प्रत्यये कृते सति लिङि युद्धचेदिति सिद्धचतीत्याह—युधमिति ॥ २८ ॥

विरलायमानादिषु क्यङ् निरूप्यः ॥ २९ ॥

'विरलायमाने मलयमारुते' इत्यादिषु क्यङ् निरूप्यः, भृशादिष्वपाठात्। नापि क्यष्, लोहितादिष्वपाठात् ॥ २९ ॥

'विरलायमान' इत्यादि प्रयोगोंमें 'क्यङ्' प्रत्ययका निरूपण करना चाहिए।

विरलायमाने मलयमारुते' (मलयाचलवायुके कम होते रहने पर) यहाँ 'विरलायमाने' प्रयोगमें 'भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः' (पा० ३।१।१२) सूत्रसे 'क्यङ्' प्रत्यय नहीं प्राप्त है, क्योंकि भृशादिगणमें 'विरल' शब्द पठित नहीं है। लोहितादिगण'में भी 'विरल' शब्दका पाठ नहीं होनेके कारण 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' (पा० ३।१।१३) सूत्रसे 'क्यष्' प्रत्यय भी नहीं होगा (अतः विरलायमानः' पदकी सिद्धिके लिए 'क्यङ्' प्रत्यय चिन्तनीय है) ॥ २९ ॥

विरलायमानादिष्विति। क्यङ्क्यषोरप्राप्तत्वात् प्रत्याचष्टे—'विरालायमान' इति ॥ २९ ॥

अहेतौ हन्तेर्णिच्चुरादिपाठात् ॥ ३० ॥

'घातयित्वा दशास्यम्' इत्यत्राहेतौ णिच् दृश्यते, स कथमित्याह—चुरादिपाठात्। चुरादिषु 'चट स्फुट भेदे, घट सङ्घाते' 'हन्त्यर्थाश्च' (ग०) इति पाठात् ॥ ३० ॥

हन्त्यर्थक धातुके चुरादि गणमें पाठ होनेसे हेतुके अभावमें भी 'णिच्' प्रत्यय हो जाता है।

१. 'युध्येदिति। स्पष्टम्।' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'घातयित्वा दशास्यम्' (दशानन (रावण) को मरवाकर) प्रयोगमें हेतुके नहीं रहने पर भी 'णिच्' प्रत्यय देखा जाता है, 'हेतुमति च' (पा० ३।१।२६) सूत्रसे 'हेतु' के अभावमें कैसे हुआ? यह कह रहे हैं, 'चुरादि' गणमें पाठ होनेसे 'सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्' (पा० ३।१।२५) सूत्रसे 'णिच्' प्रत्यय होता है। 'चुरादि'गणमें 'चट-स्फुट भेदे, घट सङ्घाते, हन्त्यर्थाश्च' ऐसा पाठ होनेसे 'हन्' धातुसे 'णिच्' प्रत्यय सम्भव है ॥ ३० ॥

अहेताविति। घातयित्वेत्यत्राहेतुकर्तृभावेऽपि प्रयोगो दृश्यते, स च चुरादिपाठात् स्वार्थण्यन्तः साधुरित्याह—घातयित्वेति ॥ ३० ॥

अनुचरीति चरेष्टित्वात् ॥ ३१ ॥

'अनुचरी प्रियतमा मदालसा'।

इत्यत्रानुचरीति न युक्तः, ईकारलक्षणाभावात्। तत् कथम्? आह—चरेष्टित्वात्। पचादिषु चरडिति पठ्यते ॥ ३१ ॥

'अनुचरी' प्रयोग 'चर्' धातुसे 'ट' प्रत्यय होकर सिद्ध होता है।

'अनुचरी प्रियतमा मदालसा'—मदसे अलसायी प्रियतमा अनुगामिनी है। यहाँ 'अनुचरी' प्रयोग 'ङीप् या ङीष् प्रत्यय-विधायक सूत्रके नहीं होनेसे ठीक नहीं है, वह प्रयोग कैसे हुआ? समाधान कह रहे हैं—'पचादिगणमें' 'चरट्' पाठके 'टित्' होनेसे 'टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः' (पा० ४।१।१५) सूत्रसे 'ङीप्' प्रत्यय होकर 'अनुचरी' प्रयोग सिद्ध है ॥ ३१ ॥

अनुचरीति। आक्षेपपूर्वकमनुचरीति पदस्य साधुत्वं समर्थयते—अनुचरी प्रियतमेति। ईकारलक्षणाभावादिति[1]। पचाद्यजन्तत्वेन ङीप्प्राप्तेरभावादित्यर्थः ॥ ३१ ॥

केसरालमित्यलतेरणि ॥ ३२ ॥

'केसरालं शिलीध्रम्'[2] इत्यत्र केसरालमिति कथम्? आह—अलतेरणि। 'अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु' इत्यस्माद्धातोः केसरशब्दे कर्मण्युपपदे 'कर्मण्यण्' (पा० ३।२।१) इत्यनेनाऽणि सति केसरालमिति सिद्ध्यति ॥ ३२ ॥

'केसरालम्' पद 'अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु' धातुसे 'अण्' प्रत्यय करनेपर सिद्ध होता है।

'केसरालं शिलीध्रम्'—केसरोंवाला शिलीध्र। यहाँ 'केसरालम्' कैसे हुआ, क्योंकि 'केसर' शब्दके प्राण्यङ्गवाची और आदन्त नहीं होनेसे 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' (पा० ५।२।९६) सूत्रसे 'लच्' प्रत्ययकी प्राप्ति नहीं है? इसका उत्तर कहते हैं कि—'केसरमलति' इस विग्रहमें कर्मोपपद 'केसर' शब्दसे परे 'अल भूषणपर्याप्ति-

---

१. 'ईकारलक्षणाभावात्' इत्यत्र 'ईकाराभावात्' इति 'ख' पु० टिप्पणी।

२. 'शिलीन्ध्रम्' इति 'क-ख-ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वारणेषु' धातुसे 'कर्मण्यण्' (पा० ३।२।१) सूत्रसे 'अण्' प्रत्ययका विधान कर 'केसरालं' प्रयोग शुद्ध है ॥ ३२ ॥

केसरशब्दस्य प्राण्यङ्गवाचित्वाकारान्तत्वयोरभावात् 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' (पा० ५।२।९६) इति लजभावात् कथं केसरालमिति प्राप्ते तदुपपत्तिं वक्तुमाह—केसरालमिति । वृत्तिः स्पष्टार्था ॥ ३२ ॥

पत्रलमिति लातेः के ॥ ३३ ॥

'पत्रलं वनमिदं विराजते' इत्यत्र पत्रलमिति कथम् ? आह–लातेः के । 'ला आदाने' इत्यस्माद्धातोरादानार्थात् पत्रशब्दे कर्मण्युपपदे 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा० ३।२।३) इति कप्रत्यये सतीति ॥ ३३ ॥

'पत्रलम्' यह पद 'ला आदाने' धातुसे 'क' प्रत्यय करनेसे सिद्ध होगा ।

'पत्रलं वनमिदं विराजते' (पत्तों—(नये पल्लवों) से युक्त यह वन सुन्दर लगता है) 'पत्र' शब्दका पाठ 'सिध्मादि'गणमें नहीं होनेके कारण 'सिध्मादिभ्यश्च' (पा० ५।२।९७) सूत्रसे 'लच्' प्रत्ययके प्राप्त नहीं होनेसे 'पत्रलं' यह पद कैसे हुआ ? इसका समाधान करते हुए कहते हैं—'पत्रं लाति' इस विग्रहमें कर्मोपपद 'पत्र' शब्दसे परे 'ला आदाने' धातुसे 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा० ३।२।३) सूत्रसे 'क' प्रत्यय होनेपर 'पत्रलम्' पद सिद्ध होगा ॥ ३३ ॥

पत्रशब्दः सिध्मादिषु न पठचते इति 'सिध्मादिभ्यश्च' (पा० ५।२।९७) इति नास्ति लच्प्रत्यय इति कथं पत्रलमिति चिन्तायां साधुत्वं समर्थयते—पत्रलमिति । पत्राणि लाति आदत्त इति विग्रहे 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा० ३।२।३) इति कप्रत्यये सति उपपदसमासे कृते पत्रलमिति सिद्धमित्याह—पत्रलं वनमिति ॥ ३३ ॥

महीध्रादयो मूलविभुजादिदर्शनात् ॥ ३४ ॥

'महीध्रधरणीध्रादयः' शब्दाः मूलविभुजादिदर्शनात् कप्रत्यये सतीति । 'महीं धरतीति महीध्र' इत्येवमादयोऽन्येऽपि द्रष्टव्याः ॥ ३४ ॥

'महीध्रः' आदि पद 'मूलविभुजादि'गणमें पाठ होनेसे 'क' प्रत्यय करनेपर सिद्ध होते हैं ।

'महीध्रः, धरणीध्रः' आदि शब्द 'कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा०) के 'मूलविभुजादि'गणमें 'महीध्र' आदिका पाठ होनेसे 'महीं धरति' इस विग्रहमें 'मही' कर्मोपपद धृ' धातुसे 'क' प्रत्यय करनेपर ही सिद्ध होते हैं ॥ ३४ ॥

महीध्रादय इति । महीं धरतीति विग्रहे मूलविभुजादेराकृतिगणत्वात् कप्रत्यये कृते कित्त्वेन गुणाभावाद्यणादेशे सति महीध्रादयः सिद्धा इत्याह—'महीध्रधरणीध्रादय' इति ॥ ३४ ॥

ब्रह्मादिषु हन्तेर्नियमादरिहाद्यसिद्धिः ॥ ३५ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ब्रह्मादिषूपपदेषु हन्तेः क्विब्विधौ, 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु' (पा० ३।२।८७) इत्यत्रारिहारिपुहा इत्येवमादीनामसिद्धिः, नियमात्। 'ब्रह्मादिष्वेव, हन्तेरेव, क्विबेव, भूतकाल एवे'ति चतुर्विधश्चात्र नियम इति नियमान्यतरविषयो[1] निरूप्यः ॥ ३५ ॥

'ब्रह्म' आदि शब्दोंके उपपदमें रहनेपर 'हन् हिंसागत्योः' धातुसे 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' (पा० ३।२।८७) सूत्रद्वारा विहित 'क्विप्' प्रत्ययके विधानमें वक्ष्यमाण चार नियमोंके होनेसे 'अरिहा' आदि प्रयोगोंकी सिद्धि प्राप्त नहीं है।

'ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र' शब्दोंके उपपदमें रहनेपर 'हन्' धातुसे 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' (पा० ३।२।८७) सूत्रसे 'क्विप्' प्रत्ययकी विधिमें 'ब्रह्मादि शब्दोंके उपपदमें रहनेपर ही, 'हन् हिंसागत्योः' धातुसे ही, 'क्विप्' प्रत्यय ही और भूतकालमें ही 'क्विप्' प्रत्यय होनेका नियम होनेसे 'अरिहा, रिपुहा' आदि प्रयोग उक्त चारों नियमसे बहिर्भूत होनेके कारण सिद्ध नहीं हैं, अतएव ये प्रयोग दूषित हैं ॥ ३५ ॥

ब्रह्मादिष्विति। 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' (पा० ३।२।८७) इत्यत्र 'ब्रह्मादिष्वेवोपपदेषु भूत एव काले हन्तेरेव धातोः क्विबेव प्रत्ययो भवती'त्युपपदकालधातुप्रत्ययविषयस्य चतुर्धा नियमस्यानुशिष्टत्वादरिहेत्यादीनामसिद्धिरित्याह—ब्रह्मादिषूपपदेष्विति ॥ ३५ ॥

ब्रह्मविदादयः कृदन्तवृत्त्या ॥ ३६ ॥

'ब्रह्मविद्, वृत्रभिदि'त्यादयः प्रयोगा न युक्ता, 'ब्रह्मभ्रूण' (पा० ३।२।८७) इत्यादिषु[2] हन्तेरेव इति नियमात्। आह—कृदन्तवृत्त्या। वेत्तीति वित्। भिनत्तीति भित्। 'क्विप् च' (पा० ३।२।७६) इति क्विप्, ततः कृदन्तैर्विदादिभिः सह ब्रह्मादीनां षष्ठीसमास इति ॥ ३६ ॥

(उक्त 'क्विप्' प्रत्ययके विधानमें पूर्वोक्त चार नियमोंके माननेपर 'ब्रह्मवित्, वृत्रभृत्' आदि प्रयोग कैसे सिद्ध होंगे? इसके समाधानार्थ कहते हैं—) 'ब्रह्मवित्' आदि प्रयोग कृदन्त प्रत्ययसे सिद्ध होंगे।

'ब्रह्मवित्, वृत्रभृत्' आदि प्रयोग भी 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' (३।२।८७) सूत्रसे विधीयमान 'क्विप्' प्रत्ययके विधानमें 'ब्रह्मादि उपपदमें 'हन्' धातुसे ही 'क्विप्' प्रत्ययका नियम होनेसे उचित नहीं है, इसका उत्तर कहते हैं—कृदन्त वृत्तिसे ये प्रयोग सिद्ध होंगे अर्थात् 'वेत्तीति वित्, भिनत्तीति भित्' ऐसे विग्रहमें 'विद ज्ञाने, 'भिदिर् विदारणे' धातुओंसे 'क्विप् च' (पा० ३।२।७६) सूत्रसे 'क्विप्' प्रत्यय

---

१. 'चतुर्विधश्चात्र नियमः (ब्रह्म (पा० ३।३।८७) प्रति सूत्रस्य वृत्तौ काशिकावाक्यम्) इति नियमान्यतर…' इति 'ख' पु०, 'नियम इति नियमात् अरिहा, रिपुहा, इत्येवमादीनामसिद्धिः' इति च 'ग' पु० पा०।

२. 'इत्यादिषु 'ब्रह्मादिषु हन्तेरेव…' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

करनेके बाद 'ब्रह्मणो वित्, वृत्रस्य भित्' इस विग्रहमें 'षष्ठी' (पा० २।२।८) सूत्रसे षष्ठीतत्पुरुष समास कर 'ब्रह्मवित्, वृत्रभित्' इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो सकते हैं ॥ ३६ ॥

ननु तर्हि चतुर्धा नियमाश्रयणे ब्रह्मविदादीनां का गतिरिति प्राप्ते प्राह—'ब्रह्मविद् वृत्रभिदि'ति । उपपदकालनैरपेक्ष्येण क्विपि सति समासान्ताश्रयणेन ब्रह्मविदादयस्सिद्ध-यन्तीति व्याचष्टे—वेत्तीति । वेत्तीति वित्, भिनत्तीति भिदिति व्युत्पत्तिसिद्धेन कृदन्तेन सह षष्ठीसमासे सति ब्रह्मविदादीनां साधुत्वमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

तैर्महीधरादयो व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

तैर्विदादिभिर्[1]महीधरादयो व्याख्याताः । 'धरतीति धरः, मह्या धरो महीधरः' । एवं 'गङ्गाधरादयो' व्याख्याताः ॥ ३७ ॥

उन (विद् आदि प्रयोगों) से 'महीधरः' आदि पदोंकी सिद्धिकी व्याख्या हो गयी ।

उन 'विद्' आदि प्रयोगोंकी सिद्धिसे 'महीधरः' आदि प्रयोगोंकी सिद्धिकी व्याख्या हो गयी । 'धरतीति धरः', 'मह्या धरः महीधरः' इस प्रकारके विग्रहमें 'धृञ् धारणे' धातुसे 'पचाद्यच्' प्रत्यय करनेके बाद षष्ठीतत्पुरुष समास कर महीधर प्रयोग सिद्ध हैं । इसी प्रकार 'गङ्गाधरः' प्रयोगकी सिद्धि हो जायेगी ॥ ३७ ॥

उक्तामेतां युक्तिमन्यत्रापि योजयति—तैरिति । अत्र 'कर्मण्यण्' (पा० ३।२।१) इति सूत्रेण कर्मण्युपपदे धातोरण्विधानान्महीधरादीनामसाधुत्वशङ्कायामिहाप्युपपदनैर-पेक्ष्यषष्ठीसमासाश्रयणाभ्यां साधुत्वमस्तीति व्याचष्टे—'धरतीति धर' इति ॥ ३७ ॥

भिदुरादयः कर्मकर्तरि कर्तरि च ॥ ३८ ॥

'भिदुरं काष्ठम्' 'भिदुरं तमः' 'तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गम्' इति, 'छिदु-रातपो दिवसः', 'मत्सरच्छिदुरं प्रेम', 'भङ्गुरा प्रीतिः', 'मातङ्गं मानभङ्गुरम्' इत्यादयोऽपि प्रयोगा दृश्यन्ते, [2]कथमित्याह—ते कर्मकर्तरि कर्तरि च भवन्ति । 'कर्मकर्तरि चायमिष्यते' इत्यत्र चकारः कर्तरि चेत्यस्य समुच्चयार्थः ॥ ३८ ॥

'भिदुरम्' इत्यादि प्रयोग कर्मकर्ता और कर्तामें सिद्ध होते हैं ।

'भिदुरं काष्ठम्, भिदुरं तमः, तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गम्' ये तथा 'छिदुरातपो दिवसः, मत्सरच्छिसुरं प्रेम, भङ्गुरा प्रीतिः, मातङ्गं मानभङ्गुरम्' इत्यादि भी प्रयोग देखे जाते हैं, वे कैसे सिद्ध हैं ? इस शङ्काका उत्तर देते हैं—वे प्रयोग कर्मकर्ता में और कर्तामें होते हैं, क्योंकि—'कर्मकर्तरि चायमिष्यते' (भा०) इस वचनमें 'चकार' का ग्रहण कर्ताके भी समुच्चय (संग्रह) के लिए है ॥ ३८ ॥

भिदुरादय इति । 'कर्मकर्तरि चायमिष्यते' (भा०) इत्यत्र चकारं प्रयुक्तवता तत्रभवता भाष्यकृता कर्तर्यपि प्रयोगोऽभ्यनुज्ञात इति भिदुरादयः शब्दाः कर्मकर्तरि, कर्तरि च प्रयोक्तव्या इत्याह—भिदुरं काष्ठमिति ॥ ३८ ॥

---

१. 'तैर्ब्रह्मविदादिभि…' इति 'ग' पु० पा० । २. 'कथमित्यत्राह' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

गुणविस्तरादयश्चिन्त्याः ॥ ३९ ॥

'गुणविस्तरः, व्याक्षेपविस्तर' इत्यादयः प्रयोगाश्चिन्त्याः; 'प्रथने वावशब्दे' (पा० ३।३।३३) इति घञ्प्रसङ्गात् ॥ ३९ ॥

'गुणविस्तरः' आदि प्रयोग चिन्तनीय अर्थात् अशुद्ध हैं।

'गुणविस्तरः, व्याक्षेपविस्तरः' इत्यादि प्रयोग चिन्तनीय अर्थात् अशुद्ध हैं, क्योंकि 'प्रथने वावशब्दे' (पा० ३।३।३२) सूत्रसे 'वि' उपसर्गपूर्वक 'स्तृञ् आच्छादने' धातुसे 'अशब्द-विषयक प्रथन' अर्थमें 'घञ्' प्रत्ययका विधान होनेसे 'गुण- विस्तारः, व्याक्षेपविस्तारः' आदि प्रयोग होने चाहिए, न कि 'गुणविस्तरः, तृणविस्तरः' आदि, अतः ये प्रयोग चिन्तनीय हैं ॥ ३९ ॥

गुणविस्तरादय इति। 'प्रथने वावशब्द' (पा० ३।३।३३) इति विपूर्वात्स्तृणातेरशब्दविषये प्रथने घञ्विधानाद् 'गुणविस्तार' इत्येव प्रयोक्तव्यं, न तु 'गुणविस्तर' इतीत्याह—प्रथन इति ॥ ३९ ॥

अवतरापचायशब्दयोर्दीर्घह्रस्वत्वव्यत्यासो[1] बालानाम् ॥ ४० ॥

अवतरशब्दस्यापचायशब्दस्य च दीर्घत्वह्रस्वत्वव्यत्यासो बालानां बालिशानां प्रयोगेष्विति। ते ह्यवतरणमवतार इति प्रयुञ्जते, 'मारुतावतार' इति। स ह्ययुक्तः, भावे तरतेरब्विधानात्। 'अपचायमपचय' इति प्रयुञ्जते, 'पुष्पापचय' इति[2]। अत्र 'हस्तादाने चेरस्तेये' (पा० ३।३।४०) इति घञ् प्राप्त इति ॥ ४० ॥

'अवतरः' और अपचाय' शब्दोंमें क्रमशः 'दीर्घ और ह्रस्व' का व्यत्यास अर्थात् 'दीर्घ की जगह 'ह्रस्व' का और 'ह्रस्व' की जगह 'दीर्घ' का प्रयोग मूर्खोंका है।

'अवतर' शब्द और 'अपचाय' शब्दके क्रमशः 'दीर्घ और ह्रस्व' का व्यत्यास अर्थात् 'ह्रस्व' के स्थानमें 'दीर्घ' तथा 'दीर्घ' के स्थानमें 'ह्रस्व' का प्रयोग बच्चों अर्थात् मूर्खोंका है। वे 'अवतरणम्' विग्रह कर 'अवतारः' प्रयोग करते हैं, यथा—'मारुतावतारः'। वह प्रयोग अयुक्त है, क्योंकि 'अवेस्तृस्त्रोर्घञ्' (पा० ३।३।१२०) सूत्रसे करण और अधिकरणमें ही 'घञ्' प्रत्यय होता है और यहाँ करण और अधिकरण न होकर 'भाव' होनेसे 'ऋदोरप्' (पा० ३।३।५७) सूत्रसे 'अप्' प्रत्यय ही होकर 'अवतरः' प्रयोग होगा 'अवतारः' नहीं होगा। तथा 'अपचायम्' के स्थानमें 'अपचयः' ऐसा प्रयोग करते हैं, यथा—'पुष्पापचायः'। यह प्रयोग भी अयुक्त है, क्योंकि 'ग्रहवृदनिश्चिगमश्च' (पा० ३।३।५८) सूत्रसे 'अप्' प्रत्ययकी प्राप्ति न होकर

---

१. '…दीर्घव्यत्यासो' इति 'ख' पु० पा०।

२. '…स्यापचायशब्दस्य, अपचायमपचयः, पुष्पापचयः' इत्येतेपु क्रमेण '…स्यावचायशब्दस्य अवचायमवचयः, पुष्पावचयः' इति पाठान्तराणि, इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'हस्तादाने चेरस्तये' (पा० ३।३।४०) सूत्रसे 'घञ्' प्रत्ययकी प्राप्ति होनेसे 'पुष्पापचायः' प्रयोग शुद्ध होगा, 'पुष्पापचयः' नहीं ॥ ४० ॥

दीर्घव्यत्यास इति । दीर्घस्य स्थानात् प्रच्याव्यास्थाने करणं व्यत्यासः । बालानां विमर्शविधुराणां भवतीति शेषः । तमेव व्यत्यासं दर्शयति—ते हीति । अब्विधानादिति । 'अवेतृस्त्रोर्घञ्' (पा० ३।३।१२०) इति करणाधिकरणयोरेव घञ्विधानात् तरतेः, 'ऋदोरप्' (पा० ३।३।५७) इति भावेऽप्प्रत्यय एव भवतीत्यर्थः । अपचायमिति । 'हस्तादाने चेरस्तेये' (पा० ३।३।४०) इति हस्तेनादानेऽभिधेये चिनोतेर्घञ्विधानादप्प्रत्ययो न प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ४० ॥

शोभेति निपातनात् ॥ ४१ ॥

शोभेत्ययं शब्दः साधुः, निपातनात् । 'शुम-शुम्भ शोभार्थौ' इति । शुभेर्भिदादेराकृतिगणत्वादङ् सिद्ध एव । गुणप्रतिषेधाभावस्तु निपात्यत इति । शोभार्थावित्यत्रैकदेशे, किं शोभा, आहोस्विच्छोभ इति विशेषावगतिराचार्यपरम्परोपदेशादिति ॥ ४१ ॥

'शोभा' यह शब्द निपातनसे शुद्ध है ।

'शुभ-शुम्भ शोभार्थौ' इस प्रकार शुभधातुका धातुगणमें पाठ होनेसे 'भिदादि'-गणके आकृतिगण होनेके कारण 'शोभा' शब्द सिद्ध ही था, केवल गुणके प्रतिषेधके अभावका निपातन होता है । 'शुभ-शुम्भ शोभार्थौ' इसके 'एकभाग' 'शोभार्थौ' में 'शोभा' पद है या 'शोभ' पद, इसका निर्णय आचार्य परम्पराके उपदेशसे जानना चाहिए । यहाँ पर 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' (पा० ३।३।१०४) सूत्रसे 'शुभ' धातुसे 'अङ्' प्रत्यय करनेपर 'ङित्' होनेके कारण 'क्ङिति च' (पा० १।१।५) सूत्रसे 'इग्लक्षण गुण'का निषेध होनेसे 'शोभा' शब्दमें 'निपातन' से गुणके निषेधके अभावका निपातन किया गया है ॥ ४१ ॥

शोभेति । 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' (पा० ३।३।१०४) इति शुभेर्धातोर्भिदादिषु पाठादङ्प्रत्यये सति ङित्करणेन गुणप्रतिषेधे प्रसक्ते निपातनाद् गुणसिद्धिरित्याह—शोभेत्ययं शब्द इति ॥ ४१ ॥

अविधौ गुरोः स्त्रियां बहुलं विवक्षा ॥ ४२ ॥

अविधावविधाने 'गुरोश्च हलः' (पा० ३।३।१०३) इति[1] स्त्रियां बहुलं विवक्षा । क्वचिद्विवक्षा, क्वचिदविवक्षा, क्वचिदुभयमिति । विवक्षा यथा—'ईहा लज्जे'ति । अविवक्षा यथा—'आतङ्क' इति । विवक्षाविवक्षे यथा—'बाधा बाधः, ऊहा ऊहः, व्रीडा व्रीडः' इति ॥ ४२ ॥

'गुरोश्च हलः' (पा० ३।३।१०३) सूत्रसे गुरुमान् हलन्त धातुसे 'अ' प्रत्ययके विधानमें बाहुल्यसे विवक्षा होती है ।

---

१. अविधौ 'गुरोश्च हलः' (पा० ३।३।१०३) इत्यविधाने' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'गुरोश्च हलः' (३।३।१०३) सूत्रसे गुरु वर्णवाले हलन्त धातुसे जो 'अ' प्रत्यय होता है, वह बाहुल्यसे होता है। (वह बाहुल्य चार प्रकारका होता है, यथा—

'क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विवक्षा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥')

कहीं विवक्षा होती है; यथा—ईहा, लज्जा। कहीं अविवक्षा होती है; यथा—आतङ्कः (यहाँ स्त्रीत्वाविवक्षामें 'घञ्' प्रत्यय हो जाता है)। कहीं विवक्षा और अविवक्षा दोनों होती है; यथा—बाधा, बाधः; ऊहा, ऊहः; व्रीडा, व्रीडः॥ ४२॥

अविधाविति बहुलग्रहणस्य विवक्षितमर्थमाह—क्वचिद्विवक्षा, क्वचिदविवक्षा, क्वचिदुभयमिति। 'आतङ्क' इत्यादिषु स्त्रीत्वस्याऽविवक्षितत्वाद् घञेव भवति॥ ४२॥

व्यवसितादिषु क्तः कर्तरि, चकारात्॥ ४३॥

'व्यवसितः, प्रतिपन्न' इत्यादिषु भावकर्मविहितोऽपि क्तः कर्तरि, गत्या-(पा० ३।४।७२)दिसूत्रे चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात्। भावकर्मानुकर्षणार्थत्वं चकारस्येति चेद्, आवृत्तिः कर्त्तव्या॥ ४३॥

'व्यवसितः' आदि पदोंमें कर्तृवाचक 'क्त' प्रत्यय 'गत्यर्था…' (३।४।७२) सूत्रमें 'च'कारका पाठ होनेसे होता है।

'व्यवसितः, प्रतिपन्नः' आदि पदोंमें (सकर्मक धातुसे कर्ममें और अकर्मक धातुसे भावमें 'क्त' प्रत्ययका विधान होनेसे) कर्तामें अप्राप्त 'क्त' प्रत्यय 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' (पा० ३।४।७२) सूत्रमें 'च'कारका पाठ होनेसे होता है। भावकर्मका अनुकर्षण अर्थात् आवृत्तिके लिए उस सूत्रमें 'च'कारका पाठ होनेसे 'कर्ता'में 'क्त' प्रत्यय उक्त प्रयोगोंमें नहीं हो सकता, ऐसा कहनेपर 'च'कारकी आवृत्ति कर एक 'चकार'को भावकर्मके 'अनुकर्षण' और दूसरे 'च'कारको कर्तामें 'क्त' प्रत्ययके लिए माननेपर कर्तामें 'व्यवसितः प्रतिपन्नः' आदि शिष्ट प्रयोगोंका निर्वाह हो सकता है॥ ४३॥

व्यवसितादिष्विति। 'व्यवसितः, प्रतिपन्न' इत्यादिषु कर्तरि क्तप्रत्ययो न प्राप्नोति, सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः कर्मणि क्तप्रत्ययविधानाद्, गत्यर्थादि (पा० ३।४।७२) सूत्रेण चाप्राप्तेरिति प्राप्ते गत्यर्थादिसूत्रे चकारेणानुक्तसमुच्चयार्थेन व्यवस्यतिप्रभृतयः समुच्चीयन्त इत्याह—व्यवसित इति। ननु भावकर्मणोरनुकर्षणार्थश्चकारः कथमन्यदप्यनुक्तं समुच्चिनुयादिति शङ्कते—भावकर्मेति। समाधत्ते—आवृत्तिरिति। चकारस्यावृत्तौ भावकर्मणोरनुकर्षणार्थ एकश्चकारः, अन्यः पुनरनुक्तसमुच्चयार्थ इति येन केनाप्युपायेन शिष्टप्रयोगस्य गतिः कल्पनीयेत्यर्थः॥ ४३॥

आहेति भूतेऽन्यणलन्तं[1]भ्रमाद् ब्रुवो लटि॥ ४४॥

१. '…णडन्त……' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'ब्रुवः पञ्चानाम्' (पा० ३।४।८४) इत्यादिना आहेति लट् व्युत्पादितः[1] । स भूते प्रयुक्तः । 'इत्याह भगवान् प्रभुः' इति । अन्यस्य भूतकालाभिधायिनो लिटि णलन्तस्य भ्रमात् । निपुणाश्चैवं प्रयुञ्जते—'आह स्म स्मितमधुमधुराक्षरां[2] गिरम्' इति । 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' इत्यत्राऽपि 'मन्ये' 'स्म' शब्दः कविना प्रयुक्तो लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखित इति ॥ ४४ ॥

'आह' यह रूप 'ब्रू' धातुके 'लट्' लकारमें सिद्ध होता है, किन्तु कुछ लोग 'अन्य णलन्त' अर्थात् 'लिट्' लकारको 'णल्' प्रत्ययान्त मानकर भूतकालमें भ्रमसे प्रयोग करते हैं ।

'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः' (पा० ३।४।८४) सूत्रसे 'लट्' लकारमें 'आह' प्रयोग सिद्ध होता है । वह भूतकालमें भी प्रयुक्त हुआ है; यथा—'इत्याह' भगवान् प्रभुः' (यह भगवान् प्रभुने कहा है), किन्तु कुछ लोग भ्रमसे इसको 'लिट्' लकारको 'णल्' प्रत्ययान्त समझकर भूतकालमें प्रयोग करते हैं । निपुण विद्वान् 'आहस्म स्मितमधुराक्षरां गिरम्' (स्मितयुक्त मधुर अक्षरोंवाली बात कहते थे) इस प्रकार प्रयोग करते हैं; ('लट् स्मे' पा० ३।२।११८ सूत्रसे 'स्म' के योगमें 'लट्' लकारका प्रयोग भूतकालमें विहित है) । 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' (भगवान् नारायणका अनुकरण किया) यह प्रयोग भूतकालमें कैसे प्रयुक्त हुआ ? इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि—संभवतः कविने 'स्म' शब्दका प्रयोग किया होगा, उसे प्रमादसे लेखकोंने छोड़ दिया है ॥ ४४ ॥

आहेति । 'किमिच्छसीति स्फुटमाह वासव' इत्यादिष्वाहेति भूते प्रयुज्यते, स च प्रयोगोऽनुपपन्नः । 'ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः' (पा० ३।४।८४) इति ब्रुवो लटि णलाद्यादेशपञ्चकविधानात् अन्यणलन्तेति । लिटि विहितो यो णल्, तदन्तत्वभ्रान्तिमूलोऽयं प्रयोग इत्यर्थः । 'आहे'त्यव्ययमिति केचित्तु समादधते । शिष्टप्रयोगशैलीं दर्शयति—निपुणाश्चेति । 'लट् स्मे' (पा० ३।२।११८) इति लटो विधानात् । प्रसङ्गादन्यत्रापि भूतार्थे लट्प्रयोगस्योपपत्तिमाह—अनुकरोतीति ॥ ४४ ॥

शबलादिभ्यः स्त्रियां टापोऽप्राप्तिः ॥ ४५ ॥

'उपस्रोतःस्वस्थस्थितमहिषशृङ्गाग्रशबलाः
स्रवन्तीनां जाताः प्रमुदितविहङ्गास्तटभुवः ।'
'भ्रमरोत्करकल्माषाः कुसुमानां समृद्धयः' ।

इत्यादिषु स्त्रियां[3] टापोऽप्राप्तिः, 'अन्यतो ङीष्' (पा० ४।१।४०) इति ङीष्विधानात् । तेन 'शबली, कल्माषी'ति भवति ॥ ४५ ॥

१. 'लट्व्युत्पादितः' इति 'क-ख' पु० पा० ।
२. 'स्मितमधुराक्षरां' इति 'ख' पु० पा० ।
३. 'शबलादिभ्यः स्त्रियां' इति 'क-ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'शबल' आदि (कल्माष···) शब्दोंसे स्त्रीत्वमें 'टाप्' की प्राप्ति नहीं है।

प्रसन्न पक्षियोंसे युक्त, नदियोंके किनारेवाली भूमि धाराके पास स्वस्थ बैठे हुए भैंसोंके शृङ्गाग्रसे कर्बुर (चितकबरी) हो गयी।

भ्रमरोंके समूहसे फूलोंकी समृद्धि कल्माष (रंग-विरंगवाली) हो गयी।

इत्यादि पद्योंके 'शबलाः' और 'कल्माषाः' स्त्रीत्ववाचक प्रयोगोंमें 'अजाद्यतष्टाप्' (पा० ४।१।४) सूत्रसे 'टाप्' प्रत्ययकी प्राप्ति नहीं है, किन्तु 'अन्यतो ङीष्' (पा० ४।१।४०) सूत्रसे 'ङीष्' प्रत्ययका विधान होनेसे वहाँ 'शबली, कल्माषी' होना चाहिए ॥ ४५ ॥

शबलादिभ्य इति। 'अन्यतो ङीष्' (पा० ४।१।४०) इति ङीष्विधानाच्छबल-कल्माषादिभ्यः स्त्रियां टाप्प्रत्ययस्याप्राप्तिरिति। तथा प्रयोगं प्रदर्श्य प्रतिषेधति—उपस्रोत इति ॥ ४५ ॥

प्राणिनि नीलेति चिन्त्यम् ॥ ४६ ॥

'कुवलयदलनीला कोकिला बालचूते'

इत्यादिषु 'नीले'ति चिन्त्यम्। 'कोकिला नीली'ति भवितव्यम्। नील-शब्दात् 'जानपद–' (पा० ४।१।४२) इत्यादिसूत्रेण 'प्राणिनि च' (वा०) इति ङीष्विधानात् ॥ ४६ ॥

प्राणिवाचक शब्दके साथ 'नीला' प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें चिन्तनीय (अशुद्ध) है।

आमकी गाँछीपर कुवलय (नीलकमल) की पँखुड़ियोंके समान नील कोयल।

इत्यादि पद्योंमें 'प्राणिवाचक कोकिला' के विशेषण रूपमें स्त्रीलिङ्ग 'नीलाशब्द' चिन्तनीय अर्थात् अशुद्ध है, क्योंकि 'जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुक-कबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु' (पा० ४।१।४२) सूत्रके 'प्राणिनि च' (वा०) वार्तिकसे 'ङीष्' प्रत्ययका विधान होनेसे वहाँ 'नीली' होना चाहिए ॥ ४६ ॥

प्राणिनीति[1]। 'जानपदा'(पा० ४।१।४२)दिसूत्रे वृत्तिकारेण 'नीलादोषधौ' (वा०) 'प्राणिनि च' (वा०) इति विषयव्यवस्थापनात् प्राणिनि विषये नीलशब्दान्ङीष् प्रत्ययः प्राप्तः, न तु टाप्। अतः 'प्राणिनि[2] नीले'ति न प्रयोक्तव्यमित्याह—कुवलयेति ॥ ४६ ॥

मनुष्यजातेर्विवक्षाविवक्षे ॥ ४७ ॥

'इतो मनुष्यजातेः' (पा० ४।१।६५) 'ऊङुत' (पा० ४।१।६६) इत्यत्र मनुष्यजातेर्विवक्षा, अविवक्षा च लक्ष्यानुसारतः।

---

१. एतदग्रे 'स्पष्टम्' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

२. 'प्राणिनि विषये' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'मन्दरस्य मदिराक्षि ! पार्श्वतो निम्ननाभि ! न भवन्ति निम्नगाः ।
वासु ! वासुकिविकर्षणोद्भवा भामिनीह पदवी विभाव्यते' ।।

अत्र मनुष्यजातेर्विवक्षायाम् 'इतो मनुष्यजातेः' (पा० ४।१।६५) इति ङीषि सति, 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' (पा० ७।३।१०७) इति सम्बुद्धौ ह्रस्वत्वं सिद्ध्यति। नाभिशब्दात् पुनः इतश्च प्राण्यङ्गाद् इतीकारे कृते 'निम्ननाभिके'-ति स्यात्[१] ।

'हृतोष्ठरागैर्नयनोदबिन्दुभिर्निमग्ननाभेर्निपतद्भिरङ्कितम् ।
च्युतं रुषा भिन्नगतेरसंशयं शुकोदरश्याममिदं स्तनांशुकम्' ।।

अत्र 'निमग्ननाभे'रिति मनुष्यजातेरविवक्षेति ङीष् न कृतः ।

'सुतनु ! जहिहि मौनं[२] पश्य पादानतं माम्' ।

इत्यत्र मनुष्यजातेर्विवक्षेति सुतनुशब्दाद् 'ऊङुतः' (पा० ४।१।६६) इत्यूङि सति ह्रस्वत्वे सुतन्विति सिद्ध्यति। 'वरतनुरथवाऽसौ नैव[३] दृष्टा त्वया मे ।' अत्र मनुष्यजातेरविवक्षेत्यूङ् न कृतः ।। ४७ ।।

ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त मनुष्य-जातिवाचक शब्दोंमें 'मनुष्य-जाति'की विवक्षा और अविवक्षा लक्ष्यके अनुसार होती है। (यथा—)

हे मदिराक्षि (मदमस्त नेत्रोंवाली) ! हे निम्ननाभि (गभीर नाभिवाली) ! और हे भामिनी (सुन्दरि) ! मन्दर (पर्वत) के पार्श्वभागमें नदियाँ नहीं होती हैं। हे वासु ! यह तो वासुकीके खींचनेसे बनी हुई रेखा मालूम पड़ती है ।

इस श्लोकके 'मदिराक्षि और निम्ननाभि' पद 'इतो मनुष्यजातेः' (पा० ४।१।६५) सूत्रसे मनुष्यजातिकी विवक्षा होनेपर 'ङीष्' प्रत्यय करनेके बाद 'अम्बार्थ-नद्योर्ह्रस्वः' (पा० ७।३।१०७) सूत्रसे ह्रस्व होनेपर सिद्ध हुए हैं। नाभि शब्दसे 'इतश्च प्राण्यङ्गवाचिनो वा ङीष् वक्तव्यः' (वा०) इस वार्तिकसे 'ङीष्' प्रत्यय करनेके बाद 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' (पा० ७।३।१०७) सूत्रसे ह्रस्व करनेपर 'निम्ननाभि' पद सम्बुद्धिमें सिद्ध हो ही सकता है, पुनः विवक्षा-अविवक्षाका प्रयास व्यर्थ ही है, ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि 'निम्ननाभि' यहाँपर बहुव्रीहि समास करनेपर 'नद्यृतश्च' (पा० ५।४।१५३) सूत्रसे समासान्त 'कप्' प्रत्यय होनेसे 'न कपि' (पा० ७।४।१४) सूत्रसे 'ह्रस्व' का निषेध होकर 'निम्ननाभिका' ऐसा प्रयोग हो जायेगा ।

(अब मनुष्यजातिकी अविवक्षा होनेसे 'ङीष्' प्रत्ययके अभावका उदाहरण दे रहे हैं—) 'क्रोधसे भिन्न गतिवाली एवं निम्ननाभि' नायिकाके ओष्ठ-रागको अपहृत

---

१. 'निम्ननाभिके इति स्यात्' इति 'क-ख' पु० पा० ।

२. 'जहिहि कोपं–' इति 'क, ग' पु० पाठः, 'जहिहि कोपं···माम्' इति 'ख' पु० पा०, 'मौनं' इत्यत्र 'मानं' इति पाठान्तरम्' इति 'ख' पु० टिप्पणी ।

३. '······रथवाऽस्मिन्नैव' इति 'ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

करने (धोने) वाले गिरते हुए अश्रुबिन्दुओंसे चिह्नित तोतेके उदरके समान हरे रंगका यह वस्त्र निस्सन्देह गिर गया।

इस श्लोकके 'निम्ननाभेः' पदमें 'मनुष्यजातिकी विवक्षा नहीं होनेसे 'ङीष्' प्रत्ययका अभाव हो गया है।

'हे सुतनु !' चुप्पी (पाठान्तरसे—कोप, या मान) को छोड़ो और चरणों पर गिरे हुए मुझे देखो।

यहाँपर मनुष्यजातिकी विवक्षा होनेसे 'सुतनु' शब्दसे 'ऊङुतः' (पा० ४।१।६६) सूत्रसे 'ऊङ्' प्रत्यय कर 'सम्बुद्धिह्रस्व होनेपर 'सुतनु' पद सिद्ध हुआ है।

अथवा तूने 'वरतनु' (सुन्दर शरीरवाली) मेरी प्रियाको नहीं देखा।

यहाँपर मनुष्यजातिकी अविवक्षा होनेसे 'ऊङुतः' (पा० ४।१।६६) सूत्रसे 'ऊङ्' प्रत्यय नहीं किया गया है ॥ ४७ ॥

मनुष्यजातेरिति । 'निम्नाभिसुतनु'प्रभृतिषु यदि मनुष्यजातित्वमभ्युपेयते, तदा 'इतो मनुष्यजातेः' (पा० ४।१।६५) 'ऊङुत' (पा० ४।१।६६) इति ङीषूङ्प्रत्यययोः प्राप्तौ 'निम्ननाभेः, सुतनोरि'त्यादयः प्रयोगा न सिद्धयेयुः। यदि नाभ्युपेयते, तर्हि सम्बुद्धौ निम्ननाभि, सुतन्वित्यादयः प्रयोगाः सिद्धा न स्युः। ततः कथं प्रयोगव्यवस्थेति विचारणायामुभयत्र साधुत्वं व्यवस्थापयति—इतो मनुष्यजातेरिति। 'वक्तुर्विवक्षितपूर्विका हि शब्दप्रवृत्ति'रिति न्यायेन मनुष्यजातेर्विद्यमानाया अपि क्वचिद्विवक्षा क्वचिदविवक्षा चेति लक्ष्यानुसारेणोत्प्रेक्षणीयेति प्रयोगदर्शनपूर्वकं विवक्षाविवक्षे व्युत्पादयति—मन्दरस्येति। अत्र मनुष्यजातिविवक्षायां रूपसिद्धिं दर्शयति—इतो मनुष्यजातेरिति। ननु 'इतश्च प्राण्यङ्गवाचिनो वा ङीष्[1] वक्तव्य' इति नाभिशब्दादीकारे कृते, 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' (पा० ७।३।१०७) इति ह्रस्वत्वे च कृते निम्ननाभीति सम्बुद्धिः सिद्धयति, किमनेन यत्नेनेति चेत् तत्राह—नाभिशब्दादिति। 'निम्ननाभी'त्यत्र बहुव्रीहिसमासे, 'नद्यृतश्च' (पा० ५।४।१५३) इति कपा समासान्तेन, 'न कपि' (पा० ७।४।१४) इति ह्रस्वत्वप्रतिषेधेन च भवितव्यम्। ततश्च 'निम्ननाभीके' इति स्याद्, न तु 'निम्ननाभि' इति। इतो मनुष्यजातेः क्वचिदविवक्षां दर्शयति—हृतोष्ठरागैरिति। उक्तन्यायेन सुतनुशब्दादौ विवक्षाविवक्षे दर्शयति—सुतनु जहिहीति ॥ ४७ ॥

ऊकारान्तादप्यूङ्, प्रवृत्तेः ॥ ४८ ॥

उत ऊङ् विहित ऊकारान्तादपि क्वचिद् भवति, आचार्यप्रवृत्तेः। क्वाऽसौ प्रवृत्तिः ? 'अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम्' (वा० २५०२) इति। 'अलाबूः, कर्कन्धू'रित्युदाहरणम्। तेन 'सुभ्रु ! किं सम्भ्रमेण ?' अत्र सुभ्रुशब्द ऊङि सिद्धो भवति, ऊङि त्वसति सुभ्रूरिति स्यात् ॥ ४८ ॥

(ह्रस्व उकारान्त शब्दसे विहित) 'ऊङ्' प्रत्यय (आचार्यकी) प्रवृत्तिके कारण दीर्घ ऊकारान्त शब्दसे भी होता है।

---

१. 'ङीष्' इति 'ख' पु० नास्ति।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

ह्रस्व उकारान्त शब्दसे विहित होनेवाला 'ऊङ्' प्रत्यय दीर्घ ऊकारान्त शब्दसे भी कहीं पर (सर्वत्र नहीं) आचार्यकी प्रवृत्ति (प्रयोग) के कारण होता है। वह आचार्यकी प्रवृत्ति कहाँ है ? इसके उदाहरण—'अलाबूः, कर्कन्धूः' शब्द हैं। इस कारणसे 'सुभ्रु ! किं सम्भ्रमेण' ?—हे सुभ्रु ! (सुन्दर भौंहोंवाली !) सम्भ्रमसे क्या लाभ है ? यहाँपर 'ऊङ्' प्रत्ययका विधान होनेसे सम्बुद्धिमें (ह्रस्व होकर) 'सुभ्रु' प्रयोग सिद्ध होता है, 'ऊङ्' प्रत्ययके नहीं होनेपर (नदी संज्ञाका भी अभाव होनेके कारण) 'सुभ्रू' प्रयोग 'संबुद्धिमें 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' (पा० ७।३।१०७) सूत्रसे हो जायेगा ॥ ४८ ॥

ऊकारान्तादपीति। यद्यपि 'ऊङुत' (पा० ४।१।६६) इत्यत्र तपरकरणमुकारान्तादूङ्विधानार्थं कृतं, तथाप्याचार्यवचनसामर्थ्यादूकारान्तादप्यूङ् प्रवर्तत इत्याह—उत ऊङ् विहित इति। प्रश्नपूर्वकं प्रवृत्तिं दर्शयति—क्वाऽसौ प्रवृत्तिरिति। प्रवृत्तिरारम्भः। 'अलाबूः, कर्कन्धू'रित्युदाहरणसिद्ध्यर्थम्, 'अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनाम्' (वा०) इत्यूकारान्तादप्यूङ्प्रत्ययारम्भात्तपरकरणमविवक्षितमिति ज्ञायते। ननु यदेतदूकारान्तादूङ्विधानं, तत् पिष्टपेषणप्रायमिति शङ्कां परिहरति—तेनेति। सुभ्रूशब्दादपि मनुष्यजातिविवक्षायामूङ्प्रत्यये नदीसंज्ञायां सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवतीति दर्शयति—अत्र सुभ्रुशब्द इति ॥ ४८ ॥

कार्तिकीय इति ठञ् दुर्धरः ॥ ४९ ॥

'कार्तिकीयो नभस्वान्' इत्यत्र 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) इति ठञ् दुर्धरः। ठञ्भवनं दुःखेन ध्रियत इति ॥ ४९ ॥

'कार्तिकीयः' प्रयोगमें 'ठञ्' प्रत्यय दुर्निवार्य है।

'कार्तिकीयो नभस्वान्'—कार्तिक मासमें बहनेवाली हवा। यहाँपर 'कार्तिके भवः' विग्रह होनेसे 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) सूत्रसे विहित 'ठञ्' प्रत्यय दुर्निवार है, अर्थात् 'ठञ्' प्रत्ययको रोकना क्लिष्ट है। फलतः 'कार्तिकीयः' प्रयोग अशुद्ध होनेसे 'कार्तिकिकः' ऐसा शुद्ध प्रयोग करना चाहिए ॥ ४९ ॥

कार्तिकीय इति। अत्र कार्तिके भव इति भवार्थत्वं वक्तुं युक्तम्। तथात्वे 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) इति शैषिकेष्वर्थेषु विधीयमानष्ठञ् दुर्निवारतया प्राप्नोति। अतः 'कार्तिकीय' इति न सिद्ध्यतीत्याह—अत्रेति। दुर्धर इति पदार्थमाह—दुःखेनेति। दुर्निरोध इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

शार्वरमिति च ॥ ५० ॥

'शार्वरं तम' इत्यत्र च, 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) इति ठञ् दुर्धरः ॥ ५० ॥

'शार्वरम्' यहाँ भी 'ठञ्' प्रत्यय दुर्निवार है।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'शार्वरं तमः'—रातका अंधेरा। इस प्रयोगमें 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) सूत्रसे प्राप्त 'ठञ्' प्रत्यय दुर्निवार है, अत एव 'शार्वरं' प्रयोग अशुद्ध तथा 'शार्वरिक' प्रयोग शुद्ध है ॥ ५० ॥

शार्वरमिति। अत्रापि ठञो दुर्धरत्वेन 'शार्वरमि'ति न सिद्ध्यतीत्याह—'शार्वरं तम' इति ॥ ५० ॥

शाश्वतमिति प्रयुक्तेः ॥ ५१ ॥

'शाश्वतं ज्योति'रित्यत्र 'शाश्वतमि'ति न सिद्ध्यति, 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) इति ठञ्प्रसङ्गात्। 'येषां च विरोधः शाश्वतिक' (पा० २।४।९) इति सूत्रकारस्यापि प्रयोगः। आह—प्रयुक्तेः। 'शाश्वते प्रतिषेध' इति प्रयोगात् शाश्वतमिति भवति ॥ ५१ ॥

'शाश्वतम्' यह प्रयोग शिष्टप्रयुक्त होनेसे शुद्ध माना जाता है।

'शाश्वतं ज्योतिः'—सदा रहनेवाला प्रकाश। यहाँ इस प्रयोगमें भी 'कालाट्ठञ्' (पा० ४।३।११) सूत्रसे 'ठञ्' प्रत्ययका विधान होनेसे सिद्ध नहीं होता है। 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' (पा० २।४।९) सूत्रमें सूत्रकार पाणिनिने भी यद्यपि 'ठञ्' प्रत्ययका विधान कर 'शाश्वतिकः' प्रयोग किया है, तथापि 'शाश्वते प्रतिषेधः' (वा०) इस वार्तिकमें 'शाश्वते' ऐसा सप्तम्येकवचनमें प्रयोग करनेसे 'शिष्टप्रयोग' मानकर 'शाश्वतम्' शब्द भी शुद्ध माना गया है ॥ ५१ ॥

'शाश्वते प्रतिषेध' (वा०) इति वार्तिककारवचनादत्राऽण्प्रत्यये सति 'शाश्वतमि'ति शब्दः साधुरित्याक्षेपपूर्वकं समर्थयते—'शाश्वतं ज्योतिरि'ति ॥ ५१ ॥

राजवंश्यादयः साध्वर्थे यति[1] भवन्ति ॥ ५२ ॥

'राजवंश्याः, सूर्यवंश्या' इत्यादयः शब्दाः 'तत्र साधुः' (पा० ४।४।९८) इत्यनेन साध्वर्थे यति[2] प्रत्यये सति साधवो भवन्ति। भवार्थे पुनर्दिगादिपाठेऽपि वंशशब्दस्य वंशशब्दान्तान्न यत् प्रत्ययः, तदन्तविधेः प्रतिषेधात् ॥ ५२ ॥

'राजवंश्या (सूर्यवंश्याः)' इत्यादि प्रयोग 'साधु' अर्थमें 'यत्' प्रत्यय होनेपर शुद्ध होते हैं।

'राजवंश्याः, सूर्यवंश्याः' इत्यादि प्रयोग ('राजवंशे साधवः, सूर्यवंशे साधवः' ऐसा विग्रह कर) 'तत्र साधुः' (पा० ४।४।९८) सूत्रसे 'यत्' प्रत्यय होनेपर शुद्ध होते हैं। राजवंशे भवाः, सूर्यवंशे भवाः' ऐसा विग्रह करनेपर तो 'दिगादिगण'में 'वंश' शब्दका पाठ होनेपर भी 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्न' इससे तदन्तविधिका निषेध होनेके कारण 'दिगादिभ्यो यत्' (पा० ४।३।५४) सूत्रसे भावार्थमें 'यत्' प्राप्ति नहीं है। अतः 'साध्वर्थमें' ही वे प्रयोग शुद्ध होंगे ॥ ५२ ॥

---

१. 'ये' इति 'क, ग' पु० पा०।   २. 'ये (यति)' इति 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

राजवंश्यादय इति। वंशशब्दस्य दिगादिषु पाठाद्, 'दिगादिभ्यो यत्' (पा० ४।३। ५४) इति भवार्थे यत् प्रत्ययो विधीयते, स च वंशशब्दान्तान्न प्राप्नोति, ग्रहणवता प्रातिपदिकेन--' इति तदन्तविधिप्रतिषेधात्। साध्वर्थविवक्षायां तु 'तत्र साधुः' (पा० ४।४।९८) इति यत्प्रत्यये सति राजवंश्यादयः सिद्धा इत्याह—राजवंश्या इति ॥ ५२ ॥

दारवशब्दो दुष्प्रयुक्तः ॥ ५३ ॥

'दारवं पात्र'मिति दारवशब्दो दुष्प्रयुक्तः। 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' (पा० ४।३।१४४) इति मयटा भवितव्यम्। ननु विकारावयवयोरर्थयोर्मयड् विधीयते। अत्र तु दारुण इदमिति विवक्षायां दारवमिति भविष्यति, नैतदेवमपि स्यात्;[1] 'वृद्धाच्छ' (पा० ४।२।११४) इति छविधानात् ॥ ५३ ॥

'दारवम्' शब्द अशुद्ध प्रयुक्त हुआ है।

'दारवं पात्रम्' यहाँ 'दारवम्' शब्दका प्रयोग अशुद्ध है, क्योंकि 'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' (पा० ४।३।१४४) सूत्रसे 'मयट्' प्रत्यय होनेसे 'दारुमयम्' प्रयोग शुद्ध होता है। विकार और अवयवकी अर्थविवक्षामें 'मयट्' प्रत्ययका विधान होनेसे यहाँ उक्तार्थ विवक्षित नहीं है, किन्तु सम्बन्ध-सामान्य अर्थ विवक्षित है। अतः 'दारुण इदं' इस विग्रहमें 'तस्येदम्' (पा० ४।३।१२०) सूत्रसे 'अण्' प्रत्यय होकर 'दारवम्' प्रयोग शुद्ध हो सकता है? ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए,' क्योंकि सम्बन्ध-सामान्यकी विवक्षामें भी उक्त सूत्रसे 'अण्' प्रत्यय न होकर 'वृद्धाच्छः' (पा० ४।२।११४) सूत्रसे 'छ' प्रत्यय हो जानेपर 'दारवम्' प्रयोग नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥

दारवशब्द इति। दारुणो विकार इत्यस्मिन्नर्थे 'नित्यं वृद्धशरादिभ्य' (पा० ४।३। १४४) इति मयटो विधानाद् 'दारुमयमि'ति प्रयोक्तव्यं, न तु दारवमितीत्याह—दारवं पात्रमिति। नन्वत्र विकारार्थो न विवक्षितः, किन्तु सम्बन्धसामान्यम्, ततः 'तस्येदम्' (पा० ४।३।१२०) इति दारुशब्दादण्प्रत्यये कृते दारवमित्येवं भवतु, को विरोध? इति शङ्कते—नन्विति। सम्बन्धसामान्यविवक्षायामप्यण् प्रत्ययो न सिद्धयति, 'वृद्धाच्छ' (पा० ४।२।११४) इति छप्रत्ययप्रसङ्गादिति परिहरति—नैतदेवमिति ॥ ५३ ॥

मुग्धिमादिष्विमनिज्मृग्यः ॥ ५४ ॥

'मुग्धिमा, प्रौढिमा' इत्यादिषु इमनिज् मृग्यः अन्वेषणीय इति ॥ ५४ ॥

'मुग्धिमा' आदि प्रयोगोंमें 'इमनिच्' प्रत्यय ढूँढ़ना (अन्वेषण करना) चाहिए।

'मुग्धिमा, प्रौढिमा' आदि प्रयोगोंमें ('पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' पा० ५।१।१२२) सूत्रसे विधीयमान 'इमनिच्' प्रत्ययकी प्राप्ति 'पृथ्वादिगण'में 'मुग्ध, प्रौढ' आदि शब्दोंके पाठका अभाव होनेके कारण नहीं हो सकती, अत एव मुग्धिमा, प्रौढिमा' आदि शब्दोंमें) 'इमनिच्' प्रत्यय ढूँढ़ना चाहिए अर्थात् ये प्रयोग अशुद्ध हैं ॥ ५४ ॥

---

१. 'नैवमपि स्यात्' इति 'क' पु० 'नैतदेवम्' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

मुग्धिमादिष्विति। 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' (पा० ५।१।१२२) इतीमनिच् प्रत्ययो विधीयते, स च मुग्धप्रौढादिशब्देभ्यो न प्राप्नोति, तेषां पृथ्वादिपाठाभावादित्यभिप्रायेण व्याचष्टे—'मुग्धिमा, प्रौढिमे'ति ॥ ५४ ॥

औपम्यादयश्चातुर्वर्ण्यवत् ॥ ५५ ॥

'औपम्यं सान्निध्यमि'त्यादयश्चातुर्वर्ण्यवत्। 'गुणवचन-' (पा०५।१।१२४) इत्यत्र 'चातुर्वर्ण्यादीनाम् (स्वार्थे) उपसङ्ख्यानम्' इति वार्तिकात् स्वार्थिकष्यञन्ताः ॥ ५५ ॥

'औपम्यम्' आदि शब्द 'चातुवर्ण्यम्' के समान ('ष्यञ्' प्रत्यय होनेसे) सिद्ध होते हैं।

'औपम्यम्, सान्निध्यम्' आदि शब्द ('उपमैव, सन्निधिरेव' इस प्रकार विग्रह करनेसे) 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (पा० ५।१।१२४) सूत्रमें 'चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्' (वा०) से स्वार्थिक 'ष्यञ्' प्रत्यय होनेसे सिद्ध होते हैं ॥ ५५ ॥

औपम्यादय इति। 'चातुर्वर्ण्यादयः स्वार्थे' (वा०) इति स्वार्थिके ष्यञि चातुर्वर्ण्यमिति यथा सिद्धयति, तथा चातुर्वर्ण्यादिपाठादुपमैवौपम्यं, सन्निधिरेव सान्निध्यमित्यादयः स्वार्थिकष्यञन्ताः साधिता इत्याह—'औपम्यं, सान्निध्यमि'ति ॥ ५५ ॥

ष्यञः षित्करणादीकारो बहुलम् ॥ ५६ ॥

'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य-' (पा० ५।१।१२४) इति यः ष्यञ्, तस्य षित्करणादीकारो भवति, स[1] बहुलम्। 'ब्राह्मण्यमि'त्यादिषु न भवति[2]। सामग्र्यं सामग्री, 'वैदग्ध्यं वैदग्धी'ति ॥ ५६ ॥

(गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (पा० ५।१।१२४) सूत्रसे होनेवाले) 'ष्यञ्' प्रत्ययमें 'षित्' करनेके कारण ('षिद्गौरादिभ्यश्च' (पा० ४।१।४१) सूत्रसे विधीयमान) ङीष् प्रत्यय 'बहुल' है; अर्थात् कहीं नित्य और कहीं विकल्पसे होता है।

'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (पा० ५।१।१२४) सूत्रसे जो 'ष्यञ्' प्रत्यय होता है, उसको 'षित्' करनेसे 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (पा० ४।१।४१) सूत्रसे होनेवाला वह 'ङीष्' प्रत्यय बहुल (कहीं नित्य और कहीं अनित्य अर्थात् विकल्पसे) होता है, अतः 'ब्राह्मण्यम्' प्रयोगमें 'ङीष्' प्रत्यय नहीं होता तथा 'सामग्र्यम्, सामग्री, वैदग्ध्यम्, वैदग्धी' आदि प्रयोगोंमें विकल्पसे होता है। (मातरि षिच्च' (वा०) वार्तिकमें 'षित्' होनेसे ही 'मातामही' आदिमें 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (पा० ४।१।४१) सूत्रसे

१. 'स' इति 'ख' मूल पु० नास्ति।

२. 'न भवति' एतदग्रे 'सामग्र्यमित्यादिषु विकल्पितः' इत्यधिकः 'ग' पु० पा०। 'सामग्र्यमित्यादिषु विकल्पेन' इति सूत्ररूपेण 'सामग्र्यम्, सामग्री, वैदग्ध्यम् वैदग्धी' इति च वृत्तिरूपेण 'क' पु० पठ्यते।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'ङीष्' प्रत्यय हो जाता, पुनः 'गौरादि'गणमें 'मातामही' शब्दका पाठ होनेसे उक्त 'ङीष्' प्रत्ययका अनित्य होना ज्ञापित होता है, जैसा कि सि० कौ० कारने 'तिष्य-पुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्' (वा०) इसके आगे—'मातरि षिच्च' (वा०) इति "षित्त्वादेव सिद्धे गौरादिषु 'मातामही'शब्दपाठादनित्यः षितां ङीष्" ऐसा कहा है) ॥ ५६ ॥

ष्यञ् इति। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (५।१।१२४) इति ष्यञ् विधीयते। ततश्च ष्यञन्तेभ्यः स्त्रियां 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (पा० ४।१।४१) इति यो ङीष्प्रत्ययो विधीयते, स ईकारो बहुलं भवति। क्वचिन्न प्रवर्तते, क्वचिद्विकल्पेन प्रवर्तत इत्याह—ब्राह्मण्यमित्यादिष्विति ॥ ५६ ॥

धन्वीति व्रीह्यादिषु पाठात् ॥ ५७ ॥

व्रीह्यादिषु धन्वन्शब्दस्य पाठाद्धन्वीति इनौ सति सिद्धो भवति ॥ ५७ ॥

'धन्वी' यह प्रयोग 'व्रीह्यादि'गणमें पाठ होनेसे सिद्ध है।

'धन्वन्' शब्दके अदन्त नहीं होनेसे 'अत इनिठनौ' (पा० ५।२।११५) सूत्रसे होनेवाला 'इनि' प्रत्यय नहीं होनेपर 'व्रीह्यादि' के 'आकृतिगण' होनेके कारण 'व्रीह्यादिभ्यश्च' (पा० ५।२।११६) सूत्रसे 'इनि' प्रत्यय होनेपर 'धन्वी' प्रयोग सिद्ध होता है ॥ ५७ ॥

धन्वीति। धन्वन्शब्दस्य[1]यादन्तत्वाभावात्, 'अत इनिठनौ' (पा० ५।२।११५) इतीनिप्रत्ययस्याप्राप्तौ व्रीह्यादेराकृतिगणत्वेनेनिप्रत्यये सति 'धन्वी'ति सिद्ध्यतीत्याह—व्रीह्यादिष्विति ॥ ५७ ॥

चतुरस्रशोभीति णिनौ ॥ ५८ ॥

'बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन' इत्यत्र चतुरस्रशोभीति न युक्तम्। व्रीह्यादिषु शोभाशब्दस्य पाठेऽपि इनिरत्र न सिद्ध्यति। 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन' इति[2] तदन्तविधिप्रतिषेधात्। भवतु वा तदन्तविधिः। कर्मधारयान्मत्वर्थीयानुपपत्तिः। लघुत्वात् [3]प्रक्रमस्येति ब्रहुव्रीहिणैव भवितव्यम्। तत् कथमिति मत्वर्थीयस्या[4]ऽप्राप्तौ चतुरस्रशोभीति प्रयोगः? आह—णिनौ। 'चतुरस्रं शोभत' इति ताच्छीलिके णिनावयं प्रयोगः। अथ 'अनुमेयशोभी'ति कथम्? न ह्यत्र पूर्ववद् वृत्तिः शक्या कर्तुमिति, शुभेः साधुकारिण्यावश्यके वा णिनिं कृत्वा तदन्ताच्च भावप्रत्यये पश्चाद् बहुव्रीहिः कर्तव्यः। अनुमेयं शोभित्वं

१. 'धन्वशब्द…' इति 'क' पु० पा०।

२. 'प्रातिपदिकेन इति' इति 'ख' पु० पा०, 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नेष्यते' इति पूर्णं तत्स्वरूपम्।

३. 'क्रमस्य' इति 'ख-ग' पु० पा०।

४. 'तत्कथं मत्वर्थीय……' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

यस्येति। भावप्रत्ययस्तु गतार्थत्वान्न प्रयुक्तः। यथा—'निराकुलं तिष्ठति, सधीरमुवाचे'ति ॥ ५८ ॥

'चतुरस्रशोभि' यह शब्द ('ताच्छील्य' अर्थमें) 'णिनि' प्रत्यय होनेसे सिद्ध होता है।

'बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि····नेन।'—नवयौवनसे प्रस्फुटित उस (पार्वती) का शरीर सब ओरसे अर्थात् आपादमस्तक शोभायमान हुआ। इस श्लोकमें 'चतुरस्र-शोभि' पद ठीक नहीं है, क्योंकि 'व्रीह्यादि'गणमें 'शोभा' शब्दका पाठ होनेपर भी 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन न तदन्तविधिः' इससे 'इनि' प्रत्यय नहीं हो सकता, अथवा तदन्तविधि यथाकथञ्चित् माननेपर भी 'कर्मधारय'से मतुबर्थ प्रत्ययका निषेध होनेसे मतुबर्थ 'इनि' प्रत्यय नहीं हो सकता, लाघवके कारण बहुव्रीहि होना ही उचित होनेसे 'चतुरस्रशोभि' प्रयोग कैसे हुआ? इसका समाधान 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (पा० ३।२।७८) सूत्रसे 'ताच्छील्य' अर्थमें 'णिनि' प्रत्यय होकर 'चतुरस्रशोभि' प्रयोग सिद्ध होगा। ऐसा माननेपर भी 'अनुमेयशोभि' पद कैसे होगा? क्योंकि पहलेके समान वृत्ति असम्भव है? इसकी सिद्धि 'साधुकारिण्युपसंख्यानम्' (वा०) वार्तिकसे 'साधुकारित्व' अर्थमें या 'आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः' (पा० ३।३।१७०) सूत्रसे 'णिनि' प्रत्यय कर तदन्तसे भावार्थ 'त्व' प्रत्यय कर बादमें 'अनुमेयं शोभित्वं यस्य' इस विग्रहमें बहुव्रीहि समास करनेसे 'अनुमेयशोभि' पद सिद्ध होगा। भाव अर्थमें विहित 'त्व' प्रत्यय गतार्थ होनेसे प्रयुक्त नहीं हुआ है, यथा—'निराकुलं तिष्ठति, सधीरमुवाच' आदि प्रयोगोंमें भावार्थका गतार्थ होना स्पष्ट है ॥ ५८ ॥

चतुरस्रशोभीति[1]। अत्र साधुत्वं समर्थयिष्यमाणः प्रामाणिकप्रयोगं तावत् प्रदर्शयति–बभूवेति। अत्र मत्वर्थीयप्रत्ययस्यानुपपत्तिमाह–अत्र चतुरस्रशोभीति। चतुरस्रा चासौ शोभा च चतुरस्रशोभा, साऽस्यास्तीति चतुरस्रशोभीति मत्वर्थीयेन न सिद्ध्यति। व्रीह्यादिपाठाभावादिति शङ्कितुरभिप्रायः। अभ्युपगम्यमाने वा व्रीह्यादिपाठे, 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन न तदन्तविधिः' (वा०) इति वार्तिककारवचनाच्छोभाशब्दान्तादिनि-प्रत्ययो न प्राप्नोतीत्याह—व्रीह्यादिष्विति। यथा कथञ्चिदभ्युपगमेऽपि वा तदन्तविधेः स दोषस्तदवस्थः। 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीय' इति निषेधादित्याह—भवत्विति। कर्मधारयबहुव्रीहिक्रमपरीक्षायां बहुव्रीहिपरिपाटी श्रेयसी, लाघवात्; अतश्चित्रगुशब्दादिवद् बहुव्रीहेर्न मत्वर्थीयस्य प्राप्तिरित्याह–लघुत्वादिति। प्रयोगानुपपत्तिप्रतिपादनं निगमयति—तत् कथमिति। चतुरस्रं शोभितुं शीलमस्येति विग्रहे, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' (पा० ३।२।७८) इति ताच्छीलिके णिनिप्रत्यये सति 'चतुरस्रशोभी'ति सिद्ध्यतीति सिद्धान्तयति–चतुरस्रं शोभत इतीति। ननु 'चतुरस्रशोभी'त्यत्र समर्थितेऽपि साधुत्वे'ऽनुमेयशोभी'ति न सिद्ध्यति, उक्तन्यायाऽप्रवृत्तेरिति शङ्कते–अथेति। तदप्रवृत्तिमेव दर्शयति—न ह्यत्रेति। चतुरस्रशोभीतिवदनुमेयं शोभितुं शीलमस्येति विग्रहे विवक्षितार्थाऽसिद्धिः, कर्मविवक्षाया असम्भवात्। अविवक्षिते कर्मण्युपपदे कृत्प्रत्ययः कर्तुं न शक्यत इति शङ्कार्थः। ताच्छीलिकणिनेरसम्भवेऽपि, साधुकारिणि च (वा०) इति वक्तव्य-

[1]. एतदग्रे 'स्पष्टम्' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

बलात् । 'आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनि (पा० ३।३।१७०) इति सूत्राद्वा साधुकारिण्यावश्यके वार्थे विवक्षिते णिनिः सिद्धयति । ततः शोभिनो भाव इति भावार्थे त्वप्रत्यये सति पश्चादनुमेयं शोभित्वं यस्येति बहुव्रीहौ सत्यनन्तरम्, 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति त्वप्रत्ययस्य निवृत्तौ च सत्यामनुमेयशोभीति सिद्धयतीति परिहरति—शुभेरिति ॥५८॥

कञ्चुकीया इति क्यचि ॥ ५९ ॥

'जीवन्ति राजमहिषीमनु कञ्चुकीया' इति कथम् ? मत्वर्थीयस्य छप्रत्ययस्याभावात् । अत[1] आह—क्यचि । क्यचि प्रत्यये[2] सति कञ्चुकीया इति भवति, कञ्चुकमात्मन इच्छन्ति कञ्चुकीयाः ॥ ५९ ॥

'कञ्चुकीयाः' यह शब्द 'क्यच्' प्रत्यय होनेपर सिद्ध होता है ।

'जीवन्ति राजमहिषीमनु कञ्चुकीयाः'—राजाकी पटरानीसे कञ्चुकीय लोग जीते हैं ।

यहाँपर 'कञ्चुकीयाः' यह प्रयोग, 'कञ्चुकाः सन्ति येषाम्' इस विग्रहमें मत्वर्थक 'छ' प्रत्ययकी प्राप्ति नहीं होनेसे कैसे हुआ ? इसका उत्तर यह है कि 'कञ्चुकमात्मन इच्छन्ति' इस विग्रहमें 'सुप आत्मनः क्यच्' (पा० ३।१।८) सूत्रसे 'क्यच्' प्रत्यय कर 'क्यचि च' (पा० ७।४।३३) सूत्रसे ईकारादेश होनेके बाद 'कञ्चुकीयाः' प्रयोग सिद्ध होगा ॥ ५९ ॥

कञ्चुकीया इति । कञ्चुका येषां सन्तीति कञ्चुकीया इति न शक्यते वक्तुम्, छप्रत्ययस्य मत्वर्थीयस्याभावात्, कथं कञ्चुकीया ? इति चोदयति—जीवन्तीत्यादिना । कञ्चुकात्मन इच्छन्तीत्येतस्मिन्नर्थे 'सुप आत्मनः क्यच्' (पा० ३।१।८) इति क्यचि कृते, 'क्यचि च' (पा० ७।४।३३) इतीकारे च सति ततः पचाद्यचि कृते कञ्चुकीया इति सिद्धयतीति परिहरति—क्यचि प्रत्यये[3] सतीति ॥ ५९ ॥

बौद्धप्रतियोग्यपेक्षायामप्यातिशायनिकाः ॥ ६० ॥

बौद्धस्य प्रतियोगिनोऽपेक्षायामप्यातिशायनिकास्तरबादयो भवन्ति । 'घनतरं तमः, बहुलतरं प्रेम' इति ॥ ६० ॥

बुद्धिगत प्रतियोगीकी अपेक्षासे (शब्दोपात्त न होनेपर) भी अतिशयार्थक प्रत्यय होते हैं ।

बुद्धिगत प्रतियोगीकी अपेक्षासे (शब्दोपात्त न होनेपर) भी अतिशय अर्थमें 'तरप्' आदि प्रत्यय होते हैं, यथा—'घनतरं तमः, बहुलतरं प्रेम' इत्यादि प्रयोगोंमें 'तरप्' प्रत्यय होता है ॥ ६० ॥

बौद्धप्रतियोग्यपेक्षायामिति । 'इदं घनमिदं च घनमिदमनयोरतिशयेन घनमि'ति विग्रहे शब्दोपात्तप्रतियोग्यपेक्षयाऽतिशयनार्थे तरबादिविधानादसति शब्दोपात्ते प्रति-

१. 'अतः' इति 'क-ख-ग' पु० नास्ति ।
२–३. 'क्यचि अच्प्रत्यये' इति 'ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

योगिनि 'घनतरं तम' इति प्रयोगः कथमिति चिन्तायां बुद्धिसन्निधापितेऽपि प्रतियोगिन्यातिशायनिकाः प्रत्यया भवन्तीति दर्शयति—बौद्धस्येति ॥ ६० ॥

कौशिलादय इलचि वर्णलोपात् ॥ ६१ ॥

'कौशिलो, वासिल' इत्यादयः कथम् ? आह[1]—कौशिकवासिष्ठादिभ्यः शब्देभ्यो नीतावनुकम्पायां वा, 'घनिलचौ च' (पा० ५।३।७९) इतीलचि कृते 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादच' (पा० ५।३।८३) इति वर्णलोपात् सिद्धयन्ति ॥ ६१ ॥

('अनुकम्पितः कौशिकः कौशिलः, अनुकम्पितो वसिष्ठो वासिलः' इस विग्रहमें) 'कौशिलः, वासिलः' इत्यादि प्रयोग 'इलच्' प्रत्यय करनेके वाद वर्णका लोप होनेसे सिद्ध होते हैं।

('अनुकम्पितः कौशिकः कौशिलः, अनुकम्पितो वसिष्ठो वासिलः' इस विग्रहमें) 'कौशिलः, वासिलः' प्रयोग कैसे सिद्ध होंगे ? इसके समाधानमें आचार्य कहते हैं कि अनुकम्पा या नीति अर्थमें 'घनिलचौ च' (पा० ५।३।७९) सूत्रसे बहुत अच्वाले मनुष्यवाचक शब्दसे 'घ और इलच्' प्रत्यय होते हैं, (अत एव उक्त लक्षणयुक्त बहुत अच्वाले मनुष्यवाचक 'कौशिक और वसिष्ठ' शब्दसे 'इलच्' प्रत्यय होनेके बाद) 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' (पा० ५।३।८३) सूत्रसे अजादि प्रत्ययके परमें रहनेसे प्रकृतिके द्वितीय अच्से परे (आगे रहनेवाले) शब्दका लोप होनेपर 'यस्येति च' (६।४।१४८) सूत्रसे इकारका लोप होनेपर ('कौशिलः, वासिष्ठः' प्रयोग) सिद्ध होते हैं ॥ ६१ ॥

कौशिलादय इति । अनुकम्पितः कौशिकः, अनुकम्पितो वासिष्ठ इत्यस्मिन्नर्थे कौशिलो वासिल इत्यादयः प्रयोगाः कथमिति विचारणायां[2]—'घनिलचौ च' (पा० ५।३।७९) इति सूत्रेणाऽनुकम्पायान्नीतौ वा बह्वचो मनुष्यनाम्न 'घनिलचौ' प्रत्ययौ विधीयेते । अतः कौशिकवासिष्ठशब्दाभ्यामुक्तलक्षणाभ्यामिलचि कृते 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादच' (पा० ५।३।८३) इत्यजादौ प्रत्यये परतः प्रकृतेर्द्वितीयादचः परस्य शब्दरूपस्य लोपे सति 'यस्येति च' (पा० ६।४।१४८) इतीकारलोपे च 'कौशिलो वासिल' इत्यादयः प्रयोगाः सिद्धचन्तीति समर्थयते—कौशिलो वासिल इति ॥ ६१ ॥

मौक्तिकमिति विनयादिपाठात् ॥ ६२ ॥

मुक्तैव मौक्तिकमिति विनयादिपाठाद् द्रष्टव्यम् । 'स्वार्थिकाश्च प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते' (भा०) इति नपुंसकत्वम् ॥ ६२ ॥

---

१. 'आह' एतदग्रे 'इलचि वर्णलोपात्' इत्यधिकः 'ग' पु० पा० ।

२. 'विचारणायां' एतदग्रे 'साधुत्वं समर्थयते—कौशिलो वासिल इति । अत्र' इत्यधिकः 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

विनयादिगणमें मुक्ता शब्दका पाठ होनेसे 'मौक्तिकम्' प्रयोग सिद्ध होता है।

'मुक्तैव मौक्तिकम्' इस विग्रहमें 'मुक्ता' शब्दका विनयादिगणमें पाठ होनेसे 'विनयादिभ्यष्ठक्' (५।४।३४) सूत्रसे 'ठक्' प्रत्यय होनेपर 'ठस्येकः' (पा० ७।३।५०) सूत्रसे 'ठ' का 'इक' आदेश होनेपर 'स्वार्थिकाश्च लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते' (भा०) अर्थात् 'स्वार्थिक प्रत्यय लिङ्गों और वचनोंका अतिक्रमण करते हैं' इस भाष्यवचनानुसार यद्यपि 'मुक्ता' शब्द स्त्रीलिङ्ग है, तथापि स्वार्थिक (स्वार्थमें) 'ठक्' प्रत्यय होनेके कारण 'मौक्तिकम्' पद नपुंसकमें प्रयुक्त हो गया है ॥ ६२ ॥

मौक्तिकमिति । विनयादिषु पाठेऽभ्युपगते, 'विनयादिभ्यष्ठक्' (पा० ५।४।३४) इति स्वार्थिके ठकि कृते 'मौक्तिकमि'ति सिद्धचतीत्याह—मुक्तैव मौक्तिकमिति । अत्र प्रकृतिलिङ्गस्यातिक्रमणे भाष्यकारवचनं प्रमाणयति—स्वार्थिका इति ॥ ६२ ॥

प्रातिभादयः प्रज्ञादिषु ॥ ६३ ॥

प्रातिभादयः शब्दाः प्रज्ञादिषु द्रष्टव्याः । 'प्रतिभाविकृतिद्वितादि'भ्यः शब्देभ्यः प्रज्ञादिपाठादणि स्वार्थिके कृते 'प्रातिभं, वैकृतं, द्वैतमि'त्यादयः प्रयोगाः सिद्धचन्तीति ॥ ६३ ॥

'प्रातिभम्' इत्यादि प्रयोग प्रज्ञादिगणमें पठित होनेसे 'स्वार्थ'में 'अण्' प्रत्यय होनेपर सिद्ध होते हैं।

'प्रज्ञादिगण'में 'प्रतिभा, विकृति, द्वित' आदि शब्दोंका पाठ होनेसे स्वार्थमें ('प्रज्ञादिभ्यश्च' (पा० ५।४।३८) सूत्रसे) 'अण्' प्रत्यय होनेपर (आदिवृद्धि होकर) 'प्रातिभम्, वैकृतम्, द्वैतम्' आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं ॥ ६३ ॥

प्रातिभादय इति । 'प्रज्ञादिभ्यश्च' (पा० ५।४।३८) इति स्वार्थिकोऽण् विधीयते । प्रतिभादीनामप्यत्र पाठाभ्युपगमेन स्वार्थिकेऽण्प्रत्यये कृते 'प्रातिभं, वैकृतं, द्वैतं, चारित्रम्' इत्यादयः सिद्धचन्तीति व्याचष्टे—प्रातिभादयः शब्दा इति ॥ ६३ ॥

न सरजसमित्यनव्ययीभावे ॥ ६४ ॥

'मधु सरजसं मध्येपद्मं पिबन्ति शिलीमुखाः ।' इत्यादिषु 'सरजसमि'ति न युक्तः प्रयोगोऽनव्ययीभावे, अव्ययीभाव एव सरजसशब्दस्येष्टत्वात् ॥ ६४ ॥

अव्ययीभाव समास नहीं करनेपर बहुव्रीहि समासमें 'सरजसम्' प्रयोग सिद्ध नहीं होगा।

'रजसा सह वर्तते' इस प्रकार विग्रह करनेसे बहुव्रीहि समासमें 'सरजसम्' पद सिद्ध नहीं हो सकता है, किन्तु 'सरजस्कम्' प्रयोग हो जायेगा, और साकल्यार्थमें 'अव्ययं विभक्तिसमीप''''साकल्यान्तवचनेषु' (पा० २।१।६) सूत्रसे अव्ययीभाव समास करनेपर 'अचतुरविचतुर''''गोष्ठश्वाः' (पा० ५।४।७७) सूत्रसे अकारान्त निपात होनेसे 'सरजसम्' प्रयोग सिद्ध होगा। (जैसा कि वृत्तिकारने कहा है—'तत एकोऽव्ययी-

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

भावः साकल्ये, सरजसमभ्यवहरति' इति, बहुव्रीहौ न भवति—'रजसा सह वर्तते' इति 'सरजस्कं पङ्कजम्' इति) ॥ ६४ ॥

न सरजसमिति । बहुव्रीहिप्रयोगो न साधुरिति दर्शयितुमाह—मधु सरजसमित्यादिना । अनव्ययीभावे प्रयोगो न युक्तः । रजसा सह वर्तत इति सरजसमिति बहुव्रीहिसमासो न सिद्धयति, तस्मिन् हि सति सरजस्कमिति स्यात् । अव्ययीभावे तु सिद्धयति । 'अव्ययं विभक्ति' (पा० २।१।६) इत्यादिना साकल्यार्थेऽव्ययीभावे कृते, 'अचतुर–' (पा० ५।४।७७) इत्यादिसूत्रेणाकारान्तत्वनिपातनात् 'सरजसमि'ति भवति । तथा चाह वृत्तिकारः 'तत एकोऽव्ययीभावः साकल्ये । सरजसमभ्यवहरतीति बहुव्रीहौ न भवति । रजसा सह वर्तते सरजस्कं पङ्कजमिती'ति ॥ ६४ ॥

न धृतधनुषीत्यसंज्ञायाम् ॥ ६५ ॥

'धृतधनुषि शौर्यशालिनि' इत्यत्र धृतधनुषीत्यसंज्ञायां न युक्तः प्रयोगः । 'धनुषश्च' (पा० ५।४।१३२) इत्यनङ्विधानात् । संज्ञायां ह्यनङ् विकल्पितः । 'वा संज्ञायाम्' (पा० ५।४।१३३) इति ॥ ६५ ॥

'धृतधनुषि' ऐसा सप्तम्यन्त प्रयोग असंज्ञामें नहीं होगा ।

'धृतधनुषि शौर्यशालिनि'—शौर्यसे शोभने वालेके धनुष धारण करनेपर । असंज्ञा अर्थमें प्रयुक्त होनेपर शुद्ध नहीं होगा, क्योकि 'धनुषश्च' इस सूत्रसे संज्ञासे भिन्न अर्थमें 'धनुषश्च' (पा० ५।४।१३२) सूत्रसे नित्य 'अनङ्' प्रत्ययके होनेसे 'धृतधन्वा' बनेगा, अतः 'संज्ञा' अर्थमें 'वा संज्ञायाम्' (पा० ५।४।१३३) सूत्रसे विकल्पित 'अनङ्' प्रत्यय होनेसे यहाँ अनङ् प्रत्ययका अभाव करनेपर 'धृतधनुः' शब्दके सप्तम्येकवचनमें 'धृतधनुषि' प्रयोग शुद्ध होगा ॥ ६५ ॥

न धृतधनुषीति । निगदव्याख्यातमेतत् ॥ ६५ ॥

दुर्गन्धिपद इद् दुर्लभः ॥ ६६ ॥

'दुर्गन्धिः काय' इत्यादिषु दुर्गन्धिपदे इत् समासान्तो दुर्लभः, उत्पूत्यादिषु दुःशब्दस्यापाठात् ॥ ६६ ॥

'दुर्गन्धिः' पदमें 'इत्' होना दुर्लभ होनेसे अशुद्ध है ।

'दुर्गन्धिः कायः'—शरीर बदबूयुक्त है । इस प्रयोगमें 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' (पा० ५।४।१३५) सूत्रद्वारा 'उत्, पूति, सु, सुरभि' इन चार शब्दोंके पूर्वमें रहनेपर ही 'गन्ध' शब्दसे 'इत्' प्रत्ययका विधान होनेसे यहाँ प्रकृत प्रयोगमें 'दुस्' शब्दका 'गन्ध' शब्दके पूर्वमें रहनेके कारण 'दुर्गन्धिः' प्रयोग शुद्ध नहीं है ॥ ६६ ॥

दुर्गन्धिपद इति । 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्य' (पा० ५।४।१३५) इत्युदादिभ्यश्चतुर्भ्यः परस्य गन्धशब्दस्य समासान्तविधानादुदादिषु दुरो ग्रहणाभावाद् दुर्गन्धिरिति प्रयोगो न साधुरिति दर्शयति—दुर्गन्धिः काय इति ॥ ६६ ॥

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

सुदत्यादयः प्रतिविधेयाः ॥ ६७ ॥

'सा दक्षरोषात् सुदती ससर्जे'ति, 'शिखरदति पतति रशना' इत्यादिषु सुदत्यादयः शब्दाः प्रतिविधेयाः, दत्रादेशलक्षणाभावात्। तत्र प्रतिविधानम्—'अग्रान्त-' (पा० ५।४।१४५) आदिसूत्रे चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् सुदत्यादिषु दत्रादेश इत्येके। अन्ये तु वर्णयन्ति—'सुदत्यादयः स्त्र्यभिधायिनो योगरूढशब्दाः। तेषु 'स्त्रियां संज्ञायाम्' (पा० ५।४।१४३) इति दत्रादेशो विकल्पेन सिद्ध एवेति ॥ ६७ ॥

'सुदती' आदि शब्द भी समाधान करने के योग्य हैं।

'सा····ससर्जेति' तथा 'शिखरदति····रशना' इत्यादि स्थलोंमें 'सुदती' 'शिखदति' आदि शब्द समाधानकी अपेक्षा रखते हैं, क्योंकि समासान्त बहुव्रीहि समासमें दन्त शब्दके स्थान पर 'दतृ' आदेश होता है, उसके अभावमें 'समदन्ती' आदि शब्द सिद्ध होते हैं, इसका समाधान इस प्रकार है—'अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च' इस सूत्रसे अग्र, अन्त, शुद्ध, शुभ्र, वृष, वराह शब्दोंसे संयुक्त दन्त शब्दको विकल्पसे 'दतृ' आदेश होता है। यहाँ कुछ विद्वान् चकारको अनुक्तसमुच्चयार्थक स्वीकार कर लेने से सुदती आदि शब्दोंके साथ 'दतृ' आदेशकी सत्ताको स्वीकार करते हैं।

दूसरे आचार्यों का कथन है कि 'सुदती' आदि शब्द नित्य स्त्रीलिङ्गवाची होनेके कारण योगरूढ़ हैं, उनमें 'स्त्रियां संज्ञायाम्' सूत्रसे विकल्पसे 'दतृ' आदेश होता ही है। अतएव 'सुदती' आदि शब्दोंके प्रयोग शास्त्रसम्मत ही हैं ॥ ६७ ॥

सुदत्यादय इति। वयस्यविवक्षिते दत्रादेशप्राप्तेरभावेऽपि शिष्टप्रयुक्तत्वात् सुदत्यादयः प्रतिविधेयाः समाधेयाः। अत्र केचित्, 'अग्रान्त-' (पा० ५।४।१४५) इत्यादिसूत्रे चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वादहिदन्नित्यादिष्विव दत्रादेशे कृते 'उगितश्च' (पा० ४।१।६) इति ङीपि सति सुदत्यादयः सिद्धयन्तीति प्रतिविदधते। अपरे तु—स्त्रीमात्राभिधायिनो योगरूढाः सुदत्यादय इति 'स्त्रियां संज्ञायाम्' (पा० ५।४।१४३) इति दत्रादेशे सिद्धयन्तीति वदन्तीत्यभिप्रायेण व्याचष्टे—सा दक्षरोषादित्यादिना ॥६७॥

क्षतदृढोरस इति न कप्, तदन्तविधिप्रतिषेधात् ॥ ६८ ॥

'प्लवङ्गनखकोटिभिः क्षतदृढोरसो राक्षसाः'

इत्यत्र 'दृढोरः'शब्दाद्, 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' (पा० ५।४।१५१) इति कप् न कृतः, 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेने'ति तदन्तविधेः प्रतिषेधात्। समासवाक्यं[1] त्वेवं कर्तव्यम्—क्षतं दृढोरो येषामिति ॥ ६८ ॥

'क्षतदृढोरसः' इस प्रयोग में तदन्तविधिके निषेधके कारण 'कप्' प्रत्यय नहीं हो सकता।

१. 'वाक्यं तु' इति 'क-ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'प्लवङ्ग·····राक्षसाः' अर्थात् राक्षस-समूहका सुपुष्ट उरःस्थल भी वानरोंके नखोंके अग्रभागोंसे क्षत (घाव) युक्त हो गया। यहाँ 'दृढोरः' शब्दसे 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' इस सूत्रसे कप् प्रत्यय नहीं हुआ है। क्योंकि 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नेष्यते' इस नियमसे तदन्तविधिका निषेध हो जाता है, उक्त वाक्यका इस प्रकार विग्रह करना चाहिये—'क्षतं दृढञ्च तद् उरः =दृढोरः' कर्मधारय समास होगा। उसके बाद 'क्षतं दृढोरः येषाम्' बहुव्रीहि समास होगा ॥ ६८ ॥

क्षतदृढोरस इत्यस्य साधुत्वं समर्थयितुं प्रथमं तावत् प्रामाणिकप्रयोगं प्रदर्शयति—प्लवङ्गेति। ननु बहुव्रीहौ समासे उरःप्रभृतिभ्यो नित्यं कब्विधानात् क्षतदृढोरस्क इति कपा भवितव्यमिति प्राप्ते कबभावे कारणं कथयितुमाह—उरःप्रभृतिभ्य इति। 'ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नेष्यते' (वा०) इति वचनादुरःशब्दान्तात् कप्प्रत्ययो न भवति। तथा च विग्रहवाक्यमेवं कर्तव्यम्—दृढं च तदुरश्च दृढोरः, क्षतं दृढोरो येषामिति। अतः 'क्षतदृढोरस' इति सिद्धयतीत्यर्थः ॥ ६८ ॥

अवैहीति वृद्धिरवद्या ॥ ६९ ॥

अवैहीत्यत्र वृद्धिरवद्या, गुण एव युक्त इति ॥ ६९ ॥

'अवैहि' इस पदमें वृद्धिसन्धिका प्रयोग निन्दनीय है।

'अवैहि' इस सन्धित पदमें वृद्धिसन्धि प्रशंसनीय नहीं है, यहाँ तो गुणसन्धिका प्रयोग ही उचित है, क्योंकि 'अवेहि' यह रूप 'अव' उपसर्गपूर्वक 'इण् गतौ' धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष एकवचनका है, 'अव'का पूर्वप्रयोग होनेपर गुणसन्धिके होनेसे 'अवेहि' रूपकी सिद्धि होती है ॥ ६९ ॥

अवैहीति। अवैहीत्यत्र इणो लोण्मध्यमपुरुषे, 'सेर्ह्यपिच्च' (पा० ३।४।८७) इति ह्यादेशे सति ङिद्वद्भावाद् गुणाभावे, इहीति रूपम्। ततश्चावशब्दस्य प्राक्प्रयोगे, 'आद् गुणः' (पा० ६।१।८७)। इति गुणे सति, अवेहीति भवति। 'एत्येधत्यूठ्सु' (पा० ६।१।८९) इति गुणे सति, अवेहीति भवति। 'एत्येधत्यूठ्सु' (पा० ६।१।८९) इत्यत्र, एतेरेचि इत्यनुवर्तनाद् वृद्धिर्न भवति। नन्ववाङोरुभयोरुपसर्गयोः प्राक्प्रयोगे वृद्धिः सिद्धयतीति न चोदनीयम्। 'ओमाङोश्च' (पा० ६।१।९५) इति पररूपप्रसङ्गात्। तस्मादवैहीत्यत्र वृद्धिरसाधीयसीत्यर्थः ॥ ६९ ॥

अपाङ्गनेत्रेति लुगलभ्यः ॥ ७० ॥

अपाङ्गे नेत्रं[1] यस्याः सेयमपाङ्गनेत्रेत्यत्र लुगलभ्यः, 'अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे' (पा० ६।३।१२) इति सप्तम्या अलुग्विधानात् ॥ ७० ॥

'अपाङ्गनेत्रा' इस शब्दमें सप्तमी विभक्तिका लोप होना सम्भव नहीं है।

'अपाङ्गे नेत्रं यस्याः सा' इस प्रकारका विग्रह करनेपर सप्तमी विभक्तिका लोप प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि 'अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे' इस सूत्रसे काम

---

१. 'नेत्रे' इति 'क, ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

शब्दको छोड़कर स्वांगवाची शब्दोंके बादमें रहनेपर सप्तमी विभक्तिका लोप नहीं होता है। जैसे—'कण्ठेकाल:' तथा 'उरसिलोमा' आदि। काम शब्दके साथ—'मुखे काम: अस्य=मुखकाम:' इस दृष्टिसे 'अपाङ्गनेत्रा' शब्दका प्रयोग शुद्ध है। 'अपाङ्गनेत्रा' उस स्त्रीका विशेषण है, जिसका नेत्रगोलक विशेष अवसर पर अपांग (कनीनिका) में स्थित हो ॥ ७० ।

अपाङ्गनेत्रेति। नेत्रशब्देन समुदायवाचिना तदेकदेशः कनीनिका लक्ष्यते। ततश्चापाङ्गे नेत्रं कनीनिका यस्याः सापाङ्गे नेत्रेति प्रयोक्तव्यं, न त्वपाङ्गनेत्रेति। 'अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे' (पा० ६।३।१२) इति नित्यं सप्तम्या अलुग्विधानादित्यभिप्रायवानाह—अपाङ्गे नेत्रमिति ॥ ७० ॥

नेष्टाः श्लिष्टप्रियादयः पुंवद्भावप्रतिषेधात् ॥ ७१ ॥

'श्लिष्टप्रियः, विश्लिष्टकान्त'[1] इत्यादयो नेष्टाः, 'स्त्रियाः पुंवत्–' (पा० ६।३।३४) इति पुंवद्भावस्य प्रियादिषु निषेधात् ॥ ७१ ॥

'श्लिष्टप्रिय' आदि प्रयोग पुंवद्भाव विधिका प्रतिषेध होनेके कारण विद्वानों को प्रिय नहीं हैं।

प्रिया आदि स्त्रीलिंग शब्दोंके बादमें रहनेपर उनका पुंवद्भाव नहीं होता है। इसीलिये 'श्लिष्टप्रिय:' तथा 'विश्लिष्टकान्त:' इत्यादि प्रयोग विद्वज्जनोंको प्रिय नहीं हैं। इसका आधार निम्नलिखित सूत्र है—'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु'। इसके अनुसार प्रिया आदि स्त्रीलिंग शब्दों-का परप्रयोग होनेपर पुंवद्भाव नहीं होता है।

स्पष्टीकरण—'श्लिष्टा प्रिया येन स:' इस प्रकार विग्रह करनेपर निष्पन्न यह शब्द उक्त नियमके अनुसार अशुद्ध है। इसी प्रकारका एक शब्द है—'विश्लिष्ट-कान्त:' इसका विग्रह इस प्रकार होगा—'विशेषेण श्लिष्टा कान्ता येन स:'। यहाँ भी कान्ता शब्द स्त्रीलिंग है, इसका भी पुंवद्भाव नहीं होगा, अत: यह प्रयोग भी अशुद्ध है ॥ ७१ ॥

नेष्टा इति। श्लिष्टा प्रिया येन, विश्लिष्टा कान्ता यस्मात् स 'श्लिष्टप्रियो, विश्लिष्टकान्त' इत्यादयः प्रयोगा इष्टा न भवन्ति, 'स्त्रियाः पुंवत्–' (पा० ६।३।३४) इत्यादिसूत्रे प्रियादिषु पुंवद्भावप्रतिषेधादिति दर्शयति—श्लिष्टप्रिय इत्यादिना ॥ ७१ ॥

दृढभक्तिरसौ[2] सर्वत्र ॥ ७२ ॥

'दृढभक्तिरसौ ज्येष्ठे' अत्र पूर्वपदस्य 'स्त्रियामि'त्यविवक्षितत्वात्[3] ॥७२॥

---

१. 'वृद्धकान्त:' इति 'क, ग' पु० पा०।
२. 'दृढभक्तिरिति सर्वत्रेति' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'अस्त्रियां विवक्षितत्वात्' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'दृढभक्ति' यह प्रयोग सर्वत्र मिलता है।

'दृढभक्तिरसौ ज्येष्ठे' यह प्रयोग कालिदासने अपने रघुवंशमें किया है, उक्त शब्दका जब हम 'दृढा भक्तिः यस्य सः' (बहुव्रीहि) इस प्रकार स्त्रीत्वकी अविवक्षा युक्त विग्रह करेंगे, तब 'दृढभक्तिः' शब्द सिद्ध हो सकता है। इस सम्बन्धमें गण-व्याख्यानकार, न्यासकार तथा भोजराजके मत भी अवलोकनीय हैं ॥ ७२ ॥

दृढभक्तिरिति। अत्र भक्तिशब्दस्य प्रियादिपाठात् पूर्वपदस्य पुंवद्भावो दुर्घट इति प्राप्ते पूर्वपदस्य दृढशब्दस्य विग्रहवाक्ये स्त्रीत्वस्याविवक्षितत्वाद् दृढभक्तिरिति सिद्ध्यतीत्याह—अत्रेति। तथा चाह वृत्तिकारः—'दृढभक्तिरित्येवमादिषु पूर्वपदस्य स्त्रीत्वस्याविवक्षितत्वात् सिद्धमिति समाधेय'मिति। गणव्याख्यानकारोऽपि—'दृढं भक्तिरस्येति नपुंसकपूर्वपदो बहुव्रीहि'रिति। न्यासकारोऽपि—'अदाढर्यनिवृत्तिपरे दृढशब्दे लिङ्गविशेषस्यानुपकारकत्वात् स्त्रीत्वमविवक्षितमेव, तस्मादस्त्रीलिङ्गस्यैव दृढशब्दस्यायं प्रयोग इत्यभिप्राय' इति। भोजराजस्त्वन्यथा समाधत्ते। "भक्तौ च कर्मसाधनाया'-मित्यत्र सूत्रे कर्मसाधनस्यैव भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठाद् 'भवानीभक्ति'रित्यादौ पुंवद्भावप्रतिषेधः। 'दृढभक्तिरि'त्यादौ भावसाधनत्वात् पुंवद्भावे सिद्धे स्त्रीपूर्वपदत्वमेवे"ति ॥ ७२ ॥

[1]जम्बुलतादयो ह्रस्वविधेः ॥ ७३ ॥

[2]जम्बुलतादयः प्रयोगाः कथम्? आह—ह्रस्वविधेः। 'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' (पा० ६।३।६१) इति ह्रस्वविधानात् ॥ ७३ ॥

ह्रस्वविधिको स्वीकार कर लेनेपर 'जम्बुलता' आदि शब्दोंकी भी सिद्धि हो जाती है।

'जम्बूलता'के स्थानपर यह 'जम्बुलता' प्रयोग कैसे सिद्ध होता है? इसका उत्तर है—व्याकरणशास्त्रोक्त ह्रस्वविधिका प्रयोग करनेसे, देखें—'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' पाणिनिका यह सूत्र ह्रस्वका विधान करता है। अतः 'जम्बुलता' शब्दका प्रयोग हुआ है ॥ ७३ ॥

जम्बुलतादय इति। 'इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य' (पा० ६।३।६१) इति ङ्यन्त-व्यतिरिक्तस्येगन्तस्योत्तरपदे परतो विकल्पेन ह्रस्वविधानाज्'जम्बुलतादयः' सिद्धा इत्याह—जम्बुलतादय इति ॥ ७३ ॥

तिलकादयोऽजिरादिषु ॥ ७४ ॥

तिलकादयः शब्दा अजिरादिषु द्रष्टव्याः। अन्यथा 'तिलकवती, कनकवती'त्यादिषु मतुपि 'मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्' (पा० ६।३।११९) इति

---

१. 'जलजम्बु……' इति 'क' पु० पा०।

२. 'जलजम्बुलताविलाः स्रवन्त्यः, अग्रे कर्कन्धुग्रहणमित्यादिषु कथं जलजम्बुलतादयः प्रयोगाः? आह' इत्येवं 'क' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

दीर्घत्वं स्यात् । अन्ये तु वर्णयन्ति—'नद्यां मतुप्–' (पा० ४।२।८९) इति यो मतुप् तत्रायं विधिः । [1]तेषां मतेनामरावतीत्यादीनामसिद्धिः ।। ७४ ।।

तिलक आदि शब्दोंका समावेश अजिरादिगणमें नहीं है ।

तिलक आदि शब्दोंको अजिरादिगण (२३८ गणपाठ अ० ६) में देखना चाहिये । नहीं तो मतुप् प्रत्ययान्त 'तिलकवती, कनकवती' इत्यादि शब्द 'मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्' इससे दीर्घत्वकी प्राप्ति हो जानेपर 'तिलकवती' तथा 'कनकवती' शब्दोंके स्थानोंपर क्रमशः 'तिलकावती' एवं 'कनकावती' रूप सिद्ध हो जाते ।

दूसरे विद्वान् कहते हैं—'नद्यां मतुप्' इस सूत्रसे जहाँ मतुप् प्रत्यय होता है, वहीं दीर्घ विधान होता है, अन्यत्र नहीं, उनके मतमें 'अमरावती' आदि पद असिद्ध हैं ।।७४।।

तिलकादय इति । 'मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्' (पा० ६।३।११९) इति मतुप्प्रत्यये परतोऽजिरादिवर्जितस्य बह्वचो दीर्घविधानात्तिलकादीनामजिरादिपाठाभ्युपगमेन दीर्घनिषेधात्तिलकवतीत्यादयः सिद्ध्यन्तीत्याह—तिलकादयः शब्दा इति । अजिरादिषु पाठानभ्युपगमे प्रयोगविरोधं प्रदर्शयति—अन्यथेति । परे तु—प्रकारान्तरेण प्रयोगं प्रतिष्ठापयन्ति, तेषां मतं दूषयितुमनुभाषते—अन्ये त्विति । यत्र 'नद्यां मतुप्' (पा० ४।२।८५) इति नदीविषये मतुप्प्रत्ययो विधीयते, तत्रायं दीर्घविधिः । तिलकादिषु 'तदस्यास्त्यस्मिन्–' (पा० ५।२।९४) इति मतुब्विधानात्तिलकवतीत्यादिषु दीर्घाभाव इति । तदेतद् दूषयति—तेषामिति [2] ।। ७४ ।।

निशम्य-निशमय्यशब्दौ प्रकृतिभेदात् ।। ७५ ।।

'निशम्य, निशमय्ये'त्येतौ शब्दौ श्रुत्वेत्येतस्मिन्नर्थे । शमेः, 'ल्यपि[3] लघुपूर्वात्' (पा० ६।४।५६) इत्ययादेशे सति निशमय्येति भवितव्यम्, न निशम्येति । आह—प्रकृतिभेदात् । शमेर्दैवादिकस्य निशम्येति रूपम् । 'शमो दर्शने' (ग०) इति चुरादौ णिचि मित्संज्ञकस्य 'निशमय्ये'ति रूपम् ।। ७५ ।।

'निशम्य' तथा 'निशमय्य' ये दोनों शब्द प्रकृति-भेदसे शुद्ध माने गये हैं ।

'श्रुत्वा' अर्थात् सुनकर इस अर्थमें 'निशम्य' और 'निशमय्य' ये दो शब्द प्रसिद्ध हैं । यथा—'निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनम्' । (भाग० १० स्कन्ध) शम् धातुसे 'ल्यपि लघुपूर्वात्' सूत्रसे अप् आदेश होनेपर 'निशमय्य' प्रयोग होना चाहिये, नकि 'निशम्य' प्रयोग ।

उक्त शंकाका समाधान इस प्रकार है—प्रकृति (धातु) भेद (दिवादिगणीय शम् धातु) से 'निशम्य' शब्द निष्पन्न होता है और चुरादिगणीय 'शमो दर्शने' धातुसे णिच् प्रत्यय होनेपर मित्संज्ञा करनेपर 'निशमय्य' रूप निष्पन्न होता है ।। ७५ ।।

---

१. तेषां मतं न, 'अमरावती'त्यादीनामसिद्धेः' इति 'ख-ग' पु० पा० ।
२. 'दीर्घाभाव इति वदन्ति । तदे······' इति 'ख' पु० पा० ।
३. 'शमेर्ल्यपि 'लपि लघु'······' इति 'ख-ग' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

निशम्येति । दिवादिपाठादण्यन्तशमिरेका प्रकृतिः । चुरादिषु पाठात् 'शमो दर्शने' (ग०) इति श्रवणार्थे मित्संज्ञको णिजन्तः शमिरपरा प्रकृतिः । अतः प्रकृतिभेदाद्रूपद्वयसिद्धिरित्याह––निशम्येत्यादि ॥ ७५ ॥

संयम्यनियम्यशब्दावणिजन्तत्वात् ॥ ७६ ॥

कथं संयम्यनियम्यशब्दौ[1] ? 'ल्यपि लघुपूर्वात्' (पा० ६।४।५६) इति णेरयादेशेन भवितव्यम् । आह—अणिजन्तत्वात् । धातोर्णिच् तु न[2], गतार्थत्वात् । यथा–'वाचं नियच्छति' इति । णिजर्थानवगतौ तु णिच् प्रयुज्यत एव । यथा—'संयमयितुमारब्ध' इति ॥ ७६ ॥

णिजन्त प्रत्ययका प्रयोग करनेसे 'संयम्य' तथा नियम्य' शब्द निष्पन्न होते हैं । शंका यह होती है कि 'ल्यपि लघुपूर्वात्' सूत्रसे णिच् प्रत्ययके स्थानपर अय् आदेश होनेसे 'संयम्य' एवं 'नियम्य' शब्द बन सकते हैं ? इस शंकाका समाधान करनेके लिये कहा गया है—णिजन्त न होनेके कारण, क्योंकि जब णिच् प्रत्यय नहीं होगा तो उक्त सूत्रसे अय् आदेश भी नहीं होगा और अय् आदेशके अभावमें उक्त रूपोंकी सिद्धि नहीं होगी । इसका कारण है—'गतार्थत्वात्' अर्थात् प्रयोजक व्यापार से रहित सकर्मक प्रकृत्यर्थका जहाँ धातु द्वारा ही अभिधान (कथन) हो जाता है, वहाँ णिच् प्रत्ययका प्रयोग नहीं किया जाता ।

यथा—'वाचं नियच्छति', अर्थात् जहाँ णिच् प्रत्ययका अर्थ स्वाभाविक रूपसे प्रतीत नहीं होता, वहीं णिच् प्रत्ययका प्रयोग किया जाता है । यथा—'संयमयितुमारब्धः' । यह सम् उपसर्गपूर्वक णिजन्त यम धातुका तुमुन् प्रत्ययान्त रूप है ॥७६॥

संयम्येति । प्रयोजकव्यापारप्रतीतेरत्र णिचा भवितव्यम् । तस्मिंस्तु सति 'ल्यपि लघुपूर्वात्' (पा० ६।४।५६) इति णेरयादेशे 'संयम्य, निशम्ये'ति प्रयोक्तव्यम् । कथं संयम्यनियम्यशब्दाविति प्रयोक्तुरभिप्रायः । शङ्कामिमां शकलयितुं हेतुमाह––अणिजन्तत्वादिति । णिजभावाण्णेरयादेशो न प्रसज्ज्यत इत्यर्थः । ननु प्रयोजकव्यापारप्रतीतौ णिच्प्रत्ययः किं न स्यादित्यत आह–णिच् तु नेति[3] । गतार्थत्वात् प्रयोजकव्यापारशून्यस्य सकर्मकस्य प्रकृत्यर्थस्य धातुनैवाभिहितत्वादित्यर्थः । तत्र दृष्टान्तमाह––यथा वाचमिति । यत्र णिजर्थः स्वभावतो नावगम्यते, तत्र णिच् प्रयुज्यत एवेति दर्शयति––णिजर्थानवगताविति ॥ ७६ ॥

प्रपीयेति पीङः ॥ ७७ ॥

'प्रपीये'त्ययं शब्दः, 'पीङ् पाने' इत्येतस्य पिबतेर्हि 'न ल्यपि' (पा० ६।४।६९) इतीत्वप्रतिषेधात् प्रपायेति भवति ॥ ७७ ॥

१. '…नियम्येति ? ल्यपि, ल्यपि…' इति 'ख' पु०, 'संयम्य नियम्येति' इति 'क' पु० पा० ।
२. 'धातोर्णिच् न कृतः' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।
३. 'आह—'णिच् नेति' इति 'ख' पु० पा० ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

प्र-उपसर्गपूर्वक 'पीङ् पाने' धातुसे 'क्त्वा'के स्थानपर ल्यप् प्रत्यय करनेपर 'प्रपीय' प्रयोग निष्पन्न होता है।

प्र-उपसर्गपूर्वक 'पा पाने' धातु क्त्वाके स्थानपर ल्यप् प्रत्यय करनेपर 'न ल्यपि' इस सूत्रसे इत्वका निषेध हो जानेपर 'प्रपाय' रूप बनता है ॥ ७७ ॥

प्रपीयेति। 'पीङ् पाने' इति धातोर्ल्यबन्तमिदं, न तु पिबतेः। तस्य 'न ल्यपि' (पा० ६।४।६९) इतीत्वप्रतिषेधादित्याह––पिबतेरिति ॥ ७७ ॥

दूरयतीति बहुलग्रहणात् ॥ ७८ ॥

'दूरयत्यवनते विवस्वति' इत्यत्र दूरयतीति कथम्? णाविष्ठवद्भावे 'स्थूलदूर–' (पा० ६।४।१५६) इत्यादिना गुणलोपयोः कृतयोर्दवयतीति भवितव्यम्। आह—बहुलग्रहणात्। 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च' (ग०) इत्यत्र बहुलग्रहणात् 'स्थूलदूर–' (पा० ६।४।१५६) आदिसूत्रेण यद् विहितं तन्न भविष्यतीति ॥ ७८ ॥

'दूरयति' यह प्रयोग बहुलग्रहणसे सिद्ध हो जाता है।

'दूरयत्यवनते विवस्वति' यहाँ 'दूरयति' यह प्रयोग कैसे हो गया? इसकी सिद्धि तो णिच् प्रत्ययके होनेपर इष्ठवद्भावके कारण 'स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः' सूत्रसे गुण और 'र'के लोप होनेपर होती है। इसीलिये कहा गया है—'बहुलग्रहणात्' यह बहुलग्रहण चार प्रकारका होता है।

'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च' इस गणसूत्रमें बहुल ग्रहणके कारण 'स्थूलदूर०' इत्यादि सूत्रका नियम यहाँ प्रयुक्त नहीं होता है, अतएव 'दूरयति' प्रयोग शुद्ध हैं ॥ ७८ ॥

दूरयतीति प्रयोगस्य साधुत्वं समर्थयितुं शङ्कामिमाङ्कुरयति—दूरयतीति। शेषं सुगमम् ॥ ७८ ॥

गच्छतीप्रभृतिष्वनिषेध्यो नुम् ॥ ७९ ॥

'हरति हि वनराजिर्गच्छती[१] श्यामभावम्'

इत्यादिषु गच्छतीप्रभृतिषु शब्देषु, 'शप्श्यनोर्नित्यम्' (पा० ७।१।८१) इति नुम् अनिषेध्यो निषेद्धुमशक्यः ॥ ७९ ॥

'गच्छती' आदि अर्थात् भ्वादि, दिवादि एवं चुरादिगणीय धातुओंमें नुम्के प्रयोगका निषेध नहीं किया जा सकता।

'हरति····भावम्', अर्थात् हरीतिमाको प्राप्त होती हुई वनपंक्ति हृदयका हरण कर रही है। इत्यादि स्थलोंमें 'गच्छती' आदि शब्दोंमें 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इस सूत्र से नुम् होता है, जिसका किसी प्रकार निषेध नहीं किया जा सकता ॥ ७९ ॥

१. 'वनराजीर्गच्छती' इति 'क-ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

गच्छतीप्रभृतिष्विति । 'शप्श्यनोर्नित्यम्' (पा० ७।१।८१) इति नित्यं नुमागमस्य विधानाद् गच्छतीत्यादयो न साधव इत्यर्थः ।। ७९ ।।

मित्रेण गोप्त्रेति पुंवद्भावात् ।। ८० ।।

'मित्रेण गोप्त्रे'ति कथम् ? गोप्तृणेति भवितव्यम् । 'इकोऽचि विभक्तौ' (पा० ७।१।७३) इति नुम्विधानात् । आह--पुंवद्भावात् । 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य' (पा० ७।१।७४) इति पुंवद्भावेन 'गोप्त्रे'ति भवति ।। ८० ।।

'मित्रेण गोप्त्रा' यहाँ 'गोप्त्रा' रूपकी सिद्धि पुंवद्भाव होनेसे हुई है ।

'मित्रेण गोप्त्रा' यह रूप कैसे सिद्ध हो गया ? यहाँ तो 'गोप्तृणा' होना चाहिये था, क्योंकि 'इकोऽचि विभक्तौ' इस सूत्रसे नुम्का आगम होकर 'गोप्तृणा' रूप होना चाहिये ।

उक्त शंकाका समाधान इस प्रकार प्रस्तुत है—'गुप्+तृच्=गोप्तृ' इस स्त्रीलिंग शब्दका 'तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य' इस सूत्रसे पुंवद्भाव कर देने से 'गोप्त्रा' रूप ही बनेगा, न कि 'गोप्तृणा' । क्योंकि उक्त नुम् करनेवाला सूत्र केवल नपुंसकलिंग शब्दोंमें ही प्रवृत्त होता है, अन्यत्र नहीं ।। ८० ।।

मित्रेण गोप्त्रेति । स्पष्टमवशिष्टम् ।। ८० ।।

वेत्स्यसीति पदभङ्गात् ।। ८१ ।।

'पतितं वेत्स्यसि क्षितौ' इत्यत्र वेत्स्यसीति न सिद्ध्यति, इट्प्रसङ्गात् । आह—पदभङ्गात् सिद्ध्यति । वेत्स्यसीति पदं भज्यते—वेत्सि, असि । असीत्ययं निपातस्त्वमित्यस्मिन्नर्थे । क्वचिद्वाक्यालङ्कारे प्रयुज्यते । यथा—

'पार्थिवस्त्वमसि सत्यमभ्यधाः' इति ।। ८१ ।।

पद-भंग कर देनेपर 'वेत्स्यसि' रूपकी सिद्धि हो सकती है ।

'पतितं····क्षितौ' अर्थात् 'तुम भूमि पर गिरा हुआ जानोगे' । इस उदाहरणमें 'वेत्स्यसि' यह पद सिद्ध नहीं होगा । 'विद ज्ञाने' धातुसे लृट् लकार मध्यमपुरुष एकवचनमें इट् आगम होनेपर 'वेदिष्यति' रूप सिद्ध होता है, न कि 'वेत्स्यसि' ।

उसका समाधान इस प्रकार है—पदोंको अलग-अलग कर देनेसे उक्त रूपकी भी सिद्धि हो जाती है । अब 'वेत्स्यसि' पदका विच्छेद किया जा रहा है—'वेत्सि, असि' । इसमें 'असि' यह निपात 'त्वम्' इस अर्थमें प्रयुक्त है । कहीं इसका प्रयोग वाक्यको अलंकृत करनेके लिये भी किया जाता है । यथा—'पार्थिव····मभ्यधाः' । जैसे—हे राजन् ! तुमने सत्य कहा । यहाँ 'असि'का प्रयोग केवल वाक्यको अलंकृत करनेके लिये ही किया गया है ।। ८१ ।।

वेत्स्यसीति । विदेर्ज्ञानार्थस्यानुदात्तोपदेशत्वाभावादिडागमेन भवितव्यम् । तथा च 'वेत्स्यसी'ति न सिद्ध्यतीति चिन्तायां पदं विभज्य प्रयोगसाधुत्वं समर्थयते—पतितमित्यादिना ।। ८१ ।।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

कामयानशब्दः सिद्धोऽनादिश्चेत् ॥ ८२ ॥

कामयानशब्दः सिद्धः, 'आगमानुशासनमनित्यमि'ति मुक्यकृते, यद्यनादिः स्यात् ॥ ८२ ॥

अनादि (प्राचीन) होनेके कारण 'कामयानः' शब्द सिद्ध माना जाता है।

'कामयानः' शब्द सिद्ध है। 'आगमानुशासनमनित्यम्' इस नियमके अनुसार 'आने मुक्' इस सूत्रसे मुक् आगमके न होने पर 'कामयानः' रूप सिद्ध हो सकता है; यदि वह प्राचीन वैयाकरणोंद्वारा प्रयुक्त किया गया हो तो, अन्यथा नहीं ॥ ८२ ॥

कामयान इति। 'आगमानुशासनमनित्यमि'ति वचनात्, 'आने मुक्' (पा० ७।२।८२) इत्यकृते मुगागमे 'कामयान' इति। स च प्रामाणिकैः प्रयुक्तश्चेत् साधुरित्यभिप्रायः ॥ ८२ ॥

सौहृद-दौर्हृदशब्दावणि हृद्भावात् ॥ ८३ ॥

सुहृदय-दुर्हृदयशब्दाभ्यां युवादिपाठादणि कृते हृदयस्य हृद्भावे आदिवृद्धौ सौहृददौर्हृदशब्दौ भवतः। सुहृद्दुर्हृच्छब्दाभ्यां युवादिपाठादेवाणि कृते 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते–' (पा० ७।३।१९) इति हृदन्तस्य तद्धितेऽणि कृते सत्युभयपदवृद्धौ सत्यां 'सौहार्दं दौहार्दमि'ति भवति ॥ ८३ ॥

सौहृद तथा दौर्हृद शब्द अण् प्रत्ययका प्रयोग करनेपर हृदय शब्दके स्थानपर हृद् आदेश होनेसे सिद्ध हो जाते हैं।

'शोभनं हृदयं यस्य–सुहृद्'। 'दुष्टं हृदयं यस्य–दुर्हृद्'। इन दोनों शब्दोंसे भाव अर्थमें 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्' इस सूत्रसे अण् प्रत्यय करने तथा 'हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु' सूत्रसे हृदय शब्दको हृद् आदेश करनेपर 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इस सूत्रसे हृदन्त शब्दको तद्धित अण् प्रत्यय करनेपर 'सौहृद' तथा 'दौर्हृद' शब्द सिद्ध होते हैं। उभयपद वृद्धि कर देनेपर 'सौहार्दम्' 'दौर्हार्दम्' रूप बनते हैं ॥ ८३ ॥

सौहृददौर्हृदशब्दाविति। शोभनं हृदयं यस्य, दुष्टं हृदयं यस्येति विग्रहसिद्धाभ्यां सुहृदयदुर्हृदयशब्दाभ्यां भावार्थे 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्' (पा० ५।१।१३०) इत्यणि कृते सति 'हृदयस्य हृल्लेखयदणलासेषु' पा०(६।३।५०) इति हृदादेशे 'तद्धितेष्वचामादेः' (पा० ७।२।११७) इत्यादिवृद्धौ च सत्यां सौहृददौर्हृदशब्दौ सिद्धौ। अत्र हृच्छब्दस्य लाक्षणिकत्वाद् 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते'—(पा० ७।३।१९) इत्यत्र प्रतिपदोक्तस्य ग्रहणादुभयपदवृद्धयभावः। शोभनं हृद् यस्य दुष्टं हृद् यस्येति विग्रहे[1] युवादिपाठादणि कृते 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' (पा० ७।३।१९) इत्युभयपदवृद्धौ 'सौहार्दं दौर्हार्दमि'ति च सिद्धमिति च व्याचष्टे—सुहृदय इत्यादिना ॥ ८३ ॥

विरम इति निपातनात् ॥ ८४ ॥

१. 'विग्रहे सिद्धाभ्यां सुहृद्दुर्हृच्छब्दाभ्यां युवादि……' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

रमेरनुदात्तोपदेशत्वात् 'नोदात्तोपदेशस्य-' (पा० ७।३।३४) इत्यादिना वृद्धिप्रतिषेधस्याभावात् कथं विरम इति ? आह—निपातनात् । एतत्तु[1] 'यम उपरमे' इत्यत्रोपरमे इति[2] । अतन्त्रं चोपसर्ग इति ॥ ८४ ॥

'विरम' यह शब्द निपातनसे सिद्ध होता है ।

'रमु क्रीडायाम्' अनुदात्तोपदेश होनेके कारण 'नोदात्तोपदेशश्य मान्तस्यानाचमेः' इस सूत्रसे उपधावृद्धिका प्रतिषेध न होनेपर 'विराम' रूप होना चाहिये था, किन्तु यह 'विरम' रूप कैसे सिद्ध हो गया ?

उक्त शंकाका समाधान देते हुए कहा गया है—निपातन से । यह निपातन तो 'यम उपरमे' धातुमें 'उप' उपसर्गके साथ दिया गया है; उसीकी बालमनोरमा टीकामें 'उपरमो विरमणम्' दिया हुआ है । अतः 'उपरम' शब्दके समान ही 'विरम' शब्दका प्रयोग भी होता है । क्योंकि यहाँ उपसर्ग-भेदका प्रयोग तो उपलक्षण मात्र है । यथा—'विरम प्रसीद सुन्दरि यौवनमनिर्वति यातं तु' उपसर्ग तो अतन्त्र होते हैं ॥ ८४ ॥

विरम इति । विरमेर्मान्तत्वेऽपि अनुदात्तोपदेशत्वाद् 'नोदात्तोपदेशस्य' (पा० ७।३।३४) इत्यादिना वृद्धिप्रतिषेधाभावाद् वृद्धौ सत्यां विराम इति युक्तं प्रयोक्तुं, कथं विरम इति प्राप्ते ? 'यम उपरमे' इत्यत्र निपातनात् सिद्धयतीति दर्शयति—रमेरिति । 'उपरम' इति निपातेन 'विरम' इत्यस्य किमायातमिति तत्राह—एतत्त्विति । एतत्तु निपातनं सोपसर्गस्य रमेरुपलक्षणमित्यवगन्तव्यम् ॥ ८४ ॥

उपर्यादिषु सामीप्ये द्विरुक्तेषु द्वितीया ॥ ८५ ॥

उपर्यादिषु शब्देषु सामीप्ये द्विरुक्तेषु 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' (पा० ८।१।७) इत्यनेन 'उपर्यादिषु त्रिषु द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु'[3] इति द्वितीया । वीप्सायां तु द्विरुक्तेषु षष्ठ्येव भवति—

'उपर्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः' इति ॥ ८५ ॥

'उपरि' आदि शब्दोंका योग जहाँ समीप्य अर्थमें द्विरुक्त (दो बार कहे गये) हों, वहाँ द्वितीया विभक्ति होती है ।

सामीप्य अर्थवाचक 'उपरि' आदि शब्दोंके द्विरुक्त होनेपर 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' इस सूत्रसे 'उपरि उपरि, अधि अधि, अधः अधः' उक्त तीनों शब्दोंका योग होनेपर 'द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु' इस कारिकाके अनुसार प्रयुक्त शब्दके साथ

---

१. 'एतत्तु' इत्यत्र 'निपातनं तु' इति 'क-ख-ग' पु० पा० ।

२. 'उपरमे इति' एतदग्रे 'एतत्तु उपलक्षणम्' इति अधिकः । 'ख' पु० 'एतत्तु चोपलक्षणम्' इति चाधिकः 'ग' पु० पा० ।

३. 'उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥' इति 'उपान्वध्याङ्वसः' (पा० १।४।४८) सूत्रे सिद्धान्तकौमुद्यां भट्टोजिदीक्षितः ।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

द्वितीया विभक्ति होती है। किन्तु वीप्सा अर्थमें जहाँ द्विरुक्ति होती है, वहाँ षष्ठी ही होती है।

उदाहरण—उपर्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धयः'। इसके विपरीत जहाँ वीप्सा अर्थमें कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, वहाँ द्वितीया विभक्ति ही होती है। 'यथा वीप्सायाम्—वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति'॥ ८५॥

उपर्यादिषु 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' (पा० ८।१।१) इत्युपर्यादीनां सामीप्यार्थे द्विर्वचनविधानाद् द्विरुक्तैस्तैर्योगे सति द्वितीयाविभक्तिर्भवति। वीप्सायां तु षष्ठीविभक्तिर्भवतीति[1] व्यवस्थामाह—उपर्यादिष्विति। क्रियागुणाभ्यां युगपत् प्रयोक्तुर्व्याप्तुमिच्छा वीप्सा॥ ८५॥

मन्दं मन्दमित्यप्रकारार्थत्वे॥ ८६॥

'मन्दं मन्दं नुदति पवनः'

इत्यत्र 'मन्दं मन्दमि'त्यप्रकाराऽर्थे भवति। प्रकारार्थत्वे तु 'प्रकारे गुणवचनस्य' (पा० ८।१।१२) इति द्विर्वचने कृते कर्मधारयवद्भावे च 'मन्दमन्दमि'ति प्रयोगः। 'मन्दं मन्दमि'त्यत्र तु 'नित्यवीप्सयोः' (पा० ८।१।४) इति द्विर्वचनम्। अनेकभावात्मकस्य नुदेर्यदा सर्वे भावा[2] मन्दत्वेन व्याप्तुमिष्टा भवन्ति, तदा वीप्सेति॥ ८६॥

'मन्दं मन्दम्' यह प्रयोग अप्रकारार्थक होनेसे सिद्ध हो सकता है।

'मन्दं मन्दं नुदति पवनः' इस पद्यांशमें 'मन्दं मन्दं' पद वीप्सार्थक है, न कि प्रकारार्थक। प्रकारार्थक प्रयोगमें तो 'प्रकारे गुणवचनस्य' इस सूत्रसे शब्दसादृश्य के दिखलायी देनेपर शब्दोंकी पुनरावृत्ति कर्मधारयसमासकी भाँति होती है, ऐसी स्थितिमें 'मन्दमन्दरम्' ऐसा प्रयोग होगा। इस स्थितिमें पूर्वपदका पुंवद्भाव और अन्तोदात्तत्व भी हो जाता है, यथा—'पटुपटुः'।

'मन्दं मन्दम्' यहाँ तो 'नित्यवीप्सयोः' सूत्रसे आभीक्ष्ण्य तथा वीप्सा अर्थमें पदका द्विर्वचन होता है। अनेक भावात्मक नुद् धातुके जब सभी भावोंकी एक साथ व्याप्ति स्वीकार की जाती है, तब उसे व्याप्ति कहते हैं॥ ८६॥

मन्दं मन्दमिति[3]। वीप्साप्रकारार्थयोः प्रयोगद्वयव्यवस्थां प्रतिपादयितुमाह—मन्दं मन्दं नुदतीति। कर्मधारयवद्भावे चेति। 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' (पा० ८।१।८१) इत्यनेन कर्मधारयवद्भावे सुलोपादिर्भवति। अनेकभावविषया व्याप्तुमिच्छा येति वीप्सा। तां दर्शयति—अनेकभावेति॥ ८६॥

न निद्राद्रुगिति, भष्भावप्राप्तेः॥ ८७॥

---

१. 'विभक्तिर्भवति, वीप्सायां तु षष्ठी' इत्यंशः 'ख' पु० पठितः परिवर्धितः।
२. 'अनेकभागात्मकस्य नुदेर्यदा सर्वे भागा' इति 'क, ग' पु० पा०।
३. एतदग्रे 'निगदव्याख्यानम्।' इत्यधिकः 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

'निद्राद्रुक्काद्रवेयच्छविरुपरिलसद्घर्घरो वारिवाहः'

इत्यत्र 'निद्राद्रुक्' इति न युक्तः, 'एकाचो बशो भष्–' (पा० ८।२।३७) इति भष्भावप्राप्तेः। अनुप्रासप्रियैस्त्वपभ्रंशः कृतः ॥ ८७ ॥

भष्भावकी प्राप्ति होनेके कारण 'निद्राद्रुक्' शब्दकी सिद्धि नहीं हो सकती, अतः प्रयोग अशुद्ध है।

ऊपर घर्घर शब्दसे शोभायमान सर्पकी शोभाको धारण करने वाला यह मेघ निद्राद्रोही है। यहाँपर 'निद्राद्रुक्' यह प्रयोग व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध है, क्योंकि द्रुह् शब्दके प्रथमा एकवचनमें विकल्पसे ध्रुक्, ध्रुग्, ध्रुट्, ध्रुड् ये चार रूप बनते हैं, किन्तु द्रुक् रूप नहीं बनता। क्योंकि—'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' इस सूत्रसे भष्भावकी प्राप्ति होती है। यह अपभ्रंश प्रयोग अनुप्रास-प्रिय कवियों का स्खलन है ॥ ८७ ॥

न निद्रेति[1]। निद्राध्रुगिति वक्तव्यं निद्राद्रुगित्यपभ्रंश इत्याह—निद्राद्रुक्काद्रवेय इति ॥ ८७ ॥

निष्यन्द[2] इति षत्वं चिन्त्यम् ॥ ८८ ॥

न ह्यत्र षत्वलक्षणमस्ति। कस्कादि[3]पाठोऽप्यस्य न निश्चितः ॥ ८८ ॥

'निष्यन्द' शब्दमें प्रयुक्त मूर्धन्य षकार विचारणीय है।

यहाँ कोई 'स्'के स्थानपर 'ष्' होनेका नियम भी नहीं है। कस्कादिगणमें इसका पाठ होना भी निश्चित नहीं है। अन्यत्र भी 'निस्यन्द' शब्द ही देखा जाता है, यथा—'वल्कलशिखानिस्यन्दरेखाङ्किताः'। अभिज्ञान० १।१४ ॥ ८८ ॥

निष्यन्द इति। अत्र षत्वप्राप्तावनुशासनादर्शनात् कस्कादिष्वपि पाठानिश्चयाच्च षत्वं चिन्त्यं, निश्चेतुमशक्यमित्याह—न हीति ॥ ८८ ॥

नाङ्गुलिसङ्ग इति मूर्धन्यविधेः ॥ ८९ ॥

'म्लायन्त्यङ्गुलिसङ्गेऽपि कोमलाः कुसुमस्रजः'

इत्यत्राङ्गुलिसङ्ग इति न युक्तः, 'समासेऽङ्गुलेः सङ्गः' (पा० ८।३।८०) इति मूर्धन्यविधानात् ॥ ८९ ॥

मूर्धन्य षकाररहित यह 'अङ्गुलिसङ्ग' प्रयोग अशुद्ध है।

'म्लाय····कुसुमस्रजः', अर्थात् कोमल फूलोंकी मालाएँ अंगुलियोंका संग (स्पर्श) होने मात्रसे मुरझा जाती हैं। इस श्लोकार्धमें 'अङ्गुलिसङ्गः' यह समस्त प्रयोग उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि—'समासेऽङ्गुलेः सङ्गः' इस सूत्रद्वारा स्पष्ट रूपसे मूर्धन्य 'ष'का विधान किया गया है ॥ ८९ ॥

---

१. एतदग्रे 'स्पष्टम्' इति 'ख' पु० पा० अधिकः। २. 'निष्पन्द' इति 'ग' पु० पा०।
३. 'सुषामादि······' इति 'ग' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नाङ्गुलिसङ्ग इति । स्पष्टोऽर्थः ॥ ८९ ॥

तेनावन्तिसेनादयः प्रत्युक्ताः ॥ ९० ॥

तेनाङ्गुलिसङ्ग इत्यनेन 'अवन्तिसेनः, इन्दुसेन' एवमादयः शब्दाः प्रत्युक्ताः प्रत्याख्याताः। 'सुषामादिषु च' (पा० ८।३।९८) 'एति संज्ञायामगात्' (पा० ८।३।९९) इति मूर्धन्यविधानात् ॥ ९० ॥

उससे 'अवन्तिसेन' आदि प्रयोग भी अशुद्ध सिद्ध हो जाते हैं।

उस 'अङ्गुलिसङ्ग' शब्दसे 'अवन्तिसेनः' तथा 'इन्दुसेनः' इत्यादि शब्द भी असिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि 'सुषामादिषु च' तथा 'एति संज्ञायामगात्' ये दोनों सूत्र उक्त परिस्थितियोंमें 'स'को 'ष' होनेका आदेश देते हैं ॥ ९० ॥

तेनेति। 'सुषामादिषु च' (पा० ८।३।९८) इति सूत्रे, 'एति संज्ञायामगात्' (पा० ८।३।९९) इति गणसूत्रबलादेकारपरस्यागकारात् परस्य संज्ञायां विषये मूर्धन्यादेशविधानादवन्तिसेनादयः प्रत्याख्याता इत्याह–तेनाङ्गुलिसङ्ग इत्यनेनेति ॥९०॥

नेन्द्रवाहने णत्वमाहितत्वस्याविवक्षितत्वात् ॥ ९१ ॥

'कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्'।

इत्यत्रेन्द्रवाहनशब्दे, 'वाहनमाहितात्' (पा० ८।४।८) इति णत्वं न भवति, आहितत्वस्याऽविवक्षितत्वात्। स्वस्वामिभावमात्रं ह्यत्र विवक्षितम्, तेन सिद्धम्' इन्द्रवाहनमि'ति ॥ ९१ ॥

सदसन्तो मया शब्दा विविच्यैवं निर्दर्शिताः[1]।
अनयैव दिशा कार्यं शेषाणां[2]मप्यवेक्षणम् ॥

इति काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तौ प्रायोगिके पञ्चमेऽधिकरणे
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः। शब्दशुद्धिः।
समाप्तं चेदं प्रायोगिकं पञ्चमाधिकरणम्।

आहितत्वकी विवक्षा न होनेपर 'इन्द्रवाहन' शब्दसे णकार नहीं होगा।

'कुथेन···वाहनम्', अर्थात् गलीचेसे इन्द्रवाहन ऐरावतकी भाँति। यहाँ 'वाहनमाहितात्' इस सूत्रसे अहितत्वकी विवक्षा न होनेके कारण णकारका निषेध हो जाता है। इस सूत्रके उदाहरण में दिये गये 'इन्द्रवाहनम्' शब्दका अर्थ दिया गया है—'इन्द्रस्वामिकं वाहनमित्यर्थः'। यहाँ तो स्व-स्वामिभावकी विवक्षा अपेक्षित है। इसलिये 'इन्द्रवाहनम्' शब्द ही सिद्ध एवं शुद्ध है।

इस प्रकार मुझ वामनने व्याकरणकी दृष्टिसे सिद्ध तथा असिद्ध शब्दोंकी विवेचना कर दी है। इसी दृष्टिकोणसे शेष शब्द-प्रयोगोंको भी देखना चाहिए ॥ ९१ ॥

---

१. 'विधिनाल्पेन दर्शिताः।' इति 'क' पु० पा०। २. 'दोषाणा······' इति पा० क्वचित्।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

नेन्द्रवाहने णत्वमिति। 'चकासतं चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्'। इत्यादिप्रयोगो दृश्यते; अत्र वाहनमाहिताद् (पा० ८।४।८) इति सूत्रे आहितवाचि यत् पूर्वपदं तस्मान्निमित्तादुत्तरस्य वाहननकारस्य णकारादेशो विधीयते। वाहने यदारोपितं तदाहितमित्युच्यते। तस्मा'दिक्षुवाहणमि'तिव'दिन्द्रवाहणमि'ति प्रयोक्तव्यं, न पुन'रिन्द्रवाहनमि'ति प्राप्ते तन्निषेद्धुमाह—इन्द्रवाहनशब्द इति। अयमर्थः—पूर्वपदार्थस्येक्षुशरादेरिव नेन्द्रस्याहितत्वं विवक्ष्यते, किन्तु इन्द्रस्वामिकं वाहनमिन्द्रवाहनमिति स्वस्वामिसम्बन्धो विवक्ष्यते। ततश्च 'दाक्षिवाहन'मितिव'दिन्द्रवाहन'मिति सिद्धमिति ॥ ९१ ॥

सदसन्त इति। एवमुक्तप्रकारेण, साधवश्चासाधवश्च शब्दा विविच्य पृथक्कृत्य, निर्दशिता उदाहृताः। अनयैव दिशाऽस्मदुक्तेनैव सदसद्विवेकमार्गेण, शेषाणामनुक्तानां सतामसतां च शब्दानामवेक्षणं पर्यालोचनं, कार्यं कर्तव्यमिति भद्रम् ॥

इत्थं समिद्धगुणसम्पदि वामनस्य प्रस्थानसीमनि चिरादलसोज्झितायाम्।
व्याख्यानपद्धतिरियं व्यवहारहेतोर्निष्कण्टका निपुणमारचिता कवीनाम् ॥ १ ॥
न्यायोक्तिवीचिनिचयेन कुतर्कजालकूलङ्कषेण गहने गुणरत्नगर्भे।
सारस्वताऽमृतसरस्वति नावमेनामालम्ब्य रन्तुमनसो विचरन्तु धीराः ॥ २ ॥

पदे केचिद्वाक्ये कतिचन परे मान इतरे
कवित्वेऽलङ्कारे कतिचन परे नाट्यनिगमे।
भजन्ति प्रागल्भ्यं न खलु वयमेतेषु गणिता
बहूकुर्वन्त्येते बुधसदसि नः किन्तु सुधियः ॥ ३ ॥

शब्दार्थौ चरणौ प्रीतकविसरो वाक्यानि गुम्फो लस-
न्मूर्तिर्वस्तु शिरः परिष्कृतिरलङ्कारोऽसवो रीतयः।
यस्याः स्वीयगुणा गुणाः सुरुचिराः शृङ्गारचेष्टादयो
रम्याऽष्टादशवर्णना कृतिवधूः सेयं जगन्मोहिनी ॥ ४ ॥

इति कृतरचनायामिन्दुवंशोद्भवेन[1] त्रिपुरहरधरित्रीमण्डलाखण्डलेन।
ललितवचसि काव्यालङ्क्रियाकामधेनावधिकरणमयासीत् पञ्चमं पूर्तिमेतत् ॥ ५ ॥

इति श्रीगोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचितायां वामनालङ्कारसूत्रवृत्तिव्याख्यायां काव्यालङ्कारकामधेनौ पञ्चमेऽधिकरणे द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः।

समाप्तं चेदं प्रायोगिकं पञ्चममधिकरणम्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

---

१. '…मिन्दुवंशोद्वहेन' इति 'ख' पु० पा०।

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

काव्यालङ्कारसूत्रानुक्रमणिका

	अधि०	अ०	सू०
अ			
अग्राम्यत्वमुदारता	३	२	१३
अजरठत्वं सौकुमार्यम्	३	१	२२
अतद्रूपस्यान्यथा	४	३	९
अतिप्रयुक्तं देशभाषापदम्	५	१	१३
अनाविद्धललितपदं	१	३	२४
अनुचरीति चरेष्टित्वात्	५	२	३१
अनुक्तौ समासोक्तिः	४	३	३
अनुपपत्तिरसम्भवः	४	२	२०
अनुल्बणो वर्णानुप्रासः	४	१	९
अनैकान्त्याच्च	३	१	१६
अन्त्याभ्यां वाक्यं	२	१	२२
अन्यार्थनेयगूढार्थ	२	१	१०
अपाङ्गनेत्रेति लुगलभ्यः	५	२	७०
अपारुष्यं सौकुमार्यम्	३	२	११
अप्रतीतगुणसादृश्य	४	२	१६
अप्रसिद्धार्थप्रयुक्तं	२	१	१३
अप्रसिद्धासभ्यं गुप्तम्	२	१	१६
अभिधानकोशतः	१	३	५
अरूढार्थत्वात्	२	१	२१
अरोचकिनः सतृणाभ्य	१	२	१
अर्थतस्तदवगमः	२	१	२
अर्थदृष्टिः समाधिः	३	१	७
अर्थवैमल्यं प्रसादः	३	२	३
अर्थव्यक्तिहेतुत्वमर्थ	३	१	२४
अर्थस्य प्रौढिरोजः	३	२	२
अर्थो द्विविधोऽयोनिः	३	२	८
अर्थो व्यक्तः सूक्ष्मश्च	३	२	९
अलङ्कारस्यालङ्कार	४	३	३०
अवतरापचायशब्दयो	५	२	४०
अवर्ज्यो न व्यधिकरणो	५	२	१९

	अधि०	अ०	सू०
अविधौ गुरोः स्त्रियां	५	२	४२
अवैषम्यं समता	३	२	५
अवैहीति वृद्धिरवद्या	५	२	६९
असभ्यार्थान्तरम	२	१	१४
असादृश्यहता ह्युपमा	४	२	१७
अहेतौ हन्तेर्णिच्	५	२	३०
आ			
आमूललोलादिषु	५	२	१६
आरोहावरोहक्रमः	३	१	१३
आरोहावरोहनिमित्तं	३	१	१९
आसेत्यसतेः	५	२	२७
आहेति भूतेऽन्यण	५	२	४४
इ			
इतिवृत्तकुटिलत्वं च ततः	१	३	१०
इष्टः पुन्नपुंसकयोः	४	२	१३
उ			
उक्तसिद्ध्यै वस्तुनो	४	३	२१
उक्तार्थपदमेकार्थम्	२	२	११
उक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम्	३	२	११
उत्प्रेक्षाहेतुरुत्प्रेक्षा	४	३	३३
उपमाजन्यं रूपकम्	४	३	३२
उपमानाक्षेपश्चाक्षेपः	४	३	२७
उपमानाधिक्यात्	४	२	१८
उपमानेनोपमेयस्य	४	२	१
उपमानेनोपमेयस्य	४	३	६
उपमानोपमेययो	४	२	१२
उपमानोपमेयवाक्येषु	४	३	१८
उपमानोपमेयसंशयः	४	३	११
उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं	४	३	२२
उपमेयस्योक्तौ	४	३	२
उपमेयोपमानानां	४	३	१७

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	अधि०	अ०	सू०
उपर्यादिषु सामीप्ये	५	२	८५
ऊ			
ऊकारान्तादप्यूङ्	५	२	४८
ए			
एकगुणहानिकल्पनायां	४	३	२३
एकस्योपमेयोपमानत्वे	४	३	१४
ओ			
ओजःकान्तिमती गौडीया	१	२	१२
ओजःप्रसादयोः	३	१	१७
ओजःप्रसादश्लेष	३	१	४
औ			
औज्ज्वल्यं कान्तिः	३	१	२५
औपम्यादयश्चातु	५	२	५५
क			
कञ्चुकीया इति क्यचि	५	२	५९
करिकलभशब्दः	२	२	१७
कर्णावतंसश्रवण	२	२	१४
कलाचतुर्वर्ग	२	२	२४
कलाशास्त्रेभ्यः कलातत्त्वस्य	१	३	७
कल्पितार्थं नेयार्थम्	२	१	१२
कवित्वबीजं प्रतिभानम्	१	३	१६
कामशास्त्रतः कामोपचार	१	३	८
कामयानशब्दस्सिद्धो	५	२	८२
कार्तिकीय इति ठञ्	५	२	४९
काव्यं गद्यं तु पद्यं च	१	३	२१
काव्यं ग्राह्यं	१	१	१
काव्यं सद् दृष्टा	१	१	५
काव्यबन्धोद्यमो	१	३	१३
काव्यशोभायाः	३	१	१
काव्योपदेशगुरुशुश्रूषणं	१	३	१४
किञ्चिदुक्तावप्रस्तुतप्रशंसा	४	३	४
केसरालमित्यलतेरणि	५	२	३२
कौशिलादय इलचि	५	२	६१
क्रमविधानार्थत्वाद्वा	३	१	२०

	अधि०	अ०	सू०
क्रमसिद्धिस्तयोः	१	३	२८
क्रमहीनार्थमपक्रमम्	२	२	२२
क्रमेणोपमेयोपमा	४	३	१५
क्रिययैव स्वतदर्थात्	४	३	२०
क्रियाप्रतिषेधे प्रसिद्ध	४	३	१३
क्षतदृढोरस इति न	५	२	६८
क्षीयत इति कर्मकर्तरि	५	२	५
ख			
खिद्यत इति च	५	२	६
ग			
गच्छतीप्रभृतिष्वनिषेध्यो	५	२	७९
गद्यं वृत्तगन्धि	१	३	२२
गाढबन्धत्वमोजः	३	१	५
गुणद्योतकोपमा	४	२	५
गुणबाहुल्यतश्च	४	२	२
गुणविपर्ययात्मनो दोषाः	२	१	१
गुणविस्तारादयश्चिन्त्याः	५	२	३९
गुणः सम्प्लवात्	३	१	७
घ			
घटना श्लेषः	३	२	४
च			
चक्षिङो द्व्यनुबन्धकरणम्	५	२	४
चतुरस्रशोभीति णिनौ	५	२	५८
चित्तैकाग्र्यमवधानम्	१	३	१७
छ			
छन्दोविचितेर्वृत्त	१	३	६
ज			
जम्बुलतादयो ह्रस्वविधेः	५	२	७३
जातिप्रमाणधर्म	४	२	९
त			
त एवार्थगुणाः	३	२	१
तच्च न, अतत्त्वशीलस्य	१	२	१७
ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः	१	३	३२
तत्र काव्यपरिचयो	१	३	१२

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	अधि०	अ०	सू०
तत्त्रैविध्यम्	४	३	१९
तत्त्रैविध्यं व्रीडा	२	१	१९
तदतिशयहेतवः	३	१	२
तदनिबद्धं निबद्धं च	१	३	२७
तदारोहणार्थमितराभ्यास	१	२	१६
तदिदं प्रयुक्तेषु	२	२	१९
तदुपारोहादर्थगुणलेशोऽपि	१	२	२१
तद्देशकालाभ्याम्	१	३	१८
तद्द्वैविध्यं पदवाक्यार्थ	४	२	३
तद्धातुनामभागभेदे	२	२	४
तद्धि चित्रं चित्रपट	१	३	३१
तद्भेदावुपमारूपको	४	३	३१
तस्यामर्थगुणसम्पदास्वाद्या	१	२	२०
तासां पूर्वा ग्राह्या	१	२	१४
तिरस्कृतं इति परिभूते	५	२	११
तिलकादयोऽजिरादिषु	५	२	७४
तेन वचनभेदो व्याख्यातः	४	२	१५
तेन विपर्ययो व्याख्यातः	५	१	८
तेनाधिकत्वं व्याख्यातम्	४	२	११
तेनावन्तिसेनादयः	५	२	९०
ते-मे-शब्दौ निपातेषु	५	२	१०
तैर्महीधरादयो व्याख्याता	५	२	३७
त्रिवलीशब्दः सिद्धः	५	२	१४
द			
दण्डनीतेर्नयापनययोः	१	३	९
दारवशब्दो दुष्प्रयुक्तः	५	२	५३
दीप्तरसत्वं कान्तिः	३	२	१५
दूरयतीति बहुल	५	२	७८
दुर्गन्धिपद इद् दुर्लभः	५	२	६६
दुष्टं पदमसाधु	२	१	४
दृढभक्तिरसौ सर्वत्र	५	२	७२
देशकालस्वभाव	२	२	२३
ध			
धनुर्ज्याध्वनौ धनुः	२	२	१३

	अधि०	अ०	सू०
धन्वीति व्रीह्यादिषु	५	२	५७
धर्मयोरेकनिर्देशे	४	२	१०
न			
न कतकं पङ्कप्रसादनाय	१	२	५
न कर्मधारयो बहुव्रीहि	५	१	७
न कृमिकीटानामित्येक	५	२	२५
न खरोष्ट्रावुष्ट्रखरमिति	५	२	२६
न गद्ये समाप्तप्रायं	५	१	४
न गुप्तलक्षितसंवृतानि	२	१	१५
न तद्बाहुल्यमेकत्र	५	१	१६
न धान्यषष्ठादिषु	५	२	१७
अ			
न धृतधनुषीत्यसंज्ञायाम्	५	२	६५
न निद्राद्रुगिति, भष्भाव	५	२	८७
न पाठधर्माः, सर्वत्रादृष्टेः	३	१	२८
न पादादौ खल्वादयः	५	१	५
न पादान्तलघोर्गुरुत्वं	५	१	३
न पुनरितरे, स्तोकगुणत्वात्	१	२	१५
न पृथगारोहावरोह	३	१	१४
न भ्रान्ताः, निष्कम्पत्वात्	३	१	२७
न, लक्ष्मणः पृथक्त्वात्	२	२	६
न विरुद्धोऽतिशयः	४	२	२१
न, विशेषश्चेत्	२	२	१२
न वृत्तदोषात् पृथग्	२	२	५
न शणसूत्रवानाभ्यासे	१	२	१८
न शास्त्रमद्रव्येष्वर्थवत्	१	२	४
न शुद्धः	३	१	८
न, सम्पृक्तत्वात्	३	१	१५
न सरजसमित्यनव्ययीभावे	५	२	६४
नाङ्गुलिसङ्ग इति	५	२	८९
नानिबद्धं चकास्त्येक	१	३	२९
नापुष्टार्थत्वात्	४	२	१९
नार्धे किञ्चिदसमाप्त	५	१	६
नासन्तः, संवेद्यत्वात्	३	१	२६

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	अधि०	अ०	सू०
नित्यं संहितैकपदवत्	५	१	२
निपातेनाप्यभिहिते	५	२	२२
निशम्यनिशमय्यशब्दौ	५	२	७५
निष्यन्द इति षत्वं	५	२	८८
नेतरे, तद्विपर्ययात्	१	२	३
नेन्द्रवाहने णत्वमाहित	५	२	९१
नेष्टाः श्लिष्टप्रियादयः	५	२	७१
नेकं पदं द्विः प्रयोज्यं	५	१	१
नैकशब्दः, सुप्सुपेति	५	२	१२
प			
पदमनेकार्थमक्षरं	४	१	१
पदसन्धिर्वैरूप्यं	२	२	८
पदाधानोद्धरणमवेक्षणम्	१	३	१५
पद्यभागवद् वृत्तगन्धि	१	३	२३
पद्यमनेकभेदम्	१	३	२६
पत्रपीतिमादिषु	५	२	१८
पत्रलमिति लातेः के	५	२	३३
पादः पादस्यैकस्य	४	१	२
पादानुप्रासः पाद	४	१	१०
पिण्डाक्षरभेदे स्वरूप	४	१	७
पुष्पमालाशब्दे	२	२	१६
पूरणार्थकमनर्थकम्	२	१	९
पूर्वनिपातेऽपभ्रंशो	५	२	२१
पूर्वे नित्याः	३	१	३
पूर्वे शिष्याः, विवेकित्वात्	१	२	२
पृथक्पदत्वं माधुर्यम्	३	१	२१
प्रतिवस्तुप्रभृतिरुपमा	४	३	१
प्रपीयेति पीडः	५	२	७७
प्राणिनि नीलेति चिन्त्यम्	५	२	४६
प्रातिभादयः प्रज्ञादिषु	५	२	६३
ब			
बिम्बाधर इति वृत्तौ	५	२	१५
बौद्धप्रतियोग्यपेक्षाया	५	२	६०
ब्रह्मविदादयः कृदन्तवृत्त्या	५	२	३६
ब्रह्मादिषु हन्तेर्नियमाद्	५	२	३५
भ			
भङ्गादुत्कर्षः	४	१	३
भिदुरादयः कर्मकर्तरि	५	२	३८
भिन्नवृत्तयतिभ्रष्ट	२	२	१
म			
मधुपिपासुप्रभृतीनां	५	२	१३
मनुष्यजातेर्विवक्षा	५	२	४७
मन्दं मन्दमित्यप्रकारार्थत्वे	५	२	८६
मसृणत्वं श्लेषः	३	१	११
महीध्रादयो मूलविभुजा	५	२	३४
माधुर्यसौकुमार्यो	१	२	१३
मायादिकल्पितार्थ	२	२	२१
मार्गाभेदः समता	३	१	१२
मार्गेरात्मनेपदमलक्ष्म	५	२	७
मित्रेण गोप्त्रेति	५	२	८०
मिलिक्लबिक्षपि	५	२	२
मुक्ताहारशब्दे	२	२	१५
मुग्धिमादिष्विमनिज्	५	२	५४
मौक्तिकमिति विनया	५	२	६२
य			
यत् सादृश्यं तत्	४	३	२९
युद्धचेदिति युधः	५	२	२८
र			
राजवंश्यादयः साध्वर्थे	५	२	५२
रात्रियामस्तुरीयः कालः	१	३	२०
रीतिरात्मा काव्यस्य	१	२	६
रुद्रावित्येकशेषोऽन्वयः	५	२	१
रूढिच्युतमन्यार्थम्	२	१	११
ल			
लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो	१	३	११
लक्षणाशब्दाश्च	५	१	१५
लभेर्गत्यर्थत्वात्	५	२	९
लाक्षणिकासभ्यं	२	१	१७

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	अधि०	अ०	सू०
लिङ्गाऽध्याहारौ	५	१	१४
लोकमात्रप्रयुक्तं	२	१	७
लोकवृत्तं लोकः	१	३	२
लोकसंवीतं संवृतम्	२	१	१८
लोको विद्या प्रकीर्णञ्च	१	३	१
लोपे लुप्ता	४	२	६
लोलमानादयश्चानशि	५	२	८
लौकिक्यां समासा	४	२	१४
व			
वर्णविच्छेदचलनं	४	१	५
वलेरात्मनेपदमनित्यं	५	२	३
वस्तुद्वयक्रिययोः	४	३	२८
वस्तुस्वभावस्फुटत्व	३	२	१४
विकटत्वमुदारता	३	१	२३
विदर्भादिषु दृष्टत्वात्	१	२	१०
विपरीतमुत्कलिकाप्रायम्	१	३	२५
विविक्तो देशः	१	३	१९
विरम इति निपातनात्	५	२	८४
विरलायमानादिषु	५	२	२९
विरसविरामं यतिभ्रष्टम्	२	२	३
विरुद्धाभासत्वं विरोधः	४	३	१२
विरूपपदसन्धिर्विसन्धिः	२	२	७
विशिष्टा पदरचना रीतिः	१	२	७
विशिष्टेन साम्यार्थमेक	४	३	२६
विशेषणमात्रप्रयोगो	५	१	१०
विशेषणस्य च	२	२	१८
विशेषो गुणात्मा	१	२	८
विशेषापेक्षित्वात् तयोः	३	१	१८
वेत्स्यतीति पदभङ्गात्	५	२	८१
व्यर्थैकार्थसन्दिग्ध	२	२	९
व्यवसितादिषु क्तः	५	२	४३
व्यवहितार्थप्रत्ययं	२	१	२०
व्याजस्य सत्यसारूप्यं	४	३	२५
व्याहतपूर्वोत्तरार्थं व्यर्थम्	२	२	१०
श			
शक्यमिति रूपं	५	२	२३
शबलादिभ्यः स्त्रियां	५	२	४५
शब्दस्मृतिविरुद्धमसाधु	२	१	५
शब्दस्मृतेः शब्दशुद्धिः	१	३	४
शब्दस्मृत्यभिधानकोश	१	३	३
शार्वरमिति च	५	२	५०
शाश्वतमिति प्रयुक्तेः	५	२	५१
शास्त्रतस्ते	१	१	४
शास्त्रमात्रप्रयुक्तं	२	१	८
शृङ्खलापरिवर्तक	४	१	४
शेषः स्वरूपोऽनुप्रासः	४	१	८
शैथिल्यं प्रसादः	३	१	६
शोभेति निपातनात्	५	२	४१
श्रुतिविरसं कष्टम्	२	१	६
ष			
ष्यञः षित्करणादीकारो	५	२	५६
स			
संयम्यनियम्यशब्दा	५	२	७६
संशयकृत् सन्दिग्धम्	२	२	२०
सङ्गविनिवृत्तौ स्वरूपापत्तिः	४	१	६
स त्वमनुभवसिद्ध	३	१	९
स दोषगुणालङ्कार	१	१	३
स धर्मेषु तन्त्र	४	३	७
सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः	१	३	३०
समग्रगुणा वैदर्भी	१	२	११
समविसदृशाभ्यां	४	३	१६
समेन वस्तुना	४	३	५
सम्बन्धसम्बन्धेऽपि	५	१	१२
सम्भाव्यधर्मतदुत्कर्ष	४	३	१०
सम्भाव्यनिषेधनिवर्तने	५	१	९
सम्भाव्यविशिष्टकर्मा	४	३	२४
सर्वनाम्नाऽनुसन्धि	५	१	११
सा त्रेधा वैदर्भी	१	२	९

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	अधि०	अ०	सू०
सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः	४	३	८
साऽपि वैदर्भी, तात्स्थ्यात्	१	२	२२
साऽपि समासाभावे	१	२	१९
सा पूर्णा लुप्ता च	४	२	४
साम्योत्कर्षौ च	३	१	१०
सुगमत्वं वाऽवैषम्यं	३	२	६
सुदत्यादयः प्रतिविधेयाः	५	२	६७
सूक्ष्मो भाव्यो वासनीयश्च	३	२	१०
सौकर्याय प्रपञ्चः	२	१	३
सौन्दर्यमलङ्कारः	१	१	२
सौहृददौर्हृदशब्दावणि	५	२	८३
स्तनादीनां द्वित्वाविष्टा	५	१	१७
स्तुति-निन्दातत्त्वा	४	२	७
स्वलक्षणच्युतवृत्तं	२	२	२
ह			
हस्ताग्राग्रहस्तादयो	५	२	२०
हानिवदाधिक्यमप्यङ्गानां	५	२	२४
हीनत्वाधिकत्वलिङ्ग	४	२	८

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

वृत्युदाहृतश्लोकानुक्रमणिका

	पृष्ठ
अ	
अखण्डवर्णविन्यासचलनं	१३७
अङ्गुलिभिरिव केशसञ्चयं	१९६
अत्युच्चपदाध्यासः	१८४
अन्योन्यसंवलितमांसल	११८
अपह्नुतौ रूपकं (कामधेनु)	१६५
अपसारय धनसारं (,,)	१४२
अप्यशक्यं तया दत्तं	१२९
अप्यसज्जनसाङ्गत्ये	१७९
अप्राप्तचूर्णभङ्गानि	१३७
अयं नानाकारो भवति	१०९
अर्थान्तरस्य न्यसनं (कामधेनु)	१६६
अलङ्कारैकदेशा ये मताः	१९६
अवहित्थवलितजघनं	११८
असङ्कलितरूपाणां काव्यानां	४१
असज्जनवचो यस्य	१२९
अस्पृष्टा दोषमात्राभिः	१७
अहौ वा हारे वा (कामधेनु)	१२५
आ	
आकुञ्च्य पाणिमशुचि (कामधेनु)	१२५
आकृष्टाऽमलमण्डलाग्र	१७१
आखण्डयन्ति मुहुराम	१४२
आदाय कर्णकिसलय	१८१
आधानोद्धरणे तावद्	३७
आरूढं भूयसा यत्तु	१३८
आरोहन्त्यवरोहन्ति	१०४
आश्वपेहि मम शीधु	११६
आश्लिष्टश्लथभावां	२१
इ	
इदानीं प्लक्षाणां	१४७
इदं कर्णोत्पलं चक्षु	१७८
इयं गेहे लक्ष्मी	१६८
इह च निरन्तर	१७२
उ	
उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं (कामधेनु)	१२५
उत्प्रेक्षाऽवयवश्चेति (,,)	१६६
उद्गर्भहूणतरुणीरमणो	१४७
उद्वेजयति भूतानि	१२९
उभौ यदि व्योम्नि	१७६
ए	
एतत्करालकरवाल (कामधेनु)	१२६
एभिर्निदर्शनैः स्वीयैः	१९६
ऐ	
ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण	१९२
औ	
औज्ज्वल्यं कान्तिरित्याहु	१०५
क	
करुणप्रेक्षणीयेषु	९३
करोति ताम्रो रामाणां (कामधेनु)	१३४
कर्णावतंसादिपदे	७९
कविराजमविज्ञाय	१४२
का स्विदवगुण्ठनवती	११५
किं भाषितेन बहुना	५१
कीर्ति स्वर्गफलामाहु	९
कुवलयदलश्यामा मेघा	१४२
कुवलयवनं प्रत्याख्यातं	१८७
कोणस्त्रिवल्येव कुचा (कामधेनु)	२२०
क्वचिन्मसृणमांसलं	१४१
क्षुद्राः सन्त्रासमेते (कामधेनु)	१२५
ख	
खमिव जलं	१८१

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	पृष्ठ
ग	
गगनं गगनाकारं	१८०
गाहन्तां महिषा निपान	१७
गुणस्फुटत्वसाकल्ये	१२४
गुणानां दशतामुक्तो	१२४
गुरुशुश्रूषया विद्या	१८४
ग्रामेऽस्मिन् पथिकाय	२१
ग्रीवाभङ्गाभिरामं (का० काम०)	१२५
च	
चकास्ति वदनस्यान्तः	१६३
चित्रं महानेष बताधि (का० काम०)	१२५
च्युतसुमनसः कुन्दाः	११४
ज	
जयन्ति ताण्डवे	२०२
त	
तन्वीमेघजलार्द्र	१९४
तस्मात् कीर्तिमुपादातुम्	९
तस्याः प्रबन्धलीलाभि	१८३
तस्याश्चेन्मुखमस्ति	१९२
तां रोहिणीं विजानीहि	१५१
ते हिमालयमामन्त्र्य	१०८
त्वमेवं सौन्दर्या स च	१२१
द	
दूर्वारमरकतश्यामं (का० काम०)	१५१
देवीभावं गमिता	१६६
दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखर	१९
दृष्ट्वैकासनसङ्गते प्रियतमे	११३
ध	
धम्मिलस्य न कस्य	६२
धर्मागमे दुर्मद (का० काम०)	१५५
न	
न केतकीनां विलसन्ति	१६८
नतोन्नतभ्रूगतिबद्धलास्यां	१२९
न सा धनोन्नतिर्या	६२

	पृष्ठ
निदानं निर्द्वैतं प्रियजन	१०२
निरवधि च निराश्रयं	१९५
निर्वृष्टेऽपि बहिर्घने	१५३
नानाकारेण कान्ता	१२९
प	
पदन्यासस्य गाढत्वं	१०४
पदार्थे वाक्यवचनं	१०८
पश्चादिव गतिर्वाचः	१०५
पाण्ड्योऽयमंसार्पित	१४८
पातालमिव नाभिस्ते	१५५
पिण्डाक्षरस्य भेदेन	१३७
पीतं पानमिदं	१७८
पुरः पाण्डुच्छायं	१०८
पृष्ठेषु शङ्खशकलच्छविषु	१२२
प्रणम्य परमं ज्योतिः	१
प्रतिपादं प्रतिश्लोकम्	१०४
प्रतिवस्तुप्रभृतय (का० काम०)	१६५
प्रतिष्ठां काव्यबन्धस्य	९
प्रथममलसैः पर्यस्ताग्रं	१२२
प्रसीद चण्डि त्यज मन्यु	९६
प्राणेश्वरपरिष्वङ्गविभ्रम	७६
प्राहुर्व्यस्तं च (का० काम०)	८०
प्रियेण सङ्ग्रथ्य विपक्ष	१८५
प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः (का० काम०)	१२५
प्रेयान् सायमपाकृतः	१२३
ब	
बन्धस्याजरठत्वं च	१०४
बन्धे पृथक् पदत्वं च	१०४
बबन्ध सेतुं गिरि	१८९
बाष्पः पथिककान्तानां	१८४
भ	
भवन्ति यत्रौषधयो	१८८
भूष्यन्ते प्रमदवनानि	१८३
भृङ्गेण कलिकाकोश	८२
भ्रमर द्रुतपुष्पाणि	१२९

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

	पृष्ठ
म	
मन्दरस्य मदिराक्षि	२४०
मलयजरसविलिप्त	१७६
मा भवन्तमनलः पवनो	२०७
मा भैः शशाङ्क मम	११६
य	
यत् पदानि त्यजन्त्येव	३७
यत्रैकपदवद्भावः पदानां	१०४
यदन्यसङ्गमुत्सृज्य	१३७
यथा हि छिद्यते रेखा	१०४
यदि भवति वचश्च्युत	८८
यान्ति यस्यान्तिके (का० काम०)	१३४
यासां बलिर्भवति मद्	२००
युवतेरिव रूपमङ्गकाव्यं	८८
योऽचलकुलमवति चलं	१३७
र	
रसवदमृतं कः सन्देहो	१२०
ल	
लावण्यसिन्धुरपरैव	१६८
व	
वसुपरासु परासु	१२९
वस्त्रायन्ते नदीनां	१४२
विकटत्वं च बन्धस्य	१०४
विभक्तिपरिणामेन	१३७
विभक्तीनां विभक्तत्वं	१३८
विभावनानन्वयः स्याद् (का०काम०)	१६६
विभावैरनुभावैश्च ,,	११९
विवधधववना नाग	१२९
विहाय सा हारमहार्यं	१८१
श	
शक्यमोषधिपतेर्नवो (का० काम०)	२२७
शरच्चन्द्रांशुगौरेण	१९०
शुद्धान्तदुर्लभमिदं	१५८
श्रीतिप्पभूपालक मध्य (का०काम०)	२०१
श्लथत्वमोजसा मिश्रं	१०४

	पृष्ठ
श्लाघ्या ध्वस्ताध्व	१६७
स	
संयोगो विप्रयोगश्च (का० काम०)	८०
संवीतस्य हि लोकेन	५८
सति वक्तरि सत्यर्थे	१७
सत्यं हरिणशावाक्ष्याः	१८७
सद्यो मुण्डितमत्तहूण	१४७
सनाकवनितं नितम्ब (का० काम०)	१३४
सपदि कृतपदस्त्व	१२९
सपदि पङ्क्तिविहङ्गमनाम्	५४
सभासु राजन्नसुरा (का० काम०)	१३४
समरमूर्धनि येन तरस्विना	२०३
समस्तात्युद्भटपदामोजः	१९
स मुनिर्लाञ्छितो	१५२
सरश्मि चञ्चलं	१५६
स वः पायादिन्दु	१७५
सा बाला वयमप्रगल्भ	१७८
सामर्थ्यमौचिती देशः (का० काम०)	८०
सारसालङ्कृताकारा ,,	१३४
सितकरकररुचिरविभा ,,	१४४
सितं सितिम्ना सुतरां	२१६
सुदृशो रसरेचकितं	१२९
सुप्तिङ्संस्कारसारं यत्	१२४
सूर्यांशुसम्मिलितलोचनेषु	१५३
सोपानपथमुत्सृज्य	६२
सोऽयं सम्प्रति चन्द्र	१०९
सौवीरेष्वस्ति नगरी	८२
स्थिरायते यतेन्द्रियो (का० काम०)	१३४
स्यात्तुल्ययोगिताक्षेपः ,,	१६६
स्वपिति यावदयं	१२१
ह	
हन्त हन्तररातीनां	१२९
हरिततनुषु बभ्रु	१४८
हा मातस्त्वरितासि (का० काम०)	१२५
हृतोष्ठरागैर्नयनोदबिन्दु	२४०

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

This PDF you are browsing now is in a series of several scanned rare books and manuscripts from Sanskrit Academy, Hyderabad.

Address:

Manikeshwar Nagar Kaman,

Osmania University, Tarnaka,

Hyderabad, Telangana, 500007

https://sanskritacademy.net/

https://archive.org/details/@sanskrit_academy_hyd

The Academy is currently led by Director Shri Madhushan Penna.

His CV:

Prof. Penna madhusudan,

Director Sanskrit Academy, Hyderabad

Areas of interest

Yoga shastra, nyaya, yoga and vedanta philosophy.

Works

3 mahakavyas, 10 laghukavyas, 30 translations and 140 edited books

Sahitya Academy Awardee for Mahakavya on Gulabrao Maharaj.

Translated the Marathi Jnaneshwari in 9000 Sanskrit shlokas.

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Honours

Honorary D.Litt by National Sanskrit University, Tirupati AP. for his unique contribution in Indian Philosophy.

-Vachaspati

-Yoga Ratna

-Shastra nidhi

-Utkrisht Sanskrit Pandit

-Yajna Surabhi

-Shastri (Karavir Peeth)

-Shastra Ratnakara

Awards

- Sahitya Academy award

- Maharashtra govt sadhana award

- Pt. Satvalekar award

- Pt. Latkar shastri award

- Pt. Ghatate award

- Somnath Trust Award with Gold Medal and title of Best Scholar

- Sribhashyam national award

and many other.

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding Ravi Parimi, Hyderabad

Foreign Travel

The Netherlands, Canada for World Sanskrit Conference 2018.

Indian embassy, Nepal 2023

DVDs on yoga, Indian philosophy and Sanskrit Literature.

mspenna67@gmail.com

Digitization by eGangotri Trust/Sarayu Trust, New Delhi

Funding for Digitization: Shri Ravi Parimi, Hyderabad

Sanskrit Academy, Hyderabad Collection. c/o Hon. Dir. Shri Madhusudan Penna